श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

(प्रथम, द्वितीय, दशम्, एकादश एवं द्वादश स्कन्ध)

हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरणम्



डॉ० गायत्री प्रसाद पाण्डेय

6.4

॥श्रीगणेशाय नमः॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

(प्रथम, द्वितीय, दशम, एकादश एवं द्वादशस्कन्ध)

हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरणम्

रचयिता

डॉ० गायत्री प्रसाद पाण्डेय

आत्मज

आचार्य (स्व०) भानुदत्त पाण्डेय

सम्पादक-

आचार्य सरस्वती प्रसाद पाण्डेय **अधिवक्ता, जनार्दन प्रसाद पाण्डेय**

डॉ०सुधा त्रिपाठी, एम०ए०,पीएच०डी०

ग्राम कूराडीह, हरिहरगंज, प्रतापगढ़ (उत्तरप्रदेश)

प्रकाशक

शारदा संस्कृत संस्थान

वाराणसी - २२१००२

वर्तमान संकेत:-
शाश्वतम् जानकी निलयम्
बी.35/70, बी-3 ए-4
तुलसीनगर, सरायनन्दन, वाराणसी
चल दूरभाषः - 9415116493
9839186737

ISBN : 978-93-81-999-80-6

गुरु पूर्णिमा
विक्रम संवत् 2073
सन् 2016

मूल्य- 500/-

मुद्रक :-
साधना प्रेस
वाराणसी



समर्पणम्

जननी जानकी देवी
भानुदत्तो गुरुः पिता।
नाकस्थयोस्तयोः प्रीत्यै
भूयाद् भागवती कृतिः।।

- गायत्रीप्रसादः

नम्र निवेदन

अशरण शरण अकारण करुण करुणावरुणालय भक्तजन वाञ्छा कल्पतरु भगवान् श्रीकृष्ण एवम् उनकी आह्लादिनी शक्ति करुणामयी श्रीराधाजी की कृपा से श्रीमद्भागवत पुराण के पारायण का सुयोग बना। एक दो परायण के पश्चात् हिन्दी दोहा चौपाई में इसके रूपान्तरण का विचार आया। भाषा की दृष्टि से अत्यन्त क्लिष्ट श्रीमद्भागवत महापुराण का दोहा चौपाई में रूपान्तरण प्रारम्भ में कठिन लगा फिर शरणागत भाव से भागवत भगवान् से ही दोहा चोपाई के रूप में परिणत होने की प्रार्थना की। फलतः श्रीभागवत भगवान् ने स्वयं लिखवाया जिसमें मैं निमित्त बना। प्रयास रहा कि श्लोक का अर्थ दोहा चौपाई में समाहित रहे, भले ही एक श्लोक के लिये एकाधिक चौपाई रचनी पड़े। प्रथम, द्वितीय स्कन्ध के पश्चात् दशम फिर एकादश और द्वादश स्कन्ध का रूपान्तरण सम्भव हुआ जिसका प्रकाशन हमारे सुधी अग्रज डॉ.विनोदराव पाठक जी की उदार कृपा से सम्भव हो रहा है। शेष स्कन्ध का कार्य प्रगति पर है। आशा है युगल सरकार की कृपा के सहारे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होगा।

विश्वास है भागवत कथा रसिकों हिन्दी-भाषानुरागियों को मनस्तोष होगा। अन्त में पराम्बा अन्नपूर्णा एवं काशीविश्वेश्वर के चरणों में सभक्ति प्रणति निवेदित करते हुये युगल सरकार की प्रीति हेतु सदैव अभिलाषी-

– गायत्री प्रसाद पाण्डेय
काशी

अनुक्रमणिका

माहात्म्यम्

*

प्रथम स्कन्धः

*

द्वितीय स्कन्धः

*

दशम स्कन्धः

दशम स्कन्ध (उत्तरार्धः)

*

एकादश स्कन्ध:

द्वादश स्कन्धः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

कृष्णं नारायणं वन्दे कृष्ण वन्दे व्रजप्रियम्।
कृष्णं द्वैपायनं वन्दे कृष्णं वन्दे पृथासुतम्।।

अथ प्रथमोऽध्यायः

सोरठा-सच्चिदानन्द घन रूप, जगत सृष्टि पालन हरन ।
ताप त्रय निर्मूल, वन्दउं श्री हरि के चरन ।।१।।
अनुपवीत शुकदेव, प्रस्थित भे संन्यास मग।
विरहाकुल हो व्यास, पुत्र! कहत पीछे लगे ।।
तन्मय तरु शुक ओर, उत्तर दीहे मनहुं तब ।।
सर्व प्राणि उर वास, बन्दउं ऐसे शुकमुनिहिं ।।२।।

एक बार नैमिष में जाई। हरषे शौनक सूतहिं पाई ।।
कीन प्रणाम महामति चरना। कथा रसिक कह शौनक बचना।।३।

शौनक उवाच-

ज्ञान तुम्हार कोटि रवि जोई। कथा कहहु मम तृप्ती होई।।४।।
ज्ञान विराग भक्ति हित कोई। भगत विवेक कौन विधि होई।।५।।
यहिं कलिकाल असुर भे प्रानी। शोधन हेतु बतावहु ज्ञानी।।६।।
शाश्वत साधन देहु बताई। कृष्ण प्राप्ति जासे होइ जाई।।७।।
चिन्तामणि भौतिक सुख दाता। स्वर्ग लोक सुर वृक्ष प्रदाता।।

जो प्रसन्न होंहि गुरु देवा। देत सदा बैकुण्ठ बसेवा।।८।।

सूत उवाच-

शौनक तब उर बाढ़ी प्रीती। भवनाशन की कहिहों रीती।।९।।
कृष्ण प्रेम तव भक्ति बढ़ाई। कहों सुनहु सादर मन लाई।।१०।।
काल-व्याल मुख त्रास नसावन। भगवत शास्त्र कहे शुक पावन।।११।।
येंहि ते बड़ साधन नहि आना। पूर्व पुण्य लह सुने पुराना।।
मन की शुद्धि आशु तेंहि होई। श्री भागवत सुने जो कोई।।१२।।
नृपहिं सुनाव बैठ शुक जबहीं। अमृत कलश सुर लाये तब हीं।।१३।
शुकहिं प्रणाम किये सुर जाई। स्वारथ लागि प्रीति अधिकाई।।
कथा सुधा मोंहि देहु पिलाई। अमृत से बदलहु मुनिराई।।१४।।
नृपहिं अमृत कर पान करावहु। हमहिं भागवत ग्रन्थ सुनावहु।।१५।।

दोहा- कहाँ सुधा कँह हरि कथा, कहाँ काँच, मणि एक।
ब्रह्मरात लखि के हँसे, देवन्ह निपुन विवेक।।१६।।

भक्ति रहित देवन्ह सो देखा। सुर दुर्लभ नहि दीन विशेषा।।१७।।
पुरा कल्प नृप मोक्ष विचारी। सत्य लोक विधि-तुला सम्हारी।।१८।।
लघु सब साधन, गुरू पुराना। विस्मय सकल मुनीगण माना।।१९।।
कलि मँह भगवत रूप बखाना। पढ़त सुनत बैकुण्ठ प्रदाना।।२०।।
सनकादिक नारदहिं बतावा। सुनि सप्ताह परम पद पावा।।२१।।
यदपि विरंचि नारदहिं दीना। विधि विधान सनकादिक कीना।।२२।।

शौनक उवाच-

नारद सदा विचर दिन राती। विधि-विधान जाने केंहि भाँती।।२३।।

सूत उवाच-

कहौ कथानक भक्ति सुजाना। शुकाचार्य भाषे मोहि माना।।२४।।
पुरी विशाला चारिउ भाई। सनकादिक सत्संग सुहाई।।

मिले तँहा नारद मुनि आई। पूंछी सनकादिक कुशलाई।।२५।।

कुमारा ऊचुः

मुख उदास केंहि कारण होई। जाहु कहाँ, आवहु कित सोई।।२६।।
मुक्त संग अस विचरहु ताता। सर्वस गये मनुज पछिताता।।२७।।

नारद उवाच

उत्तम समुझि धरा पर गयेंऊ। काशी पुष्कर घूमत रहयेऊं।।२८।।
कुरुक्षेत्र हरिहर श्रीरंगा। तीर्थ भ्रमण मन भयेउ न चंगा ।।२९।।
मन सन्तोष कतहुं नहि पावा। मानहुं कलियुग कीन प्रभावा।।३०।।
सत्य शौच तप कतहुं न देखा। उदर परायण जीवहिं पेखा।।३१।।
मन्द मूढ़मति दिये दिखाई। सब पाखण्ड निरत सधुवाई।।३२।।
नारिन्ह प्रभुत्ता सचिव है साला। कन्या विक्रय लोभ कराला।।३३।।
तीर्थ नदी मन्दिर सब दूषे। यवन बहुल आश्रम भे छूंछे।।३४।।
योगी सिद्ध न ज्ञानि दिखावा। कलि दावानल सकल जरावा।।३५।।
बेंचत वेद अन्न द्विज पावा। नारिन्ह वेश्या रूप बनावा।।३६।।
विचरत मही यमुन तट आवा। लीला जहाँ कृष्ण की गावा।।३७।।
अचरज तँह देखा मुनिराया। तरुणी एक खिन्न तँह पाया।।३८।।
युगल वृद्ध तँह रहे अचेता। रोवत युवती करत सचेता।।३९।।
देखत चारिउं ओर खभारी। पंखा करत रही बहु नारी।।४०।।
कौतुक बस तँह देखे जाई। देखि मोहि बोली अँसुवाई।।४१।।

बालो वाच-

अरे महात्मा! क्षण रुको, चिन्ता मेटो तात।
तुम्हरे दर्शन से मिटे, सकल पाप सन्ताप।।४२।।

सुनत बचन उर शान्ति बढ़ाये। बड़े भाग्य तब दर्शन पाये।।४३।।

नारद उवाच

कौन देवि, ये कौन तुम्हारे। निज दुख कारण कहहु विचारे।।४४।।

बालोवाच-

भक्ति नाम मम सुत ये दोऊ। ज्ञान विराग जरा जर होऊ ।।४५।।
गंगा आदि नदी सब आई। सेवा हेतु तदपि सुख नाई ।।४६।।
सुनहु तपोधन! अकथ कहानी। करहु उपाय शान्ति सुखदानी ।।४७।।
द्रविण देश मम जन्म कहावा। कर्णाटक में वृद्धी पावा ।।
महाराष्ट्र में कतहुं सयानी। गुर्जर मँह मैं गई बुढ़ानी।।४८।।
तँह कलिकाल प्रचण्ड प्रभावा। दुर्बल देह सुतन्ह मैं पावा ।।४९।।
वृन्दावन पहुँचत मैं तरुणी। यौवन पाइ सुरूपा रमणी।।५०।।
युगल तनय हैं परम दुखारी। इनहि संग लै जइहों वारी ।।५१।।
जरा जरठ सुत, तरुणी माता। अहह दुःख किमि दीन विधाता।।५२।।
मातहिं जरा, सुतन्ह चह यौवन। विधि विपरीत दिखाये दुर्दिन।।५३।।
विस्मय मूढ़ करउं मन शोका। कारण कौन बतावहु ओका ।।५४।।

नारद उवाच

दोहा- ज्ञान दृष्टि से देखउं, हे रमणी निष्पाप।
करिहें हरि कल्याण तव, मन से त्यागहु ताप ।।५५।।

सूत उवाच-

निमिष मात्र ऋषि कारण जाना। बोले नारद परम सुजाना ।।५६।।

नारद उवाच

बाले सुनहु कली है आवा। योग मार्ग तप लुप्त बतावा।।५७।।
लोग अघासुर सरिस बखाना। शठता कुकरम करहिं अयाना ।।
सज्जन दुखी, सुखी खल लोगा। धरे धैर्य पण्डित कर योगा ।।५८।।
शेषहुं धरा लगै गरुवाई। दर्शन मंगल नाहि देखाई ।।५९।।
सुतन्ह संग तोंहि देखि न काऊ। जर्जर तन नहि देख स्वभाऊ ।।६०।।
वृन्दावन महिमा यह जाना। नाचत भक्ति युवति करि गाना ।।६१।।
ज्ञान विराग न ग्राहक कोऊ। ताते तनय युगल लग सोऊ ।।६२।।

भक्तिः उवाच-

काहें नृपति परीक्षित राखा। कलियुग, सार कहाँ गे भाषा ।।६३।।
संशय दूर करहु मुनिनाथा। अधरम कत देखे यदुनाथा ।।६४।।

नारद उवाच

बाले! सुनु सादर मनलाई। सुनत दूर कश्मल होइ जाई ।।६५।।
धाम गये निज जबहिं मुरारी। तेहि दिन ते आया कलिभारी ।।६६।।
धरती विजय यदा नृप कीन्हा। शरणागत कलियुग तब चीन्हा ।।६७।।

दोहा- जो फल तप अरु योग नहि, धरे समाधी ध्यान।
कलियुग मँह हरि नाम से, होत सदा कल्यान।।६८।।

देखा कलिमँह सार अपारा। दीन बसाय ताहि नृप वारा ।।६९।।
कलि प्रभाव अधरम रत लोगा। सार हीन भुंइ तुष इव भोगा ।।७०।।
अन्न लोभ सब कथा पुराना। कथा सार तेंहि दूर पराना ।।७१।।
तीर्थ मांहि नास्तिक जन छाये। तीर्थ सार भे दूर पराये ।।७२।।
काम क्रोध तृष्णा बहु व्यापा। तप कर सत्त्व भये दुरवापा।।७३।।
लोभ मोह पाखण्ड बढ़ावा। सार तपस्या दूर भगावा ।।७४।।
पण्डित रमहिं महिष जिमि कामी। मुक्ति भूलि सन्तति परिणामी ।।७५।।
नहि वैष्णव मर्यादा कतहूँ। वस्तु सार विलोपित सबहूँ ।।७६।।
युग प्रभाव यह दोष न काहू। देखत कमल नयन सुर नाहू।।७७।।

सूत उवाच-

ऋषी वचन सुनि विस्मय भयऊ। शौनक सुनहु भक्तिजो कहऊ।।७८।।

भक्तिः उवाच

अहह धन्य सौभाग्य हमारे। देव ऋषी जो इहाँ पधारे ।।
साधु समागम सुख कर मूला। सर्व सिद्धि दाता अनुकूला।।७९।।

एक बार उपदेश सुनि, भे प्रहलाद अजेय।
ध्रुव पद पाये ध्रुव स्वयं, नवौं विधीसुत ध्येय।।८०।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिनारद सभागमो नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः।।

नारद उवाच–

दोहा- बाले! चिन्ताकरहु तुम, व्यर्थहिं मन में आन।
उर राखहु भगवत चरण, दुख हरिहैं भगवान्।।१।।

द्रौपदि रक्षेउ कुरुकुल जाई। कतहुं नहीं है गये कन्हाई।।२।।
तुम तो भक्ति सदा हरि प्यारी। तुम लगि नीचहु जाहिं मुरारी।।३।।
सत्त युग त्रेता द्वापर माँही। ज्ञान विराग ते मुक्ति लहाहीं।।
कलियुग केवल भक्ति अधारा। जेंहि ते मोक्ष लहैं जग सारा।।४।।
इहै सोचि हरि रचे भवानी। कृष्ण प्रिया भक्ती बहुमानी।।५।।
हाथ जोरि तुम पूंछेउ जबहीं। भगत सँवाचु कहे हरि तबहीं।।६।।
शिर धरि अज्ञा प्रभु की मानी। दासी मुक्ति हरि दिंये बखानी।।
ज्ञान विराग पुत्र तव जाये। याही ते परिवार बढ़ाये।।७।।
निज स्वरूप वैकुण्ठ निवासा। छाया रूप धरणि पर वासा।।८।।
ज्ञान विराग संग भुंइ आई। तीनउ युग तब सुख अधिकाई।।९।।
कलि मँह मुक्ति क्षीण जब जाना। डरि पाखण्ड बैकुण्ठ पयाना।।१०।।
सुमिरत आवत जात है दासी। पुत्र युगल तब संग उदासी।।११।।

दोहा- भये उपेक्षित कलि मँह, दीख रहे निरुपाय।
चिन्ता त्यागहु भक्ति तुम, सोचउं तोर उपाय।।१२।।

कलि सम भामिनि युग नहिं आना। घर घर जन जन थापिहुं माना।।१३।।
अन्य धर्म वदि तोंहि पुजावा। नाहिं त मैं हरि दास न भावा।।१४।।
तब लगि जीव कली युग मांही। पापिंहु हरि मन्दिर मँह जांही।।१५।।
जेंहि उर प्रेम भक्ति कर वासा। ते नर पाव न यम कर त्रासा।।१६।।
प्रेत पिशाचहुँ देंहि बराई। जाके उर शुभ भक्ती आई।।१७।।
वेद ज्ञान तप कर्म न साधा। भगति वश्य जिमि गोपिन राधा।।१८।।

सहस जनम के पुण्य प्रभावा। भगति प्रभाव हरी कलि आवा।।१९।।
भक्ति द्रोह लह दुःख अपारा। दुर्वासा इव भक्त अपकारा ।।२०।।
तीर्थ योग व्रत यज्ञ न कीना। केवल मुक्ति भक्ति आधीना ।।२१।।

सूत उवाच-

दोहा- नारद जी से अमृत मय, आपन सुनि यश गान ।
सर्व अंग से पुष्ट हो, बोली भगति प्रमान ।।२२।।

भक्तिः उवाच-

अहह धन्य नारद बड़भागी। प्रीति अचल पाये अनुरागी ।।
कबहुँ न छोड़हु हृदय तुम्हारा। तव उर बसहुं किये अधिकारा।।२३।।
कीन दयालु सकल दुख नाशा। पुत्र सचेत करहु यह आशा ।।२४।।

सूत उवाच-

भक्ति वचन सुनि करुणा जानी। सुतन्ह डोलाइ रहे मुनि ज्ञानी ।।२५।।
ज्ञान विराग उठहु तुम ताता। कान निकट बोलहिं मुनि ज्ञाता ।।२६।।
वेद घोष वेदान्त बखाना। गीता पाठ कीन विधि नाना।।
बार-बार देवर्षि जगाई। करवट लीन तबहुं दोउ भाई।।२७।।
आलस कारण लेत जम्हाई। देखे नहि निज नयन उठाई ।।
वक इव श्वेत केश छितराये। सूखे तरु इव दीख झुराये ।।२८।।
भूख प्यास तन्द्रा तिन्ह घेरा। ऋषि उर चिन्ता भई घनेरा।।२९।।
भागइ नींद बुढ़ापा कैसे। नारद हरिहिं मनाये मन से ।।३०।।
नभ वाणी तब कहीं सुनाई। ऋषि प्रयास तव व्यर्थ न जाई।।३१।।
करु सत्कर्म देव ऋषि जाई। साधु पुरुष शुभ कर्म बताई ।।३२।।
किये सत्कर्म वृद्धता त्यागी । क्षण मँह भक्ति भाव अनुरागी ।।३३।।
व्योम वचन सब लोक सुनाना। नारद चकित न मतलब जाना ।।३४।।

नारद उवाच-

व्योम गिरा नहि साफ बतावा। साधन कौन दूनु हित पावा।।३५।।

सन्त मिलै कँह खोजन जाई। नभ वाणी नहि देत बुझाई।।३६।।

सूत उवाच-

ज्ञान विराग तहाँ ठहराये। तीरथ यतिन्ह ऋषी पछियाये।।३७।।
सुनहिं मुनी कछु भरहिं हुंकारी। कछुक मौन तँह रहे सम्हारी।।
कोउ असाध्य अज्ञेय बखाने। मुनी त केऊ गये पराने।।३८।।
तीनहुं लोक कोलाहल आई। वेद घोष नहि सके उठाई।।३९।।
करहिं बतकही लोग सुजाना। कौन उपाय जगावन जाना।।४०।।
नारद हूँ जो जानि न पाये। अन्य लोग कत जान उपाये।।४१।।
जेंहि जेहि पूछे नारद जाई। सो असाध्य सब दिये बताई।।४२।।
करिहों तप, मन चिन्ता भारी। वदरी वन ऋषि पहुंचे झारी।।४३।।
सूर्य कोटि सम अग्रज देखा। सनकादिक सन कहे मुनीशा।।४४।।

नारद उवाच-

बड़े भाग संगम भये ताता। कहहु कुमार कृपा विख्याता।।४५।।
पंच बरस सब पूर्वुज योगी। बुद्धिमान विद्वान निरोगी।।४६।।
कीर्तन निरत हरी के धामा। कथा अमृत लीला करि गाना।।४७।।
हरिः शरण मुख वचन सुहावा। काल जरा तेंहि जारि न पावा।।४८।।
द्वारपाल तिर्यक होइ देखे। गिरे भूमि पुनि लहे विशेषे।।४९।।
मोर भाग्य दर्शन जो पावा। करहु कृपा मोहि दीन जनावा।।५०।।
नभ वाणी का मरम न जाना। करि विवेक साधन कहु नाना।।५१।।
भक्ति ज्ञान वैराग्य दृढ़ाई। कहहु कवन विधि करौ उपाई।।५२।।

दोहा- देवी ऋषी चिन्ता तजहु, मन मँह धरहु उछाहु।
याके सरल उपाय है, जातें होइ निबाहु।।५३।।

धन्य धन्य नारद मुनि ज्ञानी। कृष्ण दास हित निरत अमानी।।५४।।
नहि विस्मय मोरे मन माँही। भक्ति हेतु मुनि यतन करांही।।५५।।

राह बहुत ऋषिगण बतलाये। कष्ट साध्य सब स्वर्ग दिलाये ।।५६।।
मार्ग मोक्ष बहु गुप्त बखाना। ताकर वक्ता दुर्लभ जाना ।।५७।।
जो सत्कर्म कही नभ वाणी। सो तुम सुनहु धीर-धरि ज्ञानी ।।५८।।
द्रव्य, योग, तप, यज्ञ बखाना। ज्ञान यज्ञ तेहि उत्तम माना।।५९।।
ज्ञान यज्ञ सत्कर्म कहावा। श्री भागवत शुकादिक गावा ।।६०।।
ज्ञान विराग होहि बलभारी। तातें भक्ति होहि सुखियारी ।।६१।।
श्री भागवत सुनत कलि गोई। सिंह नाद वृक रुकहिं कि कोई ।।६२।।
ज्ञान विराग संग लइ जाई। प्रतिघर नाचत भगति दृढ़ाई ।।६३।।

नारद उवाच

वेद घोष हरि गीत सुनावा। ज्ञान विराग न भगति उठावा।।६४।।
वेद सार भागवत पुराना। तेहि सुनि कैसे उठहिं सुजाना।।६५।।
शरणागत वत्सल तुम लोगू। संशय भंजहु सुफल संयोगू।।६६।।

कुमारा ऊचुः

वेदसार हरि कथा है भाई। उत्तम फल यह अलग बताई ।।६७।।
जड़-शाखा लगि रसहिं बखाना। सबसे पृथक होइ फल नाना।।६८।।
दूध माँहि घृत सबहि बतावा। पृथक भये तेहि आज्य बनावा।।६९।।
यथा ईख में खाँड़ विराजा। अलग तथा यह कथा समाजा ।।७०।।
श्री भागवत वेद सम जानी। ज्ञान विराग भक्ति की खानी।।७१।।
वेद विभाग सुकर्ता गीता। दुखी व्यास जिमि अज्ञ पुनीता ।।७२।।
चारि पद्य अनवद्य सुनाये। तुमहीं तिनहि महा सुख पाये ।।
सुनत भागि सब चिन्ता ताही। विस्मय कौन हेतु पुनि जाही।।७३।।
श्री भागवत दुःख का हर्त्ता। ताहि सुनावहु हे सुखकर्ता।।७४।।

नारद उवाच

तब दर्शन सब अशुभ नसावा। भवदुखतप्त श्रेय सरसावा।।

शेष करहिं जाहि शुभ गाना। करहु सदा भगवत रस पाना।
प्रेमा भक्ति प्रकाशन कारी। शरण तुम्हारे गहउं तमारी।।७५।।
तव संगति बहु पुण्य ते पाई। उदित ज्ञान अज्ञान नसाई।।७६।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्मये कुमार नारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

*

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

नारद उवाच-

ज्ञान यज्ञ मैं करिहों जाई। श्री शुकदेव कथा जो गाई।।
ज्ञान विराग भक्ति हितकारी। करउं थापना मैं सुविचारी।।१।।
कहाँ करौ यह यज्ञ बताओ। महिमा श्री भागवत सुनावो।।२।।
कितने दिन यह कथा पुराई। विधि सब कहौ मोंहि समुझाई।।३।।

कुमारा ऊचुः

गंगा तट आनन्द बखाना। नारद कहौं विवेकी जाना।।४।।
नाना ऋषि तँह किये जुटाना। देव सिद्ध सेवित विधि नाना।।
विविध वृक्ष अरु लता विराजा। कोमल सिकता चहुँ दिशि साजा।।५।।
स्वर्ण कमल विकसित तँह होई। रम्य एकान्त बैर नहि कोई।।६।।
ज्ञान यज्ञ तँह सहज रचावा। सरस कथा तँह प्रकट प्रभावा।।७।।
निर्बल सुतन्ह संग तँह आई। माता भगति भक्त सुखदायी।।८।।
होइ जहाँ भगवत शुभ चर्चा। तीनहुँ तरुण करहिं हरि अर्चा।।९।।

सूत उवाच-

दोहा- अस कहि नारद संग लइ, आये तँह सनकादि।
कथा श्रवण गंगा पुलिन, करन ताँहि अविषादि।।१०।।

तट पहुँचत कोलाहल भयऊ। धरती–गगन ब्रह्म पद गयऊ।।११।।
कथा रसिक तँह पहुँचे आगे। वैष्णव जन तँह धाये भागे।।१२।।
भृगु वशिष्ठ अरु च्यवन पधारे। गौतम, मेधा, देवल सारे।।
गाधि सूनु, परशुराम शाकला। अत्रि पुत्र मार्कण्ड पिप्पला।।१३।।
व्यास पराशर शुक तँह आये। जाजलि जह नु शिष्य सुत लाये।।१४।।
वेद पुराण मन्त्र सब आये। छहों शास्त्र सब देह धराये।।१५।।
गंगा पुष्कर सरित सरादी। क्षेत्र दिशा, दण्डक वन आदी।।१६।।
दानव देव नगादिक आवा। नहिं आवत तेहि भृगू मनावा।।१७।।
नारद दीन्हे आसन जाई। सनकादिक सादर बैठाई।।१८।।
वैष्णव विरज बटुक संन्यासी। प्रथम पंक्ति नारद अध्यासी।।१९।।
देव ऋषी वेदादि सुहाये। एक ओर नारिन्ह बैठाये।।२०।।
जय जय नमः शब्द भा घोरा। पुष्पवृष्टि दररव नहि थोरा।।२१।।
बरसहिं सुमन विमान चढ़ाये। कल्पवृक्ष सुम देंहि गिराये।।२२।।

सूत उवाच–

दोहा– सावधान श्रोता निरखि, सबहिं एक चित जान।
नारद को लक्षित करि, करहिं महातम गान।।२३।।

कुमाराः ऊचुः

श्री भागवत महात्म्य बखानू। सुनत मोक्ष करतल में आनू।।२४।।
सदा सेव्य हरि कथा बतावा। सुनत हरी उर पुर आवा।।२५।।
येहि मँह बारह स्कन्ध बखाना। श्लोक अट्ठारह सहसहिं जाना।।
कही कथा शुक ऋषि समुझाई। नृपति परीक्षित श्रवण कराई।।२६।।
जब लों कथा पड़ी नहि काना। घूमत नर संसृति अज्ञाना।।२७।।
अन्य पुराण शास्त्र भ्रम जानी। एक भागवत गर्जइ मानी।।२८।।
जेहि घर होइ कथा यह सुन्दर। पापनाश सो तीर्थ पुरन्दर।।२९।।

वाजपेय हयमेध हजारा। येहि कर षोडश कला न पारा ।।३०।।
तब लौं पाप रहत नर माँही। जब लों नहि हरि कथा सुनाहीं ।।३१।।
गंगा पुष्कर गया प्रयागा। काशिहुं तुल्य कथा नहि लागा।।३२।।
चाहहु परम गती जो भाई। नित्य पढ़हु एकाध चौथाई।।३३।।
पुरुष सूक्त ओंकार, गायत्री । द्वादश आखर वेद पवित्री।।३४।।
द्वादश सूर्य प्रयाग सुकाला। विप्र द्वादशी सुरभी माला।।३५।।
पुरुषोत्तम तुलसी सुवसन्ता। भेद कतहुँ नहि मानत सन्ता।।३६।।
नित्य पढ़त एकाध चौपाई। अश्वमेध मखशत फल पाई।।३७।।
हरि चिन्तन नित पाठ पुराना। तुलसी गो सेवा सम जाना ।।३८।।
अन्त काल शुक शास्त्र सुनाई। देत प्रीति वैकुण्ठ कन्हाई।।३९।।

दोहा- स्वर्ण सिंहासन रखि इसे, वैष्णव को जो देत।
कृष्ण संग सायुज्य सो, प्राप्त करत अनिकेत ।।४०।।

जीवन में शठ कथा न चाखा। खर चण्डाल मातृ दुख दाखा।।४१।।
शव समान जीवित भी प्रानी। कहहिं देव, पशु नरके गामी।।४२।।
कोटि जन्म शुभ पुण्य जगावा। दुर्लभ कथा तबहिं नर पावा।।४३।।
योगी धीमन सुनहु कथानक। दिन कँह नियम नांहि कहु बाधक।।४४।।
ब्रह्मचर्य अरु सत्य सम्हारी। कलि मँह शुक आज्ञा हितकारी।।४५।।
मन निरोध अरु नियमाचरणा। जानि कठिन सात दिन श्रवणा ।।४६।।
श्रद्धा सहित माघ सुनि कोऊ। सातदिवस श्री शुक फल देऊ ।।४७।।
मन चंचल बहु रोग निहारी। अल्प आयु कलि दोष विचारी।।
कीन विधान सप्त दिन केरा। श्री शुकदेव महामुनि प्रेरा ।।४८।।
योग समाधि न तप फल पाई। विनु प्रयास सप्ताह दिलाई ।।४९।।
यज्ञ तीर्थ व्रत तपस विहाई। यह सप्ताह सकल बरियाई ।।५०।।

शौनक उवाच-

दोहा- अति आश्चर्य कहे मुनि, ज्ञान आदि विधि लाँधि।
देत मोक्ष भागवत यह, परमानन्द उपाधि।।५१।।

सूत उवाच

दोहा- धरा धाम को छोड़कर, कृष्ण चले निजधाम।
स्कन्ध एकादश कथा सुनि, पूंछ उधव श्री धाम।।५३।।

उद्धव उवाच-

दोहा- भक्त कार्य को साधि के, चले गोविन्द स्व धामु।
मम उरु चिन्ता एक है, ताहि सुनहु सुख मानु।।५४।।

अब आयऊ कलिकाल कराला। खल बाढ़े सब साधु दुकाला।।५५।।
भारवती धरणी गो रूपा। विना तोंहि को त्राण स्वरूपा।।५६।।
करहु कृपा सज्जन पर नाथा। चिन्मय सगुण न जाहु श्री नाथा।।५७।।
तब वियोग किमि भक्त सहाई। निर्गुण भजन कष्ट बहु पाई।।५८।।
तब प्रभास मँह हरी विचारा। करूँ काहि जो भगत सहारा।।५९।।
श्री हरि तेज कीन आधाना। पैठि पुराण भे अन्तर्धाना।।६०।।
शब्द मूर्ति श्री कृष्ण पुराणा। पढ़त सुनत नाशत अघ नाना।।६१।।
सुने सात दिन सुफल बतावा। साधन औरु न कलिमँह पावा।।६२।।
दुख दारिद दुर्भाग्य नसावा। काम क्रोध पर विजय करावा।।६३।।
हरि माया नहि देवन्ह जीती। अतः सुनहु सप्ताह पुनीती।।६४।।

सूत उवाच-

सनकादिक सप्ताह बखाना। शौनक सुनहु जो अचरज जाना।।६५।।
भक्ति युगल सुत तरुण लिवाई। प्रेम रूप सहसा तँह आई।।६६।।
गावत कृष्ण नाम गुण धामा। *हरे मुरारे पाहि ललामा।।६७।।
भगवत भूषण धारि पधारी। मुनिन्ह मध्य आई इक नारी।।६८।।
सनकादिक तब कहे बुझाई। कथा अर्थ यह भगति सुहाई।।

पुत्र समेत विनम्र स्वभावा। कही भगति निज जन्म प्रभावा ।।६९।।

भक्तिः उवाच-

कलियुग माँहि नष्ट भा रूपा। कथा अमृत तब कीन सरूपा।।
कहाँ रहउं मैं देहु बताई। सुनि सनकादि कहे सुनु माई ।।७०।।
प्रेम दायिनी भव रुज हन्त्री। भक्तन श्री हरि रूप प्रदात्री ।।
विष्णु भक्त मानस करु वासा। धैर्य धारि संतत शुभ आशा ।।७१।।
कलि के दोष सकें नहि देखी। हृदय मांहि तुम छिपी विशेषी ।।
आज्ञा पाइ भक्ति तँह छाजा। हरि दासन्ह उर माँहि विराजा ।।७२।।
जाके हृदय भक्ति कर वासा। निर्धन यदपि, धन्य तिन्ह आशा।।
भक्ति सूत्र जँह बँधे कन्हाई। परम धाम तजि उर पुर आई ।।७३।।
कँह लगि महिमा कहों बखानी। कहत सुनत समता हरि पानी।।७४।।

दोहा- इस भागवत पुराण में, परब्रह्म कँह वास।
वक्त श्रोता दोउ लहें, समता कृष्ण सुपास ।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवत माहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

*

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

गोकर्ण उपाख्यान

सूत उवाच-

दोहा- वैष्णव जन के चित्त में, देखि अलौकिक भक्ति ।
भगत वसल निज धाम से, आये संग शुभ शक्ति ।।१।।

पीत वसन धारे वनमाली। कुण्डल मुकुट करधनी शाली ।।२।।
कौस्तुभ ललित त्रिभंगी शोभा। चन्दन चर्चित मन्मय मोहा ।।३।।
अधर मधुर मुरली पधराये। भक्त हृदय चिन्मय प्रभु आये ।।४।।
कथा हेतु तँह रहे पधारे। उद्धवादि वैष्णव जन सारे ।।५।।
रस पोषक जय घोष सुनावा। शंखनाद बहु पुष्प गिरावा ।।६।।
सभा मध्य बैठे जे ज्ञानी। देह-गेह सुधि गई हेरानी ।।
सकल सभा तन्मय जब देखी। बोले नारद वचन विशेषी ।।७।।
सुनहु मुनीश्वर कहौं बखानी। सप्तदिवस महिमा अब जानी ।।
पशु पक्षी शठ मूढ़ सुभाऊ। कथा श्रवण ते पाप नसाऊ ।।८।।
कथा समान न आन उपाऊ। पाप नाश मन शुद्ध बनाऊ ।।९।।
कथा पन्थ कोउ नया बखाना। कहहु कृपालु शुद्ध केंहि माना ।।१०।।

कुमारा ऊचुः

करहिं निरन्तर पाप अनेका। दुराचार रत क्रोध परेता ।।
कामी कुटिल मनुज जो कोई। सुनि सप्ताह पवित्री होई ।।११।।
मातु-पिता निन्दक च्युत सत्या। तृष्णाकुल आश्रम कह मिथ्या ।।
ईर्ष्या दम्भ जे हिंसा कर हीं। सुनि सप्ताह कली मँह तरहीं ।।१२।।
उग्र पाप छल छद्म करा हीं। क्रूर पिशाच हृदय जेंहि नाहीं ।।
विप्र वित्त हरि जे व्यभिचारी। सुनि सप्ताह अपाप विचारी ।।१३।।
मन वच काय कीन जे पापा। पर धन छीनि पुष्ट अभिशापा ।।

मलिन दुराशय जे केहु भाई । सुनि सप्ताह सो पाप नसाई ।।१४।।
अब इतिहास पुरान बखानूं । जाहि सुनत सब पाप नसानू।।१५।।
तुंग भद्र तट नगर अनूपा । वर्ण सकल सत्कर्म स्वरूपा।।१६।।
आत्मदेव तेंहि माँहि विशारद। सूर्य तुल्य वेदज्ञ था नारद ।।१७।।
भिक्षुक धनी की धुन्धुली नारी । रही सुन्दरी वचन उभारी ।।१८।।

दोहा- लौकिक बात में सुख मिलत, था स्वभाव अति क्रूर।
झगड़ालू किरपिन तथा, कार्य निपुण गृह शूर।।१९।।

सुन्दर घर दम्पत्ति कर वासा। अर्थ काम दोउ, सुख नहि आशा।।२०।।
सन्तति हेतु दिये बहु दाना। वस्त्र, स्वर्ण दीनन्ह गोदाना ।।२१।।
दानहुं दिये न सन्तति पाई । विप्र मनहिं चिन्ता अधिकाई।।२२।।
एक दिवस द्विज बनहि सिधाये। क्षुधित तृषित तडागहि आये ।।२३।।
करि जलपान पुत्र-दुख दुःखी। देख विप्र तँह एक तपस्वी ।।२४।।
संन्यासी कीन्हे जल पाना। विप्र चरणे वन्दे मुख म्लाना।।२५।।

यतिः उवाच-

कत रोवहु का चिन्ता भारी । कहहु विप्र निज दुःख सम्हारी।।२६।।

ब्राह्मण उवाच-

काह कहों ऋषि पाप पुराना । पितर जलांजलि उष्णहिं माना ।।२७।।
नहि प्रसन्न मन लेंहि द्वि जाती। संतति हेतु प्राण संधाती ।।२८।।
धिक जीवन जो सन्तति हीना। सन्तति हीन न गृही कुलीना।।
विना पुत्र धन व्यर्थ कहावा। कुल धिक्कार न संतति पावा।।२९।।
पालउं धेनु सो बाझिन होऊ। फलहि न पेड़ जो रोपेहुं सोऊ ।।३०।।
घर लावत फल लागत कीरा। भाग्यहीन अनपत्य अधीरा ।।३१।।
अस कहि विप्र रुदन स्वर कीन्हा । संन्यासी मन करुणा चीन्हा ।।३२।।
पढ़े भाल अक्षर मन लाई । बोले द्विज सन यती बुलाई ।।३३।।

यतिः उवाच

तजहु मोह सन्तति की भाई। कर्म गती अति प्रबल कहाई।।३४।।
सात जन्म लौं सुत नहि जाये। विप्र तुम्हार प्रारब्ध बतावे।।३५।।
राजा सगर अंग नृप नाना। पायेउं दुःख लहे सन्ताना।।
अब कुटुम्ब आशा तुम त्यागी। लहु संन्यास सर्व सुख भागी।।३६।।

ब्राह्मण उवाच

नहि विवेक, सुत देहु मुनीशा। त्यागहुं प्राण देंउ भुंइ शीशा।।३७।।

दोहा- पुत्र नारि सुख हीन जो, सो संन्यास असार।
सुत दारा अरु पौत्र से, सुखी गृही परिवार।।३८।।
विप्र-दुराग्रह देखि के, कहे तपोधन झारि।
ब्रह्मलेख को मेटते, चित्रकेतु दुखियारि।।३९।।

भाग्य संग नहि होइ तुम्हारे। हठ करि सुत सुख पाव न प्यारे।।४०।।
देखि दुराग्रह फल एक दीना। देहु खिलाइ पत्नि सुत चीन्हा।।४१।।
दया दान सत शौच निधाना। वर्ष प्रजन्त एकान्न विधाना।।
करइ नारि व्रत विना गँवाये। तासे सुत अति निर्मल पाये।।४२।।
अस कहि योगी कीन पयाना। विप्र जाइ घर अति मनुसाना।।
फल देइ नारि ताहि समुझाये। स्वयं विप्र कहुँ चले पराये।।४३।।
सखी पाइ कुटिला बहु रोई। फल नहि खाँउ, व्यग्र मन होई।।४४।।
फल ते गर्भ, पेट बहिराये। थोड़ा भोजन शक्ति गँवाये।।४५।।
कबहुँ दैववश डाकू आये। गर्भ भार किमि दौड़ पड़ाये।।
शुक समान यदि गर्भ निवासा। कोख से बाहर किधौ निकासा।।४६।।
प्रसव काल यदि टेढ़ा भयऊ। दारुण दुःख कहौ किमि सहऊं।।४७।।
दुर्बल देखि ननद घर आई। धन सम्पत्ति लइ जाइ पराई।।
सत्य शौच जो नियम बतावा। मैं सुकुमारि न बने बनावा।।४८।।

बन्ध्या विधवा सुखी बतावा। लालन-पालन दुःख कहावा ।।४९।।
करि कुतर्क फल नाहीं खावा । पति पूछें, तब खाये बतावा ।।५०।।
एक दिवस बहिनी घर आई । आपन चिन्ता ताहि बताई ।।५१।।
दिन प्रति अनुजे दुर्बल रह ऊं। बोली बहिन-गर्भ मैं धरुऊँ।।
प्रसव काल मैं देइहों तोहीं। और कहो का करिहों ओंही ।।५२।।
तुम सगर्भ इव करहु निवासा । धन देइ पतिहिं पूजि तब आशा ।।५३।।
होइ छ मास मरा मम कोरा । अस कहि मैं पालव सुत तोरा ।।५४।।

दोहा- फल खिलाव तुम धेनु को, होइ परीक्षा जाय ।
यथा भगिनि ने कह दिया, सो सब कीना धाय ।।५५।।

समय पाइ नारी सुत जाये । पिता ताहि धुन्धुलिहिं थमाये।।५६।।
विना कष्ट सुत भा मोहि नीके। पति समेत भये हर्ष सभी के ।।५७।।
जात कर्म करि दीन्हे दाना। द्वार कराये मंगल गाना।।५८।।
धुन्धुलि कही दूध नहिहोई। बिना दूध किमि पालब सोई।।५९।।
भगिनी मम मृत वत्सा होई। ताहि बुलावहु पालइ सोई ।।६०।।
सुत रक्षण हित द्विज किये कामा। धुन्धुकारि माता दिये नामा ।।६१।।
तीन मास बीते धेनु व्याई। कनक समान दिव्य शिशु पाई ।।६२।।
विप्र प्रसन्न किये संस्कारा । देखि आचरज लोग पधारा ।।६३।।
भाग्य उदय विप्र कँह माना। धेनु जने सुत देव समाना।।६४।।
यह रहस्य कोउ जानि न पावा। गाय कान गोकर्ण कहावा ।।६५।।
बीते काल तरुण दोउ जाये। ज्ञानि गोकर्ण खल धुन्धु कहाये।।६६।।
भक्ष अभक्ष्य क्रोध करि पाना। वाम हाथ भोजन ग्रह नाना।।६७।।
चोर द्रोह पर गेह जलावा। पर बालक देइ कूप गिरावा।।६८।।
दीन अन्ध पीडक हिंसादी । श्वपच संग लइ श्वान विवादी।।६९।।
वेश्या संग बाप धन नाशा। मारि पितहिं सब भापड निरासा।।७०।।

कृपण पिता तब किये विलापा। पुत्र कुपुत्र कीन परितापा।।७१।।
जाउं कहाँ कहँ रहउं अभागा। तजउं प्राण अतिशय दुख लागा।।७२।।
तबहि गोकरन आइ बुझावा। पितहिं परम वैराग्य दिखावा।।७३।।
दुःख रूप है यह संसारा। सुत धन कौन कौन जग दारा।।७४।।
नृप नरेन्द्र सुख इन्द्रहु नाहीं। सुख एकान्त योगि जन पांही।।७५।।

दोहा- सन्तति मोह तजहु पितु, मोह ते नरक प्रयान।
यह शरीर क्षण भंगुर, सब तजि कानन ध्यान।।७६।।

सुनि गोकर्ण वचन द्विज पूंछे। जंगल मांहि करुं क्या छूंछे।।७७।।
प्रेम पाश में बँधा हूँ भाई। दया निधान उधारहु आई।।७८।।

गोकर्ण उवाच-

माँस रुधिर से रचित शरीरा। आपन भाव तजहु हे धीरा।।
सुत दारा से ममता त्यागा। क्षण भंगुर संसृति तब लागा।।
मन वैराग्य लेहु अपनाई। भगवद् भक्ति करहु पितु जाई।।७९।।
छाँड़ि काम, पर दोष न देखा। कथा सुधा रस पियहु विशेषा।।
सुत वाणी सुनि द्विज बन जाई। साठ बरिस दृढ़मति हरि लाई।।
दशम पाठ कीने हरि सेवा। लहे परम पद कृष्ण अहेवा।।८१।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

*

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

सूत उवाच

दोहा- पितहिं मरत उस दुष्ट ने, मारा जननी जाय।
कहाँ छिपाये धन बता, नाहिं लुकाठा खाय।।१।।

पुत्र कोप जननी भा त्रासा। गिरी कुआँ मह प्राण निकासा।।२।।
तीर्थाटन गोकर्ण सिधारे। सुख दुख भाइ बन्धु से न्यारे ।।३।।
वेश्या पाँच दुष्ट घर लावा। उग्र कर्म करि उदर जुड़ावा।।४।।
एक दिवस त्रिय भूषण मांगी। निकला जरत काम की आगी ।।५।।
जहाँ तहाँ धन संग्रह कीना। भूषन वसन लाइ तिन्ह दीना।।६।।
वेश्या मन मँह कीन विचारा। चोरी करि लायेउ धन सारा।।
नित्य करत चोरी धुंधुकारी। अवसि नृपति येंहि लेइ पचारी ।।७।।
धन लेइ राजा मारिय एहीं। इसे मारि धन हम काँहन लेंही ।।८।।
मारि एहि धन सहित पराहीं। सोचि, सोवत रजु बाँधे ताहीं ।।९।।
कण्ठ पाश करि मारन चाहा। मरा नांहि चिन्ता त्रिय थाहा ।।१०।।
जलत अँगार मुखहिं तब कीना। ज्वालाकुल मरि गा सो दीना ।।११।।

दोहा- प्रायः होती स्त्रियाँ, साहस से भरपूर।
देह गर्त में डाल दीं, ऊपर फेकीं धूर ।।१२।।

पूंछेउ लोग, बताये तेंही। धन अर्जन हित दूर गये हीं।।
भीतर बरस आइहें जाई। जब लेइहें कछु अर्थ कमाई।।१३।।
दुष्टानारि किये विश्वासा। दुखी होत नर पावत त्रासा ।।१४।।
वाणी सुधा सरिस अति प्यारी। कामिन्ह हृदय देत रस ढ़ारी।।
हिरदय चाकू धार समाना। प्रिय काहू नहि नारि अयाना।।१५।।
धन लै चम्पत कुलटा नारी। घोर प्रेत भयउ धुंधकारी ।।१६।।
बना बवण्डर दश दिशि धावा। भूख प्यास जड़ घाम सतावा।।१७।।

दैव दैव कहि लहे न शरणा। धुन्धु निधन तब सुने गोकर्णा ।।१८।।
जानि अनाथ गया तेहि कीना। तीर्थन्ह जाइ पिण्ड तेहि दीना ।।१९।।
निजपुर जब गोकर्ण पधारे। लखे न कोउ ग्राम के बारे।।
रात्रिकाल गृह आँगन जाई। सोय गोकरण भूमि सहाई ।।२०।।
उग्र रूप धुंधुकारी आवा। अर्ध-रात्रि निज बन्धु जनावा ।।२१।।
मेष, महिष, हाथी धरि रूपा। इन्द्र, अग्नि, पुनि पुरुष स्वरूपा।।२२।।
धीर गोकरण सोचे तब हीं। दुर्गति प्राप्त जीव कोउ अहहीं ।।२३।।

गोकर्ण उवाच-

प्रेत, पिशाच, रक्ष किमि होई। उग्र रूप निशि भटकत जोई ।।२४।।

सूत उवाच-

एतना सुनत सो रोवन लागा। बोल न अक्षर पाव अभागा।।२५।।
जल की बूँद गोकरण मारी। पाप छँटा तब वचन उचारी।।२६।।

प्रेत उवाच-

बन्धु तुम्हार, नाम धुंधुकारी। निज कर आपन धर्म विगारी ।।२७।।
मम कुकर्म गनि सके न कोऊ। हिंसारत, नारिन्ह हति मोऊ।।२८।।
भटकउं प्रेत बना सब लोका। वायु अहार दुर्दैव सशोका ।।२९।।
कृपासिन्धु मोंहि देहु छुड़ाई। सुनि गोकर्ण कहे सुनु भाई ।।३०।।

गोकर्ण उवाच-

गया पिण्ड मैं दीना तोंही। अचरज मोंहि, मुक्त नहि ओंही ।।३१।।
सूझत नाहीं दूज उपावा। काह करौं अब तुमहि बतावा।।३२।।

प्रेत उवाच

गया श्राद्ध शत नाहिं उपाऊ। अन्य उपाय विचारहु भाऊ ।।३३।।
प्रेत वचन सुनि विस्मित भयऊ। मुक्ति असाध्य गोकरण कहयू ।।३४।।
निज अस्थान रहहु तुम जाई। करिहों साधन मुक्ति उपाई।।३५।।

धुंधुकारि गा तब निज थाना। मुक्ति उपाय गोकर्ण लहे ना ।।३६।।
प्रातकाल पुरवासी आये। हुआ जो राति सो दीन सुनाये।।३७।।
ज्ञानी योगी पण्डित नाना। मुक्ति मार्ग नहि पाये सुजाना ।।३८।।
सूर्य कथन होइहिं परमाना। कीन गोकरण भानु अहवाना ।।३९।।
सूर्य नमन तव, बेगि बताऊ। मुक्ति हेतु कोउ सरस उपाऊ।।
दूर ते सूरज वचन उचारे। करहु उपाय जो ताहि उधारे ।।४०।।
धर्मरूप तब सूर्य बताये। मुक्ति हेतु सप्ताह सुनाये।।४१।।
सबसे सरल उपाय सुहाये। सुनि गोकरण बाँचने आये।।४२।।

दोहा- पंगु अन्ध अरु वृद्धजन, देश ग्राम के लोग।
पाप नाश, शुभ हरिकथा, पाये उत्तम योग ।।४३।।

भीड़ बहुत सुर विस्मयकारी। व्यास पीठ गोकरन सम्हारी ।।४४।।
बाँस गाँठ मँह बैठा जाई। प्रेत दीख सत् ग्रन्थि निकाई ।।४५।।
वायु रूप नहि बाहिर आवा। बैठा गाँठ मांहि रंध पावा।।४६।।
वैष्णव ब्राह्मण करि यजमाना। प्रथम स्कन्ध कथा सो ठाना।।४७।।
सायं कथा विराम जनावा। एक गाँठि फूटी रव छावा ।।४८।।
दूसर दिवस शाम भा जब ही। दूसरि गाँठि फुटी तँह तब हीं ।।
तीसर दिन कर कथा विरामा। तीसर ग्रन्थि फूटि अभिरामा ।।४९।।
सात दिवस गाँठि सत फूटी। द्वादश स्कन्ध प्रेत तनु छूटी।।५०।।

दोहा- दिव्य रूप धरि प्रकटे, उर तुलसी की दाम।
पीत वसन घनश्याम तनु, कुण्डल मुकुट ललाम ।।५१।।

झुकि गोकर्णहिं कीन प्रणामा। बन्धु मुक्ति मोंहि दीन सुजाना ।।५२।।
भगवत कथा परम है धन्या। पीडा प्रेत निवारि अनन्या ।।
कृष्ण लोक फल देवन हारा। धन्य धन्य सप्ताह उचारा ।।५३।।
काँपहि पातक देखि पुराणा। यह सप्ताह प्रलय किन्ह माना ।।५४।।

सकल पाप यह देत गँवाई। शुष्क ओद जिमि आगि जलाई ।।५५।।
वृथा जन्म नर पायो तेंही। सुर संसद निर्णय अस देहीं ।।
जो यह कथा सुनी नहि काना। आपन जन्म व्यर्थ सो माना ।।५६।।
पालि पोसि रक्षित तनु कीना। नश्वर देह कथा नहि चीन्हा।।५७।।
अस्थि मूल नस बाँधे रह हीं। मांस रुधिर लेपित तनु अहहीं ।।
दूषित गन्ध चाम का ढाँचा। मूत्र मलहि बर्तन यह साँचा।।५८।।
मन्दिर रोगहिं शोक बुढ़ापा। कबहुं न भरे उदर अस थापा।।५९।।
विष्टा कृमि अरु भस्म शरीरा। अस्थिर सदा कबहुँ नहिं धीरा।।६०।।
सुबह पकाये शाम जो सड़ा। तेहि पोषित शरीर किमि अड़ा।।६१।।
सुनि सप्ताह निकट हरि पावा। दोष निवारण एक उपावा।।६२।।
जल बुद् बुद् अरु मशक समाना। कथा रहित मरणहित जाना।।६३।।
सूखे बाँस गाँठि फटि जाई। हृदय ग्रन्थि मँह कौन मिताई।।६४।।

दोहा- हृदय ग्रन्थि खुलि जात है, संशय नाश प्रमान।
कर्म बन्ध सब क्षीण हों, जब नर सुने पुरान।।६५।।

कथा तीर्थ सब पापन्ह धोवा। निश्चित मुक्ती मिले पटोवा।।६६।।
एतना कहत विमान दिखावा। पार्षद युक्त प्रकाश बढ़ावा।।६७।।
धुन्धुकारि तेंहि यान विराजा। बोले गोकरन देखि समाजा।।६८।।

गोकर्ण उवाच

श्रोता इहाँ अनेक दिखाये। तेंहि के लिये विमान न आये।।६९।।
सबहीं सुनी समान कथायें। फल में भेद कौन विधि पाये।।७०।।

हरिदासा ऊचुः

श्रवण भेद फल भेद में कारन। श्रवण किये नहि कीन्हे चिन्तन।।
यहि कारण फल भेद बतावा। भजन कथा संग एक उपावा।।७१।।
सात दिवस प्रेत व्रत कीना। स्थिर मति मननादिक चीन्हा।।७२।।

ज्ञान व्यर्थ जो दृढ़ नहि होऊ। बिना ध्यान श्रवण तिमि गोऊ ।।
किये सन्देह मन्त्र हो झूठा। व्यग्र चिन्त जप व्यर्थ अनूठा ।।७३।।
वैष्णव रहित देश नहि सोहा। जिमि कुपात्र श्राद्धान्न न पोहा ।।
कीन अवैदिक दान विनाशा । विन आचार कुलहिं कुलनाशा ।।७४।।

दोहा- श्रद्धा हो गुरु वाक्य में, स्वयं दीन मति होय ।
मनोदोष को जीति ले, तबहि कथा रति सोय ।।७५।।

एहिं प्रकार पुनि कथा सुनाहीं। अन्त काल वैकुण्ठे जाँही ।।७६।।
तोंहि गोकर्ण गोविन्द लेवाई। स्वतः आपने धामहि जाई ।।
अस कहि सब हरिदास सिधारे। हरि कीर्तन करते हरि प्यारे ।।७७।।
सावन लगत कथा पुनि गाये। सात दिवस गोकर्ण सुनाये ।।७८।।
कथा समाप्त हुई तब नारद। कहों तोंहि भक्ति रस पारद ।।७९।।

दोहा- तँह विमान के साथ ही, श्री हरि प्रकटे आइ ।
नमः शब्द जय ध्वनि तभी, चारहु ओर सुनाइ ।।८०।।

पांचजन्य हरि स्वयं बजाये। भेंटि गोकर्ण निज रूप बनाये ।।८१।।
क्षण मँह श्रोतहि किये घनश्यामा। पीतवसन सुकिरीटि ललामा ।।८२।।
तब गोकर्ण विमान चढ़ाये। श्वपच जीव जे ग्राम सहाये ।।८३।।
योगि सुलभ गोलोक पठाये। लै गो कर्ण निज धाम सिधाये ।।
कथा श्रवण प्रीति अति भारी। गये गोलोक भक्त हितकारी ।।८४।।
यथा राम साकेत पठाये। अवधपुरी वासी हरवाये ।।
तथा कृष्ण सब भक्त समेता। गये निज लोकहिं कृपा निकेता ।।८५।।
जहाँ सोम, रवि, सिद्ध न जाहीं। सुनि भागवत गये हरि पांही ।।८६।।
काह कहों फल कथा जो पावा। गर्भवास ते पुनः न जावा ।।८७।।
वायु, तोय, पिये देह सुखाये। उग्र तपस्या फल जो पाये ।।
योग किये चिर पाव जो लोका। सुनि सप्ताह ते जाँहि विशोका ।।८८।।

यह इतिहास शाण्डिल्य बखाना। चित्रकूट वासी हरि जाना ।।८९।।

दोहा- परम दिव्य आख्यान यह, सकृत पढ़े हर पाप ।
श्राद्ध समय इसको सुने, होंहि पितर निष्पाप ।।९०।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्षवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

*

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

कुमारा ऊचुः

दोहा- अब तुमसे हम कहत है, शुभ सप्ताह विधान।
लोग औरु धन दूनउ, प्रायः साधन जान।।१।।

सर्वप्रथम दैवज्ञ बुलावा। शोधि मुहूरत करे जनावा ।।
जेंहि विधि होइ विवाह विधाना। तैसेइ धन का करै विताना।।२।।
कातिक, अगहन, भादौ, सावन । क्वार, अषाढ़ मोक्ष के साधन ।।३।।
इन मँह भद्रा, योग विचारी । करइ सहाय जे उद्यम कारी ।।४।।
देश गाँव मँह देइ जनाई । लइ परिवार पधारहु भाई।।५।।
जे हरि कथा से दूरि बनाये । नारि शूद्र सब लेहि बुलाये ।।६।।
साधू वैष्णव कीर्तन कारी। पत्र भेजि तिन्ह करे जुहारी।।७।।
दुर्लभ कथा सात दिन होई। सन्त समाज अनुग्रह सोई ।।८।।
श्री भागवत कथामृत पाना। आइ करहु सब सन्त सुजाना।।९।।
यदि अवकाश मिलइ नहि काहू। एक दिवस क्षण मात्र निकाहू।।१०।।
यहि विधि विनय करे सब लोगा। उचित निवास प्रबन्ध सुयोगा ।।११।।
तीर्थ, बनहि, गृह कथा विधाना। क्षेत्र विशालहि कथा बिताना।।१२।।
लेपन शोधन भूमि का कीना। गृह-सामान कोन धरि दीना ।।१३।।

पाँच दिवस पहिले जोरियाई। जाजिम गद्दा लेइ बिछाई ।।
ऊँचा मण्डप देइ छवाई। कदली खम्भा आदि सजाई।।१४।।
पत्र पुष्प से रचइ बिताना। ध्वजा पताक लगावइ नाना।।१५।।
सात मंच तँह देइ बनाई। विप्र विरक्त साधु बैठाई।।१६।।
सब आसन से ऊँचा होई। व्यास पीठ अति सुन्दर सोई।।१७।।

दोहा- उत्तर मुख वक्ता जबहिं, श्रोता पूरब माथ।
पूरब वक्ता होइ मुख, श्रोता उत्तर साथ।।१८।।

पूजक-पूज्य मध्य दिक प्राची। देशकाल कोविद अस वाँची।।१९।।
वेद शास्त्र ज्ञाता द्विज जोई। कहि दृष्टान्त बुझावइ सोई ।।
वक्ता निस्पृह विरत बखाना। वैष्णव सदा करत हरि गाना।।२०।।
धर्म अनेक धरे पाखण्डित। लम्पट त्याज्य, यदपि हों पण्डित।।२१।।
व्यास सहायक पण्डित राखा। संशय दूरि करे निज भाषा।।२२।।
एक दिन पहिले क्षौर कराये। अमृत समय शुचि लेइ नहाये ।।२३।।
नित्यकर्म संक्षिप्त विधाना। पूज गणेश किये अह्वाना ।।२४।।
तर्पण पितर, करे गोदाना। हरि थापइ मण्डल कर नाना ।।२५।।
कृष्णार्चन तब सविधि कराई। स्तुति करत शीषकर लाई ।।२६।।
भव सागर-डूबत यह दीना। कर्म मोह मोंहि ग्रसे प्रवीना ।।
मम उद्धार करहु प्रभु स्वामी। करुणा सागर अन्तर्यामी।।२७।।
धूप दीप नैवेद्य दिखाई। पुस्तक पूजा सविधि कराई।।२८।।
श्रीफल धरि शिर लेइ झुकाई। अस्तुति करइ चित्त हरषाई ।।२९।।
स्वयं कृष्ण यहि माँहि विराजे। नाम भागवत याही छाजे ।।
मुक्ति हेतु मैं शरण तुम्हारी। भवसागर तारहु बनवारी ।।३०।।
मोर मनोरथ करहु सुपासू। केशव मैं तुम्हार हूँ दासू ।।३१।।
दीन वचन कहि व्यासहिं पूजा। वस्त्राभूषण अस्तुति दूजा ।।३२।।

शुक स्वरूप सब शास्त्र विशारद। कथा प्रकाश अज्ञान विदारद ।।३३।।
सात दिवस करि नियम निबाहा। यथाशक्ति मन भरे उछाहा।।३४।।
पाँच विप्र कँह बरन कराई। द्वादश अक्षर दोष मिटाई ।।३५।।
वैष्णव विप्र निपुण हरि गाना। पूजि, पूंछि आसन पर आना ।।३६।।
धन गृह दार कुटुम्ब विहाई। शुद्ध बुद्धि चिन्ता विसराई ।।३७।।
सूर्योदय लइ दुपहर ताई। साढ़े तीन पहर दिन आई ।।
मध्यम स्वर से कहत पुराणा। वाचन कर्म कठिन कछुमाना ।।३८।।

दोहा- दुपहर में दुइघरी भर, होइ कथा विश्राम।
शाम समय हरि गुण कहे, कीर्तन श्री भगवान।।३९।।

कथा हेतु लघु भोजन कीना। एक बार हविषान्न कुलीना।।४०।।
सात दिवस रहि बिनु आहारा। संभव होइ, घृत दुग्धाहारा।।४१।।
फलाहार अथवा एक भोजन। यातें सुख से होइ श्रवन।।४२।।
यदि उपवास विघ्न करे कोई। कथा श्रवण करि भोजन सोई ।।४३।।
अब नारद कछु नियम बखानूं। वैष्णव दीक्षा प्रथमहिं जानूं ।।४४।।
कथाव्रती सोबइ भुंइ ऊपर। पत्तल भोजन, कथा श्रवन कर ।।४५।।
दाल, तेल, मधु, अन्न गरिष्ठा। दूषित भाव न भोजन निष्ठा ।।४६।।
काम क्रोध मद मत्सर माना। लोभ मोह नहि पास ठिकाना।।४७।।
वैष्णव, वेद, विप्र, गुरु, गाई। राज दार नहि निन्दे भाई ।।४८।।

दोहा- कथाव्रती को चाहिये, बरजे इनसे बात।
म्लेच्छ, पतित, रज धर्मिणी, द्वेषी, कुल अज्ञात।।४९।।

मौन शौच अरु दया मिताई। कथा व्रती पर अवसि सुहाई।।५०।।
जो दरिद्र अरु क्षयी, अभागा। सुने मुमुक्षु अन पत्य सुभागा ।।५१।।
रजो निवृत्ति एक सुत जोई। गिरे गर्भ, मृत सन्तति होई।।
करि प्रयत्न सुनि कथा पुराणा। अवसि लहे शुभ सन्तति माना।।५२।।

विधि से सुने अखत फल होई। उत्तम कथा कोटि मख जोई।।५३।।
व्रत समाप्ति उद्यापन कीन्हा। यथा जन्म अष्टमी कर दीन्हा।।५४।।
जेहि अकिंचन भगत सुहाये। उद्यापन तेहि नाहि कराये।।५५।।
कथा पूर्ण लेंहि शीष झुकाये। वक्ता, पुस्तक सविधि पुजाये।।५६।।
तुलसी माला औरु प्रसादा। कीर्तन में नहि करे प्रमादा।।५७।।
शंख बजाइ करे जयकारा। याचक विप्रन्ह देइ उदारा।।५८।।
श्रोता यती त गीता गाना। यदि गृहस्थ तब होम विधाना।।५९।।
प्रति अश्लोक दशम कँह पाठन। तिल घी पायस देवन्ह भोजन।।६०।।
करि गायत्री मन्त्र उच्चारण। अथवा करइ होम, तब पारण।।
सविता देवहि लेइ मनाई। सावित्री मय पुराण यह भाई।।६१।।
करि न होम करे विप्रन्ह दाना। न्यूनाधिक तँह दोष न जाना।।६२।।
पूरण हेतु पढ़े हरि नामा। विष्णु सहस कर पूरण कामा।।६३।।
बारह ब्राह्मण देइ जिंवाई। स्वर्ण, धेनु, मधु पायस पाई।।६४।।
होइ सामर्थ्य तीन भरि सोना। ग्रन्थ सिंहासन धरइ सलोना।।६५।।

दोहा- षोडश विधि उपचार करि, करिय दक्षिणा दान।
वस्त्राभूषण माल्य से, व्यासहि करि सम्मान।।६६।।

भव बन्धन से मुक्त कहाई। करि विधान सब पाप नसाई।।६७।।
यहिं विधि सुनि भागवत पुराणा। सब पुरुषार्थ हस्त गत जाना।।६८।।

कुमारा ऊचुः

सब कछु दिये तोंहि समुझाई। सुनि भागवत उभय सुख पाई।।६९।।

सूत उवाच

अस कहि बाँचे ललित पुराणा। पापहरि परमारथ जाना।।७०।।
सात दिवस सब नियम निभाये। अस्तुति कीन हरिहिं मन लाये।।७१।।
ज्ञान-विराग-भक्ति-तरुणाई। कथा श्रवण से सद्यः आई।।७२।।

नारद भे तब पूरण कामा। पुलकित तनु आनन्द अमाना।।७३।।
देव ऋषी बोले मृदुवानी। सनकादिक से श्रद्धा सानी।।७४।।

नारद उवाच-

धन्य, कृपा करुणाकर कीन्हे। आजु हरिहिं हम आपन चीन्हे।।७५।।
भगवत् कथा धर्म अधिकाई। सुनि वैकुण्ठ नाथ मिलि जाई।।७६।।

सूत उवाच

नारद एतना कहत सुहाये। घूमत शुकाचार्य तँह आये।।७७।।
ज्ञान उदधि जस चन्द्र सुहावा। षोडश वयस व्यास सुत आवा।।
आत्म लाभ सन्तुष्ट विराजे। श्री भागवत मन्द पढ़-राजे।।७८।।
तेजवन्त लखि आसन दीन्हे। देव ऋषी पूजन तिन्ह कीने।।
बैठि कहे शुक देव मुनीशा। सुनहु अमल वाणी ऋषि ईशा।।७९।।

श्रीशुक उवाच-

भावुक रसिक सुनहु मन लाई। वेद कल्प तरु फल यह भाई।।
शुक मुख चुवत पियहु रस नीके। मोक्ष प्रजन्त रस भाव अमी के।।८०।।

दोहा- महामुनी श्री व्यास कृत, यह भागवत पुरान।
परम धर्म निष्कपटमन, वेद्य होहिं भगवान।।
त्रिविध ताप की शान्ति दे, साधन नाहीं अन्य।
हृदय माँहि अरुझत हरी, श्रोता भक्ति अनन्य।।८१।।

सब पुराण मँह श्रेष्ठ बखाना। वैष्णव जन कँह धन एहि जाना।।
परम हंस हित ज्ञान बतावा। ज्ञान विराग भक्ति निखरावा।।
पढ़इ सुनहि जे भक्ति सहाई। अवसि मुक्त सो नर होइजाई।।८२।।
स्वर्ग, सत्य, कैलास न पावा। वैकुण्ठहु रस नाहि जनावा।।
अतः पियहु भाग्य निज जानी। मत छाँड़हु यह कथा पुराणी।।८३।।

सूत उवाच-

दोहा- श्री शुक के यह कहत ही, सभा बीच हरि आय।
संग लिये प्रह्लाद बलि, उद्धव जिष्णु सहाय।।८४।।

नारद पूजे सब हरि दासा। हरिहिं दीन सिंहासन पासा।।
लागे कीर्तन करइ मुनीशा। आये विधि अरु उमा गिरीशा।।८५।।
लै करताल प्रह्लाद बजावत। उद्धव तँहा झांझ़ लै गावत।।
वीणा नारद स्वयं सम्हारे। राग अलापत अर्जुन प्यारे।।
तँह मृदंग सुरराज बजाये। सनकादिक जयकार लगाये।।
व्यास तनय तब भाव बताये। श्रोता सब मिलि तालि बजाये।।८६।।
ज्ञान विराग भक्ति तँह नाचे। हरि प्रसन्न श्रीमुख अरु बाँचे।।
कीर्तन ते प्रसन्न मोहि जानहु। वरदायक से वर कछु मांगहु।।
सुनि हरि वचन प्रेम भरि आये। बोले शिर हरिदास झुकाये।।८८।।
जहाँ कथा, तँह आवहु स्वामी। एवमस्तु कहि, गये अन्तर्यामी।।८९।।
नारद कीन्हे सबहिं प्रणामा। नष्ट मोह गये निज निज धामा।।९०।।

दोहा- सुतन्ह सहित तब भक्ति को, ग्रन्थ राखि शुकदेव।
अतः भागवत के सुने, प्रगट होंहि तिरदेव।।९१।।

दुख दारिद्र दहे जो कोई। माया डाकिनि मर्दित होई।।
जो संसार समुद्र डुबावा। सो कल्याण भागवत पावा।।९२।।

शौनक उवाच-

दोहा- श्रीशुकदेव परीक्षितहिं, कही कथा गोकर्ण।
नारद को सनकादि ने, कबहि सुनाये मर्म।।९३।।

सूत उवाच

दोहा- कृष्ण गये निज धाम जब, गये तीस कलि वर्ष।
भादों शुक्ला नवमि तिथि, शुक तब कहे सहर्ष।।९४।।

दो सौ बीते वर्ष जब, मास अषाढ़े जान।
शुक्ला नौमी पाइके, धेनुज कहे पुरान।।९५।।

चौपाई-

तीस वरस पुनि बीते जाई। कार्तिक शुक्ला नौमी पाई।।
सनकादिक यह कथा बखानी। देवऋषी अतिशय सुखमानी।।९६।।
जो पूंछे सब दिये बताई। कलिमँह यह भवरोग नसाई।।९७।।
अन्य तीर्थ किमि सेवहु जाई। सुनहु कथा सादर मनलाई।।
हरिहिं परम प्रिय, पाप निवारी। भुक्ति भक्ति दोउ देइ हँकारी।।९८।।
भगवत कथा रसिक के पाये। यम निज दूतहिं लेंहि फिराये।।

दोहा- येंहि असार संसार में, विषय विषंहि अकुलाय।
चाहहु निज कल्याण को, शुक गाथा मनलाय।।
नहि कुपन्थ में पगधरो, व्यर्थ चलो निरूपाय।
अरे गवाही हैं नृपति, मुक्ति परीक्षित पाय।।१००।।
कण्ठ प्रेम रस शुक कहे, कृष्ण कथा श्रीकण्ठ।
निज कण्ठहि धारण करे, होइ स्वामि वैकुण्ठ।।१०१।।

शास्त्र निरखि अति गुप्त सुनाये। एहि ते शुचि नहि दूसर पाये।।१०२।।

दोहा- नियम सहित जो कोउ सुने, भक्तिभाव तनु क्षीन।
वक्ता श्रोता दोउ जन, हरिहिं प्राप्त करि लीन।।१०३।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवण विधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

*

इति श्रीमदाचार्यभानुदत्तपाण्डेयसूनुना कूराडीह, प्रतापगढ, लब्धजन्मना
डॉ.गायत्री प्रसाद पाण्डेयेन
काशीवास्तव्येन पंक्तिपावन कुलावतंसेन कृते पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवतमहात्म्यस्य
हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरणे षष्ठोऽध्यायः सम्पूर्णः।।

**

।।श्रीगणेशाय नमः।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरण

प्रथम स्कन्धः

।।अथ प्रथमोऽध्यायः।।

मङ्गलाचरणम्

सोरठा-सृष्टि स्थितिलय हेतु, अनुगत सकल पदार्थ मंह।
करउं सत्य कर ध्यान, मोहित जिससे सकल बुध ।।
यथा तेज जल भास, जल थल थल-जल यथा।
प्रभु सत्ता वश लागि, सत्य तथा गुण-सृष्टि यह ।।
ब्रह्म स्वयं स्व प्रकाश,विधिहि दीन जिन्ह वेद-निधि।
मोहित सकल सुजान, ध्वस्त सकल माया कुलक ।।१।।
व्यास रचित यह ग्रन्थ, धर्म परम वर्णित जहाँ।
ताप त्रिविध निर्मूल, कारण करन अगम्य यह।।
अन्तः करण विशुद्ध, मत्सरहीन विवेक जन।
करहिं श्रवण संकल्प, प्रगट ईश उर मंह तबंहि।।२।।
दोहा- वेद रूप कल्पद्रुम, ता कर फल यह मिष्ट।
शुक मुख के सम्पर्क से, श्री भागवत विशिष्ट।।
येहिं फल छिलका आदि नहि, एक मात्र रस पूर।
जब लौं प्राण-शरीर मंह, पी लो भावुक-शूर।।३।।

देवभूमि नैमिष मंह आये। शौनकादि ऋषिगण हरषाये ।।
लागे करन यज्ञ बहु भाँती। बरस हजार स्वर्ग सुख थाती ।।४।।
एक दिवस मुनिगण कृतमज्जन। सूतहि पूँछें प्रश्न मुदितमन ।।५।।

ऋषय ऊचुः-

सकलशास्त्र इतिहास पुराणा। आगम-निगम विषय विधि नाना।।६।।
व्यास आदि मुनिवर्य बखाने। अन्य परावर वेत्ता जाने ।।७।।
सब की कृपा तुमहि सब जानी। करहु शिष्य सम मो कह मानी ।।८।।
कहहु विनिश्चय आपन स्वामी। कलिमंह क्षेम लहंहि किमि कामी।।९।।

दोहा- कलियुग में सब प्रायशः, अल्पायुष हैं लोग ।
मन्दभाग्य सब आलसी निरत सदा भव-रोग ।।१०।।

शास्त्र विविध-विध साधन नाना। एकउ अंश न जाइ बखाना।।
पर उपकार निरत तुम ज्ञानी। हम अति अज्ञ मूढ़मति स्वामी ।।११।।
हम श्रद्धालु सुनहि मन लाई। आत्मज्ञान करावहु आई।।
जानहुँ सूत कुशल तव होई। केंहि कारण जन्मे प्रभु सोई ।।१२।।
जननी जनक देवकी देवा। प्रभु प्रकटे कारण महि सेवा।।
हम सादर सुनिहैं मन लाई। कहहु कथा अवतार बड़ाई ।।१३।।
प्रभु अवतरण जीव हित होई। प्रभु पद प्रीति बढ़े जिमि सोई।।

दोहा- जन्म-मरण के चक्र मे, जीव पड़ा अकुलाय।
प्रभु के मंगल नाम से, काल स्वयं भय खाय ।।१४।।

प्रभु-पद सेवा-निरत सुजाना। परस हरत अघ गंग समाना ।।१५।।
अमल भक्त प्रभु-लीला गांवहि। कलि मल हरनि न के पुनि चाहंहि।।१६।।
लीला नर तनु धरहि गोसाईं। नारदादि ऋषि गावहि ध्यायीं।।१७।।
निज माया प्रभु लीला करहीं। कहहु कथा जेंहि भव सब तरहीं।।१८।।
भगवत् लीला सुनत अघाहीं। पग-पग स्वादु बढ़े यहि माहीं ।।१९।।

लीला मनुज कृष्ण बलदाऊ। किये अमित विक्रम महि ठाऊ।।
बरनउं उनके गुन-गन स्वामी। तुम्ह त्रिकालदर्शी मुनि ज्ञानी।।२०।।
आवत कलियुग देखि कराला। दीर्घसत्र हम रचे विशाला।।२१।।
विधि वश योग इहाँ तव पाये। कर्णधार भव पार लगाये।।२२।।

दोहा- भूसुररक्षक धर्मधुर योगेश्वर भगवान।
जबहिं सिधाये धाम निज धर्म त किसके आन।।२३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः।।१।।

*

।।अथ द्वितीयोऽध्यायः।।

व्यास उवाच-

दोहा- शौनकादि के प्रश्न सुनि, सूतहिं उर आनन्द।
मंगल मय शुभ क्षण निरखि, बोले वचन अमन्द।।१।।

सूत उवाच

दोहा- जबहि प्रवजन कीन्ह सुत, अनुपवीत शुकदेव।
व्यास पुकारत पुत्र कहि, विरहातुर भूदेव।।
गूंजी ध्वनि गिरि कन्दरा, तरु बोले अकुलाय।
सर्वभूतमानसहृदय नमन करूँ हरषाय।।

छन्द- श्रीभागवत अति गोपनीय रहस्य मूलक जानिये।
भगवतस्वरूप श्रीकृष्ण का यह दिव्य विग्रह मानिये।।
श्रुति साररससर्वस्व यह अज्ञान तिमिरावृत के लिये।
शुचि दीप सम निर्वाण प्रद निर्वात श्रीशुक ने दिये।।

सोरठा-वन्दऊं श्रीशुकदेव, व्यास सुनु मुनिवर्यगुरु।
जो प्रकटे हरषाय, कृपासिन्धु भवपोत ज्यों।।३।।

वन्दऊं श्री नारायण पद कन्दा। नर-नारायण रूप अमन्दा।।
देवि सरस्वति व्यास नवाऊँ। तदनन्तर जय कथा सुनाऊँ।।४।।
सुन्दर प्रश्न किये मुनिराया। कृष्ण कथा सुनि व्यापि न माया।।५।।
कृष्ण भक्ति अनपायिनी रूपा। मानव हेतु परम सुख भूपा।।६।।
कृष्ण भक्ति उर चित्त असंगा। ज्ञान विराग लाभ सत्संगा।।७।।
धर्म अनेक किये विधि जेते। प्रभु पद भक्ति बिना श्रम तेते।।८।।
मोक्ष हेतु सब धर्म बखानी। अर्थलाभ तेहिं हेतु न आनी।।९।।
इन्द्रिय तृप्ति हेतु नहि कामा। स्वर्ग छाँड़ि लह मोक्ष ललामा।।१०।।

दोहा- कहंहि तत्त्व ज्ञानी सब, ज्ञाता ज्ञेय विवेक।
कोउ कह ब्रह्म परात्म कोऊ, भगवन्नाम अनेक।।११।।
श्रद्धायुत मुनि जंन सदा, करहिं भागवत-पान।
ज्ञान विराग अरु भक्ति से, अनुभव करहिं सुजान।।१२।।

निज-निज वर्णाश्रम विधि नाना। करहि प्रसन्न इष्ट भगवाना।।१३।।
मन एकाग्र करहिं चित लाई। श्रवण मनन पूजिहिं यदुराई।।१४।।
कर्मग्रन्थि अति कठिन प्रचण्डा। चिन्तन असि काटहिं शतखण्डा।।१५।।
पुण्यतीर्थ सेवन श्रवणागम। श्रद्धा भगवत्कथा समागम।।१६।।
कथा श्रवण कीर्तन अति पावन। हृदय वसंहि अघ ओघ नशावन।।१७।।
प्रभुपद सेवत सतत निकामी। मेटंहि अशुभ वासना जामी।।
पुण्य श्रवण कीर्तन प्रभुनामू। नैष्ठिक भगति होइ परिणामू।।१८।।
रजस् तमस् गुण कामहि लोभा। इनसे रहित सत्त्व गुण शोभा।।१९।।

दोहा- भगवद् भक्ति सुयोग से मानस होत प्रसन्न।
ईशतत्त्व रवि रश्मि से मोह-निशा अवसन्न।।२०।।
हृदय गाँठ के टूटते मिटते सब सन्देह।
कर्मबन्ध ढीला हुआ योगी हुआ विदेह।।२१।।

अतः सुधीजन सतत सुप्रीती। कृष्णभक्ति साधंहि बहुरीती।।
प्रकृति लोकहित त्रय गुण शाली। सत् रज् तमस् महा बलशाली।।२२।।
जन्म स्थिति संहार स्वरूपा। ब्रह्मा विष्णु शम्भु त्रय रूपा।।
एकमेव त्रय तत्त्व अनूपा। सत्त्व प्रधान विष्णु अभिरूपा।।२३।।

दोहा- भौम विकार दारु से होता धूम प्रकृष्ट।
धूमादपि मख होम हित वह्नि होत उत्कृष्ट।।
इहीं भांति तम गुण सदा रज से होत निकृष्ट।
इन दोनों से भी मुने! सत गुण होत वरिष्ठ।।२४।।

पुरा कल्प मंह निज शुभ लागी। भजहि सत्त्वमय प्रभु अनुरागी।।२५।
मोक्ष काम जे नर अरु नारी। सेवहि विष्णु रूप अघहारी।।
भैरव भूतनाथ रण घोरा। विनहि विनिन्दे हाथ न जोरा।।२६।।
धन सम्पति सन्तति अभिलाषी। भजहि प्रजापति भूत विलासी।।२७।।
निगमागम श्रीकृष्ण वखाना। योग कर्म श्रीहरि हित नाना।।२८।।
वासुदेव मय ज्ञान अखण्डा। सकल धर्म तप मती प्रचण्डा।।२९।।
प्रकृति गुणातीत श्री हरी। निज माया लगि सृष्टी करी।।३०।।
सत्त्व रजस्तम त्रिगुण विलासा। अन्तर्व्याप्त नहि रमानिवासा।।३१।।

दोहा- यथा अग्नि सब एक ही, दारु भेद से भिन्न।
वैसे प्राणि अनेक गत, एकहि आत्म अखिन्न।।३२।।
पञ्चभूत तन्मात्र गुण, अन्तः करण अनेक।
कल्पित नाना योनिगत, सेवत विषय-विवेक।।३३।।
निज इच्छा कल्पित जगत्, देव मनुज दनुजादि।
लीलावश अवतार धर, पालत जगत् अनादि।।३४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

*

।।अथ तृतीयोऽध्यायः।।

सर्गारम्भ लोक हितकारी। सोलह कला पुरुष अवतारी।।
ज्ञान कर्म इन्द्रिय पंच-पाँचा। पञ्च भूत मन षोडश खाँचा।।१।।
कारण सलिल शयन यदुराई। नाभि-सरोवर कमल खिलाई।।
कमल-नाल प्रकटे चतुरानन। विस्मित भये दिखे पद्मासन।।२।।
अंग प्रत्यंग सृष्टि शत रूपा। यही विशुद्ध सत्त्व श्री भूपा।।
योगी दिव्य दृष्टि के द्वारा। निरखंहि ब्रह्म अवेद्य अपारा।।३।।
सिर सहस्त्र मुख सहस बाहुकर। देखंहि कुण्डल मुकुट अमित धर।।४।।
नारायण वपु अक्षय कोषा। उपजंहि मानुष दानव दोषा।।५।।
सनक सनन्दन सनत्कुमारा। भये सनातन प्रभु अवतारा।।
ये कौमार सर्ग मे जाये। कठिन ब्रह्मचारी कहलाये।।६।।
दूसर सूकर रूप सम्हारा। रसा रसातल से उद्धारा।।७।।
तीसर सृष्टि ऋषी कर कीना। नारद भे उपदेशहि दीना।।८।।
चौथे नर नारायण बन आये। ऋषि बन इन्द्रिय दमन सिखाये।।९।।
पञ्चम कपिल बने सिद्धेशा। सांख्य शास्त्र आसुरि उपदेशा।।१०।।

दोहा- छठीं सृष्टि में विष्णु भे, दत्तात्रेय सुजान।
अनसूया अरु अत्रि से, उपदेशे गुरु ज्ञान।।११।।
सप्तम घर आकूति के, प्रजापती-सन्तान।
यज्ञ रूप श्री विष्णु ने, रखे स्वयंभू मान।।१२।।

अष्टम ऋषभ देव अवतारा। नाभि मेरु के बने सहारा।।
परम हंस पथ दिखलाये। वन्दनीय सुन्दर यश पाये।।१३।।
नवीं बार पृथु बने खरारी। गो-दोहन जन कीन सुखारी।।१४।।
दशम अवतार मत्स्य कर लीना। वैवस्वत मनु रक्षा कीना।।
देव दनुज मिलि मन्थन कीना। मन्दर धरन भये पाठीना।।१५।।

यह अवतार एकादश भाई। अद्‌भुत करनी कीन्ह कन्हाई ।।१६।।
द्वादशवें प्रभु भे धन्वन्तरी । तेरहवें मोहिनी भे हरी ।।१७।।
चौदहवें हरि नरसिंह सुबीरा । हिरण्य कशिपु छाती जिन्ह चीरा।।१८।।
बलिगृह वामन भये खरारी। मांगी भूमि तीन पग भारी ।।१९।।

दोहा- सोलहवें अवतार में परशु सहित श्री राम।
बार इक्कीसे कर दिये क्षत्रिय काम तमाम।।२०।।

दस अरु सात संख्य अवतारा। पाराशर–सत्यवती उद्‌धारा।।
प्रभु भे व्यास शास्त्र विस्तारे। वेद विभाग किये शुभ सारे।।२१।।
बार अठारह प्रभु अवतरे। राम रूप रावण संहरे ।।
सागर बन्धन कीन्ह खरारी। धर्म धुरीण सत्यव्रत धारी।।२२।।

दोहा- भये उन्नीसे अंश से यदुवंशी बलराम ।
बीस भये श्रीकृष्ण जी शोभाधाम ललाम।।२३।।

जबहि कली करिहइ पैसारा। अजन पुत्र भें बुद्ध उदारा।।
आवत अन्तकाल कलिकाला। कल्कि रूप हरिहैं महिपाला।।२४।।
नाम विष्णुयश भूसुर धामा। जनिहैं अखिल लोक विश्रामा।।२५।।
श्री हरि के अवतार अनन्ता। कहंहि सुनहि सादर श्रुति संता।।२६।।
जंह जंह अंश अनूपम भासइ। ऋषि मुनि देव हरी तंह आसइ ।।२७।।
ये सब अंश कला अवतारा। अंशी कृष्ण हरन महि भारा ।।
युग–युग नाना रूप धराहीं। कंश आदि किमि लेखे मांही ।।२८।।

दोहा- परम दिव्य प्रभु जन्म की, कथा सुने दिन रात।
भव बन्धन सब काटि के, आत्मज्ञान है जात ।।२९।।

दोहा- चिदानन्द चिन्मय प्रभु, जगदाधार अनेक।
माया मय कल्पित गुण, परमतत्त्व प्रभु एक।।३०।।

मेघ उड़हि जिमि पवन उड़ाये। धूसर पन सब धूलिहि पाये ।।

अज्ञ कहहि नभ मेघ उड़ाहीं। धूसर पवन कहहि जिमि नाही।।३१।।
सूक्ष्म स्थूल दुइ रूप मुरारी। जीव सूक्ष्म लह जन्म खरारी।।३२।।
स्थूल सूक्ष्म दोउ माया केरा। आतम ज्ञान होत दोउ फेरा।।३३।।
बुध जानहि परमेश्वर माया। होत निवृत आनन्द अमाया।।३४।।

दोहा- वेद विदित अति गुह्यतम, जन्म कर्म गुण रूप।
होत अप्राकृत ईश के, बरनइ विविध अनूप।।३५।।

भगवत् लीलाऽमोघ अनेका। सर्जन-पालन करंहि अशोका।।
प्राणिमात्र उर बसंहि मुरारी। रहंहि अलिप्त भोग-रस भारी।।३६।।
निज संकल्प वेद रुख राखी। रचइ विश्व क्षण मात्र सुशाखी।।
यथा अलौकिक नट की करनी। जान न पाइ अज्ञ किमि बरनी।।३७।।

दोहा- चक्रपाणि भगवान् की, शक्ति अपार अनन्त।
चरण कमल चित राखइ, पावइ पार सो अन्त।।३८।।

दोहा- धन्य धन्य शौनक ऋषि, करंहु प्रेम मन लाय।
सकल लोक के इशि प्रभु,जनन मरण छुटि जाय।।३९।।

यह भागवत वेद गुण खानी। व्यास रचित अति उत्तम जानी।।४०।।
जनहित लोक स्वस्ति सुखकारी। शुकहि दिये यह ज्ञान सम्हारी।।४१।।
सब इतिहास वेद येहि मांनी। नृपहि दिये शुक ऋषि सन्मानी।।४२।।

दोहा- कृष्ण गये स्वर्धाम जब, धर्म ज्ञान के साथ।
गंगातट अनशन निरत, नृपति अनाथ-सनाथ।।४३।।
घोर अविद्या अन्धतम, फैला जग अंधियार।।
यह पुराण तब सूर्य सम, करत सुफल उजियार।।४४।।

सोरठा- तब मैं रहेऊँ उपस्थित, कही कथा जब शुक-ऋषि।
कहिहऊँ सोइ मैं आजु,जो समझी निज मति सरिस।।४५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे तृतीयोऽध्यायः।।३।।

।।अथ चतुर्थोऽध्यायः।।

व्यास उवाच–

दोहा- दीर्घ सत्र आसीन सब, विद्या वृद्ध कुलीन।
शौनक जी ने सूत की, तबहिं प्रशंसा कीन।।१।।

शौनक उवाच–

सूत सूत अतिशय बड़भागी। वक्ता श्रेष्ठ कहहुं मन लागी।।
जिमि हरिकथा व्याससुत गाई। कृष्णकथा तुम कहहु बुझाई।।२।।
कहु केंहि युग औ केंहि अस्थाना। केंहि प्रेरित यह व्यास बखाना।।३।।
व्यास तनय शुकदेव सुयोगी। समद्रष्टा उन्निद्र निरोगी।।४।।
वनहि प्रयाण कीन्ह शुक जब हीं। पाछे लागि चले मुनि तबही।।
व्यासहिं निरखि अचैल नहाती। वसन धारि कर रोपेहुं छाती।।५।।
देखि शुकहि नहि किये दुरावा। पुरुष नारि तेहि भेद न आवा।।
कुरु जंगल वे विचरहि कैसे। मूक वधिर जड पागल जैसे।।६।।

दोहा- केहिं विधि नृपति परीक्षित, शुक सन पहुँचे धाय।
कही कथा भागवत की, सुनि भूपति हरषाय।।७।।

विचरत रहत सदा मुनिराया। अधिक काल कहुं कीन्ह न जाया।।
गोदोहन सम जित लगि काला। द्वार पवित्रे मुनि भूपाला।।८।।
भगवत् भक्त परीक्षित राजा। तिन्ह कंह चरित कहहु सुठि साजा।।९।।
राजपाट तजि कहु केंहि हेतू। अनशन नृपति करत श्रुति सेतू।।१०।।
निज बल शत्रु जिनहि सनमानी। देहि द्रविड सब मानहि स्वामी।।
युवा निरोगी सब सुख भोगी। अनशन मरन चहइ जिमि रोगी।।११।।
परमारथ लगि धरंहि शरीरा। भगवत् शरण न व्यापइ पीरा।।
नहि कुछ स्वारथ नृप मन मांही। कहहु नृपति कस मरनै जाहीं।।१२।।

दोहा- वेद छाँड़ि तुम जान सब, शास्त्र पुराण गभीर।
कृपा करहु सब कुछ कहहुँ, मति अति मोर अधीर ।।१३।।

सूत उवाच–

युग द्वापर जब भयउ मुनीसा। व्यास रूप प्रकटे जगदीशा ।।
वसु कन्या सत्या सुपुनीता। ऋषी–पराशर पिता अनूपा।।१४।।
एक बार रवि उदित हुये जब । सरस्वती तीर बैठे ऋषिवर तब ।।१५।।
आगत और अनागत ज्ञाता। ऋषि देखे युग धर्महि जाता ।।१६।।
श्रद्धा रहित सकल जग लागा। अल्पायुष मतिमन्द अभागा।।१७।।
दिव्य दृष्टि देखन ऋषि लागे। वर्णधर्म आश्रम सब भागे।।१८।।
वेद विहित मख कर्म अनेका। चातुर्होत्र एक ते एका।।१९।।
ऋक् यजु साम अथर्व नाम से। वेद चार ऋषि किये काम से।।
इतिहास पुराण आदि श्रुति सम्मत। पञ्चम वेद रचे ऋषि संयत ।।२०।।

दोहा- पैल ऋषी ऋग्वेद के, जैमिनि सामहि ज्ञात।
वैशम्पायन एक ऋषि, यजुर्वेद निष्णात।।२१।।
अथर्ववेद पारंगत, दरुणकुमार सुमन्त ।
इतिहासादिक में निपुण, हर्षण रोम स्वतन्त्र।।२२।।

उक्त ऋषिन करि नाना शाखा। शिष्य, प्रशिष्य वेद सब भाखा।।२३।।
अल्प ज्ञान मनुष्यंहि जाना। व्यास कृपा कहि वेद बखाना।।२४।।
पतित शूद्र अरु नारि अपावन। ताहि कृपा करि रचे पुरातन ।।
यह भारत महा रत्न अनूठा। सकल ज्ञान या ही कर जूठा ।।२५।।
सब विधि निरत लोक हित व्यासा । लही न तृप्ति शान्ति अभिलाषा ।।२६।।
खिन्न हृदय सर–सुति तट जाई। तर्क–वितर्क करत मन लाई ।।२७।।
ब्रह्मचर्य विधिवत् करि धारन। गुरु अरु अग्नि मानि अनुशासन ।।२८।।
रची महाभारत शुभ रचना। नारि शूद्र हित कीन्ह कल्पना ।।

यद्यपि ब्रह्म तेज नहि फीका। पूर्णकाम नहि मम मन नीका।।२९।।
भगवत् प्राप्ति हेतु नहि कीना। कछु विशिष्ट, याही ते दीना।।३०।।
परम हंस मुनि कंह प्रिय जोई। कृष्ण कथा अब कहिहूँ सोई।।३१।।
दोहा- ऐसी चिन्ता करत ही, पहुँचे नारद आय।
देवकार्य गुरु कार्य लगि, नही कबँहु अलसाय।।३२।।
सहसा आया देख करि, नारद ऋषि विख्यात।
विधिवत् पूजन करि पुनः, हिय नहि हर्ष समात।।३३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

*

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः।।

सूत उवाच –

दोहा- उपासीन ऋषि व्यास थे, देव ऋषी आसीन।
कच्छपि पाणी स्मित सहित, बोले गिरा प्रवीन।।१।।

नारद उवाच –

कहहु व्यास निज कथा बुझाई। मन और देह तुष्ट किमि भाई।।२।।
तब कीरति 'भारत' विख्याता। विविध विषय संयत शम दाता।।३।।
कहेहु सनातन ब्रह्म विचारा। अब अकृतार्थ शोक किमि मारा।।४।।

व्यास उवाच–

जो कछु कहेहु सत्य सब स्वामी। ब्रह्म तनय तुम अन्तरयामी।।
अजहुँ न तुष्ट हृदय मम मानहु। कारण कवन देवऋषि जानहु।।५।।
गुप्त तत्त्व तुम्ह जानेहु नीका। प्रकृति-पुरुष स्वामी सबही का।।
निज संकल्प रचत जग पावन। करत प्रलय संकल्प नशावन।।६।।
रविकर निकर भाँति तुम स्वामी। विचरहु लोक त्रिलोक निकामी।।

प्राण तत्त्व इव अन्तर-बाहर। जानहुँ सब उर को नर नाहर ।।७।।
पर अरु अवर ब्रह्म मै जाना। कारण कहहुँ न शान्ति निकामा।।

श्री नारद उवाच –

दोहा- नहीं कथा यदुनाथ की, कही अभी तक व्यास।
विनु हरि गुण वर्णन किये मिटे न हिय की प्यास।।८।।
धर्म अर्थ पुरुषार्थ की, चर्चा हुयी प्रशस्त।
वासुदेव पद वन्दना, विनु कीने सब अस्त।।९।।

रस गुण शोभित गिरा प्रमाना। विनु हरि भगति न पाव बखाना।।
काक तीर्थ इव अशुचि वासना। परमहंस कस बास कल्पना।।१०।।
गुण-गण हीन क्षीणमति खोरी। प्रभुयश अंकित गिरा बहोरी ।।
नासत सकल पाप हरषाई। ऐसी गिरा प्रभुंहि सुखदायी ।।११।।
निर्मल ज्ञान मोक्ष हित जोई। भगतिहीन भलु सोह न सोई।।
साधन सिद्धि अमंगल रूपा। प्रभु अर्पण बिनु ठीक न भूपा ।।१२।।
महाभाग तब दृष्टि पुनीता। व्यास! अमल कीरति शुचि प्रीता ।।
भगवत् लीला कहहु बखानी। जीव लहंहि भव बन्धन हानी।।१३।।

दोहा- भगवत् लीला छाँड़ि जो, इतर कहे मन लाय।
भेद बुद्धि सो कंह ग्रसे, नाम रूप उलझाय।।

चंचल मति थिर कतहुँ न होई। सिन्धु मध्य डोंगी जिमि सोई! ।।१४।।
धरम आड़ निन्दित बहु करमा। विषयी करंहि समुझि निज धरमा ।।
हिंसा निरत धरम नहि जानहि। विधि निषेध एकहु नहि मानहि ।।१५।।
ज्ञानी जानहि पुरुष अनन्ता। परमानन्द निरत श्रुत सन्ता ।।
जो परमार्थिक बुद्धि विहीना। त्रिगुण विनर्तित तन मन खीना।।
तिन्ह के हित प्रभु लीला स्वामी। बरनहु विज्ञ विचक्षण नामी।।१६।।
परिहरि निज-निज धर्म स्वजाती। भजंहि चरण कैटभ अराती।।

दोहा- पूजहि भजन तो बात क्या, अर्द्ध भजन यदि छूट।
कतंहु अमंगल होत नहि, भजन हीन खल कूट।।१७।।
भगति हेतु कोविद यतहि, जो न मिलइ चौरासि।
ऊपर नीचे भ्रमि रहे, सुख-दुख विनहि प्रयासि।।१८।।

हरि पद कमल भजन सुठि नीका। संसृति चक्र न आव पुनीता।।
जेंहि कर चरण-कमल रति होई। सुमरित रस बहु पावइ सोई।।१९।।
सृष्टि प्रलय थिति जासे होई। विश्वरूप भासै प्रभु सोई।।
जानहु तुम सब विज्ञ की नाई। तदपि संकेत कीन मैं आई।।२०।।
दृष्टि अमोघ व्यास तव जानंहु। भगवत् लीला चरित बखानहु।।
नारायण के तुम कलावतारा। सर्ग क्षेम हित अज तनु धारा।।२१।।
एकहि तप मख निगम बखाना। करहिं विज्ञ अच्युत गुनगाना।।
आपन चरित कहों मैं गाई। दासी-पुत्र रहेंउ मैं भाई।।२२।।
चातुर्मास्य निरत जब योगी। सेवा बालकपन मैं कीन्ह अरोगी।।
चौमासा व्रत निरत योगिजन। बालक सेवा कीन मुदितमन।।२३।।
यद्यपि बालक तदपि अचंचल। सेवा व्रती यमी मौनी भल।।
समदर्शी यद्यपि मुनिवृन्दा। कीन्ह कृपा मम उपरि अमन्दा।।२४।।
अनुमति लंह जूठन तिन्ह खायो। शुद्ध हृदय भा पाप नसायो।।

दोहा- योगी जैसी मति लही, भजनहि भा अनुराग।
सत्संगति के कारने, का कर भाग न जाग।।२५।।

मुनिजन मुखनि कथा मैं सुनी। प्रति पद लीला कृष्ण की गुनी।।२६।।
प्रभु पद रुचि मम बुद्धि सयानी। जगतंहि माया कल्पित जानी।।२७।।
वर्षा शरद ऋतू दुइ पायी। मुनिजन संग हरी गुन गायी।।
नष्ट पाप विनयी अनुरागी। मुनिगण कृपा लही बड़भागी।।२९।।
जात ऋषिन सोइ तत्व बखानी। जो निज मुख हरि प्रकटे आनी।।३०।।

सोइ उपदेश जानि हरि माया। लहेउं परमपद मोक्ष निकाया ।।३१।।

दोहा- ताप त्रितय की औषधि, तुमहि दीनि बतलाय।
हरिहिं समर्पित कर्म सब, मिथ्या जग निरुपाय ।।३२।।

जेहि सेवत भव रोग बढ़ाहिं। वैद्य शरण ते स्वतः नसाहीं ।।३३।।
एहि विधि सकल कर्म भव प्रेरे । हरिंहि समर्पे ते न घनेरे ।।३४।।
शास्त्रविहित जो कर्म कराहीं। पराभक्ति युत ज्ञान लहाहीं।।३५।।
भगवन्नाम गुनत हरि प्रेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।३६।।
वासुदेव श्रीकृष्ण प्रणामा। प्रद्युम्न संकर्षण तेरे नामा ।।३७।।
प्राकृत मूर्ति हीन भगवन्ता। चतुर्व्यूह रूपी श्री कन्ता।।
मन्त्रमूर्ति ये यजन करा हीं। पूर्ण ज्ञान आवा तिन्ह पांही ।।३८।।
जब प्रभु आज्ञा पालन करी। दिये ज्ञान भक्ति तब हरी ।।३९।।

सोरठा-व्यास ! ज्ञान तव पूर्ण, बरनहु हरिलीला चरित।
दूर होंहि सब प्रश्न, मिले शान्ति सब कँह विमल ।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे-पञ्चमोध्यायः।।५।।

*

।।अथ षष्ठोऽध्यायः।।

सूत उवाच–

दोहा- सुनीकथा देवर्षि की, जन्म कर्म अरु ज्ञान।
पुनः प्रश्न करने लगे, व्यास देव भगवान ।।१।।

व्यास उवाच–

दोहा- जब तुम्ह को उपदेश कर,ऋषि गण कीन्ह प्रयाण।
आपन प्रभु तब चरित कहु,तब वय रहेउ अयान।।२।।

स्वायम्भुव कहु कथा बुझाई। केंहि विधि मृत्यु कहाँ कब पाई।।३।।
कालहि नासइ सब जग स्वामी। देवऋषी–स्मृति न नसानी ।।४।।

नारद उवाच–

मोंहि उपदेश कीन्ह मुनि जाई। प्रथम आयु जेंहि भाँति गँवाई।।५।।
एक तनय निज माता केरा। दासी मूढ़ जननि मति फेरा।।६।।
योग–क्षेम लगि चिन्ता व्यापी। कठ पुतली इव अग–जग नापी।।
फिरिहि ईश वस सब लोग लुगाई। गिरत परत पुनि गिरि उठि जाई।।७।।

दोहा– जननी माया यंत्रित, द्विज कुल कीन्हि निवास।
पञ्च वरस मम वयस तब, काल न दिशा सुपास।।८।।

एक समय गोदोहन धाई। रात्रिकाल गवनी मम माई।।
पग लगि सर्प ताहि डँसलीन्हा। सर्प न दोषु काल तेहिं चीन्हा।।९।।
परम अनुग्रह हरि कर माना। उत्तर दिशि तब कीन पयाना।।१०।।
मारग मिले शस्य गुण शाली। वन उपवन वाटिका वनाली।।११।।
चित्र–विचित्र धातु बहुरंगा। उपवन विचरत विविध कुरंगा।।

दोहा– गजमर्दित तरु डाल अरु, दीख जलाशय शुभ्र।
कमल खिले बहुरंग के, नभ तब रहा अनभ्र।।१२।।

खगकुल विविध भाँति रव कर हीं। गुंजहि भ्रमर मोदमन भरहीं।।
आगे बढ़त विपिन एक देखा। नरकट बाँस काश कुश सेंठा।।१३।।
रहेंउ एकांकी विपिन मझारी। उल्लू, साँप, सियार भयारी।।१४।।
चलत–चलत मम शिथिल शरीरा। इन्द्रिय शिथिल व्यापि तनु पीरा।।
सरिता पाइ किये अस्नाना। मिटी प्यास कीने जल पाना।।१५।।
निर्जन जंगल पीपल छाया। बैठि यथाश्रुत ध्यान लगाया।।१६।।
चरण सरोज ध्यान उर जब हीं। नयन साश्रु प्रकटे प्रभु तबहीं।।१७।।

दोहा– प्रेम मगन रस भाव वश रोम रोम पुलकाय।
सुख पयोधि मन रमि रह्यौ, ध्याता–ध्येय भुलाय।।१८।।

अनिर्वाच्य प्रभु रूप लुभावन। शोक–दोष त्रय ताप नसावन।।

उर अन्तर जो रूप खरारी। विकल न बाहर देखि दुखारी।।१९।।
बार-बार मन कीने ध्याना। चित्त समाहित दर्शन ठाना।।२०।।
बहुरि यतन मम करत गोसाई। शोक शमन वाणी नभ छाई।।२१।।
यहि तनु लागि न दर्शन मोरा। योग कुयोग अहै वरु तोरा।।
जब लगि शान्त वासना नाहीं। अर्धपक्व नहि दर्शन पाहीं।।२२।।
एक बार तोंहि रूप दिखावा। अनघ ! हृदय लालच उपजावा।।
बहुरि सकांक्ष कीन मन नीके। मेटत सकल कामना जी के।।२३।।

दोहा- सन्त सेवि दृढ़ कीन मति, तुम तब भये सुजान।
गर्ह्य लोक यह छाँड़ि तुम, सेवक होहु प्रधान।।२४।।

मम पद लागि लगनु वरु तोरा। प्रलय बाद सुधि रहिहंइ मोरा।।२५।।
इतना कह चुप भयउ मुरारी। नभ-अव्यक्त शोक दुख हारी।।
मै अनुकम्पित कीन प्रणामा। शिर नवाइ, प्रभु पूरण कामा।।२६।।
तब लगि मगन रहऊँ दिन राती। नाम लेत नहि रसा अघाती।।
मद मत्सर अरु तृषा अमर्षा। विचरंउ अवनि विगत सब कर्षा।।२७।।
कृष्ण परायण हृदय विशाला। कौंधी विद्युत मृत्यु कराला।।२८।।
सब प्रारब्ध मिटे तेहि काला। पंचभूत तनु छूटी माला।।
शुद्ध भागवत तनु तब पायऊँ। अवसर लागि कृष्ण गुन गायऊँ।।२९।।

दोहा- कल्प अन्त भगवान जब, शयन उदधि मंह कीन।
ब्रह्म श्वांस लगि मैं तब, हरि उर भयउं आसीन।।३०।।

युग सहस्र बीते प्रभु जागे। भई सिसृक्षा सोचन लागे।।
भयउ मरीचि आदि ऋषिवृन्दा। मानस सुत मै भयउं अमन्दा।।३१।।
भगवत कृपा भजन तिहुँ लोका। विचरत करऊँ अभंग अशोका।।३२।।
नाद ब्रह्म युत वीणा धारहुँ। भगवत् लीला गान प्रचारहुँ।।३३।।
प्रभु गुण-लीला गान करहुँ जब। तीर्थपाद हरि प्रकट उरहिं तब।।३४।।

व्यास! कहऊँ अब अनुभव अपना। भवसागर प्लव नाम कीर्तना।।३५।।
नियम यमादि योग नहि तैसी। देइं शान्ति हरि सेवा जैसी।।३६।।
अनघ व्यास! जो पूछेहु मोही। जन्म रहस्य, बतायेंहु तोही।।३७।।

सूत उवाच–

दोहा- शौनकादि ऋषि गण सुनो, नारद वचन प्रवीण।
अनुमति ले तब व्यास से,चले बजावत वीण।।३८।।
धन्य धन्य नारद मुनि, महती वादन सिद्ध।
शार्ङ्गपाणि की कीर्ति को, गाकर हुए प्रसिद्ध।।३९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे षष्ठोऽध्यायः।।६।।

*

।।अथ सप्तमोऽध्यायः।।

शौनक उवाच–

दोहा- नारद ऋषि प्रस्थित हुये, जब अपने गन्तव्य।
व्यासदेव ने क्या किया, सुन उनके मन्तव्य।।१।।

सूत उवाच–

सरस्वती सुर नदी सुहाई। पश्चिम तट पहुँचे मुनिराई।।
शम्याप्रास नाम अति सुन्दर। यज्ञ–याग जँह चलत निरन्तर।।२।।
बदरी बन अति रम्य मनोहर। निज आश्रम गवने तब यतिवर।।
शुचि जल परम आचमन कीना। तब एकाग्र किये मन–मीना।।३।।
भक्तियोग वश निर्मल काया। देखा ब्रह्म सहित निज माया।।४।।
माया–वश यह जीव मुरारी। त्रिगुण मानि भोगत दुख भारी।।५।।
भक्ति योग एक साधन मूला। लोक न जानि भोग भव शूला।।
यह सिद्धान्त तबै मन लाई। रची भागवत कथा सुहाई।।६।।

दोहा- श्रवण मात्र इस ग्रन्थ के, परम भक्ति है होत।
शोक-मोह भय नष्ट कर, प्रेमा भक्ति उदोत।।७।।

रची भागवत किये पारायण। शुकहि पढ़ाये निवृत्ति परायण।।८।।

शौनक उवाच-

श्री शुकदेव महामुनी ज्ञानी। सदा आत्मरत यति विज्ञानी।।
यह गुरुकथा पढ़ी केहि हेतू। कहहु बुझाइ तथ्य श्रुति सेतू।।९।।

सूत उवाच-

मधुर शील गुण श्री भगवाना। करहि भक्ति योगी यति नाना।।१०।।
व्यास-तनय शुकदेव सुजाना। पढ़ी कथा रस मय सब जाना।।११।।
कहौ परीक्षित-कथा पुरानी। जन्म-कर्म अरु मोक्ष कहानी।।
पाण्डव स्वर्ग गये केहिं भाँती। कृष्ण कथा का उदय सुहाती।।१२।।
जबहि महाभारत रण भयऊ। बीर सबै उत्तम गति लहेऊ।।
भीम गदा लगि कीन्ह प्रहारा। दुर्योधन रण भूमि विचारा।।१३।।
अश्वत्थामा दुर्योधन कर चेरा। विप्रिय निन्दित कर्म घनेरा।।
द्रुपद-सुता सुत शीश काटकर। माना मूढ़ सुयोधन प्रियकर।।१४।।

दोहा- तनय-घात सुनि द्रौपदी, नयनन छलके नीर।
देत सान्त्वना अर्जुन, बोले वचन गभीर।।१५।।

हे कल्याणि करहु मत शोका। काटंऊ विशिखमारि शिर ओका।।
ब्राह्मण-अधम महा अतताई। शिर रख चरण त घाट नहाई।।१६।।
अर्जुन विविध सान्त्वना दीन्ही। कृष्ण मन्त्रणा प्रथमहि लीन्ही।।
हरि हांकत रथ पाछे धाई। गुरु सुत पकड़न धनुष चढ़ाई।।१७।।
आवत देखि किरीटी भागा। अश्वत्थामा मूढ़ अभागा।।
प्राण-त्राण हित रथ चढ़ि धावा। रुद्र भीत जिमि तरणि बनावा।।१८।।
शरण हीन हय थकितहि जाना। ब्रह्म-अस्त्र कर कीन्ह सन्धाना।।१९।।

संकट ग्रस्त प्राण निज माना। मूढ़ परावर्तन नहि जाना ।।२०।।

दोहा- सबदिशि फैला तेज अति, ब्रह्मशस्त्र के वेग।
प्राणापद लखि जिष्णु तब, कृष्णंहि कह निर्वेद ।।२१।।

अर्जुन उवाच–

महा बाहु हे कृष्ण मुरारी। केवल तुम्ही भगत भयहारी ।।
धधकत धरणि तुम्ही हो त्राता। संसृति के तुमही सुखदाता ।।२२।।
निजंहि स्वरूप अवस्थित तुमही। प्रकृति पार परमेश्वर सृजहीं।।
निज इच्छा प्रभु दूर भगाया। त्रिगुणमयी वहिरंगा माया।।२३।।
माया-मोहित जीव मुरारी। करहु क्षेम सेवक भयहारी।।२४।।
तब अवतार हरन महि भारा। ध्यान धरत धुरि भक्त अपारा।।२५।।
देव देव यह तेज भयंकर। मम उर लागि चलेउ प्रलयंकर।।२६।।

श्री भगवान् उवाच –

ये महास्त्र गुरु पुत्रहिं प्रेरे। जानि न मूढ़ इनहि किमि फेरे ।।२७।।

दोहा- ब्रह्म अस्त्र तुम्ह जानंऊ, वेगहि करु सन्धान।
अन्य अस्त्र नहि प्रतिकरे, ब्रह्मायुध बलवान ।।२८।।

सूत उवाच–

सखा कृष्ण की बात सुहाई। शस्त्र निपुण फाल्गुन हरषाई ।।
परसि सलिल कृष्णहि शिर नाई। वारे ब्रह्म शस्त्र वरियाई ।।२९।।
उभय शस्त्र मिलि कीन्ह प्रकाशा। तेज़ पुंज फैला चंहु आशा।।३०।।
तीनहुं लोक सृष्टि भय भागी। सांवर्तक प्रलयंकर आगी।।३१।।
प्रजा त्राण हित कीन्ह उपाया। उभय अस्त्र अर्जुन लौटाया।।३२।।
अरुण नयन गुरु पुत्रंहि चीन्हा। पशुवत बांधि धनंजय लीन्हा ।।३३।।
शत्रुंहि बाँधि शिविर ले आये। कुपित कृष्ण अर्जुन गोहराये।।३४।।
ब्रह्मबन्धु यह मारन जोगू। हनेसि सुतन सोवत महि भोगू।।३५।।

दोहा- मत्तंहि सुप्त प्रसुप्त त्रिय, अरु शरणागत योग ।
विरथ भीत रण मध्य मे, बधे पाप लग लोग ।।३६।।

दुष्ट क्रूर जे परजन मारंहि । स्वार्थ हेतु जे आपु संवारंहि ।।
उनकर बध श्रुत संमत अहई । पापी अन्त नरक मंह परई ।।३७।।
मम सम्मुख तुम्ह कीन प्रतिज्ञा। शिर-काटंउ जिन कीन्हि अवज्ञा।।३८।।
मारहु कुल लांछन अततायी । दुर्योधन हूँ को दुःखदायी ।।३९।।
लेन परीक्षा धर्म सुहाये । कृष्ण अर्जुनहि बहु उकसाये ।।
गुरु सुत जानि जिष्णु बहुरूखे। भये न दुष्टहि प्राण के भूखे।।४०।।
सारथि सहित किरीटी आये । पुत्र शोक द्रौपदि विलखाये ।।
शिविर पहुँचि सौपे गुरुसूनू । निरखि ताहि द्रौपदि दुख दूनू।।४१।।

दोहा- पशुवत-बन्धन में खड़ा, नीचे मुख नहि आन ।
कृष्णा गुरु सुत देखि के, सहसा कीन प्रणाम ।।४२।।

बन्धन नयन सही नहि सती । छोड़हु ब्राह्मण गुरु अरु यती।।४३।।
जिनसे धनुर्वेद शुभ सीखे । त्याग-संयमन ब्रह्मास्त्र सरीखे ।।
सोइ गुरु द्रोण, पुत्र की नाई । जेहि लगि कृपी जियत बरियाई ।।४४।।
जानहुँ धर्म नीति सब भाँती । आर्य! पूज्य कुल नहि आराती ।।४५।।
मत रोवे गौतमि महतारी । पुत्रहीन मैं यथा दुखारी।।४६।।
जो ब्राह्मण कुल कुपित कराहीं । ते राजा अतिशीघ्र नसाहीं।।४७।।

सूत उवाच-

रानी वचन धर्म अनुकूला । राजा सुनत हुये गत शूला ।।४८।।
नकुल धनंजय अरु युयुधाना । नारि समूह सहित भगवाना।।४९।।
एक भीम उर अमरख भारी। सोये शिशुन वृथा किमि मारी।।
निज हित लागि न स्वामी हेतू । मारहु शीघ्र इसे कपिकेतू।।५०।।
द्रौपदि भीम बात सुनि काने । फाल्गुन निरखि कृष्ण मुसकाने ।।५१।।

श्रीकृष्ण उवाच –

पतितहुं ब्राह्मण नहि बध योगू। ब्रह्म बन्धु नहि छाँड़हि लोगू।।५२।।
उभयभाँति हम कहेउ विचारी। मानहु बचन शोक तव भारी।।५३।।

दोहा– सत्यसन्ध प्रण पूर्ण कर, द्रुपदसुता प्रिय लागि।
भीमसेन अरु मो कंह, शान्त होउ जिय आगि।।५४।।

सूत उवाच–

अर्जुन कृष्ण हृदय तब जाना। मस्तक मणि हरि कीन अमाना।।५५।।
बन्धन रहित जिष्णु तब कीना। श्रीहत करि बाहर करि दीना।।५६।।
मूंड़ मुड़ाइ द्रविण आदानू। देश निकालइ दण्ड न आनू।।५७।।
शोकातुर भे पाण्डव तब ही। अग्नि क्रिया कीन्ही सब जबही।।५८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

*

।। अथाष्टमोऽध्यायः।।

सूत उवाच–

दोहा– प्रेत कर्महित सोचिके, देने अंजलि नीर।
कृष्ण सहित सब रानियाँ, पहुँची गंगा तीर।।१।।

दीन्हि तिलाञ्जलि बहु गुन गाये। विष्णु पदी मंह जाइ नहाये।।२।।
कुरुपति धर्मराज सब लोगा। धरि निज आसन कहत वियोगा।।
पुत्र शोक आकुल गान्धारी। कृष्णा पृथा आदि सब नारी।।३।।
माधव सबहि सान्त्वना दीन्ही। कालगती काहू नहि चीन्ही।।४।।
द्यूत छले हरि राज्य दिलाये। जिन्ह कच परसे स्वर्ग सिधाये।।५।।
उत्तम अश्वमेध करवाये। तीन बार शतमख इव छाये।।६।।
विदा पाण्डवन लीन मुरारी। व्यास पूजि प्रति पूजित भारी।।७।।

चले द्वारका रथ चढ़ि कृष्णा। आतुर उत्तरा दीखि सतृष्णा।।८।।

उत्तरा उवाच–

रक्ष रक्ष जगदीश्वर देवा। तुम बिन कौन सुरक्षित सेवा।।

दोहा– इहाँ परस्पर मृत्यु हित, सभी बने है लोग।
तुम बिन अभय कतहुँ नहि, कैसा है संयोग।।९।।

प्रभु तुम शक्तिमान मम स्वामी। तुम जानहुँ सब अन्तर यामी।।
आयस कुलिश चला मम ओरा। बरु मारइ मोंहि, गर्भ न छोरा।।१०।।

सूत उवाच –

भगत–वसल पालक भगवाना। अश्वत्थामा की करनी जाना।।
पाण्डव हीन करन महि पापी। अस्त्र चलायसि असि संघाती।।११।।
तभी पाण्डुसुत आवत देखे। सायक पञ्च अग्नि सम लेखे।।
लिये शराशन दौड़े धाये। जेहि दिशि वाण कुलिश सम आये।।१२।।
कीन स्वजन रक्षण भगवाना। चक्र सुदर्शनकर करि अहवाना।।१३।।

दोहा– योगेश्वर श्रीकृष्ण तब, उर पुर बैठे आइ।
वैराटी रक्षित हुई, माया कवच ओढ़ाइ।।१४।।

यद्यपि यह ब्रह्मास्त्र अचूका। विष्णु तेज लखि भयउ वियूका।।१५।।
नहि आचरज करहु जनि कोई। माया सृष्टि रचै जग सोई।।१६।।
जात देखि श्रीकृष्ण गोसाई। कुन्ती स्तुति बहुविधि गाई।।१७।।

कुन्त्युवाच–

प्रकृति पार परमेश्वर स्वामी। गूढ़ अलक्षित अन्तर यामी।।१८।।
माया पट धर नटवर वेषा। लखै न मूढ़ भलेहि ध्रुव देखा।।१९।।
मुनिजन परम हंस उर स्वामी। बसहु भक्तिवश,देखि कि कामी।।२०।।
जय जय जय श्री कृष्ण मुरारे। नन्द गोप देवकी दुलारे।।२१।।
पंकज नाभि जयति सुखकारी। जय जय जय पंकज स्त्रज धारी।।

नलिन नयन जय जय असुरारी । जय जय पंकज चरण मुरारी ।।२२।।

दोहा- यथा कंस वस देवकी, रक्षा कीनी नाथ ।
मेरी सदा विपत्ति में, साथ रहे यदुनाथ ।।२३।।

दुसह गरल अरु अग्नि कराला । मानुषाद राक्षस विकराला ।।
द्यूत सभा, वन घोर यातना । समर भूमि नवयुद्ध कल्पना ।।२४।।
द्रौणि अस्त्र विलुलित भयभारी । तुमहीं रक्षक रहे मुरारी।।
होइ निरन्तर विपति हमारे । तुमरे दर्शन भव-भय हारे ।।२५।।
जन्म उच्च कुल, विद्या जाना । नाम न लेइ बढ़इ अभिमाना ।।
देहु दरस जानहुं अधिकारी । करंहि अकिञ्चन भगति तुम्हारी ।।२६।।
निर्धन के धन तुमही स्वामी । आत्माराम शान्त गुण खानी ।।२७।।
अज अनन्त अगणित गुणवन्ता । कालंहु काल ईश भगवन्ता ।।२८।।

दोहा- जब नर लीला करहु तुम, जानि न पावइ कोइ ।
प्रिय अप्रिय काहू नहीं, मम मति विषमा होइ।।२९।।

आत्मन् विश्वरूप अविकारी । अजर अजन्मा तुमहि मुरारी ।।
पशु पक्षी ऋषि जलचर नाना । लीला मनुज होंइ भगवाना ।।३०।।
तव अपराध यशोदा खीझी । देखि नयन जल माता रीझी।।
बाँधन उदर दाम जब लयऊ । तब दामोदर नामा भयऊ ।।३१।।
अंजन कलित कपोल सुहाये । कालंहु काल लगत भय खाये ।।
यदुकुल कीरति लता बढ़ाई । चन्दन मलय प्रकट तिमि भाई।।
कोउ कह अज पुनि भये नरेशा । पुण्य कीर्ति यदुवंश विशेषा ।।३२।।
तुम वसुदेव देवकी जाये । असुर-बधन धरती पर आये ।।३३।।
कोउ कह धरा भार अतिभारी । हरेहु ब्रह्म अस्तुति सुनि प्यारी ।।३४।।
कतिपय मोह-पाश वश प्राणी । तारन लीला कीन्ही स्वामी ।।३५।।

दोहा- श्रवण-मनन अरु कीर्तन, करत प्रफुल्लित गात।
चरण कमल दर्शन करत, जन्म बन्ध कटि जात।।३६।।

आजु आप प्रभु छोड़न चहहूं। चरन-कमल तजि हम कत रहहूं।।
अन्य नहीं अवलम्ब हमारे। नाथ शत्रु सम नृपगण सारे।।३७।।
जीव बिना इन्द्रिय बल हीना। तुम बिन सब पाण्डव अति दीना।।३८।।
चरण चिह्न शोभित महि जैसी। गये तुमहि प्रभु सोह न तैसी।।३९।।
वन पर्वत गिरि नदी सुहाये। कृषी लता तरुगण हरियाये।।४०।।
विश्वमूर्ति विश्वात्मन् स्वामी। अलख ।गोचर प्राणि निकामी।।
वृष्णि पाण्डुकुल मोह नसावहु। सदा सुरति उरपुर मम आवहु।।४१।।
रति अनन्य तव चरण अभंगा। यथा उदधि मंह मज्जति गंगा।।४२।।

दोहा- जिष्णु सखा यदुवंश मणि, दैत्य कृशानु स्वरूप।
गो ब्राह्मण सुर त्राण हित, नमो नमः अभिरूप।।४३।।

सूत उवाच–

स्तुति पृथा यथाविधि कीन्हा। प्रभु मुसकाय मोह वश लीन्हा।।४४।।
'ठीक ठीक' कह चले मुरारी। तबहि युधिष्ठिर लिये नेवारी।।४५।।
कृष्ण व्यास बहुविध समझाये। बन्धुशोक नहि मिटत मिटाये।।४६।।
धर्मराज उर चिन्ता व्यापी। बोले बचन मूढ़ इव कांपी।।४७।।
लखहु दुर्जनहि मम अज्ञानू। देह हेतु अक्षौहिणी नसानू।।४८।।
बाल वृद्ध द्विज गुरु कृत द्रोहा। कल्प कोटि मम नरक अछोहा।।४९।।
यद्यपि शास्त्र करहि परितोषा। राजधर्म रण हते न दोषा।।५०।।
नारी-पति गुरु बन्धु विछोहा। यज्ञ-याग मार्जन नहि ओहा।।५१।।

दोहा- पंक न छालइ पंक को, सुरा-सुरा नहि पूत।
हिंसा युत तिमि यज्ञ से, शान्ति कवन विधि सूत।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे अष्टमोऽध्यायः।।८।।

।। अथ नवमोऽध्यायः ।।

सूत उवाच–

दोहा– प्रजाद्रोह वश भीत अति, जानइ धर्म विवेक।
धर्मराज प्रस्थित वहाँ, जहाँ भीष्म शर-टेक।।१।।

हेम जटित रथ चारिउ भाई। किये अनुगमन व्यास सहाई।।२।।
अर्जुन कृष्ण युधिष्ठिर सोहे। यक्ष परीत धनद इव मोहे।।३।।
कृष्ण सहित पाण्डव सब भाई। किये प्रणाम बहुरि सिर नाई।।
भीष्म शरासन सोंहहि कैसे। अवनि पड़े अमरेश्वर जैसे।।४।।
भीष्म पितामह देखन आये। देव ऋषी राजर्षि सुहाये।।५।।
पर्वत नारद धौम्य अरु व्यासा। भरद्वाज भार्गव तिन्ह पासा।।६।।
इन्द्र प्रमद वशिष्ठ गृत्समद। विश्वामित्र अत्रि त्यक्त तपोमद।।७।।
ऋषिगण अन्य शुकादिक आये। शिष्य सहित बाबा ढिंग छाये।।८।।

दोहा– देशकालविद भीष्म ने, पूजे विविध विधान।
हरषे निरखि अतिथिजन, मानि सबहि भगवान।।९।।

माया मनुज कृष्ण हरि माना। सब उर व्याप कीन्ह बहुमाना।।१०।।
विनय सहित पाण्डव सब भाई। देखि भीष्म आँखे भरि आई।।११।।
अहह कष्ट अतिशय तुम्ह पाये। गो द्विज आश्रित परम सुहाये।।
कृष्णाश्रित कंह दुःख नहि होई। होइ यदपि मानहि सुख सोई।।१२।।
अतिरथ पाण्डु निधन जब भय ऊ। कष्ट अधिक कुन्ती तब सहयू।।१३।।
सब कुछ काल करे बरियाई। वायु प्रेरि बादल ले जाई।।१४।।
जहाँ धर्मसुत स्वयं युधिष्ठिर। गदा हाथ में धरे वृकोदर।।
गाण्डीवी अर्जुन धनुधारी। कृष्ण सुहृत तंह विपति वयारी।।१५।।
कब का करंइ न जानइ कोई। कृष्ण चरित कवि मोहित होई।।१६।।

दोहा- अस विचारि हे पार्थ तुम, शासन करहु स्वतन्त्र ।
प्रजा अनाथ सनाथ हो, जीव ईश-परतन्त्र ।।१७।।
कृष्ण स्वयं नारायण स्वामी। माया-वश रख जीव-निकामी ।।१८।।
शंकर नारद कपिलहि वारे। और इनहि को जाननि हारे ।।१९।।
जेहिं तुम निज मातुल सुत माना । बन्धु दूत सारथि सम जाना।।२०।।
प्रभु निरवद्य अनघ समदर्शी । ऊँच-नीच तंह लोभ न करसी।।२१।।
समदर्शी यद्यपि यदुराया । निर्भर भगत करहि प्रभु दाया।।
तजत प्राण मम सम्मुख आवा। दर्शन दीन्ह, बहुत सुख पावा।।२२।।
भक्तिभाव योगी मन धर हीं। नाम जपत भव सागर तर हीं।।२३।।
दोहा- ठाढ़ रहहु मृदु हास युत, धरे चतुर्भुज रूप ।
जब तक यह तन छाड़िहों, अरुण नयन सुर भूप।।२४।।

सूत उवाच-

दोहा- शर शय्या पर थे भीष्म तब, लेटे सहित विवेक ।
धर्मसूनु ऋषिगण निरखि, पूंछे प्रश्न अनेक।।२५।।
वर्णाश्रम अरु धरम विरागा। द्विविध धर्म, कारण बहु रागा।।२६।।
दान धरम नृप धरम बखाने । स्त्री मोक्ष, ईश जे आने ।।२७।।
पुरुषारथ चारिउ समझाये । साधन सब इतिहास बताये।।२८।।
भीष्म करत प्रवचन जब रहेऊ। उत्तर अयन सूर्य तब भयऊ ।।
मृत्यु अधीन किये जग माहीं । योगी जन भलु मन जेहि चाँही ।।२९।।
तबहिं भीष्म मन संयम कीना। पीतवसन कृष्णंहि मन दीना।।३०।।
शस्त्र जनित पीडा सब हरी । दर्शन पाइ कृष्ण नरहरी ।।३१।।

भीष्म उवाच-

दोहा- अन्तकाल यदुवंशमणि, चरण शरण मति देउ।
निजलीला धारिततनु, सृष्टि-प्रलय जिमि नेंउ ।।३२।।

त्रिभुवन ललित कलित वनमाला। पीत वसन रवि रश्मि निराला।।
अलकावलि अम्बुज मुख माहीं। कृष्ण चरण मम प्रीति सिरांही ।।३३।।
समर भूमि कच श्यामल धूसर । श्वेद बिन्दु विलुलित अति सुन्दर।।
त्वचा विद्ध मम सायक लागे । कवच विमण्डित मम प्रभु आगे।।
कृष्ण-समर्पित मम यह देहा। कृष्ण अनादि अजन्म अगेहा ।।३४।।
सखा-वचन सुनि रथ ले आये। उभय सैन्य के मध्य सजाये ।।
आयु लखत प्रतिपक्षिन छीनी । पार्थ-सखा पद रति मन भीनी ।।३५।।

दोहा- कौरव सेना स्वजन वध, सोचत पार्थ विरक्त।
कुमति हरी उपदेश से, हरिपद मैं अनुरक्त।।३६।।

भक्त प्रतिज्ञा कृष्ण संवारी । निज प्रण भूले कृष्ण मुरारी।।
रथ तजि अवनि कृष्ण पगु धारे । रथ चक्का चाहत मोंहि मारे ।।
सिंह यथा गजराजहिं टूटा । धाये कृष्ण पीत-पट छूटा ।।३७।।
मै पापी बीधेउ शर मारी । टूटा कवच गात व्रण झारी ।।
मम वध हेतु झपटि प्रभु आये । मम गति होउ मुकुन्द सुभाये ।।३८।।
अर्जुन रथ रक्षक यदुनाथा । वल्गा चाबुक शोभित हाथा।।
समरभूमि जे प्रभुहि निहारे । मृत्युकाल ते स्वर्ग सिधारे ।।३९।।
ललित विलास हास परिहासा । प्रेम निरीक्षण कौतुक रासा ।।
प्रेम मगन गोपी अनुकारी । तन्मय मम उर बसहि मुरारी ।।४०।।
राजसूय मख नृप जब कीना। मुनिगण नृप सब रहे कुलीना।।
प्रथम पूज्य जो भये मुरारी। सोइ प्रभु मम सम्मुख भयहारी ।।४१।।

दोहा- रूप रूप प्रतिरूप बस, सूर्य अनेक न, एक ।
अज अनादि उर पुर वसें, लहौ कृष्ण मति नेक ।।४२।।

सूत उवाच

दोहा- मन वाणी अरु दृष्टि से, कृष्ण रूप में लीन।
भीष्म शान्ति को पा गये, करके प्राण विलीन।।४३।।
दोहा- शान्त सभा सब हो गयी, देखि भीष्म को लीन।
सन्ध्या में खलकुल यथा, होते शब्द-विहीन।।४४।।
बरसहिं सुमन देव नियराये। साधु प्रशंसि दुन्दुभी बजाये।।४५।।
अन्त क्रिया धरम सुत कीन्हीं। शोक मगन पल कतिपय चीन्ही।।४६।।
सहस नाम ले कृष्ण मनाये। मुनिजन निज आश्रमंहि सिधाये।।४७।।
कृष्ण साथ नृप सदन पधारे। गान्धारी पितृव्य उबारे।।४८।।
दोहा- आयसु लै धृतराष्ट्र की, अनुमति कृष्ण से लीन।
वंश कुलागत शासन, नृपति युधिष्ठिर कीन।।४९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे नवमोऽध्यायः ।।९।।

*

।। अथ दशमोऽध्यायः।।

शौनक उवाच-

दोहा- अर्थ लुब्ध रिपुगण हते, वीर युधिष्ठिर धीर।
अनुज सहित क्या क्या किये,भोंगहि रुचि न गभीर।।१।।

सूत उवाच-

कुल कलहाग्नि दग्ध कुरुवंशा। जीवन दिये यदूत्तम हंसा।।
धर्म सुतंहि सिंघासन दीन्हा। हिय हरषे निज जन प्रभुचीन्हा।।२।।
भीष्म कृष्ण उपदेश सुहाये। मिटी भ्रान्ति सज्जन सुख पाये।।
आ समुद्र पृथ्वी करि शासन। इन्द्र मनंहु बैठे इन्द्रासन।।३।।
बरषहिं जलद यथा क्रम पानी। धरनी दुहत न वस्तु अघानी।।४।।

नदी समुद्र गिरी वन वीरुध। देंहि सभी ऋतु फल अरु औषध।।५।।
आधि व्याधि नहि भूत परेता। रिपु गण हीन समय जिमि त्रेता।।६।।

दोहा- हास्तिनपुर में रमि रहे, कछुक मास यदुराय।
भगिनी मित्र विशोक हित, कीन यतन मनलाय।।७।।

भेंटि युधिष्ठिर आज्ञा लीन्ही। बैठे रथ हरि निजजन चीन्ही।।८।।
द्रुपद सुता कुन्ती सब नारी। वैराटी रानी गान्धारी ।।९।।
धौम्य वृकोदर मत्स्य सुतादिक। कृष्ण विरह भे सब जन मूर्च्छित।।१०।।
सत्संगति अति मधुर मनोहर। छूटि न सकइ सकृत श्रुति सुन्दर।।११।।
दर्शन लाभ शयन सह भोजन। पाण्डव विरह सहैं किमि मोहन।।१२।।
चित्त द्रवहि अनिमिष भयहारी। देखत पुर भागत नर नारी ।।१३।।
कृष्ण विरह नयननि जल छाये। असगुन समुझि न देंहि गिराये ।।१४।।
शंख मृदंग दुन्दुभी बजाये। कृष्ण चलत मंगल रव छाये।।१५।।

दोहा- भवन अँटारी चढ़ गई, कुरु नारी अकुलाय ।
पुष्प वृष्टि करने लगीं, प्रेम न हृदय समाय।।१६।।

श्वेत छत्र अर्जुन कर गहे। रत्नदण्ड मोती जिन्हि लहे।।१७।।
उद्धव सात्यकि चँवर डुलाये। लाजा पुष्प मार्ग पर आये ।।१८।।
जँह तँह ब्राह्मण आशिष दीना। सगुणहि सब गुण, नहि गुण हीना।।१९।।
कौरवेन्द्र पुर नारि कुलीना। करत बतकही श्रुति गुण पीना ।।२०।।
यही सनातन पुरुष अनूपा। प्रलय काल सुस्थित निज रूपा।।
सृष्टि मूल गुण तीनउ नाहीं। ईश्वर लीन जीव होइ जाहीं ।।२१।।
माया प्रेरि सृष्टि फिर करी। नाम रूप लीला तनु धरी।।२२।।

दोहा- जोगी जन जेंहि ध्यावत, वश में करि निज प्राण।
कृष्ण स्वयं पर ब्रह्म हैं, भगति वश्य भगवान।।२३।।

सुनहु सखी हरि कँह गुणगाना। व्यास आदि ऋषि वर्य बखाना।।

सृष्टि विलय पालन हरि करई। सदा असक्त सृष्टि सन रहई ।।२४।।
जब जब नृप गण अधरम कर हीं। सत्त्व प्रधान ईश अवतरहीं ।।२५।।
परम प्रशंसित यदुकुल जानी। जन्म लीन लक्ष्मीपति मानी।।२६।।
कुशस्थली स्वर्गहु ते सुन्दर। बनी द्वारका मणिमय भू पर ।।
मन्दहास शोभित यदुराई । निरखत प्रजा परम सुखदाई ।।२७।।
व्रत स्नान पुण्य अरु दाना । निश्चय सखी! किये विधिनाना ।।
अधर सुधा जे पान करा हीं । इनकी तिय अतुलित जग माहीं ।।
जिनके सुमिरन ते ब्रजबाला । मूर्च्छा लहंहि सखी! तिंहु काला।।२८।।
करि मद मर्दन हरे मुरारी । निज भुजबल हरि लाये नारी ।।
चेदि पती शिशुपाल विसूरे । सुत प्रद्युम्न साम्ब अति रुरे ।।
भौमासुर बधि जिनहि छोड़ावा । नारि सहस्त्र परम सुख पावा ।।२९।।
को कहि सके कृष्ण गुण गाना। जाकी महिमा वेद बखाना।।
नारि जाति जिमि गौरव दीन्हा। शुचि सन्मान नाम निज कीन्हा ।।३०।।

दोहा- इस प्रकार पुर योषित, करत बात दिन रैन।
मन्द हास चितवत प्रभु, किये गमन दे चैन।।३१।।

धर्मराज रिपु चिन्ता कीन्ही। कृष्ण साथ सेना निज दीन्ही।।३२।।
प्रेम विवश पाण्डव पिछुवाये। दूर देस शौरी लौटाये ।।३३।।
कुरु जंगल पाञ्चाल सुहाये । ब्रह्मावर्त मत्स्य नियराये।।३४।।
आनर्तादि देश बहु देखे । घोड़े थके, कृष्ण इमि लेखे ।।३५।।
जेंहि जेंहि देश गये यदुराई । लही मान सम्मान बड़ाई।।३६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे-दशमोऽध्यायः।।१०।।

*

।। अथ एकादशोऽध्यायः ।।

सूत उवाच–

दोहा- अति समृद्ध आनर्त यह, पहुचे माधव आज।
पाञ्चजन्य के घोष से, मेटे सकल विषाद।।१।।
श्वेत वरन यह शंख सुहावा। भयउ लाल अधर द्युति पावा।।
धृत कर कंज सोह सोइ कैसे। लालकमल पर हंसहि जैसे।।२।।
भव भय हरनि शंख ध्वनि काना। सुनत प्रजा निकसी विधि नाना।।३।।
पूर्णकाम हरि आत्मारामा। तदपि प्रजा पूजी अभिरामा।।
यद्यपि रवि कर तेज बखाना। दीप देखावहिं तेहि जन नाना।।४।।
मुख सरोज विकसे सब केरे। बोले गद्‌गद गिरा घनेरे।।
सुहृद भक्तजन प्रभु प्रतिपालक। जिमि पितु लागि कहैं मृदु बालक।।५।।
श्लोक-नमामि पाद पंकजम्, सुरेन्द्र शम्भु वन्दितम्।
सदा सदाश्रयं मुदा, न यत्र काल ईश्वरः।।६।।
विश्व रूप तुम पिता हमारे। माता मित्र पती सब प्यारे।।
सद् गुरु तुम्ही पूज्य मम देवा। भयउं कृतारथ करि तव सेवा।।७।।
भयउं सनाथ तुमहि हम पाये। सुरगण तुमहि पाइ अनघाये।।
प्रेम पूर्ण चितवन तव देखे। सुर दुर्लभ तब रूप विशेषे।।८।।
जब तुम जाहु सुहृद निज देखन। कलप कोटि सम लागे क्षन क्षण।।
तुम नयनन की ज्योति हमारे। तुम बिन अन्ध भयउं सब प्यारे।।९।।
दोहा- भगत बछल श्रीकृष्ण तब, सुनत वचन उत्कृष्ट।
करत अनुग्रह दृष्टि पुर, पुर में हुये प्रविष्ट।।१०।।
मधु अन्धक कुक्कुर यदुराजा। सबल सुरक्षित सकल समाजा।।
यह द्वारका सुरक्षित वैसे। भोगवती रखु नागन जैसे।।११।।
लता कुंज बहुभाँति सुहाये। नन्दन उपवन निरखि लजाये।।१२।।

तोरण गोपुर हार सुहावा । चित्र-विचित्र ध्वजा फहरावा ।।१३।।
राजमार्ग अरु सड़क बजारा । सुरभित जल सींचे बहु बारा।।१४।।
घर-घर द्वार दही फल दीखें । धूप-दीप शोभित शुभ ईखें।।१५।।
आवत कृष्ण सुनेउ जब काना । उपजा उर आनन्द अमाना।।
उग्रसेन वसुदेव ललामा । परम पराक्रम श्री बलरामा ।।१६।।
जाम्बवती सुत साम्ब सहर्षा । छोड़ा भोजन-शयन विमर्शा ।।१७।।

दोहा- आगे द्विज गजराज कंरि, कीन सुमंगल तूर्य ।
रथ चढ़ि सब हरषित चले, आये यदुपति सूर्य।।१८।।

शत शत गणिका उत्सुक भारी । कुण्डल लोल पालकी सवारी ।।१९।।
नट नर्तक गन्धर्व अनेका । आवत गान करत अश्लोका।।२०।।
पुर वासिन्ह सेवक सब नाना । कृष्ण भेंटि दीन्हे सनमाना।।२१।।
गुरुंहि नाइ सिर कीन्ह प्रणामा। आशिष पाइ लहे अभिरामा।।
पाणि सरोरुह पाणि लगावा । कतिपय लखि स्मित मुख आवा।।२२।।
अभिमत वर सब कहं हरि दीन्हा । श्वपच लागि प्रभु सब कंह चीन्हा।।
वन्दीजन विरुदावलि गावत । पुर प्रविशत देखे पुर आवत।।२३।।
राजमार्ग जब कृष्ण पधारे । कुलबधु चढ़ि तब भवन निहारे।।२४।।
पुर वासी प्रभु नित्य निहारंहि । नहि अघात श्रियधाम विचारंहि ।।२५।।

दोहा- श्री निवास याके उर, आनन शोभा धाम।
पद-सरोज श्री हंस रति, वाहु विशाल ललाम ।।२६।।

श्वेत छत्र सित चँवर डोलाये । बरसंहि सुमन पीत पट भाये ।।
वन माला उर सोहइ कैसे । श्याम मेघ हरिधनु शशि जैसे।।२७।।
सप्त मातु पितु बन्देहु जाई । नाइ चरण शिर कृष्ण कन्हाई।।२८।।
मातु सबंहि सुत गोद बिठावा । दूध झरत अश्रुन नहवावा ।।२९।।
भवनहि पैठे लच्छि निवासू। सोलह सहस रम्य रनिवासू ।।३०।।

प्राणनाथ पुर आवत देखा। उपजा उर आनन्द विशेषा।।
सहसा खड़ी हुई सब रानी। त्यागे व्रत, दृग लाज समानी।।३१।।

दोहा- प्रथमंहि मन फिर नयन तें, सुत कोरा धरि-दीन।
येंहि मिस सारी रानियाँ, प्रभुंहि अंक भरि लीन।।

दोहा- रोके ते तब ना रुके, नयन नीरं बहि जात।
लज्जित सब पटरानियाँ, आर्द्र नयन जलजात।।३२।।

यद्यपि कृष्ण रहसि पुर रहेऊ। पद सरोज नित नूतन भयऊ।।
जिनहि न छाँड़त लक्ष्मी कबहूँ। यदपि चंचला सब जग कहहूँ।।३३।।
स्वयं निरायुध रहे मुरारी। भार भूत नृप हते सुरारी।।
प्रकटइ अनल दवानल भारी। जारइ रगड़ वेणु वन सारी।।३४।।
निज माया वस कर नर लीला। प्राकृत जन जैसे गृहशीला।।३५।
निज धनु कामदेव तजि दीन्हा। निर्मल मधुर हास जब चीन्हा।।
हाव-भाव मन मथा न काहू। अच्युत कृष्ण रहे नर नाहू।।३६।।

दोहा- निज सम मानंहि कृष्ण को, निरत सदा दुःसंग।
विषयी पामर मूढ़मति, आत्मा कृष्ण असंग।।३७।।
यही ईश की श्रेष्ठता, प्रकृति स्थित भी ईश।
लिप्त नहीं-गुण से कभी, आश्रित मति जगदीश।।३८।।
अबला नारी मूर्ख मति, कहंहि कृष्ण रति काम।
नहि जाने यदुवंशमणि, आत्मकाम निष्काम।।३९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे-एकादशोऽध्यायः ।।११।।

*

।।अथ द्वादशोऽध्यायः ।।

शौनक उवाच–

दोहा- अश्वत्त्थामा ने किया, ब्रह्मशस्त्र सन्धान।
कृष्ण, उत्तरागर्भ को, दीन्हा जीवन दान।।१।।

कहहु महामति जन्म कहानी। धर्म कर्म गति करहु वखानी।।२।।
हम सादर सुनिहैं मनलाई । जिमि नृप ज्ञान दीन शुक आई।।३।।

सूत उवाच–

कृष्ण चरण–रति निस्पृह राजा । पिता सदृश सब पाल समाजा ।।४।।
प्रचुर विभव कीन्हे बहु यागा। सानुज नारि सहित अनुरागा ।।
जम्बुद्वीप पती जब भयऊ । कीरति स्वर्गलोक तक गयऊ।।५।।
देव लोग जेहि भोग ललाहीं । सकल भोग प्रभु लेखे नाहीं ।।६।।
मात–उदर प्रभुंहि जिन देखा । भाग्यवन्त को नृपति सरीखा।।७।।
पीत वसन शुभ श्याम शरीरा । मुकुट मौलि अंगुण गंभीरा ।।८।।
अरुण नयन शोभित भुजचारी। दीर्घवाहु मणिकुण्डल धारी ।।
गदा घुमावत चारिउ ओरा । उल्का सदृश सूर्य सम छोरा ।।९।।
पुरुष देखि शिशु सोचन लागा । उदित सूर्य नीहारंहि भागा ।।१०।।

दोहा- सम्मुख शिशु दस मास के, गदा लिये भगवान।
देखत-देखत ही हुये, सहसा अन्तर्धान।।११।।

ग्रह गुरु सद् गुण समय सुभाये । हुये वंशधर पाण्डु सुहाये।।१२।।
अति प्रसन्न नृप जातक कीन्हा । कृपा, धौम्य अनुशासन दीन्हा ।।१३।।
पृथ्वी धेनु सुवर्ण लुटाये। प्रजातीर्थ सब याचक पाये।।१४।।
कहेन विप्र यह पाण्डु निशानी । धर्मसूनु अतिशय सुख मानी।।१५।।
राखेउ कृष्ण कीन निज माया । ब्रह्मघात–नहि आन उपाया ।।१६।।
विष्णु रात शुभ नाम कहावा। भगवद् भक्त सुयश कुल पावा ।।१७।।

युधिष्ठिर उवाच–

यह बालक उत्तम यश धारक। तव आशीष होइंहि उद्धारक ।।१८।।

ब्राह्मणा ऊचुः–

येहि बालक होइहि गुणनाना। राम सरिस इक्ष्वाकु समाना।।१९।।
शिवि नरेश इम पालक दाता । भरत सदृश त्रिभुवन विख्याता ।।२०।।
अर्जुन उभय सरिस रण धीरा। दुस्तर सागर अग्नि गभीरा।।२१।।
सिंह सदृश होइहि बलवाना । शैल हिमाचल–आश्रय नाना।।
क्षमी धरा सम यह नृपहोई। जननी–जनक तितिक्षू सोई।।२२।।
विधि सम समता युत यह होई। करत प्रसाद शम्भु सब कोई ।।२३।।

दोहा– आश्रय दाता विष्णु सम, सदा कृष्ण प्रिय चारु ।
धार्मिक नृपति ययाति इव, रन्तिदेव समुदारु ।।२४।।

बलि सम धैर्य धुरन्धर बालक। प्रह्लादहि इव कुल प्रति पालक।।
अश्वमेध करिहैं बहु सोई। गुरुजन सेवक यह सुत होई।।२५।।
राज ऋषी होइहि सुत जाके । विपथ पथी डरिहइ येंहि ताके ।।
धर्म सेतु गो द्विज प्रतिपालक । कलि निग्रह कर्ता यह बालक ।।२६।।
ब्रह्म शाप वश तक्षक डसिहै। अनासक्त प्रभु चरणहि बसिहैं ।।२७।।
व्यास–तनय–मुख आत्मा जानी। गंगा तट तनु छँड़िहै ज्ञानी ।।२८।।
येंहि विधि जातक–फल समुझाये। गये विप्र धन सम्पति पाये ।।२९।।
गर्भ निरीक्षित प्रभु पद नामा। नृपति परीक्षित भे अभिरामा।।३०।।
शुक्ल पक्ष जिमि शशी बढ़ाहीं। तिमि वैराटीसुत बढ़तै जाहीं ।।३१।।

दोहा– अश्वमेघ करना चहत, धन बिन हुये सचिन्त।
शुल्क दण्ड दोउ छाँड़िके, आव कहाँ से वित्त ।।३२।।

माधव प्रेरित चारिउ भाई । उत्तर दिक ते धन लै आई।।३३।।
यज्ञ–याग साधन अधिकाई। अश्वमेध त्रय दिये रचाई।।३४।।

पाइ निमन्त्रण कृष्ण पधारे । कछुक माह तंह समय गुजारे।।३५।।

दोहा- पाइ अनुज्ञा धर्मसुत, द्रौपदि दीन्हे मान ।
यदुवंशिंन कंह साथ ले, कृष्ण किये प्रस्थान ।।३६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

*

।। अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।।

सूत उवाच–

दोहा- तीर्थ गमन कीने विदुर, आत्मज्ञान के हेतु।
लब्धज्ञान हास्तिन पुर, आये कुरुकुल केतु।।१।।

विदुर प्रश्न विविध विध कीन्हे। उत्तर मैत्रेय सब दीन्हे ।।
कृष्ण भक्ति उपजी निष्कामा। सुनतंहि विदुर भये उपरामा।।२।।
आवत देखि विदुर रजधानी। धर्मराज कीन्ही अगवानी ।।३।।
सूत शरद्वत धृष्टराष्ट्रहु आये। पृथा युयुत्सू साथ सुहाये ।।
सुभद्रा द्रौपदि गान्धारी। वैराटी अरु कृपी पियारी ।।४।।
अभिवादन आलिंगन कीन्हा। मनहुँ शरीर प्राण निज चीन्हा।।५।।
प्रेम सहित आँसू छलकाये। पूजा कीन्ह पीठ बैठाये।।६।।
भोजन करि कीजे विश्रामा। विनयी नृपति प्रश्न किये नाना।।७।।

युधिष्ठिर उवाच–

तात! करहुं सुधि कबहु हमारी। गरल अग्नि सब विपति नेवारी ।।८।।

दोहा- केंहि विधि विचरे अवनि पर,वृत्ति कवन शुभ कीन ।
केहि केहि तुम तीरथ गये, भूतल भ्रमण प्रवीन ।।९।।
आप सदृश श्री कृष्ण प्रिय, स्वयं तीर्थ हैं तात ।
तीर्थ पूत करते फिरहिं, महातीर्थ जँह जात।।१०।।

कहहु तात यदुबन्धु हमारे। सुखी बसंहि श्रीकृष्ण सहारे ।।११।।
धर्मराज पूंछी मन लाई। वर्णन कीन विदुर कुशलाई ।।१२।।
विदुर न यदुकुल नाश बतावा । अप्रिय कथन जानि बरियावा ।।१३।।
कछुक समय तंह कीन्ह निवासा। देवतुल्य सब भाँति सुपासा ।।१४।।
विदुर स्वयं शासक यम देवा । ऋषी शाप वस कीन्ही सेवा ।।१५।।
पाइ राज अरु पौत्र वंशधर । नृपति युधिष्ठिर लगत पुरन्दर।।१६।।
येंहि विधि मगन रहे सब भाई। आवा समय परम दुखदायी ।।१७।।
विदुर काल गति आवत देखा। बोले अन्धनृपति उर पेखा ।।१८।।

दोहा- बोले बचन समीप इव, विदुर नृपति तत्काल।
संसृति जलदी छोड़िये, आय गया है काल ।।१९।।

जेंहि आवत सब तजहि मुरारी। सुत हित नातु प्राण प्रिय नारी।।२०।।
भ्राता, पिता सुहृद सब तेरे। जराग्रस्त सब गये घनेरे ।।२१।।
जियन केरि आशा अति भारी। जियंहि श्वान इव भीम टुकारी।।२२।।
चाहा जिन्हहि गरल दे मारा। अग्निदाह, दूषित करि-दारा ।।
धन अरु धान्य जासु हरि लीना। तिनकी कृपा से चाहहु जीना ।।२३।।
यह अज्ञान, जियन अब चाहहु । वसन पुरान होत नर नाहहु।।२४।।
नहि कछु स्वार्थ सधत येंहि देहा। धीर तजंहि येहि नहि सन्देहा ।।२५।।
बूझे स्वयं, परहि समुझाये। घर छाड़हि जे, नर श्रेष्ठ कहाये ।।२६।।

दोहा- अब उत्तर दिक आहु सब, बिना बताये आप।
ह्रास गुणन को होन है, काल दे रहा थाप ।।२७।।

दोहा- विदुर वचन से खुल गये, आजमीढ के नेत्र ।
मोह-पाश सब काटिके, गये उत्तर-क्षेत्र ।।२८।।

पतिहि जात गान्धारी देखी । पिछुवाई, उर नियम विशेषी ।
संन्यासिन नगपति सुख देई । यथा रणांगण क्षत्रिन होई ।।२९।।

प्रातकाल गतरिपु करि वन्दन। तिल गो भूमि कीन्ह तब अर्पन ।।
दर्शन लागि भवन जब आये। अन्ध नृपति गान्धारि न पाये।।३०।।
संजय से पूंछे गोहराई। मातु पिता कंह गये पराई।।३१।।
चाचा विदुर कहाँ चलिगयऊ। बन्धु-विनाश शोक उर दहेऊ।।
अहह बन्धु मैं परम मूढ़ मति। माता सहित लीन गंगा गति।।३२।।

दोहा- पाण्डु निधन के समय जब, प्रायः रहे अबोध।
विदुर बचाये हमहि तब, दीने बहुरि प्रबोध।।३३।।

सूत उवाच–

संजय विकल आव नहि बाता। कहाँ गये पाण्डु के भ्राता।।३४।।
अश्रु पोंछि मन सुस्थिर कीना। बोले धर्मराज से दीना ।।३५।।

सञ्जय उवाच–

कुलनन्दन! चाचा की करनी। ठगा मोंहि, नहि बनते वरनी।।३६।।
तुम्बुरु सहित देव ऋषि आये। देखि धर्मसुत उठि तंह धाये ।।३७।।

युधिष्ठिर उवाच–

जानउं नहि गति मातु तात की। होइंहि कहं मोंहि जानि पातकी ।।३८।।
कर्णधार जिमि डूबत पाये। देव ऋषी बोले हरषाये।।३९।।
रंच शोक जनि करहु महीशा। जगत सकल ईश्वर जगदीशा।।
लोक पाल सब विवश चराहीं। सोइ विलगावत सोइ मिलाहीं।।४०।।
जथा बैल बह स्वामिन भारंहि। मनुज तथा वेदहि प्रतिपालहिं।।४१।।

दोहा- यथा खिलाड़ी क्रीडनहिं, छाँड़हि और मिलांहि।
ईश वश्य जग जीव तिमि, इत आवइ उत जांहि।।४२।।

जीव नित्य यह देह अनित्या। ब्रह्म सत्य संसृति सब मिथ्या ।।४३।।
मातु-पिता मोंहि बिन रह कैसे। करहु मोह अज्ञानिन जैसे ।।४४।।
पञ्चभूत यह रची शरीरा। व्याल ग्रस्त किमि हर पर पीरा ।।४५।।

हस्तहीन हस्ती कर भोजन । अपद चतुष्पद कहुं बहु ओदन ।।
जीव-जीव कंह भोजन करई। एहीं भाँति यह संसृति चलई।।४६।।
देखहु एक ब्रह्म तुम स्वामी। माया वश्य जीव परिणामी।।४७।।
सोइ प्रभु अब लीने अवतारा। सुर द्रोहिन हति हरि हैं भारा।।४८।।
शेष काज कछु बचा अधूरा। देवन्ह काज कीन्ह प्रभु पूरा ।।४९।।
विदुर सहित लीने गान्धारी । भूमि हिमालय गये सिधारी।।५०।।
सप्तर्षिन हित गंगा धारा । सप्तधार वनि कीन प्रसारा ।।५१।।

दोहा- अग्नि क्षेत्र करते वहाँ, करि त्रिकाल अस्नान ।
जल पीकर रहते सभी, नहीं कामना आन।।५२।।

श्वांस जीति वश कर निज प्राणा । हरि पद प्रीति ध्वस्त गुण ग्रामा ।।५३।।
अहंकार मन बुद्धि मिलाई। एक कीन घट अम्बर नाई ।।५४।।
माया गुण दीन्ही बिसराई । संन्यासी जस ठूंठ दिखाई ।।
संन्यासी, तजि सब कछु काजा । विघ्न करिय जनि कौनउ राजा।।५५।।
अब से पंचम दिवस नरेशा । तजिहें देह मिटे तब क्लेशा।।५६।।
पर्णकुटी संग जलत पति देखी। गान्धारी जलिहै सविशेषी।।५७।।
विदुर देखि राजर्षि पयाना । तीर्थ राज करिहैं प्रस्थाना।।५८।।
तुम्बुरु सह देवर्षि सिधारे। शोक त्यागि राजा पगुधारे ।।५९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

*

।।अथ चतुर्दशोऽध्यायः।।

सूत उवाच–

दोहा– अर्जुन पठये द्वारका, देखन कृष्ण ललाम।
स्वजन भेटि सब जानिहें, प्रभु क्या करिहें काम।।१।।

बहुत दिवस बीते नहि आये। अर्जुन, धर्मराज घबराये।।२।।
ऋतु अब आनि परत गहराई। क्रोध–पाप की बात सुनाई।।३।।
कपट पूर्ण व्यवहार दुखारी। मातु पिता झगड़े नर–नारी।।४।।
असगुन घोर धर्म सुत देखा। वायु सूनु से पूंछ विशेषा।।५।।

युधिष्ठिर उवाच–

भेजे जिष्णु बहुरि नहि आये। पुण्य चरित श्रीविष्णु जनाये।।६।।
सात मास बीते अति भारी। नहि आये तव अनुज सुखारी।।७।।
अब लागत जो नारद भाखा। अवनि त्याग हरि करने चाखा।।८।।
प्राण सम्पदा राज्य मिताई। जेहि लगि रहयो सो जात कन्हाई।।९।।

दोहा– अब उत्पात बढयो अति, उल्का पात प्रचण्ड।
दारुण–भय मोंहि लागत, बुद्धि होइ शतखण्ड।।१०।।

छन्द– बाम उरु अरु नयन जंघा, तीव्र पकड़न लागि हीं।
कम्प मम हृदय लागत, बेगि असगुन जानि हीं।।११।।
मुख शिवा रवि ओर करके, अग्निपुंज निकार हीं।
यह श्वान अति निर्भीक मानहु मोंहि काटन धाव हीं।।१२।।
मम वाम करि कपिला तथा दक्षिण से गदर्भ जावहीं।
मम अश्व सब रोदन करें अश्रु सम्मुख गारहीं।।१३।।
उल्लू, कपोत कुशब्द करि मम हृदय कम्प बढ़ावहीं।
शून्य यह चाहत करन जग काग शोक बखानहीं।।१४।।

दोहा- धूसर दिङ्मण्डल हुआ, रवि शशि मण्डल घेर।
धरनी गिरि कम्पित हुये, बादल विद्युत प्रेर।।१५।।

छेदत देह चलत जनु आँधी। धूल उड़ावहिं जंह तंह व्याधी।।
बरसत रुधिर मेघ नभ दाये। देखि लोग व्याकुल डर पाये।।१६।।
प्रभाहीन रवि ग्रहगण रौंदे। आगि लगी धरती, सब कौंधे।।१७।।
नदी तलाब-क्षुब्ध चहुं ओरा। अग्नि जलै नहि घिये ढकोरा।।१८।।
दूध पिये नहि वत्स सुहाई। दुहन देत नहि कौनिउ गाई।।
अश्रु सदा निशि वासर झरहीं। गाय-बैल हर्षित नहि रहहीं।।१९।।
अश्रुपात इव मूर्ति कराहीं। चञ्चल श्वेद गिरत विलगाहीं।।
पुर अरु ग्राम आश्रमन केरी। श्री हत भई त भीति घनेरी।।२०।।
श्रीहत धरनी लगे कराला। हीन विष्णुपद चिह्न विशाला।।२१।।

दोहा- ऐसी चिन्ता में निरत, धर्मराज आसीन।
यदूपुरी से जिष्णु तब, पहुँचे खिन्न मलीन।।२२।।

आतुर नमत युधिष्ठिर देखा। अर्जुन स्रवत नेत्र-जल-रेखा।।२३।।
अति उद् विग्न हृदय कुम्हलाये। अनुज देखि, नारद सुधि आये।।२४।।

युधिष्ठिर उवाच-

कहहु कुशल सब बन्धु मिताई। मधु दशार्ह यदुवंशी भाई।।२५।।
नाना शूरसेन सुख धामा। सानुज सुखी वसुदेव सुमामा।।२६।।
सप्त भगिनि युत देवकि मामी। बधू निरखि आनन्द अमानी।।२७।।
उग्रसेन देवक लघुभ्राता। तनय कंश-खल दीन विधाता।।
कृतवर्मा अक्रूर-जयन्ता। सुखी अहैं रक्षित भगवन्ता।।२८।।
शत्रुजीत कुशली बलवाना। अहैं प्रसन्न बली बलरामा।।२९।।

दोहा- पद्युम्नादि महारथी; श्री अनिरुद्ध सुबीर।
धीरघोष सब वीर गुण, सुखी अहैं रनधीर।।३०।।

चारुदेष्ण अरु साम्ब प्रबीरा। कृष्ण पुत्र सबहीं रनधीरा।।३१।।
नन्द सुनन्द उद्धव हितकारी। अहैं कृष्ण अनुगत पुर नारी।।३२।।
राम कृष्ण आश्रित सब लोगू। क्षेम सहित सुधि करतें होंगू।।३३।।
सभा सुधर्मा सहित मुकुन्दा। भगत वछल होइहि गोविन्दा।।३४।।
मंगल-भवन लोकहित कारी। मनंहु विष्णु क्षीराब्धि विहारी।।३५।।
निज भुज बल यदुकुल सब राखे। सुखी अनन्दित किये सनाथे।।३६।।
जेंहि पद लगि सुश्रूषा कीना। सत्यादिक सब रानि कुलीना।।
समर जीति सब वस्तु मंगाये। शची-भोग भोगंहि महि पाये।।३७।।
जेंहि भुजदण्ड लीन बरियाई। सभा सुधर्मा अवनि मंगाई।।३८।।
कहहु तात! आपन कुशलाई। नष्ट तेज लागहु तुम भाई।।
बहुत काल कीन्ही पहुँनाई। करी अवज्ञा तब किमि जाई।।३९।।

दोहा- कही अमंगल बात किन, याचक किये निराश।
केहिं अभाव मन सालत, लागत बन्धु उदास।।४०।।

ब्राह्मण बाल वृद्ध अरु नारी। तजेहु शरण-आये दुःख भारी।।४१।।
नारि अवज्ञा अथवा कीन्ही। अगम समागम कीन अचीन्हीं।।
हारेहु मग मह असम हंकारी। केंहि कारण तुम लगहु दुखारी।।४२।।
बालक वृद्धहिं विनहि जिंवाये। कीन्ह कलेवा, तिंहि दुःख पाये।।४३।।
लागहु कृष्ण रहित, दुखियारे। कारण कहहु शोक कंह प्यारे।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

*

।। अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।।

सूत उवाच–

दोहा– कृष्ण विरह सागर तिरत, जिष्णु रहे अति खिन्न।
नाना शंका आर्य करि, हृदय किये निर्भिन्न ।।१।।

प्रभाहीन मुख सूखे वचना। सोचत रहे कृष्ण कर रचना ।।२।।
अश्रु पोंछि कछु कहि नहि जाहीं। प्रेम–विवश कातर मन मांही ।।३।।
सख्य भाव, सारथि बन धाये। सुधि करि जिष्णु नयन जल छाये ।।४।।

अर्जुन उवाच–

महाराज! मोंहि हरि–ठग लीना। हरा तेज, जेंहि सुर–आधीना ।।५।।
जेंहि विछुरत जग अप्रिय दीखा। प्राण–हीन यह देह सरीखा ।।६।।
जेंहि बल द्रुपद स्वयम्बर जाई। बेधेउ मीन, द्रौपदी पाई ।।
काम मत्त बैठे सब राजा। श्रीहत कीना नृपति समाजा ।।७।।
जेंहि सन्निधि जीते सुर भारी। अग्नि–प्रीति खाण्डव वन जारी ।।
मय कृत शिल्प लही जेहि नाते। भेंट देत नृप थर–थर कांपे ।।८।।
दस सहस्र गज बल भुजधारो। भीम जरासन्धंहि जब मारो ।।
प्रमथनाथ मख वन्दी राजा। दीन्ह छुड़ाइ, शुल्क बहु छाजा ।।९।।

दोहा– राजसूय अभिषेक से, द्रौपदि केश पवित्र।
दुष्ट नृपति तेहि देखके, करन चाह अपवित्र ।।
कच बिखेर जब द्रौपदी, कृष्ण चरण गहिलीन।
तबहि प्रतिज्ञा नृपन के, नाश हेतु हरि कीन ।।१०।।

अरि षड्यन्त्र कीन अतिभारी। हम सब तबहि रहे वनचारी ।।
ऋषि दुर्वासा आयउं तबहीं। द्रुपद सुता कृत भोजन जबहीं ।।
शाक शेष हरि मुख धरि लीना। तृप्त त्रिलोकी को कर दीना ।।११।।
जेहि के तेज चकित त्रिपुरारी। गिरिजा सहित, अस्त्र दिये भारी ।।

मनुज देह धरि सुर पुर गयऊँ। इन्द्र मोंहि अर्धासन दयऊँ।।१२।।
कछुक दिवस सुरलोक बिताये। धरि गाण्डीव असुर जिति आये।।
तात! कृपा जाकी, सब कीन्हा। सो हरि आजु मोहिं ठग लीन्हा।।१३।।
कुर कुल सैन्य पयोधि अपारा। भीष्म-द्रोण सम नक्र संघारा।।
एकहि रथ जीतेऊं रण सारा। मणि मय मुकुट गहे धन प्यारा।।१४।।

दोहा- भीष्म शल्य गुरु द्रोण से, मण्डित सेना बीच।
मोंहि करि आगे कृष्ण ने, बल उछाह लिये खींच।।१५।।

भीष्म द्रोण कृप, कर्ण सन्धाने। रहे अचूक शस्त्र सब ताने।।
जेंहि भुज तल मोंहि छुये न आई। यथा असुर हरिदास बराई।।१६।।
जेंहि पद सेइ मोक्ष जग पाये। मूढ़ तिन्हहि हम सारथी बनाये।।
थके अश्व, धरनी पर रहेऊँ। मूढ़ कीन नृप मारि न सकेऊँ।।१७।।
पार्थ, सखा, कुरुनन्दन, प्यारे। कहेउ मोंहि मृदु वचन उचारे।।
सुधि सब परत, याद सब ताजी। राजन्! हृदय लगत जिमि आगी।।१८।।
एक शयन आसन सब कीन्हे। सत्यसन्ध कँह उलाहन दीन्हे।।
कुमति मोर सब सहेउ मुरारी। मातु पिता इव कीन सुखारी।।१९।।
सो मम सखा, हृदय मम स्वामी। रहित कीन निज शक्ति-निकामी।।
कृष्ण परिग्रह रक्षि न पायऊँ। दुष्ट गोप मोंहि मारि भगायेऊँ।।२०।।

दोहा- सोइ मम बाण, स्वयं रथी, अर्जुन नाम प्रमान।
क्षण मंह सब निस्तेज भा, जिमि ऊसर में धान।।२१।।

मित्रपुरी कंह जिन तुम पूंछे। विप्रशाप वश लड़ मरे छूंछे।।२२।।
चार-पाँच बच रहे विचारे। मदिरा पी आपस लड़ि मारे।।२३।।
समरथ प्रभु की यह सब लीला। मांरहि एक जियावन शीला।।२४।।
जिमि जल मध्य जन्तु बड़ नाना। ग्रसै छोट, झख न्याय बखाना।।२५।।
एहि विधि नृपहिं नृपन मरवाये। आपस यदुवंसिन लड़वाये।।२६।।

एहि मिस हरेउ भूमि भर भारी। सुमिरत व्यथित होंउ भयहारी।।२७।।

सूत उवाच–

एहिं विधि सोचत कृष्ण मुरारी। हुये धनंजय शान्ति पुजारी।।२८।।
वासुदेव-पद-पंकज ध्याना। विगत विकार जिष्णु मति ज्ञाना।।२९।।
भूली गीता सुधि पुनि आई। काल-कर्म जिंहि दिये विसराई ।।३०।।
ब्रह्म-ज्ञान माया-सब नाशी। पार्थ हुये शाश्वत-सुख राशी ।।३१।।

दोहा- धाम गमन निज हरि किये, यदु कुल हुआ संहार।
स्वर्ग हेतु प्रस्थान नृप, मन महं कीन विचार ।।३२।।
कुन्ती ने भी जब सुना, सब वृत्तान्त सखेद।
कृष्ण चरण रति करि तभी, प्राप्त हुई निर्वेद ।।३३।।

जेंहि शरीर भू-भार-नसावा। सो शरीर प्रभु स्वयं गंवावा।।
कण्टक से कण्टक की नाई। उभय वपुष परिहरे गोसाईं।।३४।।
मत्स्य आदि तनु त्यागंहि कैसे। नट निज रूप बदलते जैसे ।।३५।।
जबहि कृष्ण निज धाम सिधारा। पाप रूप कलि तबंहि पधारा ।।३६।।
आवत कलियुग देखा राजा। पैठा पुर गृह ग्राम-समाजा ।।
तदा धर्मसुत गमन विचारा। धर्म कहाँ, जँह कली प्रसारा।।३७।।
निज गुण सदृश पौत्र निज देखा। दीन्हि परीक्षित राज विशेषा।।३८।।

दोहा- मथुरा में श्री वज्र को, दीना राज-विलास ।
छाँड़ि स्वयं निज कर्म को, पार्थ लिये संन्यास ।।३९।।

राज वसन भूषन परिहरे । वल्कल वसन युधिष्ठिर धरे ।।४०।।
वाणी मन, मन प्राण समाना। प्राण समानहि व्यान उदाना।।४१।।
आत्म विलीन ब्रह्म करि लीना। देह त्रिगुण प्रकृति कर दीना ।।४२।।
चीर धारि त्यागे जल-पाना। मुक्त केश हरि राखे ध्याना।।४३।।
बहुरि लीन नहि काहू साथा। उत्तर दिशि गवने नर नाथा ।।

जेंहि दिशि जाइ न लौटे काहू। ब्रह्म ध्यान रत गै नरनाहू।।४४।।
धर्म सूनु पीछे सब भाई। कृष्ण चरण मति रहे पिछुवाई।।४५।।

दोहा- अर्थ धर्म अरु काम सब, लहे त्रिविध पुरुषार्थ।
मोक्ष-प्राप्ति लै कामना, गये सकल मिलि पार्थ।।४६।।

ध्यान भगति हरि चरणन रागी। शुद्ध बुद्धि सब भये विरागी।।४७।।
विषयी मनुज कबंहु नहि पावा। प्रभु पद पाये पाप नसावा।।४८।।
विदुर प्रभासंहि कीन पयाना। त्यागि देह निजधाम समाना।।४९।।
पति गति देखि द्रौपदी नारी। वासुदेव मति लही विचारी।।५०।।

दोहा- सुनहि गुनहि जे हरि कथा, पाण्डव गण प्रस्थान।
भक्ति भाव मन लाइ के, मुक्ति लहै अज्ञान।।५१।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

*

।। अथ षोडशोऽध्यायः ।।

सूत उवाच–

दोहा- जब पाण्डव ने कर दिया, स्वर्ग हेतु प्रस्थान।
तभी परीक्षित थे हुये, शासक बड़े महान।।१।।

जन्म समय ब्राह्मण जो कहेऊ। सकल सत्व गुण नृप मंह रहेऊ।।
उत्तर सुता इरा सुकुमारी। किये विवाह, हुये सुत चारी।।२।।
अश्वमेध त्रय राजा कीन्हा। सुरसरि तट, देवन्ह सब चीन्हा।।३।।
नृपति कदाचित् कलियुग रेखा। मारत शूद्र राज गो देखा।।
पकड़ि दण्ड दीने अति भारी। गाय-मिथुन मारत कलि जारी।।४।।

शौनक उवाच–

कहु यह कथा कलिहि किमि मारा। शूद्रनृपति बन पाप संवारा।।
चरण हतेउ गोयुग बरियाई। कृष्णकथाश्रित कहहु गोसाई।।५।।
कृष्ण कंज मकरन्द पिया हीं। असत् कथा ते आयु नसाहीं।।६।।
अल्पायुष जे मोक्ष चहाहीं। तेंहि हित यम इह बैठे आहीं।।७।।
जब लगि इहाँ रहे यमराजा। मृत्यु होइ नहीं सुखी समाजा।।
तब लगि होइ कथामृत पाना। मृत्युलोक नहि आन बखाना।।८।।
मन्द बुद्धि अल्पायुष लोगा। व्यर्थ कर्म अरु नींद संयोगा।।९।।

सूत उवाच–

दोहा– कुरु जांगल में बसि रहे, नृपति परीक्षित बीर।
कलियुग आया जानकरि, किञ्चित् हुये अधीर।।१०।।
श्याम सुसज्जित अश्व रथ, सिंह ध्वज मति धीर।
दिग् विजयी राजा चले, सेना सहित प्रवीर।।११।।

केतुमाल भद्रास्व पधारे। उत्तरकुरु लीने अधिकारे।।१२।।
जहं जहं नृपति गवन शुभ कीन्हा। पूर्वज सब कृष्णाश्रित चीन्हा।।१३
कहहिं कथा जे परम सुजाना। द्रौणि अस्त्र किमि वारे प्राना।।१४।।
नृपति दीन्ह तिन्ह भूषण हारू। धन अरु वस्त्र विविध उपहारु।।१५।।

छन्द– सूत बने प्रभु दूत बने, करि सख्य करी अति प्रीति मिलाई।
रात्रि समय समरांगण में धरि आसन बीर करी पहराई।।
पाण्डव आपन मानि महा प्रभु, कीन महा मख मे सेवकाई।
भक्ति करी नृप नारि समेत, हरी विपदा सब कृष्ण कन्हाई।।१६।।

एंहि विधि वृत्ति रहत एक बारा। भयउ आचरज एक अपारा।।१७।।
एक पाद धरि वृष तंह आवा। पूंछत धर्म धरनि गो पावा।।१८।।

धर्म उवाच–

कहहु मातु आपन कुशलाई। आनन मलिन भयो केंहि लाई ।।
दूर बन्धु चलि गयऊ पराई । दुःखककवन तुम गाइ दे माई ।।१९।।
तीन पैर टूटे मम भारी। याही ते तुम भई दुखारी।।
शूद्र चहहिं तब शासन करना। दुःख अतः तव जाइ न वरना ।।
पड़ेउ अकाल यज्ञ नहि होई। याही ते दुस्सह दुख कोई ।।२०।।

दोहा- की तुम सोचहु नारिनर, लिये निशाचर भींच।
वाणी पड़ी कुकर्मि घर, ब्राह्मण सेवें नीच।।२१।।

की तुम सोचहु क्षत्रिय बन्धू। देश उजारि बयसि कर्कन्धू ।।
खान-पान अरु वस्त्र न सोहा। असमय नारि देखि मन मोहा।।२२।।
की तुम याद करसि भगवाना। लीला चरित किये विधि नाना ।।
अन्तर्हित जब भये मुरारी । तिनहि सोच तुम भई दुखारी ।।२३।।
निज दुख कारण कहहु बसुन्धरे। इतनी दुर्बल लगहुं कथम् अरे ।।
छीनेउ काल सुहाग तुम्हारा। होइ उहहि जो होवनि हारा ।।२४।।

धरण्युवाच–

जानहु सकल मोंहि जो पूँछछु। कृष्ण बिना तुम लागहु छूंछहु।।
जेंहि लगि चार चरण शुभतेरे। कृत युग मंहु तुम रहेउ घनेरे ।।२५।।
सत्य शौच सन्तोष निकाया। शम दम साम्य तितिक्षा दाया।।२६।।
शौर्य तेज बल बुद्धि विरागा। कौशल कान्ति विनय अनुरागा।।२७।।
ओज शील ऐश्वर्य अमाना। प्रश्रय कीर्ति आदि गुण नाना।।२८।।
ए सब गुण हरि में नित रहहीं। विलग न होंहि नित्य अनुसर हीं।।२९।।
श्री निवास गवने निज धामा। अब आवा कलिकाल सकामा।।३०।।
देव, पितर, सब साधु समाजू। निरखि शोकवश, सोचहुं आजू ।।३१।।

दोहा- ब्रह्म आदि सब देवगण, कठिन तपस्या कीन।
लक्ष्मी अति अनुरक्त हो, जेंहि पद सेवत दीन।।३२।।

कमल अब्ज अंकुश ध्वज धारी। जिन चरणन शोभा भई न्यारी।।
तीन लोक बड़ भाग्य निहारी। गरब कुलिस उपजे मोंहि भारी।।
गरब निवारण दण्ड जो दीन्हा। धाम परम प्रभु गवने कीन्हा।।३३।।
परम स्वतन्त्र दुष्ट सब मारे। यदु वंशिन के अत्यन्त दुलारे।।
निज पौरुष सर्वाङ्ग सुहाये। चारि चरण निज रूप लुभाये।।३४।।
को सहि सकै विरह यदुराया। पुलकित रहेंउ सदा जिंह छाया।।
प्रेम दृष्टि मुसुकान मनोहर। मानिंहु मान तजैं जेहि ऊपर।।३५।।

दोहा- करत बतकही एंहि विधि, धरनी धर्म अनेक।
नृपति परीक्षित आ गये, प्राची दिशि सविवेक।।३६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे षोड़शोऽध्यायः ।।

*

।। अथ सप्तदशोऽध्यायः ।।

सूत उवाच–

दोहा- वहाँ पहुँच नृपराज ने, देखा कुद्ध प्रचण्ड।
गाय-बैल को मारते, शूद्र नृपति उद्दण्ड।।१।।

श्वेत वरन वृष दीखइ कैसा। कमल नाल पुञ्जित वपु जैसा।।
एक चरन काँपत इव लागा। भय वस करे मूत्र कर त्यागा।।२।।
वत्सहीन एक धेनु विचारी। रोवत क्षुधित शूद्र–पद भारी।।३।।
स्वर्णजटित रथ बैठे राजा। धनुष चढ़ाई मेघ इव गाजा।।४।।
कहेहु कौन मम विषयाधीना। मारेसि बली निबल अति दीना।।
वेष देखि राजा सम लागे। क्षुद्र कर्म किमि जाति जनावे।।५।।
कृष्ण गये निज धाम निकामा। अर्जुन नहीं आज इंहि धामा।।

निरपराध निर्जन मंह कोई। करत प्रहार बध्य सो होई।।६।।
कमल तन्तु इव गौर शरीरा। एक चरन विचरहु महि बीरा।।
वृषभ रूप देवन्ह मह कोई। दुर्गति देखि कष्ट अति होई।।७।।
कुरु वंसिन कर सहज सुभाऊ। शोक अश्रु देखे नहिकाऊ।।८।।
सुरभी सुत अब शोक न करहू। अब जनि छुद्र नृपति सन डरहू।।
अब लगि जनि रोवहु गोमाता। दुष्टन कर मैं दण्ड विधाता।।९।।
जेंहि नृप राज्य दुष्ट दुख देंही। तेंहि कर कीर्ति आयु हरि लेंही।।१०।।
राज धरम यह पर दुख हरहीं। प्राणि निपीडक कर बध करहीं।।११।।

दोहा- कहहु चतुष्पद, तीनपद, किन काटे, भयनांहि।
कृष्णभक्त के राज्य में, दुःख शोक सब जांहि।।१२।।

कहहु वृषभ किन कीन विरूपा। कीरति हनी पाण्डु नरभूपा।।१३।।
निरपराध जन कोउ सतावा। सो सठ अवसि राजभय पावा।।
दुष्ट दमन साधु कल्याना। होउ सदा यह विरद पुराना।।१४।।
तुम निर्दोष, दुष्ट जेंहि मारा। काटऊं मैं भुजदण्ड प्रचारा।।१५।।
राज धर्म यह कहौ बखानी। दुष्ट हतें न धरम की हानी।।१६।।

धर्म उवाच-

सत्य सत्य तब वचन महीशा। येंहि गुण दूत बने जगदीशा।।१७।।
क्लेश मूल नहि जानंउ राजा। केहि कारण यह दुखी समाजा।।१८।।
शास्त्र विविध कारण बतलावंहि। कर्म स्वभाव दैव समुझावहि।।१९।।
दुःख हेतु नहि जानंउ स्वामी। निश्चय करहुं स्वमति अनुगामी।।२०।।

सूत उवाच-

दोहा- धर्म वचन सुनि ध्यान से, तर्क पूर्ण साधार।
सुनु शौनक अति तुष्ट हो, बोले नृपति उदार।।२१।।

राजोवाच-

धर्म कहहु तुम धर्म विचारी । दोषिहु दूषि नरक अधिकारी ।।२२।।
प्रभु माया नहि जाइ बखानी । अगम, अगोचर,अकथ कहानी ।।२३।।
दया, शौच तप सत्य तुम्हारे । चारि चरण के धर्म सहारे ।।
गर्व, संग मद, त्रिपद विनाशे । धर्म एक पद रहहु निराशे ।।२४।।
सत्य एक पद बचा तुम्हारे । कलि चाहत ताहू संहारे ।।२५।।
धेनु धरनि यह रही सुखारी । कृष्ण चरन मंगल छवि धारी ।।२६।।
कृष्ण हीन बहु रोवति धरनी । समुझत दुष्ट नृपन की करनी।।२७।।
धरम धरित्री बहु समुझावा। कलिहि जानि नृप खड्ग उठावा।।२८।।

दोहा- खड्ग हस्त नृप देखिके, राजचिह्न सब त्याग ।
चरण पड़ा तब आइ के, कालंहु को भय लाग ।।२९।।

चरण पड़े नृप ताहि न मारा । दीन-बछल हँसि वचन उचारा।।३०।।
विनयी शरणागत तुम्ह जानी । निर्भय होहु, जिष्णु-कुल मानी।।
अधरम सखा दूर तुम जाहू । जंह लगि राज, न तोर निबाहू ।।३१।।
तुम नृप तनु रहि पाप बढावा । झूठ, कपट, छल-छिद्र दुरावा ।।३२।।
ब्रह्मावर्त भूमि अति पावन । पल मत रहहु सुधर्म नसावन।।३३।।
येहि महि होइ यज्ञ अरु दाना । जीव चराचर सब भगवाना ।।३४।।

सूत उवाच-

जबंहि नृपति कलि आयसु दीना । कांपेउ लखि तलवार प्रवीना।।३५।।

कलिरुवाच-

दोहा- चाहौ जहाँ रहन हम, तब अनुशासन पाइ ।
धनुष बाण युत, मै वहाँ, तुम्ह देखों नृप राइ।।३६।।
धर्म शिरोमणि करिकृपा, दीजै ठौर बताय ।
जहाँ रहौ मै थिर प्रभू, तुमको शीश नवाय ।।३७।।

सूत उवाच–

कलियुग जबहिं कीन मनुहारी। नृपहि दीन तब आसन चारी।।
द्यूत, मद्य हिंसा तिय–संगा। चारि जगह कलि रहइ अभंगा।।३८।।
बहुरिएक आश्रय कलि मांगा। स्वर्ण पाइ सुख लहेउ अभागा।।
अनृत काम, रज, बैर ढिठाई। कलि बैठा, लीन्ही अंगड़ाई।।३९।।
पाँच ठौर नृप दीनी जबहीं। सुखी सकाम भयउ कलि तबहीं।।४०।।
निज कल्याण, लोक हित, राजा। इनहि न सेवइ सभ्य समाजा।।४१।।
धर्म वृषभ तीनिउ पग कीन्हे। धरनि सँवाचि नृपति शुभ चीन्हे।।४२।।
बनहि जात नृप राज्य जो दीन्हा। शोभित नृपति परीक्षित कीन्हा।।४३।।

सोरठा– सोई वदान्य सम्राट, नाम परीक्षित आज–कल।
हास्तिनपुर का राज, पालन करहि विशिष्ट मति।।

सोरठा– दीर्घ यज्ञ के हेतु, इहाँ जुटे मुनिगण सकल।
जेंहि राजा के देश, सोई महान अभिमन्यु सुत।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे, प्रथम स्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

*

।। अथाष्टदशोऽध्यायः ।।

सूत उवाच–

दोहा- द्रोण-पुत्र-ब्रह्मास्त्र से, घातित माता-कोख।
अद्भुत कृष्ण कृपा हुई, जन्मे नृपति अदोख।।१।।
ब्रह्म शाप-वश तक्षक, आया हरने प्रान।
विचलित रंच हुये नहीं, शरन गये भगवान।।२।।

गंगा तट सब कुछ तजि आवा। शुक उपदेश परम पद पावा।।३।।
कृष्ण कथा जे रती कराहीं। अन्तकाल भ्रम तिन्ह कर नाहीं।।४।।
जब लगि रहे परीक्षित राजा। तब लौं कलियुग नाहीं छाजा।।५।।
जेंहि दिन कृष्ण धरित्री त्यागा। अधर्म मूल कलियुग तब लागा।।६।।
भ्रमर तुल्य नृप सार गहाहीं। द्वेष कीन कबहूँ कछु नाहीं।।
कलियुग केरी एक भलाई। किये कर्म-फल सोच न भाई।।७।।
वृक इव बालक सतत डेरावा। शूर-वीर पर कलि नहि आवा।।८।।
नृपति परीक्षित कथा सुनायेंउ। हरि कर चरित सबहि अति भायंउ।।९।।

दोहा- कीर्तनीय लीला बहुत, कीनी श्री भगवान्।
श्रेयस् कामी जन सदा, करहि ईश गुण-गान।।१०।।

ऋषय ऊचुः–

युग-युग जीवहु सूत हमारे। कृष्ण कथा कहि सबन उबारे।।११।।
होम-धूम मन देह मलीना। माधव-मधु पिलाइ तुम दीना।।१२।।
लव सत्संग कृष्ण जन पाई। तुलइ न स्वर्ग-मोक्ष सुख भाई।।१३।।
अस रसज्ञ को यहि जग मांही। कृष्ण चरित जे सुनत अघाहीं।।
अगुण अचिन्त्य गुणी भगवाना। शिव, चिंरचि जेंहि पार न जाना।।१४।।
भक्त श्रेष्ठ, हरि चरित बखानहु। श्रोता हम अतिशय सुख मानंहु।।१५।।
शुद्ध बुद्धि प्रभु भक्त प्रवीना। नृपति परीक्षित परम कुलीना।।

शुक-मुख सुनी कथा अति पावन। लही मुक्ति जननौघ नसावन।।१६।।

दोहा- कृपा करहु अब कहहु तुम, श्री भागवत पुराण।
अनुपद माधव चरण रति, कथा परम अभिराम।।१७।।

सूत उवाच-

अहो, सुफल जीवन मम मानहुं। यदपि विलोम जाति सब जानंहु।।
सेवा बड़न केरि फल एहू। आधि सकल नासइ सन्देहू।।१८।।
सज्जन सतत गुनत हरि नामा। गुण अनन्त प्रभु पूरन कामा।।१९।।
एतनइ सूचित करौ बड़ाई। अगुण सगुण महिमा अधिकाई।।
लच्छि चहै सब ब्रह्म सुरा दी। सब तजि सो चह विष्णु अनादी।।२०।।
कृष्ण वाच्य केवल भगवाना। और शब्द, नहि अर्थ अमाना।।
जेहि पद-नख धोवति श्रीगंगा। विधि-शिवशीष विराज अभंगा।।२१।।
जेंहि लगि देह-गेह सुतनारी। छाँड़हि परमहंस अविकारी।।
उपरम सकल वृत्ति ते पाई। धरहि अहिंसा व्रत निपुनाई।।२२।।
यथा उड़हि खग नभ, बल-माना। तथा कंरहि बुध कृष्ण बखाना।।
सूर्य सदृश! पूंछेउ, तुम जोऊ। मति अनुसार कहब मैं सोऊ।।२३।।

दोहा- एक दिवस धनु हाथ ले, नृपति गये आखेट।
पीछे मृग के दौड़ते, प्यासे खाली पेट।।२४।।

नहि तडाग जल पायेउ जब हीं। ध्यान धरे मुनि देखे तब हीं।।२५।।
इन्द्रिय-मन अरु प्राण निरुद्धा। पद तुरीय स्थित अति शुद्धा।।२६।।
जटा विकीर्ण अजिन तनु छाजा। सूख कण्ठ जल जाचत राजा।।२७।।
नहि पायउ तृण, उदक, वरासन। जानि अवज्ञा, लीन शरासन।।२८।।
प्रथम बार क्रोधित नृप भयऊ। भूख-प्यास बड़ कारन रहऊ।।२९।।
मरा-सर्प धनु कोटि उढावा। ऋषि उर मेलि धाम निज आवा।।३०।।
जानत चहत विप्र कर ध्याना। मिथ्या सत्य होइ किमि आना।।३१।।

तेजवन्त तेहि तनय अयाना। राजंहि पाप मनै-मन माना।।३२।।

दोहा- देखु अधर्म कि काक इव,बलिभोजी द्विजदास।
श्वान-सदृश पुर रक्षक, करहि मुनिन्ह उपहास।।३३।।

क्षत्रिन द्वार पाल इव राखा। भाण्ड जूठ करि भोजन चाखा।।३४।।
दुष्ट दलन श्री कृष्ण सिधारा। दण्ड देउ, देखइ जग सारा।।३५।।
अस कहि अरुन नयन मुनि बालक। दीन शाप द्विज-पालक-घालक।।३६।।
जेंहि नृप किय मम पितु अपमाना। तक्षक, सप्तम दिन लै प्राना।।३७।।
अस कहि बालक आश्रम आवा। कण्ठ सर्प देखत दुख पावा।।३८।।
जब शमीक सुत रोदन पेखा। खोले नयन कण्ठ अहि देखा।।३९।।
फेंकि अहिहिं पूंछा जब कारण। कहेउ सत्य सब हृदय विदारण।।४०।।

दोहा- शाप योग नृप वर्य नहि, मूर्ख! दीन तुम शाप।
अल्प द्रोह के कारणे, पुत्र! कीन गुरु पाप।।४१।।

काची मति तव, कछु नहि जाना ! नृपति न होइ, होई भगवाना।।
निज बल तेज लोग प्रतिपाला। राज सुरक्षित प्रजा विशाला।।४२।
नृपति रूप धरि हरि भगवाना। करंहि लोकहित कोटि विधाना।।
जबहिं अवनि पर नृपति न होई। भेंड़ झुण्ड जिमि नासइ कोई।।४३।।
राजंहि नाश अराजक भारी। बाढ़हि अरि अरु चोर-जुवारी।।
करंहि परस्पर लूटा-मारी। सो पातक लगिहै हम भारी।।४४।।
वर्णाश्रम मिटिहंहि तेहि काला। लुप्त धर्म, मद-मोह कराला।।
काम परायण नर अरु नारी। कुत्ता, कपि सम स्वेच्छाचारीं।।४५।।

दोहा- धर्मपाल नर नाह वह, अति सुजान भूपाल।
अश्वमेध जिसने किये, कृष्ण भक्त द्विजपाल।।४६।।

भूख प्यास व्याकुल होइ आये। दीन शाप, अतिकीन दुराये।
बालक मूढ़ कीन अपराधू। क्षमहु ईश जिमि क्रोधिन साधू।।४७।।

प्रभु भक्तंहि यद्यपि बल नाना। तदपि रोष नहि करंहि सुजाना।।४८।।
सुत अपराध ताप भा भारी। नृप अपराध न कीन विचारी।।४९।।
साधु सुभाउ न होंहि दुखारी। यद्यपि द्वन्द्व देंहि जन भारी।।
व्यथा हर्ष उर कबंहु न आवा। गुणातीत आत्मा तिन्ह पावा।।५०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः।।

*

।। अथ एकोनविंशोऽध्यायः।।

दोहा- नृपति परीक्षित ने किया, उर में पश्चाताप।
गुप्त तेज मुनि सन हुआ, नीच जनों सा पाप।।१।।
पाप कर्म का फल मिले, शीघ्र मुझे, स्वीकार।
पुनः करुं नहि पाप मैं, यही सही प्रतिकार।।२।।

आजु जरे सब राज खजानू। विप्र कोप मंह, शमन न आनू।।
फिर न करें कोउ ऐसि ढिठाई। गो द्विज लागि पाप मन लाई।।३।।
मुनि सुत दीना शाप विचारी। सुनेउ परीक्षित हुये सुखारी।।
तक्षक अनल सुधा सम माना। भई विरक्ति, कृपा भगवाना।।४।।
गंगा तट बैठे नृप आई। लोक-भोग सुख दीन विहाई।।
कृष्ण चरण सेवा मन लागा। नृपति परीक्षित भोजन त्यागा।।५।।
वृन्दा गन्ध सहित यह गंगा। कृष्ण चरण रज धार अभंगा।।
करत पवित्र लोक-परलोका। कौन मुमूर्षु न चहै अशोका।।६।।

दोहा- ऐसा निश्चय विमल करि, नृपति परीक्षित आय।
मुनिव्रत तब धारण किये, कृष्ण चरण मन लाय।।७।।

शिष्य सहित ऋषि मुनि सब आये। गंगा तीर सुरम्य सुहाये।।
तीर्थाटन मिस यात्रा कर हीं। तीर्थ पवित्र स्वयं ऋषि कर हीं।।८।।

अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, भृगु आदी । उतथ, पराशर-राम अनादी ।।९।।
मेधातिथि, देवल, भरद्वाजा । कवष अगस्त्य आदि मुनिराजा ।।
गौतम, व्यास, ब्रह्मसुत नाना । नारद सहित न जाइ बखाना ।।१०।।
अन्य सकल देवर्षि वरूथा । राज ऋषी आये करि यूथा ।।
देखि ऋषिन्ह राजा सिर नावा। वन्दन कीन परम सुख पावा ।।११।।
निज आसन बैठे मुनि ज्ञानी । हांथ जोड़ि नृप बोले वानी।।१२।।

राजोवाच–

दोहा- धन्य धन्य हम धन्यतम, तुमहि कृपा लगि नाथ ।
राजवंश अघ आचरहिं, बिन तव चरण, अनाथ।।१३।।

सुत-गृह दार असक्ति हमारी। दीन्ह शाप मोंहि मम अघहारी।।
ईश स्वयं मोंहि शापित कीन्हा । बिनु भय पुण्य होइ नहि चीन्हा।।१४।।
प्रभुंहि समर्पित अधम शरीरा। तक्षक डसे मोंहि नहि पीरा।।
कृपा करहु हरि लीला गावहु। सुरसरि सरन भक्ति अवगाहहु ।।१५।।
अब जेंहि जोनि जनम मैं पाऊँ। कृष्ण चरन रति भक्त कहाऊँ।।
सन्त शरन मति निज उर धर हूँ। ब्राह्मण सकल नमन मैं करहूँ ।।१६।।
नृपति परीक्षित मन धरि धीरा। उत्तर मुख बैठे सरि-तीरा ।।
राज-भार निज तनयंहि दीन्हा। दर्भपाणि कुश-आसन लीन्हा।।१७।।

दोहा- नभ बाजी तब दुदुभी, बरसे सुमन अनेक।
अनशन रत नृप देखिके, बैठे सहित विवेक।।१८।।

साधु-साधु कह ऋषि सन माने। नृपंहि प्रशंसि लगे हरषाने ।।
कहंहि कथा यदुपति गुण गाई । सुनत परीक्षित अति मनु लाई ।।१९।।
कृष्ण परायण तुम नृप भूषण । तजेउ राज जेंहि चाहत नृप गण।।२०।।
तब तक सब रहिहें ऋषिराया। जब तक प्राण रहंहि तब काया।।२१।।
ऋषिवर वचन उदार गभीरा । सुनत नृपति मन भागी पीरा ।।

करि प्रणाम नृप दीन्हा माना । चाहत कृष्ण कथा धुनि काना ।।२२।।
सब दिशि आये मुनिवर नाना । मानंहु स्वयं वेद भगवाना ।।
पर हित लागि चरहु दिन राती । कहहु न कबहूँ ठकुर-सोहाती ।।२३।।
सब सन करंउ प्रश्न मन लाई । मरनशील कंह काह भलाई ।।२४।।

दोहा- स्वेच्छा से विचरत महि, व्यास सूनु शुकदेव।
प्रगटे ऋषिगण मध्य में, आत्म तुष्ट भू-देव ।।२५।।

सोलह वरस वयस अति सुन्दर । हाथ-चरण सब गात्र मनोहर ।।
नयन विशाल सोह रतनारे । कम्बु-कण्ठ कच सोहंहि कारे।।२६।।
उन्नत वक्षस् बाहु विशाला । वेश दिगम्बर तुलसी माला ।।
त्रिबली उदर सोह तिन्ह कैसे । तेज पुञ्ज सुरुगुरु हों जैसे ।।२७।।
श्याम गात नव वयस सुहावा । नारि सरल देखत सुख पावा ।।
मधुर हास शोभित शुभ आनन। खड़े हुये ऋषि छाँड़ि निजासन ।।२८।।
देखि परीक्षित कीन प्रणामा । फिरे बाल-तिय पूरण क़ामा ।।
पूजा कीन दीन वर आसन । बैठे शुक ऋषि धरि पद्मासन ।।२९।।

दोहा- देव ब्रह्म राजर्षि मंह, शोभित परम ललाम।
शुकाचार्य बैठे तंह, चन्द्र गगन-अभिराम ।।३०।।

प्रखर बुद्धि बैठे मुनिराई । नृपति प्रणाम कीन्ह शिरु नाई।।
बोले बचन हाँथ नृप जोड़े । देहु ज्ञान संशय सब छोड़े ।।३१।।

परीक्षित उवाच-

अहह नाथ अतिशय बढ़भागी। कृष्ण पदारविन्द अनुरागी ।।
अतिथि रूप प्रभु स्वयं पधारे । तीर्थ रूप करि मोंहि संवारे।।३२।।
जेंहि सुमिरत गृह पावन होई। दरस-परस दीना प्रभु सोई ।३३।।
तब सन्निधि सब पाप नसाहीं। यथा विष्णु से असुर डराहीं ।।३४।।
मो पर अवसि प्रीत यदुराई । फुफुवावुत भाइन की नाई ।।३५।।

बिनु हरिकृपा दरस नहि संता। मृत्यु समय आये श्री कन्ता ।।३६।।

सोरठा–अब पूछों मैं तोंहि, परम सिद्ध योगी गुरु।
पुरुष करे क्या काम, काल ग्रस्त अतिमूढ मति ।।३७।।

दोहा- केंहि कर जप, केकर सुधि, श्रवण करे मन लाय।
पूजनीय केहि मानिके, केहिं त्यागे निरुपाय।।३८।।
भगवन् तुम तो ठहरते, गाय दुहे जित काल।
एक ठौर, गृहमेधि घर, उतना काल दुकाल ।।३९।।

सूत उवाच–

जब नृप प्रश्न कीन मृदुवाणी। बोले शुक वाणी कल्याणी ।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रथम स्कन्धे शुकागमनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः।।

।।इति प्रथमः स्कन्धः समाप्तः।।

। हरिः ॐ तत्सत्।

*

।।इति श्री पण्डित भानुदत्तपाण्डेय सूनुना कूराडीह, प्रतापगढ़ लब्धजन्मना
डॉ.गायत्री प्रसाद पाण्डेयेन
काशीवास्तव्येन कृते श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य
हिन्दी दोहा चौपाई
रूपान्तरणे प्रथमस्कन्धः सम्पूर्णः।।
।।श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

।।श्रीगणेशाय नमः।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरण

द्वितीय स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

दोहा- उत्तम प्रश्न किये नृप, परम लोक हित जान।
आत्म ज्ञानी आदरहिं, सुनि के गुनहिं सुजान।।१।।

गृह कारज अगणित जंजाला। निज स्वरूप नाहि जान भुआला।।२।।
निद्रा नारि आयु सब जाये। धन संचय परिवार जिवांये।।३।।
देह गेह सुत नारि बनावा। मृत्युग्रास कछु देखि न पावा।।४।।
चाहत अभय मोक्ष नर नाहू। हरि-गुण कीर्तन करे उछाहू।।५।।
इहै लाभ मानुष तन जाना। अन्तकाल सुमिरे भगवाना।।६।।
विधि निषेध ऊपर मुनि नाना। करत सदा हरि के गुण गाना।।७।।
वेदसार भागवत पुराणा। हमहि पढ़ाव व्यास भगवाना।।८।।
निर्गुण ब्रह्म रमेंउ दिनराती। हरि लीला मोंहि तदपि सुहाती।।
यातें पढ़ेउ ताहि मन लाई। उत्तम चरित न काहि लुभाई।।९।।
भगत जानि तोंहि कहिहों जाई। श्री मुकुन्द रति तुरत दिलाई।।१०।।

दोहा- जो विरक्त संसार से, चाहत मोक्ष अशोक।
योगिन कँह, निर्णय यही, श्री हरि नाम अमोघ ।।११।।
व्यर्थहिं जीवन सकल गँवावा। घरी पहरु वरु हरि गुन गावा ।।१२।।
नृप खट्वांग घरी दुइ माँही। सबहिं त्यागि निर्भय पद जाँही ।।१३।।
सात दिवस लगि आयुष तोरा। करहु सुमंगल होइ अछोरा ।।१४।।
मृत्यु निकट देखे जब प्रानी। धरि विराग, ममता विसरानी ।।१५।।
घर से निकरि नदी तट जाई। बैठइ शुचि आसनहिं लगाई ।।१६।।
आखर तीन प्रणव मन धारे। मनहिं रोकि ओंकार उचारे ।।१७।।
बुद्धि सहाय विषय विलगाये। शुभ कर्मीह मन देहि लगाये ।।१८।।
हरि विग्रह मन देइ लगाई। प्रभु चरणन मति रहइ लुभाई।।
विष्णु परम पद मंगल धामा। अखिलानन्द शान्त विश्रामा।।१९।।
ध्यान धरत रज तमस् प्रभावा। मन विक्षेप मूढ़ होइ जावा।।
धारि धारणा वश मन जाके। दोष सकल मेटत प्रभु ताके ।।२०।।
दोहा- स्थिर होती धारणा, देखहिं श्री भगवान्।
भक्ति योग लक्षण यही, वर्णन करहि सुजान ।।२१।।

राजोवाच-

कहहु धारणा केंहि विधि होई। मानस कल्मष नासइ जोई ।।२२।।

श्रीशुक उवाच-

आसन, श्वास, संग जिन्ह जीती। करइ जितेन्द्रिय प्रभु पद प्रीती ।।२३।।
सकल चराचर प्रभुहिं शरीरा। भूत भव्य हरि देखि अधीरा ।।२४।।
क्षिति जल पावक प्रकृति विलासा। अण्ड पिण्ड श्री हरी निवासा ।।२५।।
पादमूल पाताल कहावा। पंजा पुरुष रसातल गावा।।
गुल्फ महातल वेद बखाना। जंघा उभय तलातल जाना ।।२६।।
घुटना सुतल विश्व वपु होई। अरु वितल अतल तेहि सोई ।।

पेड़ू भूतल नाभि आकाशा। पुरुष विराट स्वरूप प्रकाशा।।२७।।
वक्षस्थल स्वर्लोक बतावा। ग्रीवा महर्लोक श्रुति गावा।।
जनोलोक मुख दीन बताई। तपोलोक विभु भालहिं गाई।।
सहस शीर्ष प्रभु रहे विराजा। मस्तक सत्य लोक तिन्ह साजा।।२८।।
इन्द्र आदि तेंहि बाहु कहाये। कान दिशा शब्दादि सुहाये।।
घ्राण गन्ध विभु आनन सोई। जलत अग्नि जग जानइ जोई।।२९।।
अन्तरिक्ष हरि नयन बताये। सूर्य दृष्टि की शक्ति जनाये।।
रात-दिवस दोउ पलक सलोने। भौंह विलास ब्रह्मपद सोने।।
रसना रस जल तालु बखाना। अहइ विराट् विष्णु भगवाना।।३०।।

दोहा- वेद विराटहिं शिर कहे, यम को दाढ़हि जान।
दशन नेह, माया प्रबल, सृष्टि कटाक्ष बखान।।३१।।

लज्जा लोभ ओठ दुइ ताके। अधरम पीठ धर्म तन बांके।।
प्रजापती जननेन्द्रिय जाना। मित्रा वरुण अण्ड दुइ माना।।
गिरि पर्वत सब अस्थि कहावा। कोख समुद्र को पारहि पावा।।३२।।
वृक्ष रोम अरु नदियाँ नाडी। वायु श्वास गति काल अनादी।।३३।।
सन्ध्या वसन मेघ हैं केशा। प्रकृति हृदय मन चन्द्र निशेशा।।३४।।
रुद्रहिं अन्तः करण बतावा। महत्तत्व विभु चित्त कहावा।।
नख गज खच्चर मेलक घोड़ा। कटीभाग वन पशु सब छोड़ा।।३५।।
पक्षी विविध-सृष्टि निपुनाई। मन है बुद्धि, मनुष्य समाई।।
दैत्य पराक्रम जानहु ताही। चारणादि स्वर सुधिहि निवाही।।३६।।
ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुज जाना। उरु वैश्य पग शूद्र बखाना।।
सकल देवमय मख जो होई। द्रव्य कर्म जानहिं सब कोई।।३७।।
विभु शरीर मैं दीन बखानी। इनसे इतर औरु नहि मानी।।३८।।

दोहा- देखत स्वप्न यथा नर, देखइ विविध स्वरूप ।
सत्यसन्ध हरि को भजे, जगत् पतन प्रतिरूप ।।३९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

*

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच-

दोहा- सृष्टिकाल चतुरानन, कीन धारणा ध्यान ।
ईश कृपा पाई सुमति, रची सृष्टि सन्धान ।।१।।

शब्द प्रधान वेद अस गावा । स्वर्ग आदि बहु लोक बतावा ।।
मायावश तँह जीव लुभाना । परम शान्ति नहि लहै सुजाना ।।२।।
अतः मनीषी रहइ अमत्ता । बिना श्रमहिं कत पाइय सन्ता ।।३।।
भूमि शयन कत पलंग विछावा । बाहु अछत, उपधान लगावा ।।
अँजुरी आछत पात्र बटोरा । बल्कल वसन न चाह पटोरा ।।४।।
चीर नाहिं किमु राह चलाये । देहिं न तरु फल हाथ उठाये ।।
प्यास लगे सरिता नहि सूखी । पर्वत खोह नाहि सब छूंछी ।।
शरणागत रक्षक भगवाना । काहें कवी भजेहिं धनवाना ।।५।।
निश्चय अस कीजे मन मांही । आत्म रूप हरि सदा बसाहीं ।।
हरिहिं भजे भव रोग नसावा । जन्म-मृत्यु बन्धन जरि जावा ।।६।।
छाँड़ि पशुन्ह अस नर को होई । भव वैतरणि देखि सुख जोई ।।७।।
कछु साधक अस निश्चय कीना । हृदयाकाश हरी आसीना ।।
शंख गदा दर चक्र सम्हारी । रक्षा करत सदा बनवारी ।।८।।
मुख प्रसन्न कमलायत लोचन । केसर पीत वसन भव मोचन ।।
रत्न जटित भुज बन्द विराजा । कुण्डल, मुकुट शिरोपरि छाजा ।।९।।

दोहा- चरण कमल धारण करहिं, हृदय कंज योगीश ।
कौस्तुभ माला धारि उर, वनमाली जगदीश ।।१०।।

कटि करधनी चरण में नूपुर। कंकण पाणि अँगूठी सुन्दर।।
नील अलक शोभित घुंघराली। आनन हास रुचिर बनमाली।।११।।
लीला हास सुघर लसि भौहें। बार बार निरखत मन मोहें ।।१२।।
एक-एक छवि धारत नीके। शुद्ध होत मति गति सबही के ।।१३।।
निर्गुण सगुण रूप प्रभु श्रीके। भक्ति होत दृढ़ देखत जीके ।।१४।।
देश काल मन करे न लीना। छाँड़न चहत धरा आधीना ।।
लाइ सुखासन प्राणहि जीता। इन्द्रिय संयम करे अभीता।।१५।।
मन संयत क्षेत्रज्ञ लगावा। आत्महि ताहि विलीन करावा।।
परमात्महिं तेहि देहि लगाई। शान्ति लहै कछु शेष न भाई ।।१६।।
तीनंउ गुण तँह रहे न जाई। महत् प्रकृति तँह कहों समाई ।।
काल देव तँह रहे न कोई। परम तत्त्व गति जाने सोई।।१७।।
सकल शास्त्र कर सम्मति एहू। करइ विष्णु पद पंकज नेहू।।
विष्णु परम पद सोइ कहावा। नेति नेति परमारथ गावा ।।
सब के प्रियतम हैं यदुराई। हृदय लगावइ कृष्ण कन्हाई ।।१८।।
ब्रह्म निष्ठ योगी जो होई। ज्ञान दृष्टि उपरत मन जोई।।
एड़ी गुदा दबावइ आपन। भेदि चक्र षट् प्राण निकासन।।१९।।
नाभि चक्र हृद चक्र उभारा। लेइ उदान वक्ष पुनि धारा ।।
धीरे-धीरे तालु समाई। योगी यती प्राण बहिराई।।२०।।
सातों छिद्र रोकि जो लेई। भौंह बीच आज्ञा धरि जेई।।
आधी घड़ी छेंकि पुनि ताही। ब्रह्म रन्ध्र कर भेद कराहीं ।।२१।।

दोहा- ब्रह्म लोक चाहत यती, सिधि संग व्योम विहार ।
मन इन्द्रिय को साथ ले, करइ शरीर निसार।।२२।।

योगि देह लघु वायु समाना। विचरत सकल त्रिलोकी जाना।।
विद्या तप अरु योग समाधी। योगिन्ह कर्म न लावत व्याधी ।।२३।।
व्योम मार्ग यति पावक लोका। जरत सकल मल होत विशोका।।
तब शिशुमार चक्र सो पावा। जँह श्री हरि का सदन बतावा ।।२४।।
ताहि लाँघि धरि सूक्ष्म शरीरा। महर्लोक बुध वन्दित धीरा ।।
कल्प प्रजन्त देव सँग वासा। योगी रहत विगत संत्रासा ।।२५।।
प्रलय अनल जब लोक नसावा। ब्रह्म लोक सो करत बसावा।।
ब्रह्म लोक तब सिद्धहिं संगा। द्विपरार्ध रहत निस्संगा ।।२६।।
जहाँ न शोक मृत्यु भय काऊ। नहि उद्वेग न दुःख प्रभाऊ ।।
एकइ चिन्ता व्यापत ताँही। योग धरै नहि लोक नसाहीं।।२७।।
सूक्ष्म देह यति धरणि मिलावा। ताहि जलहिं तेहिं तेज समावा ।।
तेज वायु तेंहि व्योम समाई। सप्त आवरण देत मिटाई ।।२८।।
घ्राण गन्ध, रसना रस जाई। नेत्र रूप, त्वक परस गंवाई ।।
शब्दहिं श्रोत्र मेलि तब लेंही। एहि विधि इन्द्रिय प्राणन सेंही ।।२९।।

दोहा- तामस राजस सात्त्विक, देइ मिलाइ योगीश।
अन्तहि प्रकृतिहु मिलत हैं, योगी रहित कलेश ।।३०।।

महा प्रलय प्रकृति लय होई। लह आनन्द शान्त सोइ गोई।।
भगवत् गति तब जीव लहन्ता। अपुनर्भव तेहि मोक्ष कहन्ता।।३१।।
राजन् पूछेंउ दिये बताई। उभय गती जिन्ह वेदन गाई।।
कहेउ विरंचिहिं श्री भगवाना। मुक्ति मार्ग दोउ दीन्ह बखाना।।३२।।
संसृति चक्र मनुष्य घुमावा। बड़े भाग हरि भगति सो पावा।।३३।।
चारि वेद चतुरानन बाँचे। तीन बार, निश्चय करि साँचे ।।
कृष्ण भगति सम और न दूजा। प्रेम अनन्य भाव हरि पूजा ।।३४।।
सब प्राणिन मँह कृष्ण दिखावा। द्रष्टा एक, दृश्य जग पावा।।३५।।

राजन् सब विधि हरिहिं मिताई। श्रवण मनन कीर्तन सुखदाई ।।३६।।
सादर सुनहिं कथा मन लाई। श्रवण पुटन, हरि भगति बनाई ।।
विषय विकार ताहि मिटि जाहीं। श्री हरि सन्निधि ते नर पांही ।।३७।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

*

।। अथ तृतीयोऽध्यायः।।

श्री शुक उवाच-

दोहा- राजन पूंछे जो तुम, मरत करइ का काज।
बुद्धिमान नर, सो तुमहि, सकल बतायेंउ आज।।१।।

ब्रह्म तेज जो चाह नरेशा। सुरु गुरु पूजत मिटे कलेशा।।
इन्द्रिय काम इन्द्र नहि दूजा। सन्तति चाह प्रजापति पूजा।।२।।
माया पूजि लच्छि बहु पावा। चाहत तेज त अग्नि मनावा।।
धन की चाह वसू आराधन। पौरुष चाहत रुद्र उपासन ।।३।।
अदिति सेइ बहु अन्न लहाहीं। देव पूजि नर स्वर्गे जांही ।।
विश्वेदेव राज पुनि देंही। साध्य साधि अनुकूल करेंही ।।४।।
आयु देहि नर अश्विकुमारा। पृथ्वी पूजि पुष्टि अविकारा ।।
पृथ्वी द्यौ सब देइ प्रतिष्ठा। इनहि सेव कीरति हरि निष्ठा।।५।।
लहहिं रूप गन्धर्व मनाये। नारी चाह उर्वसी ध्याये ।।
अधिपति होन देत वरदाना। तँह विरंचि सम और न आना ।।६।।
यज्ञ करहिं सो यश ते पावा। वरुण देव सब कोश सजावा ।।
विद्या देंहि शम्भु अविकारी। दम्पति प्रेम सती महतारी ।।७।।
धर्म देंहि विष्णु भगवाना। सन्तति रक्षा पितर पुराना ।।

बाधा हरहिं यक्ष मनलाई । ओज मरुदगण होत सहाई ।।८।।
मन्वन्तर पति राज देवाई । निर्ऋति पुनि अभिचार उपाई।।
भोग देहिं शशि, पुरुष अकामा । परम पुरुष भजिये भगवाना ।।९।।

दोहा- सकल काम से हो रहित, अरु सकाम, निष्काम ।
मोक्ष काम भी अगर नर, भजिय कृष्ण अभिराम ।।१०।।

सब कर हित हरि कथा प्रसंगा। भगति भाव लह भक्त सुसंगा।।११।।
भगवत् कथा ज्ञान शुभ देई । त्रिगुण उर्मि को नाशइ जेई ।।
भक्तियोग कैवल्य बखाना । लीला कथा सुनहिं भरि काना ।।१२।।

शौनक उवाच-

दोहा- अस सुनि नृपति परीक्षित, पुनि का पूछे आइ ।
व्यास सूनु शुक देव यति, काह कहे समुझाइ ।।१३।।
राजा शुक संवाद हम, सुनन चहत मन लाय ।
सन्त सभा जब जब मिलत, हरि लीला गुन गाय।।१४।।

नृपति परीक्षित थे बड़ भागी । श्री हरि कथा बाल अनुरागी ।।१५।।
श्री शुक देव कृष्ण रति पागे । संत समागम भा बड़ भागे ।।१६।।
उत्तम समय जो हरिगुन गावा । उदय अस्त रवि आयु गँवावा ।।१७।।
वृक्ष जियहिं, साँस लेइ भाथी । ग्राम पशू लँह भोजन साथी ।।१८।।
श्रवण पड़ी नहि हरिगुन गाना । नर सो सूकर श्वान समाना ।।१९।।
कान छिद्र सो विवरहिं जाना । श्री हरि कथा सुनी नहि काना ।।
जीभ सो दादुर जीभ बखाना । कृष्ण कथा जो कही न जाना ।।२०।।
मुकुट धरा शिर बोझा माना । जो न झुकइ प्रभु चरण अयाना ।।
कंकण भूषित कर न बखाना । शव समान, न पूजि भगवाना ।।२१।।
हरि के चरण न देखि जुड़ाहीं । मोर पंख इव नयनहिं तांही ।।
प्रभु मन्दिर जे चरण न जांही । वृक्ष समान अचल जड़ आहीं ।।२२।।

सन्त चरण रज शिर नहि धारे। शव समान तिन्ह जानहु प्यारे ।।
विष्णु चरण तुलसी कर गन्धा । जो न चहे तेहि जानहु अन्धा ।।२३।।
द्रवत न जो श्री हरिगुन गाये । लोह सदृश तिन्ह हृदय बताये ।।
नयन अश्रु न पुलक शरीरा । ऐसे मनुज नाहि, है कीरा ।।२४।।
तव वाणी सन्तन अनुकूला । सुनत हरत सन्तन भव शूला ।।
जो कछु शुकदेव बखाना । नृपहि, सुनावहु हमहिं सुजाना ।।२५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः।।३।।

*

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

सूत उवाच-

दोहा- व्यास तनय के वचन सुनि, नृपति उन्त्तराजात ।
कृष्ण चरण मति सौपि के, मनहीं मन हरषात ।।१।।

पुत्र नारि गृह ममता त्यागा । राज कोष धन विरत सुभागा ।।२।।
जो पूंछे तुम सब मन लाई । सोइ प्रश्न नृप कीन्हे जाई ।।३।।
लहे त्रिवर्ग कर्म संन्यासा । आत्म रूप श्री कृष्णहिं आशा ।।४।।

राजोवाच-

तुम सर्वज्ञ अपाप गोसाईं । सुनत कथा अज्ञान नसाई ।।५।।
बार-बार मुनि पूंछेउ तोहीं । सृष्टि रचइ केंहि विधि निर्मोहीं ।।६।।
केंहि विधि रक्षा, प्रलय संहारा । केंहि केंहि शक्ति प्रभू जो धारा ।।७।।
खेलत खेल सृजत जग जोई । क्षण मँह प्रलय करत किमि सोई ।।८।।
धारण करहिं गुणन एक साथा । लइ अवतार गुणन यदुनाथा ।।९।।

दोहा- शब्द ब्रह्म निष्णात मुनि, वेद तत्व के खान ।
मम सन्देह निवारहु, कृपा करहु भगवान्।।१०।।

हरि गुण वर्णन नृप उकसाये । हरी सुमिरि शुक बोल पराये।।११।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- परम पुरुष भगवान को, बारम्बार प्रणाम ।
ब्रह्मा, विष्णु महेश वपु, सकल चराचर धाम ।।१२।।

नमो नमः पुरुषोत्तम चरना । सज्जन पुरुष दुःख सब हरना ।।
जीवहिं देत मुक्ति कर दाना । परम हंस कँह अभय प्रदाना ।।१३।।
वन्दउ भगत बछल भगवाना । भगति हीन कोउ मरम न जाना ।।
अतुलित वैभव रमण विहारी । ब्रह्म स्वयं श्री कृष्ण मुरारी ।।१४।।

छन्द- जेहिं पद वन्दन, दर्शन पूजन, श्रवण मनन सुखदाई ।
सब पाप नसावन, करु जग पावन, बन्दउ कीर्ति कन्हाई।।१५।।
जेंहि परम विवेकी, चरणन टेकी, माया देंहि भुलाई।
विनु श्रम हरि पाई, ब्रह्म समाई, बन्दउ कृष्ण कन्हाई।।१६।।
बड़े दानि तपस्वी, घोर मनस्वी, मंत्रन्ह जे सब जाना।
बिनु अर्पण कीन्हे, प्रभु नहि चीन्हे, बन्दउ श्री भगवाना।।१७।।
खश यवन अभीरा, पुल्कस बीरा, होवे कोउ कसाई।
हरि शरणागत-शरण में आवत, शुद्ध करें यदुराई ।।१८।।

दोहा- धर्म तपोमय वेद मय, आत्मा योगि अधीश।
शिव विरँचि देखहि चकित, करउ अनुग्रह श्रीश ।।१९।।
लक्ष्मी पति अरु यज्ञ पति, धरा, प्रजा वे ईश ।
अन्ध वृष्णि यदुकुल पती, होउ प्रसन्न जगदीश ।।२०।।

दोहा- जेंहि पद चिन्तन से हुई, शुद्ध बुद्धि, मतिमान ।
निज रुचि से वर्णन करें, सोइ मुकुन्द भगवान ।।२१।।
सृष्टि काल अज को दिये, सती सरस्वति ज्ञान ।
मुख से निकले वेद तब, करहु कृपा भगवान ।।२२।।

पञ्चभूत से रचित शरीरा। जीव वास तँह करै अभीरा।।
सोलह कला भोग करि जोई। करहि अलंकृत वाणी सोई।।२३।।
वासुदेव विनवों भगवाना। यासु कथामृत व्यास बखाना।।२४।।
दोहा- नारद पूंछे प्रश्न जब, तब विरंचि समुझाय।
कही कथा जो पुत्र से, सो मैं देंहु सुनाय।।२५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

*

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः।।

नारद उवाच-

दोहा- देव देव करुणायतन, अज पूर्वज सर्गेश।
मम प्रणाम, देहु आत्मकँह, तत्त्व ज्ञान उपदेश।।१।।

तात ! देहु मोंहि सकल बुझाई। सर्ग रूप आधार बनाई।।
यह संसृति किन्ह कीन विचारी। केहि आधीन प्रलय संसारी।।२।।
तुम सर्वज्ञ सकल जग स्वामी। करामलकवत ज्ञान निकामी।।३।।
कहु यह ज्ञान कहाँ ते पाये। कौन अधार उपाय बताये।।
निज माया जग रचेउ प्रजेशा। कहहु तत्त्व मम मिटइ कलेशा।।४।।
मकड़ी यथा रचइ बहु जाला। आत्मशक्ति वश रचहु नृपाला।।५।।
तुम ते अन्य न जानउं काहू। नाम रूप सद असत निबाहू।।६।।
तब समर्थ तप काहे कीन्हा। चिन्ता इहै कौन बड़ चीन्हा।।७।।
यह सब पूंछेउ तुमहि गोसाईं। तुम सर्वज्ञ कहहु मन लाई।।८।।

ब्रह्मोवाच-

दोहा- वत्स कारुणिक नारद, संशय समुचित तोर।
येंहि ते हरिगुण वर्णन, प्रेरित भइ मति मोर।।९।।

जो तुम कहे सत्य सब आहीं। हरि जाने विनु तमस न जांही।।१०।।
सूर्य अग्नि ग्रह सोम प्रकाशा। जातें लहहिं, हरी सोइ भाषा।।११।।
वासुदेव श्रीकृष्ण नमामी। जेहिं माया जग गुरुं बहामी।।१२।।
हरि सन्मुख जो ठहरि न माया। मै अरु मोर अबुध भरमाया।।१३।।
जीव, काल अरु द्रव्य स्वभावा। हरि से अलग न कर्म प्रभावा।।१४।।
वेद सकल नारायण गाये। देव निखिल हरि अंग कहाये।।
लोक अनेक हरी उपजाये। यज्ञ होम हरिफलक बताये।।१५।।
तप अरु योग हरी के हेतू। ज्ञान गती नारायण सेतू।।१६।।
हरि प्रेरित जग रचउं विचारी। द्रष्टा ईश हरी अविकारी।।१७।।
सृष्टि प्रलय थिति कारण हेतू। माया कृत गुण, निर्गुण केतू।।१८।।
कर्ता कारण कार्य स्वरूपा। बाँधहि निर्गुण, त्रिगुण अनूपा।।१९।।
गुण आवरण न देखइ कोई। अगुण सकल जग स्वामी सोई।।२०।।

दोहा- माया पति भगवान की, इच्छा होत प्रचण्ड।
एक, अनेक होंउ मैं, कालहुं कर्म अखण्ड।।२१।।

गुण विक्षेप काल उपजाये। तब स्वभाव महतत्त्व जनाये।।२२।।
सत्त्व रजोगुण, वृद्धि जनाये। महत्तत्त्व विकार कहलाये।।
तासे तमसहिं भये विकासा। ज्ञान क्रिया अरु द्रव्य प्रकाशा।।२३।।
अहंकार सो त्रिविध स्वरूपा। तामस, तेजस, वैकारिक रूपा।।
द्रव्य क्रिया सो ज्ञान प्रधाना। क्रमशः अहं तीन विध जाना।।२४।।
तमस विकार व्योम उपजावा। शब्द गुणक आकाश कहावा।।२५।।
व्योम विकार वायु कँह सर्गा। गुण स्पर्श शक्ति बल भर्गा।।२६।।
वायु विकार तेज भा भारी। शब्द परस दुइ गुणन्ह सम्हारी।।२७।।
तेज विकृत जल दीन बनाई। शब्द रूप गुण परस सुहाई।।२८।।
जलहिं विकार धरा कर रूपा। गन्ध रूप रस परस अनूपा।।२९।।

अहंकार मन इन्द्रिय जाये । इन्द्रिय देवन्ह दसहि गिनाये ।।
सूर्य वायु दिक् वरुण, कुमारा । अग्नि विष्णु शक मित्र उदारा।।३०।।
श्रवण नयन त्वक जिह्वा घ्राणा। तैजस अहमिति इन्द्रिय ज्ञाना ।।
वाक पाणि पद पायु उपस्था। कर्मेन्द्रिय की पाँच व्यवस्था।।
बुद्धि प्राण तेजस के जाये । बारह ये सब मिले कहायें।।३१।।
जबहिं असंगत रहे गुणादी। नहि शरीर रचि सके अनादी।।३२।।
भगवत शक्ति प्रेरणा पावा । पिण्ड औरु ब्रह्माण्ड बनावा ।।३३।।
रहा सहस वर्षान्त अजीवा। अण्ड पुनः हरि ताको सींवा ।।३४।।
अण्ड कटाह भिन्न भा जब हीं । सहस चरण हरि प्रकटे तबहीं ।।३५।।

दोहा- कटि ऊपर स्वर्गादि भा, सात लोक स्वर्लोक ।
अधोभाग ते पुरुष के, अतल आदि सत लोक।।३६।।

द्विज विराट मुख प्रथम कहाये। क्षत्रिय वाहु जन्य कहलाये ।।
उरू वैश्य पग शूद्र बखाने। सृष्टि विराट पुरुष ते जाने ।।३७।।
पग से लगि कटी प्रजन्ता। सप्त पताल भूलोक कहन्ता।।
नाभी भुवः हृदय स्वर्लोका । परम पुरुष वक्ष मह लोका।।३८।।
ग्रीवा में जन लोक बखाना । तपोलोक स्तन द्वय जाना।।
मस्तक सत्यलोक सोइ जाना। नित्य निवास विरंचिहु माना ।।३९।।
कटि में अतल, अरु है वितला । जानु सुतल जंघा तलातला ।।४०।।
गुल्फ महातल प्रपद रसातल। तलवा पुरुष मानु पाताल तल ।।४१।।
चरणहि पृथ्वी नाभि भुलोका। पुरुष पुरातन शिर स्वर्लोका ।।४२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे पञ्चमो ऽध्यायः।।५।।

*

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

ब्रह्मोवाच-

दोहा- वाणी अग्नि, विराट मुख, सात धातु अरु छन्द ।
देव पितर मानुस तरल, रसना प्रगट अमन्द ।।१।।

पञ्च प्राण अरु वायु प्रकाशा। ओषधि गन्ध निकासे नासा ।।२।।
नेत्र रूप अरु तेज सवाँरा। गोलक युग रवि, स्वर्ग प्रचारा ।।
दिशा तीर्थ दोउ कर्ण से जाये। शबद अकाश ते इन्द्रिय पाये ।।
देह विराट सार सब जाना। अखिल लोक सौन्दर्य निधाना ।।३।।
सकल यज्ञ विभु त्वचा से जाये। वृक्ष आदि तेंहि रोम कहाये।।४।।
केश मूँछ नख विभु के जाना। विद्युत लोहा शिला समाना।।
लोक पाल विभु बाहुज माना। रक्षा लगि प्रभु कीन विधाना।।५।।
भू-र्भुवः स्वः लोक समाना। पूर्ण काम वर चरण बखाना ।।६।।

दोहा- वारि वीर्य पर्जन्य अरु, सर्ग प्रजापति मूल।
परम पुरुष जननेन्द्रिय, सृष्टि कर्म अनुकूल ।।७।।

मल इन्द्रिय यम मित्र कहावा। हिंसा मृत्यु नरक तेंहि पावा ।।८।।
विभु की पीठ अधर्म बखाना। पर्वत नदी नाडि प्रभु जाना ।।९।।
मूल प्रकृति रस धातु समुद्रा। पुरुष विराट उदर की मुद्रा ।।१०।।
हम तुम धर्म शम्भु शनकादी। अहैं विराटचित्त अविषादी ।।११।।
देव दनुज किन्नर नर नागा। हमहूँ तुमहि विराट सुभागा ।।१२।।
भूत-प्रेत, पशु, सर्प, सुजाना। विद्याधर चारण। यतुधाना ।।१३।।
जल थल नभ के नाना जीवा। ग्रह तारा विद्युत जल सीवा।।१४।।
जो कछु अहइं जे होवनि हारे। सब मह विश्व पुरुष पैठारे ।।१५।।
यथा सूर्य निज तेज दिखावा। तथा विराट पुरुष जग छावा।।१६।।

मर्त्य अमृत को जाननि हारा। दुर्घट महिमा जग उजियारा।।१७।।
एक चरण सब लोक कहावा। तीन पाद विभु ऊपर गावा।।१८।।
जन तप सत्य लोक मँह छाये। वनी यती ब्रह्मचारि कहाये ।।
गृही रहहिं भूलोकहि माँही। भुवः स्वर्ग जे व्रतधर नांही।।१९।।
विद्या एक अविद्या दूजा। कर्म सकाम अकामहिं पूजा।।
सकल शास्त्र दुइ मार्ग बताये। दूनउ पन्थ परम प्रभु जाये ।।२०।।

दोहा- इन्द्रिय भूत गुणात्मक, अण्ड विराटहिं जाय।
यथा सूर्य निज रश्मि से, व्यापक पृथक् लखाय।।२१।।
नाभि कमल से जनम भा, जब कछु नाहिं देखान।
अंग विराटहिं छाँड़ि के, यज्ञ करण नहि आन।।२२।।

कुशा वनस्पति पशू विचारे। यज्ञ वेदि सब अंग सँवारे ।।२३।।
ओषधि, घृत, जल, भूमि, जुटावा। चारि वेद तब आगे आवा ।।२४।।
मंत्र दक्षिणा व्रत संकल्पा। देव अनुक्रम कल्प प्रकल्पा ।।२५।।
गति मति श्रद्धा लिये जुटाई। सकल वस्तु अवयव ते पाई।।२६।।
तेहिं ते यज्ञ दीन मैं ठानी। यज्ञ देव शुभ यजन समानी ।।२७।।
नवहिं प्रजापति अग्रज तोरे। कीन समाहित यज्ञ अछोरे ।।२८।।
मनु ऋषि पितर देव दिति जाये। मनुजहुँ थे फिरि यज्ञ रचाये ।।२९।।
सकल विश्व प्रभु मांहि समाना। निर्गुण सगुण होइ क्रम जाना ।।३०।।
रचउं जगत, नासत अविनाशी। पालन विष्णु करत सुख राशी ।।३१।।
पुत्र! सकल मैं कहेंउ बखानी। भगवत् भिन्न कछू नहि जानी ।।३२।।

दोहा- सदा प्रेम पुलकित तनु, रहे हरिहिं मन लाग।
यातें वाणी सत्य मम, मन कुपंथ नहि भाग।।३३।।
वेद मूर्ति जीवन तप, झुकहिं प्रजा के ईश।
धारेंउ योग अखण्ड मैं, तबहुं न जाने श्रीश।।३४।।

वन्दउं हरि के पदकमल, शरण त्राण जगदीश।
व्योम न जानत अन्त निज, तिमि मायापति ईश ।।३५।।

मैं, मम तनय, न शंकर जाना। और सुरन्ह को करे बखाना।।
माया मोहित बुद्धि हमारी। कहौं ताहि निज मति अनुसारी।।३६।।
हम सब लीला जाहि बखाना। वन्दउं परम पुरुष भगवाना।।३७।।
अज अनादि पुरुषोत्तम सोई। कल्प सृजत पालत हर जोई।।३८।।
सत्य अनन्त पूर्ण भगवाना। शुद्ध ज्ञान निर्गुण गुण नाना।।३९।।
मन बुधि देह शान्त जब होई। लहहि सन्त प्रभु दर्शन सोई।।
करहिं असज्जन वाद कुत र्का। पाव न दर्शन किये वितर्का।।४०।।

दोहा- कारण कार्य स्वभाव मन, काल भूत ममकार ।
जड जंगम गुण इन्द्रियाँ, आदि पुरुष अवतार।।४१।।

मैं विरंचि, शिव, यज्ञ प्रजेशा। तुम नारद अरु भगत विशेषा।
खगपति स्वर्गलोक के त्राता। नृपति तलातल लोकपजाता।।४२।।
विद्याधर चारण गन्धर्वा। यक्ष उरग गण नायक सर्वा।।
ऋषिन्ह पितर दैत्यन के स्वामी। भूत प्रेत मृग पक्षि निकामी।।४३।।
रूप अरुप वस्तु गुणशाली। भगवत् रूप मानु मति शाली।।४४।।
हरि-लीला मैं कहिहों जाई। कर्ण सुखद अवतार बड़ाई।।
कर्ण कषाय दूर तब होई। सावधान सुनु नारद सोई।।४५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः।।६।।

*

।। अथ सप्तमोऽध्यायः ।।

ब्रह्मोवाच-

दोहा- पृथ्वी के उद्धार हित, लिये वराह स्वरूप।
वज्र पाणि देवेन्द्र सम, हते हिरणाक्ष अनूप ।।१।।

रुचि आकूति सदन अवतारा। नाम सुयज्ञ सुयश विस्तारा।।
नारि दक्षिणा देवन्ह जाये। संकट हर हरि नाम कहाये।।२।।
देवहूति कर्दम गृह आये। कपिल, तासु नौ बहिन बताये ।।
मातहिं दीन ज्ञान उपदेशा। त्यागि मलहि सो लही निजेशा ।।३।।
अत्रि पुत्र कीन्हे मन कामा। दत्तात्रेय लहे तब नामा।।४।।
सृष्टि रचन मन कीन विचारी। तप तब कीन प्रभुहिं मन धारी।।
सनकादिक सुत पाये चारी। आत्म ज्ञान से मुनिन्ह उबारी ।।५।।
धर्म-मूर्ति नर नारायण आये। अद्भुत तप दोउ किये सुभाये ।।
काम सैन्य सब निष्फल कीन्हे। नारिन्ह विघ्न करन सो चीन्हे।।६।।
कामहिं शंकर दीन्ह जलावा। दारुण कोप न काबू पावा।।
नर नारायण दूनउ जीते। काम क्रोध परिहरे परीते ।।७।।
ध्रुवहि दीन अनुपम वरदाना। प्रभु समान वत्सल को आना।।८।।
वेन कुमारग, भा जारि छारा। मथत पृथू बनि भू उद्धारा।।९।।
नाभि-सुदेवि कोख ते आये। ऋषभ देव तब हरी कहाये।।
मुक्त संग इन्द्रिय वश कारी। परम हंस बनि विचरे झारी।।१०।।
जबहिं यज्ञ मैं रचेंऊ नारद। हयग्रीव हरि प्रकट विशारद ।।
छन्द वेद हरि सांस ते आवा। ब्रह्म रूप सो यज्ञ कहावा ।।११।।
मत्स्य रूप धरि जीवहिं धारा। सकल जीव वेदहि उद्धारा।।१२।।
मन्थन उदधि भये जेंहि काला। कमठ रूप, प्रभु धरे विशाला।।
खुजली मिटी नींद प्रभु लागी। पर्वत घूमत धारि विरागी।।१३।।

हिरण कशिपु मारन प्रभु आये। धरि नृसिंह वपु रौद्र बनाये।।
भृकुटी कुटिल बड़े नख धारी। जंघ डारि तेहि वक्ष विदारी।।१४।।

दोहा- जबहिं ग्राह ने धरि लिया, गज कँह पाद प्रचण्ड।
आर्त्तभाव गजराज ने, सुमिरे प्रभुहि अखण्ड।।१५।।
चक्रधरे गरुडासन, आये गज के पास।
सूंड पकड़ि उद्धार करि, कीना ग्राह विनाश।।१६।।

अदिति तनय वामन कहलाये। भये त्रिविक्रम लोक थहाये।।
समरथ प्रभु मांगन तँह आये। सत्पथ चलत त कौन डिंगाये।।१७।।
प्रभु पद शिर रखि बलि मन राचा। आत्म समर्पण हरिहिं सवाँचा।।१८।।
हंस रूप तोंहि योग सिखाये। भगवत तत्त्व बहुरि समुझाये।।१९।।
चक्रधरे मनुवंशिन्ह रक्षा। दुष्ट दलन सतलोक सुरक्षा।।२०।।
धन्वन्तरि बनि रोग नसावा। सुधा देइ सुर अमर बनावा।।
यज्ञ भाग सुर दीन्हे जाई। आयुर्वेदहिं लोक चिन्हाई।।२१।।
परशुराम बनि क्षत्रिय मारे। ब्रह्म द्रोह कर दण्ड विचारे।।
बार इकीस कीन संहारा। धरती कण्टक करि उद्धारा।।२२।।
बने राम रघुवंश विभूषण। रावण सहित हते खरदूषण।।
पितु आयसु लगि कानन जाई। पत्नी अनुज संग रघुराई।।२३।।
शंकर सरिस क्रोध जब कीना। आँख लाल तट जलधि प्रवीना।।
मकर उरग सब भये सभीता। क्रोध अग्नि कँह कारण सीता।।२४।।

दोहा- दशमुख वक्ष से चूर्ण भे, जब ऐरावत दाँत।
हँसा दशानन, धुल गई, दशो दिशायें साथ।।२५।

सोइ वक्ष हरि फोरेउ जाई। राम रूप धनु घोष सुनाई।।
जबहिं असुर मिलि भूमि सताये। रामकृष्ण दोउ भूपर आये।।२६।।
बाल रूप हरि पूतना मारे। तीन माह वय शकट उधारे।।

यमलार्जुनहि त रेंगि गिराये । हरि के बिना कौन करि पाये ।।२७।।
जल विषाक्त जब कालिय कीन्हा । वत्स गोपाल मृत्यु कँह चीन्हा ।।
करिहें तबहीं उरग निकासा । करि विहार सरि करहिं सुपासा।।२८।।
रातहिं आगि लगे वन मांही । व्रज वासिन्ह उर संकट आँही ।।
लइ बलराम कृष्ण तँह धावहिं । आगि पिये सब आँखि मुंदावहिं।।२९।।
जननी दाम लिये जब धाई । दुइ अंगुल, नहि बाँधि कन्हाई ।।
लेत जँभाई कृष्ण दिखलाये । भुवन सकल, जननी भय छाये ।।३०।।
वरुण पाश से नन्द छुडाये । व्योम असुर ते ग्वाल बचाये ।।
लइ बैकुण्ठ धाम सब जाँही । ग्वालहिं दिव्यलोक दिखलाहीं ।।३१।।

दोहा- जब रोके मख इन्द्र के, जलद मूसलाधार।
यथा प्रलय वर्षत तब, व्रज हरि लीन उबार ।।
सात बरस वय, सात दिन, छत्रक पुष्प समान।
पशु प्रानिन्ह रक्षा करत, गिरि धरिहैं भगवान।।३२।।

रात्रिकाल जब रास रचाये । सुमधुर स्वर तब वेणु बजाये ।।
प्रेम विकल गोपिन्ह, लै भागा। सेवक धनद न जान अभागा ।।
कटिहें शिर, तेंहि सेवक नाशा । गोपिन्ह संग रचइहें रासा ।।३३।।
जो प्रलम्ब बक केशी आये। कंस यवन कुज पौण्ड्र कहाये ।।
शाल्व द्विविद शम्बर असुरादी। नृपति विदूरथ रुक्मि नृपादी ।।३४।।
कुरु कम्बोज मत्स्य अरु कैकय । समरारूढ नृपतिगण सृंजय ।।
अर्जुन, बल, अरु, भीम दिखाई । मरिहें सबहिं कृष्ण यदुराई ।।३५।।
समय देखि, लघु बुद्धि विचारी। समुझत वेद गई मति मारी ।।
सत्यवती सुत व्यास कहाये। वेद वृक्ष बहु शाख बनाये ।।३६।।
जबहि दैत्य मिलि वेद चुरावा। तब उपधर्म, बुद्ध बनि गावा।।३७।।
जब कलि अन्त न कथा पुराना । द्विज पाँखण्डि वृषल नृप माना ।।

स्वाहा स्वधा करहिं नहि काहू। कल्कि ईश अवतरे निबाहू ।।३८।।

सृष्टि काल जब होत है, तब तप नवहिं प्रजेश।
ऋषिन्ह संग ब्रह्मा बने, सर्जन करहि व्रजेश ।।

रक्षा करहिं विष्णु के रूपा। धर्म मनू देवता स्वरूपा।।
प्रलय काल सोइ रूद्र कहाया। क्रोध दैत्य सब श्रीहरि माया।।३९।।
को कहि सके विष्णु प्रभुताई। भूमी कण भल लेइ गिनाई।।
जबहिं त्रिविक्रम अवनि खभारी। निज बल रोके ताहि मुरारी।।४०।।
हरि माया को बरनै पारा। सनकादिक मैं रहे विचारा।।
गावत शेष आज तक जाँही। सहस वदन पार नहि पांहीं।।४१।।
जब अनन्त हरि दया कराहीं। दुस्तर माया मनुज तराहीं ।।
सर्वस सौपे प्रभु के चरना। तबहिं कृपानिधि करते करुना ।।४२।।
मैं कछु जानउं, जान महेशा। हरि माया जानहिं ध्रुव ईशा।।
शतरूपा प्रहलादं सुजाना। ऋभु प्रियव्रत वहीं जाना ।।४३।।
जनक गाधि रघु सगरहुं जाना। गय ययाति मुचुकन्द बखाना ।।४४।।
बलि, सौभरि, नृप भीष्म समाना। शिवि, देवल, पिपलादहुं जाना।।
हनूमान, शुक, अर्जुन, चीन्हा। विदुर, विभीषण नाहि अधीना ।।४५।।
सो सब माया पारेहिं जाई। जिनकेमन हरि भगति दृढाई।।
नारि शूद्र अरु, भील कुरंगा। पशु पक्षी अरु कीट पतंगा ।।
हरि कँह प्रीति, मोह कर नाशा। सो किमु कहिय जो वेद सुपासा।।४६।।
सदा एक रस शान्त असंगा। ज्ञान रूप शुचि सत्त्व प्रसंगा।।
शब्द, कर्म तँह पहुँच न पावा। माया पहुँचि न पाव लजावा।।४७।।
महापुरुष सो ध्याइ अमन्दा। धरि समाधि लँह चिन्त अनन्दा।।
इन्द्र यथा महि कूप खनाहीं। मेघ स्वामि जल वर्षत जांही ।।४८।।
सकल कर्म-फल श्री हरि देते। कर्म करन प्रभु प्रेरहि तेते ।।

जबहिं शरीर-नाश होइ जाई। व्योम सरिस तब आत्म समाई ।।४९।।

दोहा- अति संक्षेप बखानेउं, विश्व सृष्टि संहार।
सत अरु असत् जोइ कछु, हरि से भिन्न असार।।५०।।
जो भगवान् कहेउं मोहि, सोइ भागवत जान।
यह विभूति श्री हरि कँह, करु विस्तार सुजान।।५१।।
जेहि ते हरि पद भगति हो, सर्वाधार स्वरूप।
करि ऐसा संकल्प शुभ, वर्णन करु अभिरूप।।५२।।
जो माया वर्णन करहिं, करि अनुमोदन जाँहि।
श्रद्धा से सादर सुनहि, माया-वश सो नांहि।।५३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

*

।। अथाष्टमोऽध्यायः ।।

राजोवाच-

दोहा- ब्रह्मा जी से प्रेरित, नारद परम सुजान।
निर्गुण श्री हरि गुणन को, केंहि विधिकीन बखान।।१।।

श्री हरि कथा सुमंगल कारी। आश्रय अद्भुत शक्ति मुरारी।।
वेद विज्ञ तुम देहु सुनाई। जानन चहूँ कथा यदुराई।।२।।
हरि निविष्ट मन छोड़उ देहा। कहहु कथा करि मोपर नेहा।।३।।
कथा सुनत सादर मन लाई। शीघ्रहिं आवत हृदय कन्हाई ।।४।।
श्रवण रन्ध्र उर आव मुरारी। करै विमल शरद इव वारी ।।५।।
शुद्ध हृदय पद कंज न त्यागा। यथा पथिक मन गृह में लागा ।।६।।
तुम जानहु मोंहि देहु जनाई। कारण कौन जीव तनु पाई ।।७।।

दोहा- जासु नाभि के कमल से, सिरजे लोक अनेक।
जीव ईश दोउ सीमित, अथवा कोउ विवेक ।।८।।
जेहिं की कृपा विरंचि जग, रचत अनेक प्रकार ।
देखत श्री हरि रूप को, होवत सिरजन हार।।९।।
सोरठा-थिति लय उत्पति हेतु, परम पुरुष करुणायतन ।
सब माया के ईश, शयन करहि केहिं रूप मँह।।१०।।
दोहा- होहि विराट के अंग ते, लोकप लोक अनन्त।
तिन्ह के रूप में कल्पित, अंग अनेक कहन्त।।११।।
कल्प प्रकल्प अवान्तर नाना। जातें होइ काल अनुमाना ।।
तीनिउ काल बतावहु मोहीं। जीव आयु किमि बँधी न होहीं।।१२।।
सूक्ष्म कालगति देहु बताई । केहि प्रकार सो जानिहिं जाई ।।१३।।
गुण ते गुणी योनि सब पाई । कौन कर्म केहि योनि पठाई ।।१४।।
पर्वत नदी पयोधि अकाशा। धरा, पताल, ग्रह द्वीप निवासा।।
इन मँह रहत जीव कत जाये। केंहि ते अनत जीव उपजाये।।१५।।
कहु ब्रह्माण्ड प्रमानहिं ज्ञानी। बाहर भीतर अन्तर जानी।।
आश्रम वर्ण विभेद बखानहु। महापुरुष के लक्षण जानहुं ।।१६।।
युग युगमान धर्म जो होई । कहु अवतार विलक्षण जोई ।।१७।।
कहु विशेष, साधारण धरमा। आपद्धर्म नृपति विश करमा।।१८।।
कहहु तत्त्व अरु लक्षण तासू। हरि आराधन योग सुपासू।।१९।।
दोहा- योगिराज का गति लहैं, योग भंग किमि होय ।
वेद शास्त्र इतिहास का, परम तत्त्व कहु सोय।।२०।।
कहहु सर्ग प्रतिसर्ग बखानी। काम्य, त्रिवर्ग विधी मुनि ज्ञानी ।।२१।।
प्रकृति विलीन जीव किमि जाये। बन्धन मोक्ष स्वरूप जनाये।।२२।।
निज माया संग खेल मुरारी। उदासीन द्रष्टा अविकारी ।।२३।।

शरणागत मैं पूंछेंउ तोंही । सब कछु देउ बताये मोहीं ।।२४।।
तुम विरंचि सम होहु प्रमाणा । अन्य कथन नहिं धारिय ध्याना ।।२५।।
नहि मोहि भूख न प्यास सतावा । श्राप विहाइ प्रान नहि जावा ।।
तब मुख सुधा कथा करि पाना । मैं तव शरण परम सुख माना ।।२६।।

सूत उवाच-

राजा प्रश्न किये मन लाई । श्री शुकदेव परम हरसाई।।२७।।
सोइ भागवत पुराण सुनावा । ब्रह्म कल्प हरि विधिंहि बतावा ।।२८।।

दोहा- जो जो पूंछे नृपति वर, पाण्डुवंश कुल भूप ।
सकल सुनाये यति प्रवर, क्रमशः सो अनुरूप ।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

*

।। अथ नवमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- स्वप्नहिं दृष्ट पदार्थ का, होत नहीं सम्बन्ध ।
देंहातीत परात्म से, माया का अनुबन्ध।।१।।

विविध रूपवती है माया । आत्मा तातें विविध जनाया ।।
आत्मा रमत गुणन में जबहीं। मैं अरु मोर जनावत तब हीं ।।२।।
माया काल उभय पर होई। उदासीन गतमोह अछोई ।।३।।
विधिंहि देखाउ रूप भगवाना। परम सत्य उपदेश बखाना ।।४।।
जब स्रष्टा जग सिरजन चाहा। बुद्धि विवेक ज्ञान नहिं थाहा ।।५।।
चिन्तन कीन सुने दुइ व्यंजन । तब 'तप' जानि साध लीने मन ।।
सोलह औरु इकीसे अक्षर। तपहिं तपस्वी मान अनश्वर।।६।।
तब चतुरानन लखि चहुँ ओरा। कीने तप मन लागि कठोरा।।७।।

दिव्य सहस वत्सर तप कीना। मन वच संयत प्राण अधीना ।।८।।

दोहा- तब विरंचि को लेगये, परम धाम भगवान ।
जहाँ क्लेश भय शोक नहिं, देव करत गुण गान ।।९।।
जहाँ त्रिगुण रहते नहीं, वहाँ न माया काल ।
दैव, दैत्य पूजन निरत, अनुगत रहहिं त्रिकाल ।।१०।।

श्याम गात नव नलिन विलोचन। पीत वसन सुन्दर भवमोचन।।
रत्न जटित आभूषण धारी। सुन्दर कान्ति सोह भुजचारी।।
छबि प्रवाल वैदूर्य सुहाये। कण्ठमाल शिर मुकुट सजाये ।।११।।
बिजुरी सोह गगन में जैसे। सोह विमान महामुनि तैसे ।।१२।।
लक्ष्मी पाँय पलोटति जाई। दोलारूढ जबहिं यदुराई।।
विविध विभूति तँह रही विराजा। अलिगन गावत लिये समाजा।।१३।।
देखे विधि तँह रमा निवासा। जगत्पती मखपती विलासा।।
नन्द, सुनन्द, प्रबल सतिभाये। पार्षद रहत दाहिनें बांये ।।१४।।
मुख सरोज पर सुन्दर हासा। अरुण नयन प्रभु दास सुपासा।।
वक्षस्थल शुचि लच्छि विराजा। पीताम्बर, मणि मेचक साजा।।१५।।
उत्तम आसन प्रभु आसीना। शक्ति पचीस घेरि तेंहि लीना ।।
छः ऐश्वर्य मूर्तिधर राजे। चिदानन्द प्रभु रमत विराजे।।१६।।
दर्शन कीन अधिक अनुरागा। विधि शरीर पुलकावलि जागा ।।
चरण कमल बन्दे तब जाई। लोचन आठ प्रेम जल छाई ।।१७।।

दोहा- ब्रह्महिं प्रेम निमग्न लखि, शरणागत तेंहि जान ।
हाथ मेलि, मुसकात मुख, बोले श्री भगवान् ।।१८।।

श्री भगवान् उवाच-

तुम चिरकाल कीन तप भारी। सृष्टि करन इच्छा मन धारी।।
अति प्रसन्न मोहि जान विरंची। मोंहि न भावहिं योगि प्रपंची।।१९।।

वर मांगहु जो कछु मन भावा। अस कछु नांहि जो नाहीं पावा।।२०।।
मम वाणी सुनि करि तप घोरा। पाये दर्शन लोक अछोरा।।२१।।
कर्म विमूढ रहे तुम जबहीं। तप अनुशासन दीना तब हीं।।
तप मम हृदय, मान निष्पापा। आत्मा सकल तपहिं के आपा।।२२।।
तप बल रचउं सकल संसारा। तप ते करउं सृष्टि जर छारा।।
तप से पालन करुं विधाता। तप से मोर शक्ति कर नाता।।२३।।

ब्रह्मोवाच-

दोहा- सब के उर पुर बसहु तुम, साक्षि रूप से ईश।
जीव करन का चाहत, सब जानहु जगदीश।।२४।।

कृपासिन्धु दीजिय सोइ ज्ञाना। अगुण सगुण दूनउं मैं जाना।।२५।।
निजमाया वश धरहु स्वरूपा। सिरजन पालन करहु विरूपा।।२६।।
तव संकल्प अमोघ बखाना। मकड़ी तन्तु बनावइ नाना।।
माधव सोइ मति मोंहि दिलावा। यातें ज्ञान सकल मैं पावा।।२७।।
करहु अनुग्रह मो पर स्वामी। सृष्टि करत नहि गर्व न कामी।।२८।।
हाथ मेलि मोहि मित्र बनाये। करहु कृपा, मोहि मान न आये।।२९।।

श्री भगवान् उवाच-

मै रहस्य तोंहि देंउ बताई। सादर सुनहु विधे! मन लाई।।३०।।
मम गुण रूप कर्म विस्तारा। हमरी कृपा जानु तुम सारा।।३१।।
सृष्टि पूर्व अग-जग मैं नापा। जहाँ न सृष्टि वहाँ मैं व्यापा।।
सत अरु असत् जौन कछु ज्ञाना। अन्त शेष वच सब भगवाना।।३२।।
होइ असत सत्य इव भासा। सो सब माया करु विश्वासा।।३३।।
कारण कार्य जान मोंहि ताता। होंउ प्रविष्ट निविष्ट विधाता।।३४।।
करि अन्वय व्यतिरेक प्रमाना। सब कुछ केवल ब्रह्म बखाना।।३५।।
धरि समाधि सुब जानिहुं सोऊ। कल्प-कल्प तब मोह न होऊ।।३६।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- येहिं प्रकार उपदेश करि, विधिहिं दीन समुझाय।
देखत-देखत अजहिं के, हरि लिये रूप छिपाय।।३७।।

हरिहिं कीन तब विधी प्रणामा। पूर्व कल्प इव रचे ललामा।।३८।।
एक बार यम नियम सँवारे। जन कल्याण विरंचि विचारे।।३९।।
प्रिय सुत नारद सेवा कीन्हा। संयम शील विनय विधि चीन्हा।।४०।।
हरि माया सो जानन चाहा। पितहिं प्रसन्न कीन मुनिनाहा।।४१।।
देखि प्रसन्न प्रजापति देवा। नारद पूंछे, जो तुम खेवा।।४२।।
परम प्रसन्न विधाता तेऊ। दशलक्षण पुराण कहेऊ।।४३।।
सरसुति तट मम पितहि सुनाये। व्यास देव अतिशय मन भाये।।४४।।
जो पूंछेउ तुम प्रश्न अनेका। उत्तर सुनहु पुराण विवेका।।४५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ।।९।।

*

।। अथ दशमोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- इस भागवत पुराण में, सर्ग विसर्ग स्थान।
पोषण, ऊति मन्वन्तर, ईश कथन संधान।।१।।

मुक्ति निरोध आश्रयहु जाना। येहि पुराण मँह कीन बखाना।।
दशम तत्त्व जो आश्रय होई। श्रुति अनुकूल कहौं सब सोई।।२।।
भूतमात्र इन्द्रिय ममकारा। महत्तत्त्व कह सर्ग उदारा।।
सृष्टि चराचर ब्रह्मा कीन्हा। सोइ विसर्ग विबुध के चीन्हा।।३।।
श्री बैकुण्ठ विजय अस्थाना। पोषण श्री हरि कृपा बखाना।।

मन्वन्तर हरि भगति दृढाई। करम बन्ध ऊति कहलाई।।४।।
ईशकथा हरि के अवतारा। करि वर्णन कीने विस्तारा।।५।।
हरि के शयन निरोध बखाना। आत्म ज्ञान कह मुक्ति सुजाना।।६।।
आश्रय को परमात्म बतावा। सर्ग, प्रलय स्थिति जो लावा।।७।।
दैहिक दैविक भौतिक रूपा। परम तत्त्व सोइ ज्ञान स्वरूपा।।८।।
एक अभाव मिले नहि दूजा। आश्रय परम तत्त्व लह पूजा।।९।।

दोहा- अण्ड भेदि निकला पुरुष, आश्रय खोजत जाय।
करि संकल्प विराट तब, शुचि जल सिरजे आय।।१०।।
नर से उत्पत्ति कारने, नार भयो जल नाम।
सहस बरस तामे लहे, नारायण विश्राम।।११।।

द्रव्य कर्म अरु काल स्वभावा। जीव आदि जेंहि कृपा प्रभावा।।
जाहि अनुग्रह सब कछु होई। कीन उपेक्षा मेटत सोई।।१२।।
जागत होन चाह प्रभु नाना। त्रिविध तेज माया उर ताना।।१३।।
भूत दैव अध्यात्म बनावा। एक तेज तब तीन कहावा।।१४।।
देहाकाश तीन बल राँचा। इन्द्रिय, देह मनोबल साँचा।।
सब कर स्वामी प्राण कहावा। बिना ताहि नर मरा बतावा।।१५।।
जिमि अनुचर राजा के पाछे। इन्द्रिय सबल प्राण के आछे।।१६।।
आवत प्राण क्षुधा प्रभु जागी। मुख सिरजे प्रभु मुख्य सुभागी।।१७।।
मुख तें तालु, प्रगट भइ रसना। विविध प्रकार रसन की रचना।।१८।।
बोलन चहत प्रगट भइ आगी। वाणी विषय, नार अनुरागी।।१९।।

दोहा- प्राण वेग से प्रगट भे, नासा छिद्र विराट।
सूंघन इच्छा होत ही, प्रगटे वायु स्वराट।।२०।।

दर्शन रूप चाह भा जबहीं। इन्द्रिय नेत्र भानु भें तबहीं।।२१।।
ऋषि अस्तुति कर जबहिं जगाये। श्रवणेन्द्रिय तब शब्द सुनाये।।२२।।

मृदु काठिन्य शीत गरमाई। जानन चहत चर्म बहिराई।।
यथा वृक्ष धरती पर जामे। त्वचा परस पाये तब चामे।।२३।।
कर्म करन इच्छा जब कीना। उपजे हस्त इन्द्र बल दीना।।२४।।
गति चाहत उपजे पग दोऊ। यज्ञ पुरुष बल दीने सोऊ।।२५।।
प्रगट उपस्थ भोग सुख चाहे। देव प्रजापति रति सुख बाढे।।२६।।
गुदा प्रगट मलत्याग के हेतू। मित्र देव पायू तेहि केतू।।२७।।

दोहा- नाभिद्वार से प्रगट भा, वायु अपान समान।
मृत्युदेव के कारने, जात क्षणहि में प्रान।।२८।।

संग्रह अन्न कोख मँह होई। उदधि, नदी, पुष्टी सब सोई।।२९।।
माया सोचि हृदय उपजाये। सकल काम मन चन्द्र बताये।।३०।।
पृथ्वी जल अरु तेज प्रभावा। मज्जा त्वचा अस्थि बनि आवा।।३१।।
इन्द्रिय सकल गुणात्मक जाना। उपजत विषय कोख अभिमाना।।
निखिल विकार मनहिं में जायें। बुद्धि पदार्थ ज्ञान उपजायें।।३२।।
आठ आवरण धरे शरीरा। पृथ्वी आदि विराट प्रवीरा।।३३।।
आदि मध्य अरु अन्त न होई। प्रभु अव्यक्त अजन्मा सोई।।३४।।
प्रभु माया निर्मित दोउ रूपा। सूक्ष्म स्थूल स्वरूप अनूपा।।३५।।

दोहा- शब्द अर्थ के रूप में, वाचक वाच्य प्रमान।
कबहूँ ब्रह्मा बनि सृजत, पालत जग भगवान।।३६।।

मनू प्रजापति पितर कहाये। देव, सिद्ध चारण गुन गाये।।३७।।
किन्नर, असुर, यक्ष अरु नागा। रक्ष, पिशाच, मातृकुल जागा।।३८।।
यातु धान बेताल ग्रहादी। खग मृग पशू सरीसृप आदी।।३९।।
सकल चराचर जलचर नाना। अण्डज स्वेदज जीव जहाना।।४०।।
कर्म सदृश लह विविध शरीरा। अकुशल कुशल धीर गंभीरा।।४१।।
सोइ भगवान लेंहि अवतारा। धर्म रूप सुर मनुजाकारा।।

धारण पोषण जगत उबारा। पशु पक्षी तनु विविध प्रकारा ।।४२।।
पाइ समय सोइ प्रलय कराहीं। रूद्र रूप जिमि बादल आंहीं ।।४३।।
ज्ञानी पुरुष बतावे जोई। इनसे परे ब्रह्म सो होई ।।४४।।
सृष्टि आदि नहि ईश्वर कर्मा। मायारोपित नाना धर्मा ।।४५।।
ब्रह्म कल्प कर कहेंउ स्वरूपा। सकल कल्प सर्जन समरूपा।।
प्राकृत सृष्टि नाहिं कछु भेदा। वैकृत सृष्टि नवीन अखेदा।।४६।।

दोहा- कालमान अरु कल्प कँह, मन्वन्तर आख्यान।
आगे वर्णन होइ हैं, पद्म कल्प सुनु ध्यान ।।४७।।

शौनक उवाच-

परम भक्त भगवान के, विदुर छाँडि घर छोह।
दुस्त्यज नेह कुटुम्ब तजि, विचर तीर्थ गत मोह।।४८।।
ऋषि मैत्रेय मिले कहाँ, कहाँ हुआ सत्संग।
कहाँ तत्त्व उपदेश भा, वर्णहु सकल प्रसंग।।४९।।

कहहु विदुर घर कांहे छोड़े। अन्त काल फिर कांहे जोड़े ।।५०।।

सूत उवाच-

यही प्रश्न नृप किये विचारी। सुनि शुकदेव कहे सुविचारी।।
सो सब कहि हों चरित बखानी। सावधान सुनु ऋषि मुनि ज्ञानी।।५१।।

।। इति श्री मद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः।।१०।।

*

इति श्रीमदाचार्यभानुदत्तपाण्डेयसूनुना आचार्यगायत्रीप्रसादपाण्डेयेन
कूराडीह, प्रतापगढ, लब्धजन्मना काशीवास्तव्येन पंक्ति पावन कुलावतंसेन विरचिते
श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य हिन्दी भाषा दोहा चौपाई रूपान्तरणे
द्वितीयः स्कन्धः सम्पूर्णः।
भगवदर्पणमस्तु।

**

।।श्रीगणेशाय नमः।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरण

दशम स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच–

सोरठा–कहेउ वंश विस्तार, सूर्य चन्द्र दोउ वंश का।
राजा परम उदार, अद्भुत जिनके शुभ चरित।।१।।
धरम शील यदुवंश उदारा। राम कृष्ण जंह लिये अवतारा।।
विष्णु अंश प्रकटे यदुराई। श्री बलराम जासु बड़ भाई।।२।।
जो कुछ चरित कीन भगवाना। कहहु कृपा करि कृपा निधाना।।
विगत – तृषा जन गावहिं नीके। मोक्षकाम भवरोग अमी के।।३।।
श्रवण सुखद मन हूँ हरषाई। होइ विरत को बिना कसाई।।
जबहिं समर भा अतिशय भारी। दुस्तर सागर सैन्य मंझारी।।४।।
देवजयी भीष्मादि तिमिंगिल। करत युद्ध दारुण सब मिल।।
कृष्ण चरण नौका करि लीन्ही। गो पद सिन्धु पितामह कीनी।।५।।
दोहा– द्रोण-पुत्र के शस्त्र से, जरा जबंहि मम गात।
माता के तब कोख में, हरि रक्षेउ मुसकात।।
कौरव पाण्डव बीज इव, रहेंउ वंश धर एक।
शरन गई जननी मम, उर धरि भगति विवेक।।६।।

देह धरंहि येहि जग में जेते। जीवन मृत्यु देंहि प्रभु तेते।।
माया मनुज रूप यदुराई। कहहु पराक्रम मोहि बुझाई।।७।।
रोहिणि तनय कहे बलरामा। पहले देवकि गर्भ - बखाना ।।८।।
पिता-सदन तजि हरि व्रज गयऊ। गोप-बन्धु संग कंह कंह रहेऊ ।।९।।
व्रजंहि बसत क्या किये मुरारी। मथुरा जाइ कंश उद्धारी।।१०।।
मानुष तनु धरि कृष्ण मुरारी। कितने बरस रहे असुरारी ।।
यादव पुरी रहत यदु नाथा। कितनी पत्नी किये सनाथा।।११।।
जो पूंछेउ नहि पूंछेउ जोऊ। श्रद्धा सहित कहउ प्रभु सोऊ।।१२।।

सोरठा-दुःसह भूख न प्यास, वारि तजत अब लागु मोंहि।
पिवत कथामृत तात, झरत सदा तब मुख कमल।।१३।।

सूत उवाच-

मुनि शुकदेव प्रश्न सुनि नीका। आदर कीन परीक्षित जीका।।
कृष्ण कथा कलि कल्मष हरनी। लीला चरित सकल मुनि बरनी।।१४।।

श्री शुक उवाच-

राजन! बुद्धि अमल तुम पाई। कृष्ण कथा तब रति अधिकाई ।।१५।।
कृष्ण कथा मल नाशिनि गंगा। तीनिउ तारइ तरल तरंगा ।।
प्रश्न करे जो शुभ मन लाई। श्रोता वक्ता सब तरि जाई।।१६।।
जबंहि नृपति सब भये सुरारी। दबी भार धरती तब भारी ।।
धरती धरी धेनु कर रूपा। गई जहाँ ब्रह्मा विधि भूपा।।१७।।
अश्रु नयन धरनी तंह आवा। करुण कथा सब विधिंहि सुनावा।।१८।।

दोहा- धेनु साथ लइ देव संग, क्षीर पयोनिधि तीर।
शम्भु सहित विंरचि तब, आये परम अधीर।।१९।।

जाइ तहाँ विधि अस्तुति कीन्हा। पुरुष सूक्त पढ़ि हरि पद चीन्हा।।
लागि समाधि, सुनी नभ-वाणी। करहु वेगि जस कह कल्याणी।।२०।।

प्रभु अवतरंहि हरन महि भारा। यदुकुल जन्महु सुरगण सारा।।
जानत धरा-विपत्ति मुरारी। काल शक्ति हरिहैं भय भारी।।२१।।
जब वसुदेव सदन श्रीधामा। लेंहि जनम, प्रभु पूरण कामा।।
तेंहि प्रिय लागि देव तिय सारी। लेहु जनम व्रजभूमि निहारी।।२२।।
वासुदेव कंह कला अनन्ता। पहिलेंहि जन्म शेष भगवन्ता।।२३।।
हरि माया मोहित जग सारा। प्रभु निदेश तिन लिये अवतारा।।२४।।

श्री शुक उवाच-

दोहा- देवन्ह सब आदेश करि, धरनिहुं धरि विश्राम।
सकल प्रजापति के पती, गये विरंचि निज धाम।।२५।।

सूरसेन यदुकुल के राजा। मथुरा बस सब पाल समाजा।।२६।।
तबंहि लागि यादव रजधानी। मथुरा भई विष्णु पद मानी।।२७।।
शूर तनय वसुदेव सुहाये। रथ बैठे गवना करवाये।।२८।।
उग्रसेन सुत कंस सुरारी। भगिनी-हित हय रास सम्हारी।।२९।।
स्वर्ण-जटित हीरक मनहारी। दिये अलंकृत गज शत चारी।।
दश अरु पाँच सहस हय दीन्हे। सहस अष्ट शत रथ नृप कीन्हे।।३०।।
दासी दुइ सत सब सुकुमारी। दीन्हे नृपति पुत्रि-हितकारी।।३१।।
शंख मृदंग दुन्दुभी बाजी। नव दम्पत्ति अतिशय प्रिय लागी।।३२।।

दोहा- मार्ग जात नभ शब्द भा, मूर्ख ! जिसे ले जात।
अष्टम इसकी सन्तती, हरे प्राण तव गात।।३३।।

व्योम गिरा सुनि कंस कराला। भगिनि केश गहि खड्ग निकाला।।३४।।
क्रूर कर्मरत कंसहि देखा। संयत कह वसुदेव विशेखा।।३५।।

वसुदेव उवाच-

भोजवंश शुभ कीर्ति बढ़ावन। बहिनि हते पर लोक-नसावन।।३६।।
जन्मत मृत्यु सुनिश्चित होई। आजु युगान्त अटल सुनु सोई।।३७।।

जीव कर्मवश तजइ शरीरा। केंचुल छोड़इ जिम बन कीरा।।३८।।
एक पैर रखि पुनि नर दूसर। यथा उठावहि राखहि भू पर।।
यथा जोंक त्यागइ तृन पाछे। एक गहइ तिमि जीवहिं गाछे।।३९।।

दोहा- यथा मनोहर चित्तधरि, स्वप्न देखि मैं भूप।
करि चिन्ता सोइ होत वह, जीव तथा तद् रूप।।४०।।
धावत विविध विकार मंह, हरि प्रेरित मन जाइ।
अन्त काल जस मति रहै, तस शरीर सो पाइ।।४१।।

यथा प्रकाश भूमि जल पाई। वायुवेग चंचल दिखलाई।।
एहि विधि मानइ जीव शरीरा। माया रचित राग वश वीरा।।४२।।
एहिं ते द्रोह करहु जनि शोकू। एहि जग शत्रु, भीत पर लोकू।।४३।।
देवकि तब पुत्री सम बाला। हनन योग्य नहि कृपा विशाला।।४४।।

श्री शुक उवाच-

भेद साम कहि बहुरि-बुझावा। वसुदेवंहि खल कंश दुरावा।।४५।।
देखि कंस-हठ, मृदु बोली वानी। शुभ वसुदेव काल-हित जानी।।४६।।
करि प्रयत्न भलु टारइ मीचा। तदपि न टरइ, लहइ नहि नीचा।।४७।।
मन सोचउ वसुदेव विचारी। सुतन कंस दइ, मोचिंउ नारी।।४८।।
होइ विपर्यय अथवा भारी। विधि-विधान को जान अनारी।।४९।।

दोहा- यथा अनल बन लागत, दूर-पास बचि जांहि।
तथा देह संयोग सब, जानि सके को आंहि।।५०।।

येंहि सब सोच कीन्ह मनलाई। पापिंह शौरि प्रशंसे जाई।।५१।।
हर्षित वदन बोले वसुदेवा। दुखी हृदय जनु खल जन सेवा।।५२।।

वसुदेव उवाच-

नभ वाणी सुनि भय मत करहू। देइहंउ पुत्र जात मैं सबहू।।५३।।

श्रीशुक उवाच-

कहा शौरि कंह मृषा न होई। जानत कंस भलीविधि सोई ।।
त्यागा भगिनि-घात बलवाना । शौरि चले निजगृह सुख माना ।।५४।।
समय पाइ देवकि सुत जाये। आठ पुत्र एक कन्या पाये।।५५।।
प्रथमहि कीर्तिमन्त सुत आनी। दिये कंस कह ऋत अभिमानी।।५६।।

दोहा- साधुन का नहि सहि सकें, पण्डित केंहि अनसाय।
कायर का नहि करि सकें, त्यागिहि का न छुड़ाय।।५७।।

देखा सत्यसन्ध वसुदेवा। कंस प्रसन्न कहा हँसि खेवा ।।५८।।
जाइ सदन बालक सुकुमारा। अष्टम सुत मम मृत्यु विचारा।।५९।।
शौरि साधु! कहि बालक लाये । दुष्ट जानि कछु नहि पतियाये ।।६०।।
नन्द शौरि व्रजवासी जेते । वृष्णि वंश देवकी पुनीते ।।६१।।
सकल देवमय सब असुरारी । सेवा निरत बन्धु नर-नारी।।६२।।
यह समुझाइ कंस कंह नारद । भूमि भार भय हरन विशारद ।।६३।।
कंस सदर्थि ऋषी चलि गयऊ । देवकि गर्भ विष्णु अवतरेऊ ।।६४।।
देवकि शौरि बाँध तब लीन्हा । कारागृह मंह वन्दी कीन्हा।।६५।।
विष्णु समुझि सब शिशुगण मारे । पापी पाप करंहि अविचारे।।६६।।

दोहा- मातु पिता अरु बन्धुगण, मित्र सकल अनुकूल।
निज स्वारथ को कारने, नृपति बधैं प्रतिकूल ।।६७।।
काल नेमि गत जन्म में, रहेंउ हते तब विष्णु।
कंसहि सुधि आपन चरित, यदुकुल से असहिष्णु।।६८।।
भोजान्धक यदु नृपति तब, उग्रसेन बलवान्।
डारि तिनहि कारागृह, करत नित्य अपमान ।।६९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे प्रथमोऽध्यायः।।१।।

*

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

बक चाणूर तृणावर्त प्रलम्बक । मुष्टिक अरिष्ट द्विविद अरु धेनुक ।।१।।
भौमासुर वाणासुर नाना । संग कंस यदुवंश निशाना ।।२।।
पीडित सब यदुकुल छितराना । कुरु पंचाल विदर्भ विहाना ।।३।।
कुछ जन सेंवहि मानि अराती । नृप देवकि के छःसुत घाती ।।४।।
सप्तम गर्भ अनन्त विराजे । हर्ष शोक उर देवकि छाजे।।५।।
जानेउ हरि कंस रिपु त्रासा । निज माया की कीनी आशा ।।६।।

दोहा– जाहु देवि ! व्रज भूमि तुम, गोप गोपि अनुकूल ।
जहाँ वसत वसुदेव पुनि, धर्म रोहिणी मूल ।।
भीत कंस से रहत तँह, नारीगण दुःखभूल ।।७।।

देवकि गर्भ मम तेज विराजा । शेष धाम बलराम तहाँ जा ।।
देवकि उदर तुरन्त निकारहु । रोहिणि–जठर शेष कंह डारहु ।।८।।
अंशधारि देवकि सुत होइहौं । तुमहु यशोदा सुता कहइहों ।।९।।
पूजिहिं तुमहि मनुज मनलाई । धूप पुष्प बलि आदि चढ़ाई ।।१०।।
नाम अनन्त कंहहि जग तोरा । दुर्गा विजया काली गौरा।।११।।
कुमुदा कृष्णा माधवि कन्या । ईशानी शारदा अनन्या ।।१२।।
संकर्षण ते संकर्षण नामा । लोक रमण बल ते बलरामा।।१३।।

दोहा– श्री हरि के सन्देश मुनि, माया कीन प्रणाम ।
लीन प्रदक्षिण नाय शिर, पूर्ण किये सब काम ।।१४।।

देवकि – गर्भ रोहिणी डारी । गर्भ गिरा यह प्रजा विचारी ।।१५।।
प्रभु व्यापक सब मनहि समाना । शौरि मनस प्रकटे भगवाना।।१६।।
प्रभुहिं तेज वसुदेव समाना । सूर्य सदृश भे तेज निधाना ।।१७।।
मंगल तेज देवकी धारा । शौरि निहित वसु तेज अपारा ।।

प्राची दिक् धारहि विधु जैसे। सोह देवकी अनुपम तैसे।।१८।।
जगत् निवास वास भई रानी। कारावास न जाइ बखानी।।
रुद्ध प्रकाश सोह नहि आगी। ज्ञान खलंहि विद्या जिमि लागी।।१९।।
देवकि - प्रभा कंस घबराया। सोचा प्राणहरन हरि आया।।२०।।

दोहा- अब मेरा करणीय क्या, सोचत कँस अधीर।
गर्भ सहित भगिनी हनन, हरे आयु श्री वीर।।२१।।

जीवत मनुज मरा सम माना। अति नृशंस पातकी समाना।।
मरे देह नित पावइ शापा। नरक योनि भो गइ परितापा।।२२।।
क्रूर विचार कंस तब त्यागा। वैर भाव हरि जोहन लागा।।२३।।
बैठत-उठत सोवत जागत हू। कृष्णमेव देखत दिशि दसहू।।२४।।
ब्रह्मा शंकर नारद आये। देव सहित अस्तुति सब गाये।।२५।।
सत् संकल्प सत्य भगवाना। सत्य छाँड़ि साधन नहि आना।।
सर्ग स्थिति लय एक समाना। सत्य तुमहि प्रभु कृपा निधाना।।
सत्यहुं कंह तुम सत्य अनन्ता। सत्य शरण आयंउ श्रीकन्ता।।२६।।
एक सनातन तरु संसारा। एकइ आयन प्रकृति उदारा।।
तीन मूल दुइ फल हैं जाके। चारिउ रस पुरुषारथ ताके।।
इन्द्रिय पाँच स्वभाव छः नाना। सप्त धातु तरु त्वचा विताना।।
शाखा आठ द्वार नव बरना। पत्ते सम दस प्राण वितरना।।
जीव-ईश दुइ पक्षी सोहा। यह तरु देख यती नहि मोहा।।२७।।

दोहा- तुमहि सृष्टि आधार प्रभु, तुमहि अनुग्रह रूप।
तब माया मोहित मनुज, पूजंहि देव स्वरूप।।२८।।
ज्ञान रूप परमात्म हरि, धारत विविध स्वरूप।
सन्त देत सुख नूतन, खलंहि दण्ड अनुरूप।।२९।।

कमल नयन अतुलित बल धामा। प्रभुंहि बिलोकत धरि उर ध्याना।।

चरण कमल लै नाव दृढ़ाई। भव सरि तरहिं वच्छ-पद नाई।।३०।।
भक्ति-रहित जे शरण न गह हीं। ऊपर उठि ते नीचे गिरहीं।।३१।।
तुम रक्षक जिनके प्रभु रहहू। निर्भय ते विचरत जग रहहूँ।।३२।।
शुद्ध सत्त्वमय देह तुम्हारी। चिदानन्द मय मंगलकारी।।३३।।
योग - समाधि वेद-विधि द्वारा। भक्त लहहिं तब चरण सहारा।।३४।।
सत्त्व आदि गुण तीन तुम्हारे। तुमहि पाइ करते उजियारे।।
सत्त्व ज्ञान मय रूप न होई। प्रभो! ज्ञान किमि पावै कोई।।३५।।

दोहा- वेद वचन अनुमापक, दृश्य होइ नहि रूप।
साक्षी द्रष्टा तुम स्वयं, भक्त उपास्य स्वरूप।।३६।।

श्रवण मनन कीर्तन जे करहीं। नाम रूप मंगल उर धर हीं।।
चरण कमल सेवा चित धरहीं। जन्म-मृत्यु के फेर न परहीं।।३७।।
तब पद कमल धरनि यह सोहा। तब अवतार सकल जग मोहा।।
भार-हीन धरणी तुम कीना। तब पद चिह्न स्वर्ग धरि लीना।।३८।।
अज अनादि तब जन्म न होई। लीला मात्र करें प्रभु सोई।।
द्वैत रहित सब आश्रय रूपा। सर्ग प्रलय स्थिति आरोपा।।३९।।
मत्स्य अश्व कच्छप नर भूपा। धरे नृसिंहहि रूप अनूपा।।
धरनि भार हरि हमहिं उबारे। यदुनन्दन बनि आओ प्यारे।।४०।।

दोहा- बड़े भाग्य तब कोख मंह, आये श्री भगवान।
कंस काल वस, भय नहि, अम्ब कीजिये ध्यान।।४१।।

श्री शुक उवाच-

दोहा- येंहि विधि सब अस्तुति करि, पूर्ण कीन निज काम।
शिव विरंचि सब देवगण, गये तुष्ट निज धाम।।४२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे- दशम स्कन्धे पूर्वार्धे द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

*

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच –

दोहा- आयउ समय सुशोभन, सभी गुणों से युक्त ।
शुभ रोहिणि नक्षत्र या, सौम्य गगन उन्मुक्त ।।१।।
सभी दिशायें स्वच्छ थीं, निर्मल तारे पुष्ट ।
मंगल मय पृथ्वी हुई, व्रज मण्डल सन्तुष्ट ।।२।।

निर्मल सरिता सलिल सुहाये । कमल खिले भँवरे मंड़राये ।।
वन उपवन बहु सुमन लुटाये । कलरव खगकुल कर हरषाये ।।३।।
शीतल सुरभित बहे बयारी । अग्नि जली द्विजगण हितकारी ।।४।।
सज्जन मन हरषित अति भाये । बजी दुन्दुभी बिना बजाये ।।५।।
चारण सिद्ध किन्नर गन्धर्वा । नृत्य करहिं अप्सरा सर्वा ।।६।।
मन्द-मन्द नभ गर्जेहिं मेघा । बरसहिं सुमन देवगण बेधा ।।७।।
अर्धरात्रि तम रहा प्रचारी । प्रकटे विष्णु मोह भय हारी ।।
प्राची दिशि विधु सोहइ जैसे । देवकि गर्भ प्रकट हरि तैसे ।।८।।
कमल नयन भुजचारि विशाला । शंख चक्र शोभित वन माला ।।
कौस्तुभ मणि कल-कण्ठ विराजा । श्याम गात पट पीतंहि छाजा ।।९।।
कुण्डल मुकुट वैदूर्य सुहावा । अलक जाल सुन्दर लहरावा ।।
कल किंकणि शोभित करधनी । भुज भुजबन्द लखे नर मनी ।।१०।।
वसुदेंवहि तब विस्मय भयऊ । कृष्ण जन्म लखि हर्षित दयऊ ।।
मनसा दस सहस्त्र गो दाना । किये संकल्प देन विधि नाना ।।११।।
करि निश्चय वसुदेव, मुरारी । करत प्रकाश अमंगल हारी ।।
हाथ जोड़ि शुभ अस्तुति कीन्हा । नारायण जन्मे तब चीन्हा ।।१२।।

वसुदेव उवाच–

सोरठा-अब समझेउं मैं नाथ, प्रकृति पार पुरुषोत्तम।
केवल अनुभव गम्य, एक मात्र द्रष्टा मतिन्ह ।।१३।।
निज माया से देव, करहु सृष्टि त्रिगुणात्मिका ।
विनु प्रविशे सर्वत्र, भासहु मनहु प्रविष्ट इव ।।१४।।
दोहा- महत्तत्व कारण पृथक् पृथक् रहें विलगाय।
तब लौं उनकी शक्ति भी, विलग रहे निरुपाय ।।१५।।
इन्द्रियादि सोलह मिलें, देइ विरच ब्रह्माण्ड।
पहले से उसमें रहे, याते रहे अखण्ड ।।१६।।
बुद्धि करइ गुण कंह अनुमाना। इन्द्रिय ग्रहै विषय गुण नाना ।।
यद्यपि आप रहहु गुण माहीं। इन्द्रिय गोचर प्रभु तुम नाहीं।।
रहहु अनावृत अन्दर - बाहर। अन्तर्यामी सत्य उजागर।।१७।।
मानइ सत्य गुणन अविवेकी। निज से पृथक सत्य व्यतिरेकी।।
विनहि विचार सिद्ध लगि जोई। सत्य कहे सो मूरख होई ।।१८।।
यद्यपि प्रभु! गुण क्रिया विकारा। रहित तथापि सृष्टि लय सारा ।।
नहि विरुद्ध परमात्मन ! तोंहीं। गुण निधान आरोपित सोंही ।।१९।।
जग रक्षक सत गुण तुम धारहु । शुक्ल वर्ण मायावस पारहु ।।
सृष्टि हेतु रज गुण तुम धारी । कृष्ण तमोमय प्रलयंकारी ।।२०।।
दोहा- करन लोक रक्षा विभो! मम गृह लिय अवतार।
असुर कोटि राजा चमू, मारि करिय उद्धार ।।२१।।
सोरठा-पापी कंस असभ्य, सुनत जन्म तव चर मुखनि।
आइह कर ले शस्त्र, जिनहि हते तव भ्रातृ गण ।।२२।।

श्री शुक उवाच-

सुत देखत मन कीन विचारा। निश्चय विष्णु लिये अवतारा ।।
कंस भीत देवकि सकुचाई। स्तुति कीन विनय अधिकाई।।२३।।

देवकी उवाच-

आदि अव्यक्त रूप जो गावा। ब्रह्म ज्योति निर्गुण कहलावा।।
सत्ता रूप विशेषण - हीना। विष्णु प्रकाशक बुद्धि प्रवीना।।२४।।
ब्रह्मा दुइ परार्ध बुढ़ाने। महाभूत मिलि प्रकृति समाने।।
तब तुम शेष रहेउ भयहारी। अतः शेष एक नाम मुरारी।।२५।।
कालहु लीला रूप तुम्हारा। जिहि सचेत कीना जग सारा।।
निमिष-वर्ष सब गणना जाकी। शरण गहों मैं चरणन ताकी।।२६।।
मृत्यु कराल सर्प भयभीता। भागत जीव योनि विपरीता।।
जे तब चरण गहे असुरारी। होइ स्वस्थ भय भागत भारी।।२७।।
दास सकल संकट तुम टारे। हरहु कंस भय पाहि मुरारे।।
ध्यान योग्य यह रूप तुम्हारा। चर्म-चक्षु नहि देखन हारा।।२८।।
कंस भीत मैं मांगउ तोहीं। पापी जान न पावे मोहीं।।२९।।
विश्वरूप! निज रूप छिपावहु। चारि भुजा सब अस्त्र दुरावहु।।३०।।

दोहा- प्रलय काल निज पेट में, धरइ विश्व प्रभु जोइ।
लीला वश मम गर्भ से, प्रगट भये शुभ सोइ।।३१।।

श्री भगवान् उवाच-

पूर्व जन्म मैं बरनऊ तोरा। कालहु पाइ सकइ नहि ओरा।।
स्वायम्भुव मन्वन्तर माहीं। पृश्नी तुम सुतपा पति ताहीं।।३२।।
कहेउ विधाता सर्जन करहू। शम-दम धारि युगल तप करहू।।३३।।
घाम वात वर्षा शिशिराई। सहत परम निर्मल मति पाई।।३४।।
गिरे पात अरु वात अहारा। कीन्हे तप मम कीन सहारा।।३५।।
बारह सहस बरस तब बीते। दिव्य तपस्या प्रीत पुनीते।।३६।।
निशि दिन करत ध्यान तुम रहेऊ। तब मैं तुष्ट युगल पर भयऊं।।३७।।
वर मागहुं कहि प्रकटेउ जब हीं। ममहि सरिस सुत मागेउ तब हीं।।३८।।

दोहा- मम माया मोहित युगल, विषय-विकार विहीन।
नहि मागें तब मोक्षतुम, जो मांगा, सोइ दीन।।३९।।

सुफल मनोरथ भये तुम्हारे। विषय भोग मँह तुम मन धारे।।४०।।
नहि पायेंउ निज सम जब काहू। पृश्नि गर्भ सुत जन्मेउ ताहू।।४१।।
कश्यप अदिति भयउ पुनि दोऊ। वामन होइ प्रकटेउं मैं सोऊ।।४२।।
तीसर जनम भयो तुम पाये। सत्य वचन मम मृषा न जाये।।४३।।
रूप देखि सुधि तिनिउ आवा। मम इच्छा सुधि तुमहि करावा।।४४।।
पुत्र भाव मोंहि देखेउ माई। ब्रह्म भाव सुठि ज्ञान कराई।।४५।।

श्री शुक उवाच-

दोहा- निज माया प्रभु धारेउ, बालक रूप सुजान।
देखत माता-बाप के, प्राकृत शिशु अज्ञान।।४६।।
हरि प्रेरित वसुदेव तब, सूतीगृह बहिराय।
जब चाहा जाना तबहिं, माया नन्दहिं आय।।४७।।

वृत्तिन्ह हरि लीन्ही तब माया। द्वारपाल पुर ग्राम निकाया।।
द्वारन लगी अर्गला भारी। खुले-कपाट श्रृंखला सारी।।४८।।
सूर्य यथा नासइ तम सारा। बालकृष्ण युत शौरि प्रचारा।।
मन्द गरजि बरसइ नभ मेघा। शेष दिखाबइ फनधरि नेहा।।४९।।
तरल तरंग सूर्यजा देखा। दीन मार्ग उर हर्ष विशेषा।।५०।।
पहुँचि नन्द घर सोबत पाये। सुतहिं यशोदा शयन सुताये।।
लीनी सुता नन्द गृह पाई। बन्दीगृह वसुदेव पराई।।५१।।

दोहा- शयन-देवकी रखि तभी, कन्या ललित ललाम।
हांथ-पांव पुनि बाँधि के, शौरि किये विश्राम।।५२।।
सन्तति है कोई हुई, जानि न सकी अचेत।।
पुत्री है या पुत्र है, जसुमति नहीं विवेक।।५३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे तृतीयोऽध्यायः।।३।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्री शुक उवाच–

बाहर भीतर पुर दरवाजे । लगी अर्गला बन्द सब साजे ।।
बालक रुदन सुनत घबराये । गृह रक्षक दौड़े सब आये ।।१।।
कंस रहा उत्सुक अति भारी । सन्तति भा गृहपाल उचारी ।।२।।
आसन उठि खल धायउ जबहीं । गिरत पड़त कंलगी उड़ि तबहीं ।।३।।
देवकि तब बोली मृदु वाणी । मत मारो दुहिता कल्याणी ।।४।।
अग्नि तुल्य बालक सब मारे । लड़की एक तजहु तुम प्यारे ।।५।।
मैं हूँ छोटी बहिन तुम्हारी । अन्तिम सन्तति देहु हमारी ।।६।।

श्री शुक उवाच–

दोहा– सुता छिपाये अंक में, रोवति देवकि भींच ।
याचक को फटकार के, लिया कंस ने खींच ।।७।।
चरण पकड़ नवजात का, दीन्ह शिला पर फेंक।
स्वारथ वस वह पातकी, सौहृद दीना मेट ।।८।।
हाथ छिटक वह कंस का, देवी गई अकाश ।
अष्टभुजा कर शस्त्र गहि, किया मन्द मृदु हास ।।९।।

धनुष त्रिशूल चक्र असि धारी । दिव्यमाल्य शुचि भूषण भारी ।।१०।।
चारण किन्नर गन्धर्व बहोरी । अस्तुति करत रहत कर जोरी ।।
बलि चढ़ाइ उपहार चढ़ावा । बोली कंसहि वचन सुनावा ।।११।।
मूढ़ हते मोंहि का मिलि जाहीं । तब हन्ता जन्मा जगमाहीं ।।१२।।
असि कहि माया गगन सिधारी । नाम अनेक भुवन भा भारी ।।१३।।
कंस सुनत अति विस्मित भयऊ । बन्धन खोलि कहत अस रहऊ ।।१४।।
अहह भगिनि तात मैं नीचा । असुर सदृश तब सन्तति मीचा ।।१५।।
मै अकरुण जैहों किन लोका । भाइ-बन्धु सबही ने टोका ।।१६।।

दोहा- नहीं मनुज ही बोलते, देव बोलते झूंठ।
ऐसे ही विश्वास करि, हते बहिन के ढूंठ ।।१७।।

तजहु शोक सुत कंह तुम ताता । सदा जीव संग देइ न धाता ।।१८।।
यथा पदारथ बहु बनि जांही । तत्त्व एक रज अचरज नाहीं ।।
तथा देह यह बहुरि बनावा । आत्महि कबहुँ प्रभा उन आवा ।।१९।।
जानहिं देह आत्म अभिमानी । जनन-मरण पावंइ अज्ञानी ।।२०।।
यद्यपि मैं मारेंउ सुत तोरा । कर्म-विवश सब दोषु न मोरा ।।२१।।
कोऽ मोंहि मारा, मैं केहुं मारा । यह अज्ञान विदित संसारा ।।२२।।
मम अपराध छमहुं तुम साधू । साधुन सब पर प्रेम अगाधू।।२३।।
अस कहि कंस, देवकी देवा । पकड़े पाँव कीन बहु सेवा ।।२४।।
जब परिताप देवकी देखा । क्षमा कीन दम्पत्ति सविशेषा ।।२५।।
सत्य कहहु तुम कंस पियारे । आपन-आन भेद कैसा रे ।।२६।।
भेद दृष्टि कंह दीन दिखाई । हर्ष शोक भय द्वेष लड़ाई ।।२७।।

श्री शुक उवाच-

दोहा- जबहिं देव वसु देवकी, बात हुई निष्काम ।
लै अनुमति तब युगल की, कंस कीन प्रस्थान ।।२८।।

गई रात तब कंस बुलावा । मन्त्रिन माया कथन सुनावा ।।२९।।
कंस बचन सुनि दानव भाखे । मूरख सब देवन के माखे ।।३०।।
भोजपती तुम बोलहु नीके । जइहौ व्रज पुर ग्राम सभी के ।।
दस दिन लागि जनमि जो बालक । हनि हौं सब कंह सुरकुल घालक।।३१।।
समर डरें सब सुरगण जाके । लड़िहै का तुमसे वे खा के।।
धनुष-घोष सुनि डरपत देवा। चाहत करन तुम्हारी सेवा ।।३२।।
समर भूमि तव शर के मारे। चाहत प्राण बचावन सारे ।।३३।।

दोहा- शस्त्र त्यागि कर जोड़ि के,बोलत बचन-विनीत ।
केश खोलि शरणागत, सुरगण सकल सभीत ।।३४।।
नहि मारहु तुम विरथ को, भूलेहि शस्त्र प्रयोग ।
जिनके टूटे धनुष हों, विमुख हुये जो लोग ।।३५।।

शूर बीर सब देव कहाहीं । जहाँ कतहुँ कछु झगड़ा नाहीं ।।
रहत अकेल विष्णु कस बीरा । शम्भु सदा बनवासि अधीरा ।।
सदा तपस्या करत विधाता । दुर्बल इन्द्र होइ किमि त्राता ।।३६।।
तदपि देवगण शत्रु हमारे । करउं निमूल देहु बल सारे ।।३७।।
बिनु उपचार रोग तनु बाढ़ा । होइ असाध्य पिये बिनु काढ़ा ।।
तथा उपेक्षित रिपु गण बढ़हीं । इन्द्रिय यथा असंयत रहहीं ।।३८।।
विष्णु सकल देवन कर मूला । जहाँ सनातन धर्म समूला ।।
धर्म मूल गो ब्राह्मण भाई । वेद यज्ञ तप देहु ढहाई ।।३९।।
ब्राह्मण गाय तपस्वी मारेहु । यज्ञ याग विधि सब संहारेहु ।।४०।।

दोहा- विप्र धेनु श्रुति सत्य तप, इन्द्रिय दमन विवेक ।
श्रद्धा क्षमा तितिक्षा, विष्णु देह सब एक ।।४१।।
दोहा- असुर विरोधी विष्णु है, ब्रह्मा शम्भु समेत ।
तिनकी जड़ ऋषि हैं सभी, बधहु तिनहि समवेत ।।४२।।

श्री शुक उवाच–

दुष्ट मित्र संग कीन मन्त्रणा । धरती–सुरन्ह दीन यन्त्रणा ।।४३।।
इच्छारूप निशाचर धर हीं । भेजेउ कंस सभन दिशि दशही ।।४४।।
मूढ़ जिनहि सिर कालहिं आवा । सन्त द्वेष वस कीन बनावा ।।४५।।

सोरठा-कीरति लक्ष्मी आयु, लोक भोग पर लोक सब ।
तिनके नासत क्षेम, करहिं निरादर बड़न जे ।।४६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे-पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच–

पुत्र जन्म सुनि नन्द सुजाना। विप्र बोलाइ किये अस्नाना।।१।।
विप्र पढ़त सब वेद सुहाये। सविधि देव अर्चन करवाये।।२।।
युग्म लक्ष कीने गोदाना। सभी अलंकृत एक समाना।।
तिल पहाड़ दिये सात सुजाना। वस्त्र विभूषित भूषण नाना।।३।।
द्रव्य शुद्धि जेंहि कारण होई। समय नहान शौच कह सोई।।
यज्ञ दान तप अरु संस्कारा। आत्मा ज्ञान गम्य अविकारा।।४।।
मंगल गिरा विप्रजन गावा। मागध बन्दी सूत बधावा।।
दुन्दुभि बजी सधी चहुंओरा। गायक गान करत मृदु शोरा।।५।।

दोहा– नगर द्वारा पुर शोभित, सुन्दर तने वितान।
सुरभित जल सिंचित मही, तोरण सजे समान।।६।।

गाय बैल बछड़े नहलाये। हल्दी मलि फूलन सजवाये।।७।।
ग्वाल बन्धु सब सजे सजाये। नाना भेंट लिये गृह आये।।८।।
सुनत यशोदा पायउ ललना। बहु बनाव गोपी किये अपना।।
मुख कुंकुम तिन्ह सोहइ कैसे। मनंहु पराग सरोजंहि जैसे।।९।।
लिये भेंट सब धावत जांही। गुरु नितम्ब कुच कलश हिलाहीं।।
मणिमय कुण्डल शोभइ काना। कण्ठहार आभूषण नाना।।१०।।
अति विचित्र बहु वसन सोहाये। माला पुष्प पन्थ विखराये।।
नन्द भवन गोपी मिलि चलीं। वक्ष हार कुण्डल कनमनी।।११।।

दोहा– चिर जीवे यह बालक, गोपिन्ह देंहि अशीष।
हल्दी मिश्रित जल छिड़कि, बहुरि लहंहि वक्शीस।।१२।।

जबहि कृष्ण नन्द व्रज आये। नित नव मंगलवाद्य बजाये।।१३।।
गोप परस्पर खेलंहि होली। दही–दूध–धृत मेलहि रोली।।१४।।

नन्द उदार दीन्ह बहु-दाना। गोधन भूषन वस्त्र विताना।
मागध सूत वन्दि ये जाचक। विद्या जीविन्ह कीन अयाचक।।१५।।
जो जस चाह, लहा सो ताहू। विष्णु प्रसाद पुत्र नरनाहू।।१६।।
नन्द गोप अभिनन्दित नारी। रोहणि विचर रत्न बहुधारी।।१७।।
जबतें कृष्ण नन्द व्रज आये। क्रीडा करत रमा ललचाये।।१८।।
गोपन्ह गोकुल रक्षा कीना। नन्द चले कंसहि कर दीना।।१९।।

दोहा- सुना मित्र वसुदेव ने, आये भाई नन्द।
कर देने खल कंस को, आय मिले सानन्द।।२०।।

नन्द देखि वसुदेवहि धाये। आलिंगन करि हृदय लगाये।।२१।।
बैठे सुख आसन दोउ भाई। सुतन लागि पूछे कुशलाई।।२२।।
बड़े भाग सुत पायउ भाई। चौथे पन रह आस गंवाई।।२३।।
बड़े भाग हम मिलेंउ मिताई। पुनरजनम जैसे मिल भाई।।२४।।
नदी प्रवाह एक नहि होई। निज कृत कर्म अलग रह सोई।।२५।।
जेंहि वन वसहु सलिल तृणधारी। पशु मानव सब कंह हितकारी।।२६।।
मम सुत मातु सहित कहु कैसे। पिता तुमहि मानत रह जैसे।।२७।।

सोरठा-धर्म अर्थ अरु काम, शास्त्र विहित सुखकर सदा।
जेंहि सेंइय दुख होय, सो त्रिवर्ग बहु हानि कर।।२८।।

सुनेउं कंस सन्तति सब मारी। कन्या एक न बची विचारी।।२९।।
सुख दुख सकल कर्म आधीना। जो जानत सो रहत अखिन्ना।।३०।।

वसुदेव उवाच-

दीन्हे कर मिलि लिये मिताई। गोकुल जाहु, विपति मनु आई।।३१।।

श्री शुक उवाच-

दोहा- शौरि कथन सुनि गोप सब, आये गोकुल धाम।
नन्द आदि जुति बैल रथ, बिना किये विश्राम।।३२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

शौरि कथन कछु मृषा न होई। विपति सोचि नन्दहु मति खोई।।
मन ही मन शरणागत भयऊ। हरि रक्षक काहे पुनि डरऊ।।१।।
पूतना नाम राक्षसी एका। मारत घूमत शिशुन अनेका।।
व्रजपुर ग्रामहिं कीन खभारी। भेजी कंस भयावन भारी।।२।।
जहाँ न नाम रूप हरि गावा। तहंहि राक्षसी बोलइ धावा।।३।।
एक दिवस नन्द गृह आयी। कामरूप प्रमदा सुठि छायी।।४।।
पापिनि सुन्दर रूप बनावा। केशपाश जूही लहरावा।।
कटि अति क्षीन पीन उर भारी। पृथु नितम्ब नव वसन सुधारी।।
चलत श्रवन भूषण अति सोहा। अलक जाल मुख युवजन मोहा।।५।।

दोहा– मन्दहास वंकिम चिंतइ, मोहे व्रज के लोग।
हाथ सरोरुह को लिये, रमा विष्णु के योग।।६।।
बाल-ग्रहण शिशु खोजत, गई नन्द के धामु।
अन्तर्गत निज तेज को, देखा कृष्ण कृशानु।।७।।

देखेउ सकल चराचर स्वामी। शिशु मारक ग्रह अन्तर्यामी।।
मूंदेउ नयन, पूतना देखी। अंक उठाइ लीन सविशेषी।।
मूढ़ यथा लेइ साँप उठाई। रस्सी जानि कीन कुटिलाई।।८।।
हृदय कुटिल बाहिर सुधराई। सुघर वसन जिमि असिहिं छिपाई।।
हत प्रभ हुई मातु युग देखा। रोक न सकीं, रूप सविशेषा।।९।।
निज उरोज विष तीक्ष्ण लगावा। अंक मेलि शिशु दूध पियावा।।
दूनउ कर पकड़े यदुराई। पिये प्राण, संग रोष सहाई।।१०।।
छोड़ु-छोड़ु बस करहु कन्हाई। रुकत नाहिं, असु पियत गोसाईं।।
नयन फटे, पद पटकन लागी। स्वेद गात रोवत तनु त्यागी।।११।।

सोरठा–अति गभीर रव वेग, कांपेउ धरती गगन सब ।
लोग गिरे भय मानि, मनंहु गिरा असनी प्रबल।।१२।।
अति पीडा उर आनि, भयउ पूतना, प्रकट तनु।
खुले केश गत प्राण, मनहुं वृत्र वज्राहत।।१३।।
गिरी देह छः कोश कराला। टूटे तरु जे रहे विशाला।।१४।।
बड़ी भयंकर देह पूतना। हल समान मुख कन्दर नथुना।।
लाल केश बिखरे चहुं ओरा। दोउ उरोज चट्टान कठोरा।।१५।।
आँखे गहरे कूप समाना। पग नितम्ब पुलिनहि उपमाना ।।
शुष्क सरोवर उदर विशाला। रही निश्चरी विकट कराला।।१६।।
डरे ग्वाल गोपी पुर जेते । पहिलेहिं बधिर हुये रव तेते ।।१७।।
पहुँचे ग्वाल गोप घबराये। निर्भय कृष्ण देखि हरषाये।।१८।।
दोहा- पहुँचि यशोदा रोहिणी, बालक लीन उठाय।
रक्षा कीन अनेक विधि, चँवरी पूंछ घुमाय।।१९।।
गाय–मूत्र रज लेप लगावा। गोबर डारि कृष्ण नहवावा।।
द्वादश नाम लेइ असुरारी। सकल अंग बहुविध सब झारी।।२०।।
अज अनादि कह ग्यारह नामा। बीज न्यास कीनी सब बामा।।
तब पद रक्षा करे अजन्मा। घुटनहि रक्षतु श्रीमणिमां ।।२१।।
यज्ञ पुरुष जंघा की रक्षा। कटि की अच्युत करें सुरक्षा।।
हयग्रीव तव उदर रखावें। केशव हृदय रोग विनसावें।।
वक्षस्थल तब रक्षतु ईशा। कण्ठहि रक्षतु देव दिनेशा ।।
विष्णु वाहु की रक्षा करि हीं। मुखहि उरुक्रम सिर ईश्वरहीं।।२२।।
चक्री रक्षतु तुमहि पुरस्तात्। गदाधरे हरि रक्षतु पश्चात् ।।
दोनों बगल धनुष असिधारी। मधुसूदन अजनहि रखवारी।।
चारि कोण उरुगायः रक्षतु। ऊपर नीचे हली सुरक्षतु।।

परम पुरुष रक्षतु सब ओरा। राखउं सुखी देवगण छोरा।।२३।।
इन्द्रिय हृषीकेश सब राखें। नारायण प्राणन के पाँछे।।
श्वेत द्वीपपति चित्त रखावें। योगेश्वर शुभ मनहिं दिखावें।।२४।।
पृश्निगर्भ रक्षतु तब बुद्धी। परमात्मा तव अहं विशुद्धी।।
खेलत रक्षे तव गोविन्दा। सोवत माधव कृष्ण मुकुन्दा।।२५।।
चलत-फिरत वैकुण्ठ विशेषी। श्री पति पातु त्वां बैठे ही।।
क्रतु भोजी भोजन संग रहहूं। ग्रह सब जिससे हरदम डरहूं।।२६।।
कूष्माण्डा डाकिनी राक्षसी। भूत प्रेत बालक जे ग्रसी।।२७।।
पूतना रेवती कोटरा। अपस्मार बालक जेहिं डरा।।२८।।

सोराठा-स्वप्न देखि उत्पात, बाल वृद्ध ग्रह आदि जे।
नष्ट होंउ तव तात, नाम लेत श्री विष्णु के।।२९।।

श्रीशुक उवाच-

एंहि विधि गोपिन्ह कीन उपाया। स्तन पिलाइ जननी दुलराया।।३०।।
नन्द गोप व्रज लौटे आई। देह पूतना निरखि सोचाई।।३१।।
निश्चय शौरि रहे ऋषि कोई। उनका कहा सत्य सब होई।।३२।।
व्रज वासी सब लिये कुठारा। अंग काटि दीन्हे अंगारा।।३३।।
अगरु सुरभि धूम तँह छावा। कृष्ण परस तिंह पाप नसावा।।३४।।
यद्यपि थी पूतना कराला। कृष्ण हनन, बनी व्रज वाला।।
शत्रुभाव तिय दूध पिलावा। कृष्ण कृपा शुभ सद्गति पावा।।३५।।
श्रद्धा भक्ति सहित प्रभु मानी। मातु आदि किमि गती बखानी।।३६।।

सोरठा-जेंहि पद कमल पुनीत, ब्रह्म शम्भु वन्दन करें।
तेंहि ते अंग दबाय, पिये दूध करुणायतन।।३७।।

यद्यपि रही राक्षसी ताता। सोइ गति लही जे चाहिए माता।।
जेंहि थन दूध पिये सुख मानी। गाय मातु गति मति अनजानी।।३८।।

पुत्र भाव जिन्ह दूध पियावा। गो गोपी सब मोक्षहि पावा ।।३९।।
वत्सल-रस-वश लखत मुरारी। जनन-मरण से लिये उबारी ।।४०।।
व्रजवासिन कंह अचरज भयऊ। सुरभित गन्ध कहाँ ते बहऊ ।।४१।।
गोपन कहि सब कथा बुझाई। जेंहि विधि वहाँ पूतना आई ।।
विस्मित रहे गोप सब भारी। कुशल कृष्ण, पापिनि गई मारी ।।४२।।

दोहा- काल व्याल से बचि गये, देखि नन्द के लाल।
शिर सूंघा हरषे बहुत, दीखे परम निहाल ।।४३।।
पूतना-मोक्ष श्रीकृष्ण की, कथा सुने मनलाय।
श्रद्धा युत हरि पद मिले, परम सत्य दिख जाय ।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः।।६।।

*

।।अथ सप्तमोऽध्यायः।।

राजोवाच-

प्रभु लीने नाना अवतारा। सुनत सुखद हरि चरित अपारा।।१।।
कथा जासु सब तृष्णा काढ़े। सत्त्वभाव प्रभुपद रति बाढ़े।।
मैत्री सज्जन होति सुखारी। कहहु कथा, मानहुं अधिकारी।।२।।
औरहु लीला कहहु बुझाई। बाल रूप जो कीन्ह कन्हाई ।।३।।

श्री शुक उवाच-

जन्म नखत आयेउ एकबारी। मंगल गान करत सब नारी।।
मन्त्र बोलि द्विज आशिष दीन्ही। मातु पुत्र-अभिसेचन कीन्ही।।४।।
नन्द घरनि बालक नहवावा। सोवत देख पलंग पौढ़ावा।।
स्वस्तिवचन ब्राह्मण गण कीन्हे। अन्नवस्त्र आदिक तिन्ह दीन्हे ।।५।।
उत्सव व्यस्त रहीं नन्द रानी। अतिथि संजोवत रही सयानी ।।
बालक रुदन सुना नहि काना। भूखे पैर चलावत कन्हा ।।६।।

दोहा- छकड़ा नीचे थे पड़े, बालकृष्ण मृदुगात।
गोरस बर्तन, बैलरथ, तोड़ दिये दे लात।।७।।
देख यशोदा गोपियाँ, उत्सव में प्रत्यग्र।
शकट देख नन्दादिभी, दीख रहे थे व्यग्र।।८।।

जब निश्चय कछु नहि होइ पावा। खेलत लरिकन बोलि बतावा।।
रोवत छोरा पैर उठाई। शकट-पलट दीना यदुराई।।९।।
बाल वचन माना नहि काऊ। नहि जानत ते कृष्ण प्रभाऊ।।१०।।
रोवत सुत लै शंकित भारी। देव विप्र पूजति महतारी।।११।।
गोप शकट सीधा कर दीना। पूजि विप्र शुभ आहुति कीना।।१२।।
विफल न होइ विप्र आशीषा। जिनमें नाहि झूठ छल हिंसा।।१३।।
नन्द गोप श्रीकृष्ण उठाये। विप्रन्ह साम ऋग्वेद कहाये।।
औषधि-सलिल किये अभिषेका। मन्त्र प्रयोग हुये सविवेका।।१४।।
स्वस्ति पाठ कर हवन कराये। द्विजहि सु भोजन दिये जिंवाये।।१५।।
बालक हित गो उत्तम दीन्ही। स्वर्ण हार मण्डित तेंहि कीन्ही।।१६।।
जानहि मन्त्र देहिं आशीषा। कबहुं न होइ विप्र कह मृषा।।१७।।

दोहा- एक दिवस सुत गोढ़ ले, लालन करी यशोद।
गिरि सा बोझिल हो गये, कान्हा किये विनोद।।१८।।

भार सहित निज सुत को देखा। बैठारे तिन भूमि विशेषा।।१९।।
तृणावर्त एक दानव आवा। चक्रवात श्री कृष्ण उड़ावा।।
कंस दास यह राक्षस भारी। आंधी बन व्रजभूमि नेवारी।।२०।।
धूल भरा गोकुल चहुँ ओरा। आँखे धूमिल शब्द कोठरा।।२१।।
एक मुहूरत रज तम भयऊ। जाने कृष्ण कहाँ चलि गयऊ।।२२।।
तृणावर्त बहु धूलि उड़ावा। सूझि न कछू, लोग भय पावा।।२३।।
धूलि उड़ाइ कृष्ण लै गयऊ। देखि यशोदा अति दुख भयऊ।।
भूमि गिरी रोवति अति माई। मृतवत्सा जिमि धेनु रंभाई।।२४।।

सोरठा-शान्त हुआ जब वेग, सुनी यशोदा रुदन सब।
नहि देखे तहं कृष्ण, अश्रुधार गोपिन्ह गिरत ।।२५।।

तृणावर्त हरि लिये उठाई। जाइ न सका भार अधिकाई।।२६।।
अपने से गुरु श्यामहि देखा। कण्ठ पकड़ि धरि राखे केशा।।२७।।
कृष्ण दनुज कर कण्ठ दबावा। विगत प्राण धरती पर आवा।।२८।।
नभ से गिरा धरा पर आया। शिला परत सब अँग बिखराया।।
नारिन लखा दनुज वह कैसे। शिव शर विंधा पुरासुर जैसे।।२९।।
वक्षस्थल लटके शिशु देखे। गोपी-गोपहि हर्ष विशेषे।।
राक्षस यद्यपि लै आकाश उड़ावा। सकुशल बालक यमहिं दुरावा।।
नन्द आदि फिर भये सुखारी। दिये समर्पि कृष्ण महतारी।।
कहंहि परस्पर सब मिलि बाता। अति आचरज कहा नहि जाता।।३०।।
विनु अपराध शिशुंहि लै गयऊ। निज अपराध मृत्यु मुख गयऊ।।
सत्य कहा सब सन्त विचारी। समता साधु सकल भय हारी।।३१।।
कौन सुकृत हम कीने भाई। यज्ञ दान हरि पूजे जाई।।
यम पुर तें यह बालक आवा। सकुशल सब स्वजनहिं हरषावा।।३२।।

दोहा- अद्भुत घटना देख के, नन्द गोप मन सोच।
सत्य वचन वसुदेव के, लगी हृदय मंह कोंच।।३३।।
एक दिवस शिशु गोद ले; दूध पियावत मात।
प्रेम पूर्ण युग वक्ष से, स्वतः दूध झरि जात।।३४।।

दूध पिये शिशु लिये जम्हाई। मातु दुलारत, देखि डेराई।।३५।।
अन्तरिक्ष नभ दिये दिखाई। सूर्य चन्द्र दश दिशा सुहाई।।
पर्वत द्वीप समुद्र विराजा। वन उपवन सब प्राणि समाजा।।३६।।
सकल विश्व तंह देखा रानी। कमलनयन मूंदेउ भय मानी।।३७।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे सप्तमोऽध्यायः।।७।।

।। अथाष्टमोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

गर्गाचार्य महामुनि ज्ञानी। यदुकुल केर पुरोहित मानी।।
एक दिवस वसुदेव पठाये। नन्द भवन व्रजमण्डल आये।।१।।
नन्द गुरुहिं देखत सन्माने। पूजे सविधि ईश सम माने।।२।।
सुख आसीन गुरू पंहि आये। पूर्ण काम लखि मन हरषाये।।३।।
दीन चित्त हम गृही विचारे। मम कल्याण हेतु पग धारे।।४।।
ज्योतिष विद्या तुमहि बनाई। भूत अनागत तुमहिं दिखाई।।५।।
मम गृह दुइ शुभ बालक आनी। करहु संस्कृत ब्रह्म ज्ञानी।।६।।

गर्ग उवाच–

दोहा– यदु कुल का आचार्य मैं, यह प्रसिद्ध चहुं ओर।
यदि मैनें संस्कृत किये, पुत्र देवकी, शोर।।७।।

पापी कंस बड़ा दुखदायी। जानत तव वसुदेव मिताई।।
अष्टम गर्भ देवकी जाया। सुता न होइ देव की माया।।८।।
कन्या बचन सुना जब काना। हन्ता तब जन्मा कहिं आना।।
सुनत गुनत तब तें खल रहेऊ। इहाँ आव अति अनुचित भयऊ।।९।।

नन्द उवाच–

गोशाला मंह आइ कराऊ। शुभ संस्कार न जानइ काऊ।।१०।।

श्रीशुक उवाच–

गर्गाचार्य सुना मनभावा। युगल शिशुन्ह कंह नाम धरावा।।११।।

गर्ग उवाच–

रोहिणि – पुत्र राम शुभ नामा। अधिक बली होइहैं बलरामा।।
संकर्षण कहिहैं सब लोगू। यदुकुल सबहिं मिलावन जोगू।।१२।।
यह बालक सुठि श्याम सलोना। युग युग रूप धरे अति लोना।।

कबहुं शुक्ल कहुं लाल विचारी । कतहुं पीत कहुं कृष्ण मुरारी ।।१३।।
कबहुं शौरि गृह जनमे जाई। वासुदेव शुभ नाम कहाई।।१४।।

दोहा- इनके नाम अनन्त हैं, रूप राशि गुण खान।
गुण कर्मो के योग से, मैं जानउ नहि आन।।१५।।

गो गोकुल सुखदायी बालक । विपति निवारक सज्जन पालक।।१६।।
पूर्व कलप सज्जन घबड़ाये। डाकू चोर विपति उधिराये।।
प्रजा अराजक हुई दुखारी । इनहि प्रभाव दस्यु सब मारी।।१७।।
जो एंहि प्रीति करे मनलाई । अरि हु न होहिं तासु दुखदाई ।।१८।।
नारायण सम पुत्र तुम्हारा । गुण स्वभाव जो गावहु प्यारा ।।१९।।
इतना कहि ऋषि गर्ग सिधारे । नन्द जानि, कृतकृत्य विचारे।।२०।।
कछुक दिवस बीते दोउ भाई। घुटुरुन चलत किये मनसाई ।।२१।।
युगल भाइ अब सरकन लागे। करधनि किंकिणि रुनझुन बाजे ।।
सुनत नाद दूनउ खिल जाहीं । कबहु डेराहि आन पछियाहीं ।।२२।।
कीचड़ सना गात तिन्ह देखा। गोद उठाइ प्रेम सविशेषा ।।
दुइ दुइ दँतुली हँसत दिखावा । व्रज वासिन्ह कंह मोद बढ़ावा ।।२३।।

दोहा- करत बाल लीला युगल, ब्रजवासिन्ह मन जीत ।
पूंछ पकड़ दोउ लाल जब, बछड़े लेते खींच।।२४।।

अति चंचल खेलत दोउ छोरा। देखत बरजत सब चंहु ओरा ।।
कबहु हिरन, पशु सींग गहाहीं । कबहुंक आगि देखि लल चाहीं।।
जननी तजि गृह काज निवारहिं । हरपल शंकित सोच विचारहिं ।।२५।।
थोड़े दिनंहि कृष्ण बलरामा । व्रज विचरन लागे सुखधामा।।२६।।
साथिन सहित कृष्ण भगवाना । संग गोपि खेलत बलरामा।।२७।।
युगल लाल चंचल सुखकारी। अदभुत लीला किये प्रचारी।।
एक दिवस गोपी मिलि आई। मातहि बोलि गई बरियाई ।।२८।।

असमय बछड़ा छोड़ि पियावहिं। हम कुछ कहे त हंसी उड़ावहि।।
करि चोरी नवनीतहिं खावा। स्वयं अघाइ बन्दरन खियावा।।
मटका फोरि देइ भुंइ डारी। तव बालक घर कीन्ह खंभारी।।
जब कोइ वस्तु मिलइ नहि तांही। शिशुन रुलाइ देत क्षन मांही।।२९।।
हाँथ उठाइ सींक पंह जाई। दही-दूध छीने बरियाई।।
चढ़ि ओखली सींक नहि पावा। बरतन में तब छिद्र बनावा।।
मणिमय भूषन करत अँजोरा। अँधियारा नहि बरजत छोरा।।
जब हम रहहिं काम के मारे। तबहि बनावत काम सँवारे।।३०।।

दोहा- करत ढ़िठाई रात-दिन, मूत्र आदि करि देत।
चोरी के गुन जानत बहु, हमहि किये अनिकेत।।
एहि विधि देत उलाहना, समय देखि श्रीनाथ।
समुझि बात यसुमति रही, पुत्र छुये नहि हाथ।।३१।।

एक दिवस बल्देव कन्हाई। खेलत रहे ग्वाल संग लाई।।
आजु कृष्ण तब माटी चाख्यो। आइ सबन माता सन भाख्यो।।३२।।
हाथ पकड़ि बोली यदुरानी। तात बुझावहु अकथ कहानी।।३३।।
कहु केहिं हेतु मृत्तिका खाहू। बालक कहत संग बलदाऊ।।३४।।

श्री कृष्ण उवाच–

मातु नाहि मैं मिट्टी खाई। झूंठ कहत सब लोग-लुगाई।।
यदि मम बचन नांहि पतियाहू। भरि लोचन मुख देखहु जाहू।।३५।।
खोलहु मुख यह सुनत मुरारी। खोलेउ मुख, लीला तनुधारी।।३६।।
चर अरु अचर सकल जग देखा। पावक ग्रह तारादि गिरीशा।।३७।।
ज्योति चक्र जल तेज नभस्वान्। वैकारिक गुण आदि विवस्वान्।।३८।।
मुख मंह दीखा अग जग सारा। व्रज मण्डल निज रूप निहारा।।३९।।
सोचत मनहि यशोदा रानी। माया मोह स्वप्न हिय मानी।।

बुद्धि मोह निज सोचन लागी। जन्मजात शिशु सिद्ध विरागी ।।४०।।

सोरठा–अगम अगोचर जोइ, मन, वाणी अरु चित्त कंह ।
प्रणवउं मैं प्रभु सोइ,जग आश्रित जेंहि मांहि सब ।।४१।।

दोहा- यह मैं मम ममता अधिक, पुत्र पती पर नेह।
व्रजरानी मैं गोप सब, मम अधीन बल गेह ।।
गो-गोधन सब दास हैं, कुमति रही सब छाय ।
सब की गति तो ईश हैं, शरण गहूँ निरुपाय ।।४२।।

कृष्ण तत्त्व जब माता जानी। प्रभु प्रेरेउ माया गुणखानी ।।४३।।
यशुमति मति सब गई भुलानी । पुत्र प्रेम उमगेउ उर आनी ।।४४।।
वेद सांख्य जेंहि प्रभुहिं बखाना। ताहि यशोदा निज सुत माना।।४५।।

राजोवाच–

यशुमति नन्द कौन तप कीन्हा । जेंहि लगि हरी जनम तँह लीन्हा।।४६।।
जो कछु चरित किये यदुराई । कविहिं गाउ, नहि बनत बनाई ।।
सो लीला वसुदेव न देखी । नाहि देवकी आदि विशेषी ।।४७।।

श्रीशुक उवाच–

द्रोण नाम एक वसू सुहाये । धरा धरनि ताके मन भाये।।
चतुरानन आदेश विचारी । विनत वचन बोले मधु ढ़ारी।।४८।।
जब जब जनम होउ प्रभु मोरा। कृष्ण भक्ति चाहहुं सब ओरा।।४९।।
'तथा अस्तु' कहि चले विधाता। जन्मे नन्द गोप सुख दाता।।
धरा रही जो द्रोण कामिनी । हुई यशोदा नन्द भामिनी ।।५०।।
इहाँ जन्म लीने असुरारी । दम्पति भक्ति भाव भयहारी ।।५१।।
ब्रह्म बचन सच किये मुरारी। शेष सहित व्रज कीन सुखारी ।।५२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे अष्टमोऽध्यायः।।८।।

*

।। अथ नवमोऽध्यायः ।।

दोहा- एक दिवस नँद गेहिनी, दासिन्ह सौंपे काम।
स्वयं दही मथने लगी, मन लगि कृष्ण ललाम ।।१।।
जो जो लीला तुम सन गाई । दही मथत गावत सब माई ।।२।।
कटि तट रेशम वसन सुहावा। पुत्र प्रेम आँचल भरि आवा ।।
कंकण कुण्डल डोलत रह हीं । रस्सी खींचत श्रम अति लगहीं ।।
स्वेद बिन्दु आनन पर छाये। ढीले कच मालती गिराये।।३।।
दही मथत जननी ढिंग आये। हरि चह पियन दूध छरियाये ।।
पकरि मथानी रोकत माता । अतिशय प्रीति दीन सुखदाता ।।४।।
लै कोरा सुत दूध पियावा । मुख देखत जननी दुख पावा ।।
अबहिं कृष्ण नहि रहे अघाने । आँच पाइ लिये दूध-उफाने।।
सोरठा-कोप कीन्ह जब कृष्ण, फड़के उनके अधर तब ।
दधि-बर्तन सब तोड़ि, मृषा अश्रु, मक्खन चखे।।६।।
दूध उतारि यशोदा आई । बरतन फूटा दिया दिखाई।।
जाना निज सुत की करतूती। नहि देखा सुत हँसी सपूती ।।७।।
इधर-उधर देखति जब माता । ऊखल पीठ बैठि सुखदाता।।
बन्दर सब नवनीत खवाये। छीकहिं धरे रहे, कस पाये ।।
इत उत चितवत चोर की नाईं। पीछे से यशुदा नियराईं ।।८।।
लकुटि लिये देखा जब माता । भागे डरे जो निर्भय दाता।।
करत ध्यान योगी नहि पावा । तेहिं पाछे लै लकुटी धावा ।।९।।
गुरु नितम्ब धाइ नहि जाई। खुले केश सुम गिरहिं पराई ।।१०।।
दोहा- गलती तो हो ही गई, आँखे भलि-मलि लाल ।
काजल मिश्रित अश्रुसे, हुये कृष्ण गोपाल ।।११।।
छड़ी फेंक सुत बाँधन चाहा । मातु न सकी पाइ प्रभु थाहा।।१२।।

अन्दर बाहर जासु न काहू। पूर्व अपर पर ताहि समाहू ।।१३।।
अजंहि मानि सुत बाँधति रानी। रस्सी-ओखलि किधौ गुमानी।।१४।।
सुतहिं यशोदा बाँधन चाहा। दुइ अंगुल लघु रज्जु काहा।।१५।।
बार-बार रजु जोरति रानी। दुइ अंगुल लघु रज्जु दिखानी।।१६।।
सकल रज्जु की कीन बँधानी। बाँधि न सकी, चकित भई रानी ।।१७।।
थकी देखि श्रम गात सुहावा। कृपा कीन बन्धन बँधवावा।।१८।।

दोहा- येंहि विधि कृष्ण दिखायेऊ, अज अनादि श्रीमन्त ।
जाके वश सब जगत सोइ, भक्त-वश्य भगवन्त ।।१९।।
जो प्रसाद ग्वालिन चखी, लक्ष्मी नही महेश ।
ब्रह्मा भी नहि पा सके, भाग्य कहें क्या शेष ।।२०।।

भक्तहिं सुलभ सदा बनवारी। ज्ञान-योग पथ रहे कटारी।।२१।।
मातहिं गृहकारज रत देखा। कृष्ण चहत कछु चरित विशेषा।।
अर्जुन वृक्ष युगल तँह रहेऊ। धनद पुत्र पहले जे भयऊ।।२२।।
नलकूबर मणिग्रीव कहाये। नारद शाप, वृक्ष वनि आये।।२३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे नवमोऽध्यायः।।९।।

*

।। अथ दशमोऽध्यायः ।।

राजोवाच-

दोहा- मणिग्रीव नल कूबर, किये कौन थे पाप।
जेंहि कारण ऋषि नारद, दिये उन्हें अभिशाप।।१।।

श्री शुक उवाच-

धनद पुत्र अति रहे सुहाये। नलकूबर मणिग्रीव कहाये।।
शिव अनुचर दोउ रहे सुदृप्ता। मन्दाकिनि में घुमे अतृप्ता ।।२।।

मद्य पान करि नैन नचाये। नारिन्ह सहित कुसुम बन आये।।३।।
कुसुमित कमल देखि तंह गंगा। क्रीडा कीन, यथा करि झुण्डा।।४।।
घूमत फिरत देवऋषि आये। देखा युगल-भ्रात मद छाये।।५।।
नारी वस्त्र, देख ऋषि, डारीं। युगल भ्रात रहे देह उघारी।।६।।
देवपुत्र वारुणि वस देखा। दीन शाप नारद सविशेषा।।७।।

नारद उवाच–

दोहा- जो जन सेवत वारुणी, होत बुद्धि धन-नाश।
श्रीमद के सब साथ ही, मद्य द्यूत कर वास।।८।।

मानहि स्वयं अमर अभिमानी। मारहिं पशुहिं मूढ़ अज्ञानी।।९।।
देव नाम धरि पातक करिहीं। कृमि विष्टा इव नरकंहि गिर हीं।।१०।।
कहहु देह केकर उपजावा। पिता मातु जेहि गरभ रखावा।।
नाना, बली रहे जे क्रेता। अग्नि श्वान जे खाँहि परेता।।११।।
प्रकृति प्रदत्त देह अति प्यारी। लीन प्रकृति मंह होत अनारी।।
नश्वर देह हेतु मतिमाना। मारइ जन्तु मोह वस नाना।।१२।।
श्रीमद से अन्धे जे भाई। दारिद-सुरमा लेहु लगाई।।
एक दरिद्र देख सब प्राणी। आप समान जीव पर मानीं।।१३।।
कण्टक व्यथा जानु जन सोई, जिन्ह के गड़ा, आन नहि कोई।।१४।।

दोहा- जे जन निरधन होत हैं, विगत सदा मद मान।
कष्ट सहैं दारुण दुख, ताहि तपस्या जान।।१५।।

जे जन भोजन हेतु दुखारी। मांगत अन्न संहहि दुखभारी।।
भूखे पेट भोग नहि चह हीं। भोग हेतु हिंसा नहि करहीं।।१६।।
निरधन पावंहि सन्त समागम। भोग लालसा होत विहंगम।।
सन्त पाइ परलोक सुधारा। कल्मष मिटे मिटइ संसारा।।१७।।
हरि चरणन मकरन्द पियाहीं। समदर्शी साधुन सम नाहीं।।

धन मद मत्त पास नहि जाहीं। करत उपेक्षा सन्त जुड़ाहीं।।१८।।
श्रीमद मत्त धनदसुत दोऊ। मदिरा पान कीन पुनि सोऊ।।
युगल-भ्रात मद हरिहौ जाई। लम्पट स्त्री-सहित पराई।।१९।।

दोहा- **लोक पाल के पुत्र दोउ, तम से हुये प्रछन्न।**
इनको यह भी भान नहि, वस्त्रहीन हम नग्न।।२०।।

वृक्ष योनि पइहों दोउ जाई। पूर्वजन्म सुधि कृपा वसाई।।२१।।
दिव्य वर्ष शत बीते मानी। कृष्ण दरस पाये स्वर्गामी।।२२।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- **इतना कहि नारद चले, नारायण के धाम।**
नलकूबर मणि ग्रीव दोउ, यमलार्जुन भे नाम।।२३।।

सत्य करन नारद कंह भाषा। कृष्ण चलेउ यमलार्जुन पासा।।२४।।
अतिशय प्रिय मम नारद ज्ञानी। करउं सत्य मैं ऋषि की वानी।।२५।।
अस विचारि कृष्ण तंह आये। स्वयं लाँधि ऊखल अटकाये।।२६।।

छन्द- **ऊखल अँटकावत जोर लगावत दामोदर भगवाना।**
जड़ पेड़ उखारी विक्रम भारी लीला करत सुजाना।
गूंजेउ रव भारी सुर सुख कारी विस्मय कीन मुकुन्दा।
डरपेउ सुर द्रोही हर्षित जोगी भये प्रकट सुखवृन्दा।।२७।।
तब अग्नि समाना तेज निधाना प्रकट भये सुरयूथा।
सब दिशा उजासी, सिद्ध सुपासी देखे देव वरुथा।
माथ झुकाये दोउ कर जोरे अस्तुति किये बहोरी।
कलि मल नाशन सब जगपावन कृष्ण चरन रति भोरी।।२८।।

कृष्ण कृष्ण योगेश्वर स्वामी। सकल चराचर अन्तर्यामी।।२९।।
तुमहीं नाथ प्राण के नायक। सकल शक्ति दाता अधिनायक।।
काल तुमहि तुम विष्णुस्वरूपा। अव्यय ईश्वर व्यापक रूपा।।३०।।

तुमहीं नाथ गुणों के स्वामी। कर्मसाक्षी अगुण अकामी ।।३१।।
वृत्ति ग्राह्य नहीं सूक्ष्म स्वरूपा। जानि न सका कोउ नरभूपा ।।३२।।
परब्रह्म हम प्रणवउं तोहीं। वासुदेव श्रीकृष्ण नतोऽस्मी ।।३३।।
अशरीरी तुम धारि अवतारा। अमित पराक्रम किये संसारा ।।३४।।

दोहा- सकल लोक कल्याण-हित, प्रभु लीने अवतार ।
अंश-रूप से इस समय, इच्छा पूरन हार ।।३५।।
नमः परम कल्याण, मंगल मूरति रूप ।
वासु देव नारायण, नमः यदूकुल भूप ।।३६।।

दासन के हम दास तुम्हारे । नारद शाप आप हम तारे ।।३७।।
मम वाणी तब गुण गण गाये । श्रवण कथा नित नवहि सुनावे।।
हाथ कर्म करते प्रभु नाना । मन तव चरण धरे नित ध्याना।।
शिर मम झुकइ तुम्हारे आगे। दर्शन सज्जन देहिं सुभागे ।।३८।।
अस्तुति सुनी कृष्ण अखिलेश्वर। ओखली बँधी, कहे दामोदर ।।३९।।

श्रीभगवान् उवाच–

श्री मदान्ध तुम भ्राता दोऊ । ऋषी अनुग्रह जानउं सोऊ।।४०।।
समदर्शी यह साधु सुभाऊ। बन्धन देखि सकंहि नहि काऊ ।।४१।।
नलकूबर तुम दूनहु भाई । जाहु सदन मम भक्ति सहाई।।४२।।

श्री शुक उवाच–

कीन प्रणाम प्रदक्षिण नाना । उत्तर दिशि कीने प्रस्थाना।।४३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे दशमोऽध्यायः।।१०।।

*

।। अथ एकादशोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच–

सोरठा–नन्द आदि सब गोप, सुनत शब्द तरु पतन के।
आये वृक्ष समीप, मनहुँ अभी विद्युत गिरी ।।१।।

भूमि गिरा यमलार्जुन देखा । उर उपजा आश्चर्य विशेषा।।२।।
ओखली खींचत कृष्ण मुरारी । उदर दाम से बँधा बिहारी ।।३।।
लड़िकन कही, देखि हम आँखी । कृष्ण गिराये दूनउ शाखी ।।
प्रगट भये दोउ पुरुष सुभाये । तेज पुंज देवोपम जाये ।।४।।
छोरन कही ग्वाल नहि माने । संशय सबहि किये मनमाने ।।५।।
रस्सी बँधी ओखली भारी । देखि तनय, हँसि बन्धन टारी।।६।।
गोपिन्ह कबहु कृष्ण फुसलाये। कठपुतली इव नाचि गवाये।।७।।
आयसु पाइ पीठ लै आवत । गोप–प्रीति दोउ हाथ उठावत।।८।।

दोहा– व्रज वासिन्ह को करत हैं, आनन्दित भगवान।
सब को मनहुँ बतावत, भक्तवश्य मोंहि जान।।९।।

सकल कर्म फलदाता जोई । फल लेने आवा प्रभु सोई ।।
फल खरीदु सुनि भारि अंजूरी। लीन सुफल कीने भरपूरी ।।१०।।
कुजड़िन देखि हथेली खाली । दीन अनेक रत्न बनमाली ।।११।।
एक दिवस खेलत दोउ भाई । नदी तीर तक पहुँचे जाई ।।
खेलत ग्वाल संग बलरामा । मातु बुलावत लै लै नामा ।।१२।।
नहि आये जब बहुरि बुलाये । रोहिणि, यशुमति तबहिं पठाये ।।१३।।
बलहिं संग खेलत यदुराई । देर होत यशुदा चुचुवाई ।।१४।।
आवहु कृष्ण पियउ मम कोरा । भूँखे पेट न खेलहिं छोरा।।१५।।
हे बलराम कृष्ण संग आवहु । प्रात कलेऊ, भोजन करहु।।१६।।
भोजन करत बोलावत राऊ । आउ तात, बालक घर जाऊ।।१७।।

धूलि धूसरित करहु अस्नाना । जन्म नखत देहु गोदाना ।।१८।।
तव साथिन सब प्रात नहाये । तुमहु नहाउ खेलु पुनि जाये ।।१९।।

दोहा- मातु यशोदा प्रेम वश, पुत्र गहे दोउ हाथ ।
पुत्र मानि कीने जतन, मगन हुये यदुनाथ।।२०।।

गोपवृद्ध जे रहे सयाने । विपति सोचि बोले सन्माने ।।२१।।
वयसा ज्ञान वृद्ध उपनन्दा । देशकाल विद् कहेउ अमन्दा।।२२।।
चाहहु गोकुल कुशल हमारे। तजहु थान बहु विपति विचारे ।।२३।।
देखहु आव राक्षसी घोरा । ईश कृपा उड़ि शकट कठोरा ।।२४।।
चक्रवात आवा अति भारी । शिला पटक प्रभु कष्ट उबारी ।।२५।।
यमलार्जुन जब गिरा खभारी । ईश बचाये कृष्ण मुरारी ।।२६।।
अउर विपत्ति जब आवइ आगे । बालक लेइ चले हम भागे ।।२७।।
वृन्दावन अति सुन्दर कानन । गो गोपी संग रहेउ मुदितमन।।२८।।
गो गोधन आगे करि जाई । आजुहिं शकट जोहि,यदि भाई ।।२९।।
साधु-साधु सब एकमत कीन्हा । साज-समान शकट धरि दीन्हा ।।३०।।

दोहा- नारी बालक वृद्ध सब, साधन लीन्हें साथ।
शकट जोरि गोपाल तब, लिये शरासन हांथ ।।३१।।

आगे गोधन लिये सजाई । श्रृंगी दीन्ही सबहि बजाई ।।
तुरही घोष किये तब भारी। अग्र पुरोहित कीन हंकारी ।।३२।।
कुच कुंकुम लगाइ बर नारी । स्वर्ण हार निज कण्ठ संवारी ।।
कृष्ण चरित गावत सब नारी । मंगल कीन पन्थ सुख कारी।।३३।।
यशुदा रोहिणी एकइ शकटे । बैठी दोउ भाई तेहि निकटे।।३४।।
वृन्दावन सब पहुँचे जाई । अर्धचन्द्र इव बसे बनाई।।३५।।
यमुना पुलिन गोवर्धन देखा । माधव रामहि प्रेम विशेषा।।३६।।
बोलत मधुर तोतली बानी । श्याम राम बस कीने प्राणी।।३७।।

ग्वाल बाल संग खेलन लागे । बच्छ चरावहि आगे-आगे ।।३८।।

दोहा- कबहु बजावत वेणु प्रभु, कबंहु फेकि ढेलवांस ।
पग घुघुरुं बाजत मधुर, कृत्रिम हास-विलास ।।३९।।
कबहुं बने वे बैल हरि, कृत्रिम भरे हुंकार ।
पक्षिन बोली नकल करि, दीन्ह सबंहि मधु ढ़ार ।।४०।।

यमुना तट जब वच्छ चरावा । कृष्ण राम लगि राक्षस आवा ।।४१।।
वत्स रूप देखे तँह आये । बलहिं दिखाइ कृष्ण मुसकाये ।।४२।।
पूँछ पैर युत ताहि उठावा । नभ उठाइ हरि ताहि नचावा ।।
दीने कैथ वृक्ष तर डारी । येंहि विधि मारा तहि मुरारी ।।
महाकाय धरनी धरि मरा । कैथ वृक्ष फल भारी झरा ।।४३।।
साधु साधु कहि बालक हरषे । नभ तें सुमन देवगण बरसे ।।४४।।
सर्व लोक पालक प्रभु जोऊ । बच्छ चरावत-विचरत दोऊ ।।४५।।
एक बार सब वच्छ लवाई । पानि पिये अरु वच्छ पिलाई ।।४६।।
ग्वालन जीव भयंकर देखा । असनि पात गिर शृंग सरेखा ।।४७।।

दोहा- नाम वकासुर था बली, बगुला रूप बनाइ ।
तीक्ष्ण चोच से मारकर, कृष्णहिं पहुँचा आइ ।।४८।।

बगुला ग्रस्त कृष्ण को देखा । रामादिक बालक अनिमेषा ।।
भये अचेत विकल होइ कैसे । प्राण बिना सब इन्द्रिय जैसे ।।४९।।
गोपालक जे बने मुरारी । पिता चराचर विधि त्रिपुरारी ।।
तालु मूल हरि लगे जलाने । उगलेउ तिंनहि,मनहि भय माने ।।५०।।
कंस सखा वक झपटन चाहा । पटकदीन बालक नर-नाहा ।।
देखत लरिकन, उदर विदीरा । देवमुदित, गाँड़र जिमि चीरा ।।५१।।
हरषित सुमन देव वरषाये । मल्लिकादि नन्दन उपजाये ।।
सब वकारि की अस्तुति करहीं । ग्वालबाल सब विस्मित रह हीं ।।५२।।

ग्वाल सखा बलराम समेता। प्रमुदित भये देखि श्री केता।।
बच्छ हाँकि सब ब्रज मंह आये। कृष्ण चरित ते सब तँह गाये।।५३।।
गोपी गोप प्रेम अति लागे। मानहु यमहु जीति हरि आगे।।५४।।
लोग कहंहि आपस बतियाते। किती बार बचि यमपुर जाते।।
जिन्ह बालक कर अनभल चाहा। गयेउ कहाँ लागि नहि थाहा।।५५।।
आये असुर भयावन भारी। सब गये अगिन पतंग सम मारी।।५६।।

सोरठा–सदा सत्य ही होत, जो कहु कहंहि ये ब्रह्मविद।
गर्गाचार्य जो भाखि, सो आवत सब सामने।।५७।।
नन्द आदि सब गोप, नहीं लही भव वेदना।
करत कृष्ण बलराम, कथा सुनी जो अनसुनी।।५८।।
बाल सुलभ सब खेल, खेलत खेलत पुल रचत।
कूदत मरकट भागि, विगत भये सब बालपन।।५९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे-पूर्वार्धे एकादसोऽध्यायः।।११।।

*

।। अथ द्वादशोऽध्यायः ।।

एक दिवस हरि कीन विचारा। लेइहों बनहिं प्रात आहारा।।
शृंग घोष करि मित्र जनावा। आगे वच्छ कीन बहिरावा।।१।।
ग्वाल बाल अनगिन संग आये। शृंगी वंशी हाथ सुहाये।।
सहस–सहस निज वच्छ मिलाये। आगे करि तिन्ह पाछे धाये।।२।।

दोहा– अगणित बछड़े कृष्ण के, ग्वालन दिये मिलाय।
बाल सुलभ क्रीडा करत, जहाँ तहाँ हर षाय।।३।।

यद्यपि बछड़े रहे सुघारे। फल प्रबाल सुम गुच्छ संवारे।।४।।
करहिं परस्पर चोरा–चोरी। फेंकत दूर सींक बाँसुरी।।५।।

छुआ - छुआवन खेलन लागे। जबहिं कृष्ण जाँहि कछु आगे ।।६।।

दोहा- कोउ बजावत बाँसुरी, शृंगी फूँकत कोउ।
कोयल से कूकत कोऊ, भ्रमर संग कोउ-कोउ ।।७।।

बक छाया लखि कोऊ धावहिं। हंस चाल धीरे कोउ आवहिं।।
मोर संग कोउ नाचन लागे । बैठे कोउ कृष्ण करि आगे।।८।।
पूंछ पकड़ि बन्दर कोउ खीचंहि। धाइ चढ़हि वृक्ष को सींचहि।।९।।
मेढ़क इव फुदकंहि कछु ग्वाला । हंसहिं ठठाइ फुलांवहि गाला ।।१०।।
सज्जन ब्रह्मानन्द समाना। भगत मान जाको भगवाना।।
ग्वाल बाल तेंहि बाल सखाया। मानत, खेलत, देखहु माया ।।११।।
जेंहि पद-रज दुर्लभ अविकारी। चाहत योगीजन सिर धारी।।
सोइ रज व्रज मंह विहरत देखा । को कह ग्वाल भाग्य सविशेषा ।।१२।।

दोहा- तभी अघासुर आगया, लीला सका न देख।
अमृत पिये भी सुर डरें, मानंहि ताहि विशेष ।।१३।।

नाम अधासुर पूतना भ्राता। अनुज वकासुर का दुखदाता।।
भेजा कंस, असुर तंह आवा। नाश सहोदर ते दुखपावा।।
लड़िकन देखा कृष्ण के संगा। खेलत नाना करत प्रसंगा ।।१४।।
देंउ तिलांजलि ग्वालन मारी। व्रजवासी तब होव दुखारी।।
सन्तति प्राण समानहि जानी। सन्तति हते मरहि सब प्राणी ।।१५।।
अस विचारि अजगर तनुधारा। योजन एक कीन विस्तारा।।
पर्वत शिखर समानहि लागा। आनन गुफा सो कीन अभागा ।।१६।।
नीचे ओठ धरा पर राखा । ऊपर ओठ गगन को चाखा।।
मुख कन्दरा, शिखर सम दाढ़ें। अति विशाल जिह्वा थी काढे ।।
श्वांस लेत आँधी इव आवत। आँखें लाल दवानल लागत।।१७।।

दोहा- ग्वाल वाल मिलि सोचत, शोभा व्रज की होय।
होइ न हो यह अजगर, पसरा पथ में सोय।।१८।।

कहहु मित्र, जो बैठा आगे। हमहि लीलबे अजगर लागे।।१९।।
याकर ओठ लाल घन होई। परछाई धरती पड़ जोई।।
सोइ अधर अजगर की जानहु। अजगर इव लागत येहि मानहु।।२०।।
गिरि कन्दरा देखु यह कैसी। अजगर की दुइ दाढ़े जैसी।।२१।।
मुख सुरंग सम माखा जीहा। अन्धकार अन्दर धरि ठीहा।।२२।।
दावानल धधकत चहुँ ओरा। मानहु अजगर सांस कठोरा।।२३।।
जले जन्तु कंह गन्ध बहाई। अजगर उदर गन्ध बहिराई।।
गिरि कन्दर चलु पैठन जाई। देखहु ग्रसे हमहुं बरियाई।।
यदि ग्रसिहै हम कंह यह भाई। यहू बकासुर की गति पाई।।
देखत पैठे कृष्ण की ओरी। दूनउ हाथ बजाइ थपोरी।।२४।।
कृष्ण सुनेउ लरिकन बतकही। पर्वत झूठ, सत्य यह अही।।
सकल जीव के अन्तरयामी। जानेउ कृष्ण, बचावन ठानी।।२५।।
तब लगि पैठे बछड़े तेते। ग्वाल-बाल रहे तँह जेते।।
रहा अगोरत कृष्ण मुरारी। राक्षस खड़ा रहा मुंह फारी।।२६।।
देखेउ कृष्ण सकल जग स्वामी। ये अनाथ प्राणी अज्ञानी।।
विस्मित भये दया उर लागी। पड़े सकल घास जिमि आगी।।२७।।
अब का करौं बचे जिमि लोगू। मरे दुष्ट जो मारन जोगू।।
सोचत गुनत श्री कृष्ण बकारी। स्वयं घुसे तेहि आनंन भारी।।२८।।

दोहा- लुके छिपे आकाश में, हा हा करते देव।
कंस आदि हर्षित हुये, ताहि सहेजे सेव।।२९।।
जभी अघासुर ने किया, चूर्ण करन अभियान।
हाय सुनी गोविन्द ने, बढ़े कण्ठ, भगवान।।३०।।

तब हि कृष्ण निज रूप बढ़ावा। उलटि आँखि पापी घबरावा ।।
रुँधा कण्ठ, उड़े प्राण पखेरू । बचे ग्वाल बालक सब गोरु।।३१।।
मरत अघासुर सकल सखाये। लीन संग हरि बाहिर आये ।।३२।।
महा सर्प मुख निकसी जोती। करत प्रकाश दशहुं दिशि होती।।
देखत देवन्ह कृष्ण समानी । सकल सृष्टि अतिशय सुख मानी।।३३।।
भूसुर सुर आये जोरियाये। अस्तुति कीन पुष्प बरसाये।।
यक्ष अप्सरा नाचहिं गांवहि। विद्या धर सब वाद्य वजावहिं।।३४।।
नृत्य गान सुनि ब्रह्मा आये । विस्मित हुये हरिंहि शिर नाये।।३५।।
शुष्क चर्म अजगर अतिभारी। लागत गुफा घोर अँधियारी ।।३६।।

दोहा- पाँच बरस की वय रही, जब हरि कीने काम।
विस्मित थे पुरजन सभी, देखे कृष्ण ललाम ।।३७।।

सुनि आचरज करे जनि कोई। कृष्ण परसि पावा गति जोई ।।३८।।
प्रतिमा पूजि मनोमय रूपा। पावंहि मुक्ति सलोक सरूपा।।
पूर्ण ब्रह्म प्रविशे तंह जाई । याही ते सद्गति अघ पाई ।।३९।।

सूत उवाच–

ऋषय, सुनी कथा नृप काना । मन लागा श्री हरि भगवाना ।।
शुकहि नृपति पूछे मन लाई । कहहु कथा हरिचरित सुहाई।।४०।।

राजोवाच–

दोहा- कीन चरित जो कृष्ण ने, पाँच वर्ष की आयु ।
कही कथा सोइ ग्वालजन, छठे वर्ष के पाय।।४१।।

योगिन्! कथा कहहु चित्तलाई। कौतूहल मम मनहिं समाई।।
माया प्रबल कृष्ण की होई। माया-पार न जानइ कोई ।।४२।।
यद्यपि हौं ब्राह्मण-अपकारी। सुनउं कथा मैं तदपि विचारी ।।४३।।

सूत उवाच–

सुनत प्रश्न शुक, राजा केरा। लीला चरित कृष्ण कंह प्रेरा।।
लगी समाधि चित्त हरसाने। बोले बचन सुधा-रस साने।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

*

।। अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच–

भगवद् भक्त श्रेष्ठ सुठि नीका। प्रश्न कीन येंहि हित सब ही का।।१।।
सन्त करहिं हरि लीला गाना। नित नव नूतन करहिं विहाना।।
सन्तहिं हरि गुण तथा सुहाई। लम्पट यथा नारि गुन' गाई।।२।।
राजन सुनहु कथा मन लाई। गूढ़उ कहै सन्त शिष पाई।।३।।
ग्वाल बाल जब कृष्ण छोड़ाये। यमुना पुलिन सबै लै आये।।४।।
कहेउ कृष्ण यमुना तट देखहु। स्वच्छ बालुका मणिकन पेखहु।।
खेलन योग सकल इंह भाई। कमल पुष्प अलिगन मंडराई।।
खगकुल कलरव करत निरन्तर। तरुवर शोभित चारु दिगन्तर।।५।।
गोधन जाइ चरइ मन लाई। आवहु हम सब क्षुधा मिटाई।।६।।
जल दिखाइ बछड़े बहिराये। कृष्ण संग सब भूख मिटाये।।७।।

दोहा- मध्य बैठ श्रीकृष्ण जब, मण्डल सब गोपाल।
नीलकमल की पंखुरी, कणिका ज्यों हों लाल।।८।।
कोउ पल्लव कोउ पुष्प पर, कोउ वृक्ष की छाल।
कोउ पत्थर कोउ सींक ले, भोजन कीने ग्वाल।।९।।

भिन्न-भिन्न रुचि सब दरसाहीं। हँसत हँसावत खेलत खाहीं।।१०।।
कमर खोंसि मुरली करि लीना। सिंगी, वेंत बगल धरि दीना।।
मधुर कौर हाथ मह लीना। सवंहि हँसावत हँसी प्रवीना।।

यज्ञ पुरुष अस भोजन करहीं। देव स्वर्ग मंह अचरज लखहीं।।११।।

दोहा- वत्सपाल भोजन करत, रहे कृष्ण में लीन।
जंगल भीतर जा घुसे, बछड़े चरन प्रवीन।।१२।।

भोजन करहु सबै मिलि भाई। लैहूँ हाँकि बच्छ अरु गाई।।१३।।
असि कहि कृष्ण कौर लइ हाँथे। गिरि कन्दर खोजेउ बिनु साथे।।१४।।
मोक्ष अघासुर देखन आये। रहे विधाता सुर पुर छाये।।
माया मनुज कृष्ण बल शीला। देखन चहत विधाता लीला।।
बछड़े वत्सप छिये छिपाई। अन्तर्धान हुये विधि जाई।।१५।।
बच्छ वच्छपालक दोउ नाहीं। बन मंह खोजत कृष्ण थका हीं।।१६।।
अन्दर जंगल ढूँढ कन्हाई। जानत सब विधि की बरियाई।।१७।।

दोहा- ग्वाल बाल अरु वच्छ कँह, चाहत करन सनाथ।
तथा विधाता हित निरखि सबंहि बने यदुनाथ।।१८।।
जितने बछड़े जौन रंग जैसे रहे शरीर।
जितने ग्वाले बाँसुरी जैसे पहने चीर।।
जैसी आकृति शीलगुण, जैसे करत विहार।
सकल विष्णुमय कीन प्रभु, सर्व रूप स्वीकार।।१९।।

आपुहिं बछड़ा आपहिं ग्वाला। खेलत व्रज आये नन्द लाला।।२०।।
जाकर बछड़े जितने रहहू। सबन मिलाइ स्वयं प्रभु करहू।।२१।।
वंशी रव सुनि माता भागी। ढरकत दूध पियावन लागी।।२२।।
चन्दन लेपन उबटन नाना। मातु करावंहि सविधि नहाना।।
सन्ध्या समय कृष्ण घर आवत। लीला विविध करत मन भावत।।२३।।
गाइ विचरि जंगल ते आवें। चुवत दूध सब वच्छ पिन्हावें।।२४।।
मातु सकल सुत पर करि प्रीती। विंनु माया यह प्रीति प्रतीती।।२५।।

सोरठा-व्रज वासिन्ह कर प्रेम, बढेउ सतत एक वर्ष तक।
सीमा रहित अथाह, यथा कृष्ण निज सुत तथा।।२६।।
एहि विधि क्रीडा करत मुरारी। बीते बरस एक बन चारी।।२७।।
एक बार आये बलरामा। एक बरस बची पाँच त्रियामा।।२८।।
गोवर्धन गिरि चरती देखी। गाय सकल हिय हरष विशेषी।।२९।।
वत्स देखि गो भागन लागी। उमगेउ दूध अधिक अनुरागी।।
दो पद दौड़ी सींग उठाये। पूंछि फेंकारि पकरि न आये।।३०।।
चाटन लगी वच्छ निज देखी। चुवत दूध निरखत सविशेषी।।३१।।
रोकन चले रोकि न पाये। ग्वाल सबै निज सुतन दिखावे।।३२।।
बालक लखत क्रोध सब भागा। हृदि उपजा अतिशय अनुरागा।।३३।।
नहि जानत कारण बलरामा। बड़े पुत्र लगि मोह निकामा।।३४।।
जे बालक जननी-पथ छोड़े। तिन्ह पर इतनी प्रीति निगोड़े।।३५।।
अद्भुत सब पर एक समाना। प्रीति रहत जैसे भगवाना।।३६।।
माया कौन कहाँ ते आई। जो माया मोंहि देहि भुलाई।।३७।।
करि विचार देखेउ बलरामा। हुआ ज्ञान लखि कृष्ण ललामा।।३८।।
दोहा- ग्वाल बाल अरुवत्स सब, नहीं सुरेश ऋषीश।
तुम्हीं सभी में भासते, चिदानन्द जगदीश।।
सोरठा-कारण देहु बताय, केहिं कारण माया प्रबल।
कहेउ बुझाइ अहीश, सकल हेतु चतुरानन।।३९।।
त्रुटि बीतत आयउ चतुरानन। खेलत देखेउ सकल गोपीजन।।४०।।
ग्वाल बच्छ मैं जो लइगयऊ। मायावश सब सोवत रहऊ।।४१।।
इतने ग्वाल कहाँ ते आये। एक बरस सब खेलि बिताये।।४२।।
ध्यान धरे सोचत चतुरानन। कौन सत्य अरु झूंठ कौन जन।।४३।।
ब्रह्मा चले कृष्ण को मोहे। प्रभु माया वश स्वयं विमोहे।।४४।।

कुहरा यथा रात्रि नहि भासै। नाहीं जगुनू दिनहि प्रकाशे।।
लघु माया नहि प्रभुहि धरावै। प्रभु माया पुनि विश्व नचावै।।४५।।
अब्ज योनि धरि ध्यान निहारा। ग्वाल बच्छ सब कृष्ण विचारा।।४६।।
सभी चतुर्भुज धरि बनमाला। गदा चक्रधारी सुविशाला।।
कुण्डल मुकुट सोह सिर सबहीं। विष्णु रूप धारे सब तब हीं।।४७।।
वक्षस्थल श्रीवत्स विराजै। नुपूर कंकण किकिणि साजै।।४८।।
तुलसी माल धरे वनमाली। भक्त प्रदत्त किये यश शाली।।४९।।
चाँदनी उज्जवल स्मित शोभे। नयन अधर मंजुल सब सोहे।।५०।।
तृन समेत नाना चतुरानन। पूजहिं सकल चराचर सज्जन।।५१।।
अणिमा महिमा आदि सिद्धियाँ। चौबीस तत्त्व सहित ऋद्धियाँ।।५२।।
तीनि काल सव कर्म स्वभावा। मूर्ति धरे सब हरि पंह आवा।।५३।।

दोहा- सत्य ज्ञान आनन्द मय, रस स्वरूप प्रभु एक।
स्वप्रकाश चैतन्य हरि, कहत जिनहि सब वेद।।५४।।

जेहिं प्रकाश भासित उजियारा। एक कृष्ण रक्षक जग सारा।।५५।।
अति आचरज लखे चतुरानन। मोहित भये बुद्धि इन्द्रिय मन।।५६।
प्रभु अतर्क्य महिमा भगवाना। गावत वेद, पुराण बखाना।।
नेति नेति जेहिं वेद कहावा। वेंद अन्त जेंहि पार न पावा।।
यद्यपि ब्रह्मा वेद-विधाता। मोहे तदपि देखि जग त्राता।।
मोहित देखि कृष्ण, चतुरानन। माया पट खीचें प्रभु तत्क्षण।।५७।।
परदा हटत सहज चतुरानन। खोले निज कर अष्ट नयन।।५८।।
चारहु दिशि तब लखे विधाता। वृन्दावन द्रुम सब जीव सुहाता।।५९।।
सहज वैर तजि एकहिं घाटे। सिंह बाघ मृग पियत अघाते।।६०।।
देखा हरि तंह नाटक कर हीं। हाथ कौर लइ इत उत रहहीं।।
ग्वाल वंश जन्मा एक बालक। सकल जगत् कर्ता प्रतिपालक।।६१।।

दोहा- हंस तजेउ पद्मासन, परेउ दण्ड की नाइ।
चारि मुकुट धरती धरे, अश्रु पखारे पांइ।।६२।।
बार-बार धरनी परत, प्रभु पद लोटत जांहि।
देखा पहले जो विभव, मन ते विसरत नांहि।।६३।।
धीरे उठि लखि सामने, पोछे आठउ नैन।
हाथ जोड़ि अस्तुति करन, बोले मीठे वैन।।६४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

*

।। अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।।

ब्रह्मोवाच-

हे घनश्याम पीत पटधारी। घुघंची माला मुकुट विहारी।।
बनमाला तव गले विराजत। हाथ कौर सिंगी अति छाजत।।
अधर मुरलिका कोमल चरना। ग्वाल रूप, मैं तेरी शरना।।
मों पर कृपा ईश तनुधारी। पञ्चभूत नहि देह तुम्हारी।।१।।
निज इच्छा निर्मित नर रूपा। योगी ध्यावें शुद्ध स्वरूपा।।
ध्यान गम्य नहि रूप तुम्हारा। मैं ब्रह्मा पाऊं नहि पारा।।२।।
ज्ञान त्यागि जे शीश नवावंहि। करि सत्संग कथा करवावंहि।।
मन क्रम वच सेंवहि तवनामू। जीतहिं अजितहुं यह परिणामू।।३।।
ज्ञान मार्ग अतिशय दुख दायी। भूंसी कूटि को तन्दुल पायी।।
भक्ति सकल क्षेम करि मूला। याही ते मिटिहैं भव शूला।।४।।
पहिलेंहु जोगी भये अनेका। तुमहि समर्पे कर्म विशोका।।
भगति मार्ग फिर ते अपनावा। लही परमगति बात बनावा।।५।।

दोहा- अगुन सगुन दूनउ जटिल, बने न बरनत पार।
आत्मा ब्रह्माकार।।६।।
बाह्य वृत्ति को त्याग कर,

सगुण रूप अति अगम तुम्हारा। गुणी कौन जो बरने पारा।।
बरु सिकता उडुगणहिं गिनाई। सगुन रूप तेउ जानि न पाई।।७।।
जे अनुभवहिं तुम्हार निपुनाई। कृपा मानि सुख दुख कठिनाई।।
हृदय प्रेम गद्गद पुनि वाणी। मोक्ष लहई जिमि पूर्वुज प्राणी।।८।।
देखहु नाथ मोरि कुटिलाई। माया मायापतिन्ह दिखाई।।
चिनगारी किमि करइ अभागी। धधकत रहइ जहाँ बड़ आगी।।९।।
क्षमहु प्रभो अपराध हमारे। रजोगुणी किमि करहिं विचारे।।
जानहुँ स्वयं सृष्टि कर स्वामी। अज अनादि धाता अभिमानी।।
प्रभु सब गर्व भयउ अब दूरी। करहु कृपा सेवक पर पूरी।।१०।।
वित्ता सात घटित मम काया। वायु अग्नि ब्रहमाण्ड निकाया।।

दोहा- रोम रोम प्रभु आपके, कोटि कोटि ब्रह्माण्ड।
जालमार्ग रवि रश्मि में, अणु परमाणु प्रचण्ड।।११।।

बाल कोखगत पैर उठाई। तिमि कंहु दण्ड देत किमि माई।।
अस्ति-नास्ति बोधित भगवन्ता। सकल उदर मंह तव श्रीकन्ता।।१२।।
नाभि कमल प्रभु जन्म कहाहीं। सो प्रभु नारायण तुम आहीं।।१३।।
सकल लोक साक्षी परमात्मा। सकल जीव उर पुर बस आत्मा।।
संसृति सकल तुम्हारी काया। सत्य कहंहु नारायण माया।।१४।।
अन्दर बाहर का पुनि कहऊँ। प्रभु सर्वत्र तुम हि तुम रहऊँ।।
कमल नाल जल सब ढिंग देखा। अन्तर्हित प्रभु होउ अशेषा।।१५।।
माया नाश कृपा ते होई। नाथ भगति विनु सुलभ न सोई।।
कृपा कीन मुख मांहि दिखावा। मातहि सृष्टि जो जानि न पावा।।१६।।

दोहा- जगत कोख में स्थित, बाहर-भीतर एक।
सब तव माया है प्रभो, एकइ लगे अनेक।।१७।।

आजु दिखायो खेल मुरारी। ग्वाल बाल बच्छ सींक खभारी।।

सबहि चतुर्भुज मोहि दिखाना। सब तव माया नहि कछु आना ।।१८।।
जे नहि जानहि तुम्हहि मुरारी। तेहि के भिन्न ब्रह्म त्रिपुरारी ।।
ब्रह्म रूप धरि सृष्टि रचावहु । पालन विष्णु रूद्र नसवावहु ।।१९।।
सुर ऋषि नर पशु रूप संवारी। प्रभु अवतरिय दुष्ट संहारी ।।२०।।
निज माया प्रभु तुम फैलावा। कहाँ कहों कब कैसे आवा।।२१।।
जगत अशेष दुःख कर मूला। माया वश जीवहिं सब भूला।।
माया ते उपजा जग सारा। सत्य लागि तव माया द्वारा ।।२२।।

दोहा– आत्मरूप प्रभु सत्य तुम, विगत विकार विभेद ।
स्व प्रकाश तुम नित्य विभु, अद्वय पूर्ण निखेद ।।२३।।
जीव सकल तव रूप प्रभु, लहंहि सूर्य गुरु ज्ञान।
आत्म रूप को जान कर, तरंहि सिन्धु अज्ञान।।२४।।

जो नहि जानहि तुमहि गोसाई। रज्जु सर्प इव भ्रमहिं भुलाई।।२५।।
बन्ध मोक्ष कल्पित दोउ रूपा। जो न जान तव सत्य स्वरूपा ।।
यथा सूर्य कंह राति न होई । आत्महि बन्धन मोक्ष न सोई ।।२६।।
अज्ञानी शरीर बहु मानहिं । आत्म तत्व भीतर नहि जानहिं।।२७।।
प्रभु अनन्त उर पुरंहि विराजा। भीतर खोजंहि सन्त समाजा।।२८।।
ज्ञान विराग योग विज्ञाना । व्यर्थ विना तव भगति सुजाना ।।२९।।
चरण कमल सेवा मंह राखहु। पशु-पक्षी योनी भलु चाखंहु।।३०।।
धन्य धन्य गो ग्वालिन स्वामी । छक्यो अमृत इव दूध निकामी।।३१।।

दोहा– नन्द आदि व्रज गोप सब, परम धन्य सब लोग ।
पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर, सुहृद स्वजन का योग ।।३२।।

मन समेत इन्द्रिय सब स्वामी। महादेव तव पद रज कामी ।।
जेहिं पद कमल मंजु रस भोगी। व्रजवासी जिमि लागत योगी।।३३।।
तब पज रज चाहत श्रुति सन्ता। व्रज मंह जनम देहु श्रीकन्ता।।३४।।

तुमहि साध्य सब साधन नाना। तुमहि अमृतफल तरु भगवाना ।।
द्वेष धारि पूतना आई । भाइ बन्धु संग हरि पद पाई ।।३५।।
तब लगि राग द्वेष सब काऊ । बन्धन जब लौं तव पद पाऊ।।३६।।
सब प्रपञ्च से रहित मुकुन्दा। भक्त भाव लखि होहु गोविन्दा।।३७।।
अब जादा क्या कहिहो स्वामी। तुमहि अगोचर मम मन वाणी।।३८।।

सोरठा–अपनावहु मोहि नाथ, तुम ज्ञाता तुम सर्वदृक।
तुमहि जगत के विष्णु, अर्पित सारा जग तुम्हें ।।३९।

यदुकुल कमल दिवाकर स्वामी। भू भूसुर सब उपधि निकामी ।।
सूर्य चन्द्र इव भासत रहहू । कलप कल्प तव पद रज चहहूँ।।४०।।

श्रीशुक उवाच–

एहि विधि अस्तुति ब्रह्मा कीन्हा। तीन प्रदक्षिण करि मग लीन्हा ।।४१।।
तब श्रीकृष्ण सरित तट आये। ग्वाल बच्छ जँह रहत चराये ।।४२।।
प्रभु माया मोहित सब बालक। एक वर्ष को पल भर मानत।।४३।।
माया मोहित जीव अनेका। कहंहि शास्त्र भलु एक ते एका ।।४४।।
बोलेहु सुहृद कहाँ रहे भाई । तुमरे बिना कौर नहि खाई ।।४५।।
सह भोजन तब किये मुरारी। दिखलाये अजगर वपु भारी ।।४६।।
मोर पंख सिर सोहत नीके। श्याम गात रुचि चित्र अनेके ।।
कबहु वाँसुरी श्रृंग बजावत। शोभित श्याम कीर्ति गुण–गावत।।
गोपिन्ह देखि तिरछि करि नैना। पैठेउ गोपुर कृष्ण सुबैना ।।४७।।

दोहा– आजु कृष्ण ने हति दियो, महा व्याल इव काल।
हम सब की रक्षा करी, हम सब हुए निहाल।।४८।।

राजोवाच–

दोहा– ब्रह्मन्! निज सुत से अधिक, हुआ कृष्ण पर नेह।
निज सुत पर ममता बहुत, किए मनंहि सन्देह ।।४९।।

श्री शुक उवाच–

आत्मा सकल प्रेम की खानी। तेंहि लगि प्रेम करत जग स्वामी।।५०।।
यथा प्रेम निज आत्महि होई। तथा न पुत्र वित लगि सोई।।५१।।
देह आत्म भलु मानहि जेई। सेवहि देह पुत्र नहि तेई।।५२।।
जीर्ण देह जब होवन लागी। तजहिं तासु ते आत्म विरागी।।५३।।
आत्म प्रेम लगि सब जगु नीका। तेहि बिनु सब जग लागे फीका।।५४।।
सकल चराचर सब जग स्वामी। कृष्ण एक प्रभु अन्तर्यामी।।
सो अवतरेउ देहि धरि रूपा। माया वश सचराचर भूपा।।५५।।
जो जानहिं श्री कृष्ण गोसाईं। अन्य वस्तु नहि ताहि दिखाई।।५६।।
सब कर कारण एक मुकुन्दा। कृष्ण भिन्न नहि, भजु गोविन्दा।।५७।।

दोहा– जेंहि पद-पल्लव नाव चढ़ि, पार होंहि भव सिन्धु।
गोपद इव सब सन्तजन, विपद होइ तेहि विन्दु ।।५८।।

यह सब मैंने दिये सुनाई। वय पञ्चम की छठे बताई।।५९।।
सुहृद भोज अघ मर्दन गावहिं। जे नर ते सब सुखइह पांवहि।।६०।।
एंहि विधि रहत कृष्ण बलरामा। खेलत तजि कौमार ललामा।।६१।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

*

।। अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

अब पौगण्ड वयस शुभ आई। छठे वर्ष पहुँचे दोउ भाई।।
गो चारण की अनुमति पाई। मित्रसंग वृन्दावन जाई।।१।।
कुसुमाकर वृन्दावन सुन्दर। हरी घास युत अद्भुत गोचर।।
माधव वंशी लगे बजाने। बल अरु ग्वाल लगे यश गाने।।२।।

कतहुँ मधुप गुञ्जन रव कर हीं। कतहुँ त पक्षी मृग अनुसर हीं ।।
फूले कमल सरोवर सोहे। जासु सलिल सज्जन मन मोहे ।।
देखत परम मनोहर कानन। चहत विहार कीन नन्द नन्दन ।।३।।
फल अरु फूल कोपलें डालीं। वृक्ष झुकत चाहत पग लाली ।।
देखत तरुवर हरि मुस्काये! । अग्रज सन बोले हरसाये ।।४।।

श्री भगवान् उवाच–

तव पद पूजे देव पुरन्दर । पुनः आजु सब पूजत तरुवर ।।
किसलय फल प्रसून तरु छाये। चरण कमल चाहत नियराये।।
वृक्ष योनि धारी सब कानन । चाहत मोह–नाश नत आनन ।।५।।
लखहु तात! अलिगण नियराने। गावत यश तब भगत पुराने ।।
यद्यपि निज ऐश्वर्य छिपाई । फिरहु तात! बालक समुदाई।।६।।
हर्षित मोर नृत्य सब करहीं । गोपिन इव हरिणी संचरहीं।।
कोकिल धुनि चहुँओर सुहाई । सज्जन स्वागत करहिं बड़ाई ।।
तब पद पंकज परसति धरनी। वृक्ष लता हरषहिं निज करनी।।
पर्वत नदी वन्य पशु पाखी । तव चितवन देखत भरि आँखी ।।७।।
दोहा– धन्य–धन्य व्रज गोपिका, परसि वक्ष लह काम ।
जेंहि परसन चाहत सदा, ललित रमा–अभिराम ।।८।।

श्री शुक उवाच–

सोराठा–अति प्रमुदित श्रीकृष्ण, देखत वृन्दावन सुखद ।
घूमे पर्वत सानु, कवहुँक यमुना पुलिन पर।।९।।
गावत कतहुँ चलहिं दोउ भाई । गुंजत अलिगन के पिछुवाई ।।१०।।
राजहंस इव कूजहिं कबहूँ । मोर संग नचि मोहहिं सबहूँ ।।११।।
गो गोपालन सबहि सुनाई । एक–एक लै नाम बुलाई।।१२।।
बोलहिं मोर चकोर की बानी । कबहु डेरहिं सिंह जिमि प्रानी ।।

अग्रज खेलत कबहुँ थकाने। लेटे गोप गोद-उपधाने ।।१३।।
पैर पलोटत कृष्ण गोसाईं । दाउन्ह सेव अनुज की नाई ।।१४।।
नाचत गावत करत लड़ाई । हाथ पकड़ि हँसि ग्वाल छुड़ाई ।।१५।।

दोहा- कबहूँ सोवत पेड़तर, पल्लव सेज बनाइ।
जबहि थकहि श्रीकृष्ण तब, ग्वाल अंक शिर नाइ।।१६।।

सकल ग्वाल हरि पाँव दबाते। केहु केहु बालक विजन डोलाते।।१७।।
केहु के हृदय उभगि रस धारा। गावत लीला चरित उदारा ।।१८।।
कबहुँक कृष्ण करहिं अस लीला। ग्वाल बाल इव चरित सुशीला।।
रमा पलोटति जाकर चरना। सो हरि ग्राम्य रचावें रचना।।१९।।
सुबल श्रीदामा आदि सखाई। गौर श्याम हित बोले आई ।।२०।।
राम कृष्ण तुम दुष्ट संहारे । पासंहि बन एक ताल सहारे।।२१।।
गिरे मिलहिं फल जहाँ अनेका। धेनुक असुर करत तँह छेका।।२२।।
धेनुक नाम गधा तनु धारी। साथिन सहित करत रखवारी।।२३।।
अगणित नर सो कीन अहारा। पशु पक्षिन तक कीन्ह किनारा।।२४।।
सूंघहुं तनिक सुरभि कित छावा। पाके फल कबहूँ नहि खावा।।२५।।

सोरठा-यदि चाहहु तुम राम, कृष्ण खवावहु मधुर फल।
सब हीं लालच बाढ़ि, सूंघत सुरभित रस निकर।।२६।।

सुहृद वचन सुनि हित कर लागे । चले कृष्ण दाउंहि करि आगे।।२७।।
दाऊ बहु फल फूल गिराये । यथा मथहि गज बन बौराये ।।२८।।
शब्द श्रवण सुनि रासभ धावा । मांनहु धरती शैल कंपावा ।।२९।।
बल्देवहिं मारेसि दुइ लाता । वक्ष मांहि दौड़ा चिल्लाता ।।३०।।
राजन् ! गधा बहुरि तंह आवा । देखि बलहिं फिरु लात चलावा ।।३१।।
एकइ हाथ पकड़ि बल लीना । नभ घुमाइ असु ताकर छीना ।।३२।।
खर के गिरत ताल कहु टूटे । भर भराइ कछु गिरे जे छूटे।।३३।।

खेलत बल खर देह उछाली। गिरेउ ताल कंप गई वनाली ।।३४।।

सोराठा–नहि अचरज कछु तात!, स्वयं ईश बलभद्र प्रभु।

वे अनन्त भगवान, रमे यथा सब तन्तु पट।।३५।।

बन्धु निधन सुनि खर सब आये। युगल भ्रात पर कीन चढ़ाये ।।३६।।

कृष्ण, राम आवत खर देखे। फेकेउ मारि जहाँ तृण शेषे।।३७।।

असुर देह, फल निकर संवारी। सोहति भूमि यथा घन भारी ।।३८।।

देखत युगल भ्रात नर लीला। बरसेउ सुमन देव बहु खीला ।।३९।।

निर्भय ग्वाल लगे फल खाई। हते धेनु तृण धेनु चराई ।।४०।।

कमल नयन, बलहिं करि आगे। स्तुति करत ग्वाल, व्रज छाजे।।४१।।

गोरज छुरित अलक घुंघराली। वन्य प्रसून धरे बनमाली ।।

मन्द हास मृदु मुरलि बजावत। देखि–देखि गोपी सुख पावत ।।४२।।

दोहा- मुख सरोज श्रीकृष्ण कंह, करहिं गोपिका पान।

विरह ताप करि शान्त प्रभु, स्वागत लीन सुजान।।४३।।

आशिष दीन युगल महतारी। रोहिणि और यशोदा न्यारी ।।४४।।

करि उवटन मज्जन करवाया। भूषन–वसन रुचिर पहिरावा।।४५।।

राम कृष्ण भोजन करवाये। करि दुलार शय्या पौढ़ाये।।४६।।

येंहि विधि विविध करत नर लीला। गये एक दिन यमुना–कूला।।४७।।

गाय गोप सब धूप–पियासे। पिये सविष जल भये निरासे ।।४८।।

पिवत वारि सब मूर्च्छित भयऊ। यमुना कूल गिरत सब रहऊ ।।४९।।

गाय गोप मृत देखा आ हा। सुधा दृष्टि जियाये कान्हा ।।५०।।

हुये सजीव परस्पर देखहिं। विस्मित एक एक कहिं पेखहिं ।।५१।।

निश्चय कीन मरे हम जेते। कृष्ण कृपा जीवित हम तेते ।।५२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

*

।। अथ षोडशोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच–

दोहा– देखी यमुना दूषित, कालिय किया मलीन।
करने उसको शुद्ध प्रभु, सर्प दूर करि दीन।।१।।

राजोवाच–

यमुना सरि जहँ नीर अगाधा। कैसे नाथ कृष्ण तेंहि बाँधा।।२।।
प्रभु अनन्त तेंहि चरित अनन्ता। तृप्त होइ को, विनु सेए सन्ता।।३।।

श्री शुक उवाच–

यमुना मंह एक कुण्ड अगाधा। कालिय जहाँ रहत बिनु बाधा ।।
तेंहि के गरल तप्त जल भयऊ। गिरेउ जो खग सो ऊपर गयऊ।।४।।
तेहि विष परसि मरत पशु पाखी। जल कल्लोल विन्दु जे चाखी।।५।।
जानत कृष्ण अही अति भारी। दुष्ट दमन हित कीन हंकारी।।
चढ़ेउ कदम्ब वृक्ष पंह जाई। कूदेउ जल मंह कृष्ण कन्हाई।।६।।
अहि विष खौलत सलिल विषैला। हाथ चारि शत तक जाल फैला।।
कूदत सलिल क्षोभ भा भारी। सलिल सहे कत भार मुरारी।।७।।
कुण्ड सलिल ब्रजराज उछालत। मनहु शुण्ड गजराज चलावत।।
शब्द सुनेउ जब नयन ते नागा। उठा क्रोध सोवत जिमि जागा।।८।।
देखेउ सुन्दर घन तनु-धारी। पीतवसन शोभा अति प्यारी।।
चरन कमल दुइ सोहइ नीके। मधुर हास मुख लसइ अमी के।।
खेलत देखत अभय मुकुन्दा। काटेउ मर्म घात स्वच्छन्दा।।९।।

दोहा– नाग पाश में बद्ध हरि, देखे ग्वाल अनेक।
कृष्णाहिं सर्व समर्पित, सखा समेत अचेत।।१०।।

गाय वच्छ वृष सब दुखियारे। कुण्डहिं बारम्बार निहारे।।११।।
दारुण त्रिविध ताप भयकारी। व्रज मंह तुरतहि लीन प्रचारी।।१२।।

नन्द आदि सब गोप विचारे । बिनु बलराम, कृष्ण पद चारे ।।१३।।
असगुन लगि सोचहिं भय माने । कृष्ण विधान,जे हरि नहिं जाने ।।१४।।
बालक वृद्ध नारि नर जेते । कृष्ण दरस हित निकसे तेते ।।१५।।
कृष्णहिं बल बलदाऊ जानत । कातर-लखे, हँसे मुख आनत ।।१६।।
चरण चिह्न देखत चलि जाहीं । पहुँचे सब कदम्ब की छांही ।।१७।।
मारग चिह्न दिखे विधि नाना । अंकुश जब ध्वज वज्र निसाना ।।१८।।

दोहा– ऊपर से सबको दिखे, नाग पाश में कृष्ण।
ग्वाल बाल सब मूर्च्छित, कश्मल दृष्टि सतृष्ण ।।१९।।

गोपिन्ह देखा कृष्ण मुरारी । अतिशय दुःख भयउ भय भारी ।।२०।।
मातु यशोदा कूदन धायीं। मातु सरसि गोपिन्ह दुख पाईं ।।
कहि कहि कथा तासु समुझावा । मृतक सरिस तेहि के पतियावा ।।२१।।
नन्द आदि ह्रद प्रविशन चहहीं। तब अनन्त बल जानि बरजहीं ।।२२।।
व्रज वासिन्ह कंह कातर देखा। लीला कीन धरे नर वेषा ।।
एक मुहूरत बन्धन राखा। उठे उरग बन्धन जिमि चाखा ।।२३।।
तब प्रभु आपन तनु फैलाये। छूटा पाश कृष्ण बहिराये ।।
अति क्रोधित कालिय फुफकारा। उल्का इव मानंहु अंगारा ।।२४।।
दूनउ जीभ नाग लहरावा । आँखिन ते विष बाहिर आवा ।।
खेलत यथा सर्प उरगारी । कालिय ताकत कृष्ण मुरारी ।।२५।।

दोहा– जब बल थाक्यो नाग कंह, माथा दीन झुकाय ।
कृष्ण चढ़े तेहि शीश पर, नर्तन करत सुहाय ।।

कालिय शिर मणि लाल प्रकाशा । पद सरोज अरुणिम अति भासा।।२६।।
नाचत देखि कृष्ण भयहारी । आये सिद्ध यक्ष सुरनारी ।।
नाना वादन हाथ सुहाये । लै उपहार सु अस्तुति गाये ।।२७।।
एक सौ एक नाग फणु धारी । झुकेउ न जो, तेंहि मथे मुरारी ।।

आयुष हीन हुआ अहि जबही। रक्त बमत सिर घूमेउ तबहीं।।२८।।
आँखिन गरल रहा बहिराई। कालिय जानि मीचु अब आई।।
अहि फन रुधिर कृष्ण पगु लागा। कुसुम-लाल मनु-पूजि अभागा।।२९।।
अति विचित्र ताण्डव हरि कीन्हा। छिन्न भिन्न फन कालिय चीन्हा।।
आपन बलु जब गयो थकाई। कालिय मनसा हरि सुधि आई।।३०।।
जाके उदर विश्व कर बासा। सो रौंदेउ फन दीन्ही त्रासा।।
देखि दशा सब पत्नी आईं। भूषन वसन केश छितराई।।३१।।

दोहा- सर्प शिशुन्ह आगे करि, पड़ी दण्ड जिमि आइ।
हाथ जोड़ि सब नागिन, अस्तुति कीन सुहाइ।।३२।।

नागपत्न्य ऊचुः-

दोहा- उचित दण्ड का पात्र यह, समदर्शी यदुनाथ।
दुष्ट दलन अवतार प्रभु, कीजो हमहिं सनाथ।।३३।।

बड़ी कृपा तुम कीन मुरारी। दण्ड तुम्हार पाप तम हारी।।
सर्प योनि बड़ पाप ते पायहुँ। कीन अनुग्रह पाप नसायहुँ।।३४।।
कबहुँ पुण्य यह कीन खगासन। तबहि प्रसन्न भये गरुडासन।।
नहि जानऊँ एहि पुण्य पुराना। पद रज तब पायउ फण नाना।।३५।।
जेहिं रज लागि रमा तप कीन्हा। सोइ रज प्रभु तुम माथे दीन्हा।।
जो पद रज तब पाइ सुरेशा। चाहंहि नहि ते नाक रसेशा।।
अणिमादिक सब सिद्धि गोसाई। मोक्ष, ब्रह्मपद चाहत नाईं।।
अति पवित्र सो रज एहि पावा। तमोगुणी जो फणी कहावा।।
संसृति चक्र भ्रमत संसारी। वैभव मोक्षहिं देंहि विसारी।।३८।।

दोहा- हे अनन्त ऐश्वर्यमय, पूर्ण पुरुष भगवान।
भूतावास कृपामय, शतृशत् तुम्हें प्रणाम।।३९।।

छन्द- हे ज्ञान निधे, विज्ञान निधे, हे अमित शक्ति हे कृपानिधे।
हे अगुण सगुण नारायण हे,हे चिन्मय हृदय परायण हे।।
हे कालरूप हे महाकाल, हे प्रलयंकर हे अति कराल।
हे विश्वरूप हे विश्वमूर्ति, हे द्रष्टा कर्ता, हे विशाल ।।
मन बुधि प्राण चित्त के नायक। त्रिविध गुणों के तुम अधिनायक।।
प्रभु अनन्त अति सूक्ष्म विभेदा। वाचक वाच्य सुधी नहि खेदा ।।४३।।
सकल प्रमाणन के प्रभु मूला। आगम निगम शास्त्र अनुकूला ।।४४।।
दोहा- कृष्ण राम बसुदेव सुत, संकर्षण अनिरुद्ध ।
स्वयं प्रभु प्रद्युम्न तुम, नमो नमः अति शुद्ध ।।४५।।
आप गुणों के दीप प्रभु, गुण से ढकें हैं जोय।
उपलक्षित निज वृत्ति से, गुण द्रष्टा प्रभु सोय ।।४६।।
हे मननशील हे महामुनी, हे हृषीकेश हे महागुनी।
हे नित्य बिहारी महा प्रकृति, हे कृष्ण विभो हे नमो नमः।।४७।।
स्थूल सूक्ष्म गति साक्षी प्रभु, सब के अध्यक्ष स्वयं भू तुम।।
तुम स्वयं विश्व या अविश्व, पर अरु अवर परात्पर तुम।।४८।।
काल शक्ति प्रभु धरे अनादी। करते प्रलय स्थिति सर्गादी ।।४९।।
सत्त्व प्रधान शान्त तब रूपा। रज अशान्त तम मूढ़ स्वरूपा ।।
सम्प्रति सत्व रूप प्रभु धारे। सज्जन त्राण दुष्ट संहारे ।।५०।।
यह अपराध प्रथम हिय जानी । मूढ़ पतिंह मम छमिये स्वामी ।।५१।।
पति मम प्राण परम प्रिय नाथा । प्राण दान करि करहु सनाथा ।।५२।।
सेवा बहुरि बतावहु स्वामी । तुमहि सेइ सुकृतारथ प्रानी ।।५३।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- नागिन की अस्तुति सुनि, भे प्रसन्न यदुनाथ।
मूर्च्छित कालिय छोड़ि पुनि, नागिन कीन सनाथ ।।५४।।

दोहा- कछुक चेतना पाइ तब, देखि कृष्ण चहुँओर।
कालिय बोला दीनबन, शीश झुका कर जोर।।५५।।

कालिय उवाच-

जब तें जन्म नाथ मैं पावा। रहा सदा खल मूढ़ स्वभावा।।
निज स्वभाव छोड़त कठिनाई। येंहि ते व्यापी सकल बुराई।।५६।।
तुमहि विधाता रचे विचारी। जीव योनि अहि नकुल मुरारी।।५७।।
उरगहिं जन्मत क्रोध स्वभावा। केंहि विधि तजौ जानि नहि पावा।।५८।।
निग्रह कृपा सकल तब हाँथे। जस करिहौ लेईहौ सिर माथे।।५९।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- कालिय की सुनि प्रार्थना, बोले कृपा निधान।
कालिन्दी को त्याग करि, सिन्धु जाहु लै प्रान।।

संकल चराचर पीवे पानी। जाहु तुमहु संग निज प्रानी।।६०।।
जो कोउ चरित सुने सुखदाई। तब कुल तें भय ताहि नसाई।।६१।।
हद मंह तर्पण मज्जन करई। सर्व पाप सद्यः तेहिं हरई।।६२।।
रमणक छौंड़ि गरुड़-भय आयहु। भय तुम को नहि कबहुँ सतावहु।।६३।।

श्रीशुक उवाच-

पूजन कीन सहित अनुरागा। कालिय नाग सकल भय भागा।।६४।।
दिव्य वसन भूषन पहिराये। कमल माल्य रुचि गन्ध लगाये।।६५।।
कीन प्रदक्षिण बन्देउ आई। अति प्रसन्न बहु बरनि न आई।।६६।।
जब ते गयउ पुत्र तिय संगा। निर्विष यमुना लागति गंगा।।६७।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षोडशोऽध्यायः।।१६।।

*

।।अथ सप्तदशोऽध्यायः।।

राजोवाच

दोहा- नाग निलय रमणक सुने, कालिय त्यागे कांहि।
गरुड़ संग क्या वैर था, ऋषे बतावहु ताहि।।१।।

श्रीशुक उवाच–

गरुड़हि बलि हित नियम पुराना। एक–एक अहि प्रतिदिन आना।।२।।
दिवस अमावस तँय कर राखा। नियत भाग तब सुपरन चाखा।।३।।
कद्रूसुत कालिय विष भारी। खाया बलि गरुहि अविचारी।।४।।
गरुड़ जानि आपन अपमाना। झपटेउ कालिय काल समाना।।५।।
गरुड़हि आवत देखि विषानन। क्रोधित उठा उठाइ शतानन।।
डसेउ गरुड कंह दाँत धँसावा। जीभ भयंकर आँख देरावा।।६।।
वेग प्रचण्ड विष्णु कंह आसन। ताक्ष्र्य तनय तेंहि हने पक्ष सन।।७।।
विह्वल कालिय गरुड के मारे। यमुना दह मंह पैर पसारे।।८।।

दोहा- यमुना जल मंह मीन बहु, गरुड खात स्वच्छन्द।
बरजे सौभरि एक दिन, मत्स्य भोज करु बन्द।।९।।
अपने राजा के हते, हुए दुखी सब मीन।
सौभरि दया विचारि के, शाप गरुड़ कंह दीन।।१०।।

अब यदि गरुड़ इहाँ झख खाये। तुरतहिं देइहंइ प्राण गंवाये।।११।।
कालिय जानत मरम पुराना। तेंहि ते यहि ह्रद कीन ठिकाना।।१२।।
बाहर निकसे कृष्ण मुरारी। वस्त्र गन्ध मणि–माला धारी।।१३।।
हुए सचेत गोप नर नारी। जिमि इन्द्रिय मंह प्राण संचारी।।१४।।
हुये मनोरथ पूर्ण सभी के। रोहिणि नन्द यशोदा जी के।।१५।।
शेष हँसे देखि प्रभु करनी। गाय वच्छ विहँसे बन हरिणी।।१६।।
ब्राह्मण कहे नन्द घर जाके। काल ग्रसा सुत आवा बाँके।।१७।।

विप्रन्ह देहु नन्द बहुदाना। अति प्रसन्न तिनकंह सनमाना।।१८।।
माता कृष्णंहि गले लगावा। बार-बार बहु अश्रु बहावा।।१९।।
भूख-प्यास व्याकुल सब गायें। कालिन्दी तट निशा बिताये।।२०।।
तबहि दवानल फैला भारी। अर्धरात्रि व्यापी उजियारी।।२१।।
भय कृशानु सब लगे पराये। माया मनुज कृष्ण पंह धाये।।२२।।

दोहा- महाबाहु श्रीकृष्ण हे! अमित पराक्रम राम।
ग्रसत तुम्हारे स्वजन को, दारुण घोर कृशानु।।२३।।
काल अग्नि से त्रस्त सब, सुहृद तुम्हारे श्याम।
चरन-शरन में आगये, राखहु प्राण सुजान।।२४।।
व्याकुल देखि अनन्त प्रभु, विकल होत सब लोग।
अग्नि पुंज सब पी लिये, मिटा सकल दुर्योग।।२५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

*

।। अथाष्टादशोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच-

अब व्रजनन्दन व्रज में आये। इष्ट मित्र सब हरि गुण गाये।।१।।
गोप वेश खेलत बल श्यामा। गीष्म ऋतू आई व्रज धामा।।२।।
जहाँ कृष्ण बलराम विराजे। ग्रीषम तँह ऋतुपति सम छाजे।।३।।
निर्झर झर-झर झरत फुहारी। झींगुर रव नहि करत दुखारी।।४।।
नदी सरोवर सब जल पूरे। कमल पराग सुगन्धित रूरे।।
हरी घास छायी चहुँ ओरा। ग्रीषम की नहि कतहुँ झकोरा।।५।।
नदी तोय सब भरी अगाधा। सूर्य ताप नहि लावइ बाधा।।६।।
कुसुमित बन जँह चहक विहंगा। कोकिल सारस मधुप कुरंगा।।७।।

खेलत राम श्याम दोउ भाई । गोधन संग हरि वेणु बजाई ।।८।।

दोहा- नव पल्लव रुचि मोर पँख, धरे सुमन के हार।
नाचत गावत लड़त सब, ग्वाल किये श्रृंगार।।९।।

जबहिं श्याम सुठि नाचन लागे। देत ताल सब कर करि आगे ।।१०।।
सुरगण सकल ग्वाल बनि आये। अवसर पाइ सुमन बरसाये।।११।।
काकपक्ष सिर सोह ललामा । राम श्याम खेलत अभिरामा।।१२।।
अन्य ग्वाल जब नाचन चह हीं । युगल भ्रात तब ताहि प्रशंसहिं ।।१३।।
बेल आँवला फेंकि परस्पर । आँख मिचौनी खेलत यदुवर ।।१४।।
दादुर इव फुदकंहि केहु ग्वाला । हास करहि बनि नृपति विशाला।।१५।।
गाँव-गली क्रीडा अभिरामा । खेलत रहत कृष्ण बलरामा ।।१६।।
राम श्याम जब गाय चरावा । नाम प्रलम्ब असुर तँह आवा।।१७।।
ग्वाल रूप धारी खल आवा । जानि-बूझि प्रभु मित्र बनावा।।१८।।
कृष्ण सबंहि गोपाल बुलाये। दुइ दल करि तब खेल रचाये ।।१९।।
एकंहि दल नायक बलरामा । अपर संघ नायक घनश्यामा।।२०।।
खेलहिं खेल ग्वाल मिलि नाना । हारत सबल चढ़ावहि काना ।।२१।।
यहि विधि-खेलत रहे मुरारी। बन भाण्डीर-गये असुरारी ।।२२।।
जीतेउ दाउ वृषभ श्री दामा । कृष्ण आदि ढोये अभिरामा।।२३।।
हरि हारे जीते श्रीदामा । प्रलम्ब उठाइ चला बलरामा।।२४।।
दानव जानि कृष्ण अतिभारी। छाँड़ि ताहि बलराम पचारी।।२५।।

दोहा- शेष भार नहि सहि सका, लीना दानव रूप ।
स्वर्ण जटित तेहि गात पर, मनहुं शशी घन भूप।।२६।।

असुर भयावह लागत भारी। मानंहु काल रात्रि अँधियारी ।।
लाल केश बिखरे शिर ऊपर। मनंहु कृशानु लगा कोउ भूधर ।।
कड़ा मुकुट, कुण्डल सब सोहे। पल भर सो बलदाऊ मोहे।।२७।।

निज स्वरूप आये बलरामा। मुष्टि प्रहार हने यतुधाना ।।२८।।
मानंहु इन्द्र वज्र देइ मारा। गिरा भूमि नहि असुर सम्हारा ।।
शिर विदीर्ण मुख रुधिर निकारा। प्राण-हीन वह दैत्य सिधारा ।।२९।।
बलशाली बलराम अपारा। जेंहि प्रलम्ब दानव संहारा।।३०।।
सबहि प्रशंसे प्रभु बलरामा। आलिंगन करि भेटें श्रीश्यामा ।।३१।।
त्रिदश सबहि हर्षे अनुकूला। साधु-साधु कहि बरसे फूला ।।३२।।

।। इति श्रीमद्‌भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वाधे अष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

*

।। अथ एकोन विंशोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– जबहि गोप क्रीडारत, दूर चरत तिन्ह गाय।
हरी घास के लोभ में, जंगल पहुँची धाय।।१।।

बकइन बाछी धेनु चराई। जंगल ते जंगल भरमाई ।।२।।
खेलत गोप कृष्ण बलरामा। पशु सुधि कीन न लह विश्रामा ।।३।।
गोधन रहे जीविका जाके। ग्वाल चले गो पद लखि बाँके।।४।।
कानन मूंज रहा अति भारी। भटकी तँह सब गाय विचारी ।।५।।
एक-एक लै नाम बुलावा। कृष्ण शब्द सुनि पशु बहिरावा।।६।।
देखत दहेउ दवानल भारी। लागन जारि चराचर झारी ।।७।।
गाय गोप सब कृष्ण पुकारे। अन्तकाल जिमि जीव हंकारे ।।८।।

दोहा– कृष्ण कृष्ण बलराम हे, अमित पराक्रम दोउ।
दावानल से जल रहे, शरण हमारे होउ ।।९।।
सकल बन्धु प्रभु राउरे, दुखी होंहि किमि आज।
धर्म-परायण हे विभो, तुम्हीं बनाओ काज ।।१०।।

श्रीशुक उवाच–

बोलत वचन श्याम मुसकाहीं। मूदंउ आखि कतउं कछु नाहीं।।११।।
मूँदत नेत्र, जगत भयहारी। अग्नि पिये तब कृष्ण मुरारी।।१२।।
मुदित नयन पहुँचे भाण्डीरा। विस्मित सब यदुकुल के बीरा।।१३।।
सकल काज करनी योग माया। योग सिद्ध हरि कीन्ही दाया।।१४।।
साँझ समय व्रज मंह हरि आये। राम सहित मृदु वेणु बजाये।।१५।।
युग सम पल-पल जाही जाये। गोपीजन सब आनन्द मनाये।।१६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वाधे एकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

*

।। अथ विंशोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- कथा दवानल की तथा, यथा प्रलम्ब नसाइ।
नारिन से कही गोप ने, अपने घर में जाइ।।१।।

गोपी गोप वृद्ध हरसाने। रामकृष्ण देवोपम जाने।।२।।
बिता ग्रीष्म वर्षा ऋतु आई। जलधर मण्डल लिये बनाई।।३।।
सगुन ब्रह्म इव सोह आकाशा। सघन व्योम जिमि तडित प्रकाशा।।४।।
आठ मास दिनकर कर लीना। पाइ सुकाल चहत सोइ दीना।।५।।
बरसहिं सलिल मेघ नियराये। द्रवहिं सुजन जिमि प्रजा सताये।।६।।
तप फल पाइ पुष्ट जिमि देहा। शुष्क धरा हर्षित घन-नेहा।।७।।
सन्ध्याकाल मेघ नभ छाये। तारे लुप्त जुगुनु छितराये।।
पाप बहुल कलिमंह जिमि भाई। वेद लोप पाखण्ड बड़ाई।।८।।
मेघ नाद सुनि बोलहिं दादुर। यथा वेद धुनि करते भूसुर।।९।।
नदी सरोवर सब उतराये। यथा कुपथ धनदेह नसाये।।१०।।

दोहा- हरे घास से हरित कहुँ, कहूँ बधूटी लाल।
छत्रक इव वहु श्वेत कहुँ, धरती सैन्य भुवाल।।११।।

सुखी किसान धान बहु पाये। धनिक मंनहि परिताप समाये।।१२।।
जलचर थलचर अन्दर बाहर। सुघर भये जस हरि सेवा तत्पर।।१३।।
सरित संग वारिधि कल्लोला। अबुध योगि विषयी मन डोला।।१४।।
वर्षा सहि पर्वत नहि थाके। चित्त बसहि प्रभु व्यथा न ताके।।१५।।
उगी घास मारग अनुकूले। विनु अभ्यास वेद वटु भूले।।१६।।
यद्यपि मेघ परम उपकारी। तबहु न घिर तंह चपला न्यारी।।
यथा पुरुष अति गुणी विहाई। चञ्चल तरुणी करत ढिठाई।।१७।।
इन्द्र धनुष निर्गुण नभ सोहा। गुण व्यतिकर निर्गुण मन क्षोभा।।१८।।
ग्रसहि मेघ नभ चन्द्रहि कैसे। अहंकार सब पुरुषहिं जैसे।।१९।।
जलद निरखि केकी हरसाये। यथा गृही हरिजन संग पाये।।२०।।
सूखे तरुन्ह फूल फल आये। यथा सकाम भक्त फल पाये।।२१।।

दोहा- यदपि अशान्त सरोवर, हंस तजंहि नहि ताहि।
विषयी, लोलुप, कामवश, गृही घरहिं को जांहि।।२२।।

वर्षा टूटत सेतु कियारी। जिमि पाखण्ड वेद मति सारी।।२३।।
अमृत तुल्य जल मेघन दीना। याचक सज्जन करहिं अदीना।।२४।।
पाके जामुन भरे-खजूरा। गोप संग बन आये वीरा।।२५।।
दूध चुवत धेनू सब आई। नाम बोलि हरि लिये बुलाई।।२६।।

छन्द- देखे वनवासी सब सुखराशी,
हर्षित भये मुकुन्दा।
गिरि जलधारा देखि अपारा,
मगन भये गोविन्दा।।२७।।

देखत तरु कोटर लगत मनोहर,
वर्षत मेघ अमन्दा ।
बैठे व्रजराशी कन्द फलाशी,
विहरे हरि स्वच्छन्दा ।।२८।।
दधि ओदन लीना, शिल आसीना
कीने बहुरि अनन्दा ।
लै गोप ललामा संग बलरामा,
शोभित परमानन्दा ।।२९।।
आँखि मूँदि पशु करत जुगाली । निरखत तृप्त वच्छ वनमाली ।।३०।।
दोहा- वर्षा ऋतु कँह विविध विध, दीन मान सम्मान ।
सकल शक्ति प्रभु की तदपि, करत कृष्ण गुणगान ।।३१।।
व्रज मँह बसत रहे दोउ भाई । वर्षा बाद शरद ऋतु आई ।।
मेघ कतहुँ नहि दीख अकाशा । जल निर्मल, वह वायु सुवासा ।।३२।।
फूले कमल स्वच्छ जल कैसे । योग युक्त च्युत योगी जैसे ।।३३।।
नभ तें मेघ सलिल मलिनाई । वर्षा उपजि जीव अधिकाई ।।
शरद काल सब मेटत कैसे । कृष्ण भक्ति सब अशुभहि जैसे ।।३४।।
सब करि दान मेघ किमि सोहे । इच्छा तजि जिमि योगी मोहे ।।३५।।
कतहुँ करत पर्वत जलदाना । ज्ञान सुधा जिमि देत सुजाना ।।३६।।
दोहा- निशिदिन सूखत क्षुद्र जल, जल चर जानत नाहि ।
यथा कुटुम के पोसते, सकल आयु खपि जांहि ।।३७।।
क्षुद्र ताल के जीव सब, सूर्य ताप सन्तप्त ।
यथा दरिद्री अरु कृपन, भोग पाप संलिप्त ।।३८।।
सूखेउ कीचड़, गई कचाई । यथा विवेकी तजु ममताई ।।३९।।
कर्षक राखहि खेतहि पानी । स्त्रवत ज्ञान जिमि रोकहिं ज्ञानी ।।४०।।

भानु कृशानु शशी निशि हरई । देहमान गोपिन्ह हरि जरई ।।४१।।
मेघ रहित नभ उडुगन सोहे। शब्द ब्रह्म जिमि सात्त्विक मोहे ।।४२।।
यदु पति कृष्ण सोह व्रज कैसे। उडुगण सहित शशी नभ जैसे ।।४३।।
शीत गरम सम बहइ समीरा। तजेउ ताप सब, गोपि न पीरा।।४४।।
गाइ हरिणि पक्षी अरु नारी । किये सतृष्ण शरद ऋतु न्यारी ।।
पुरुष योनि भागत सब आछे। फल धावंहि शुभ कर्मन पाछे।।४५।।
कुमुद छाँड़ि विहसे सब फूला। चोरंहि लागि नृपति प्रतिकूला।।४७।।

दोहा- ग्राम नगर पुर शोभित, नित प्रति उत्सव होइ ।
शरद पके नव धान्य सब, कृपा युगल छवि सोइ ।।४८।।
वैश्य नृपति संन्यासि बुध, चातुर्मास्य प्रवास ।
त्यागि लगे सब कार्य मंह, यथा सिद्ध आकाश ।।४९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे-पूर्वार्धे विंशोऽध्यायः।।२०।।

*

।। अथ एक विंशोऽध्यायः ।।

शरद काल शुचि सुरभित वारी। कमल सुशोभित बहत बयारी।।
गो गोपालक लइ सब साथे । बन प्रविशे गोपाल सनाथे ।।१।।
कुसुमित तरु तर मधुलिह नाना। द्विजकुल करत रहत कल गाना।।
गुंजित वन उपवन अमराई । मधुपति यदुपति बेणु बजाई ।।२।।
गोपिन मधुरव सुनि निज काना । करहिं परस्पर प्रेम बखाना ।।३।।
बरनइ चहत बरनि नहि जाई । प्रेम भाव मनसिज अधिकाई ।।४।।
सोह मयूर पच्छ सिर माहीं । कान कनेर पुष्प हरसाहीं।।
कनक कपिस तनु सोहइ वासा । बनमाला सुरभित सब आसा ।।
अधर सुधा धरि वेणु बजावत। वृन्दावन नटवर वपु आवत।।५।।

दोहा- परम मनोहर वेणु रव, सुनत सकल वश काम।
व्रजनारी मनसा करहिं, आलिंगन शुभ धाम।।६।।

गोप्य ऊचुः-

सुनहु सखी मन एतनहि कामा। लोचन लाहु लेंहि लखि श्यामा।।
श्याम गौर दोउ युगल सलोने। ग्वाल बाल संग हाँकत छौने।।७।।
कोंपल आम मोर पँख धारे। अब्ज माल निज कण्ठ संवारे।।
पीतवसन नीलाम्बर धारी। मोहित मोंहि युगल बनचारी।।
ग्वाल बाल बिच लगत मनोहर। मंनहु रंग मंह बैठे नटवर।।८।।
बेणु कवन तप पूर्वुज कीन्हा। अधर सुधा रस कृष्णहिं चीन्हा।।
बेंणुन सीचिं ह्रदहिं हरषाने। कमल पराग कंटकित माने।।९।।
व्रज यश फैला तीनउ लोका। कृष्ण पदाम्बुज चिह्न अशोका।।
सुनि मुरली की तान मनोहर। नाचत मोर चढ़े नग ऊपर।।१०।।
धन्य मूढ़मति हरिणी आई। देखत हरि पिय सँग मनुलाई।।
कृष्ण सार नयननि उपहारा। देखत अनिमिष वेश उदारा।।११।।
देखि कृष्ण वनिता सुखकारी। सुनहि वेणु हरषहि सुरनारी।।
चढ़ि विमान वश काम विशेषा। झरत पुष्प नहि जोगवहिं वेषा।।१२।।

सोरठा-सुनि मुरली की तान, कान खड़े पीवत अमृत।
दूध छाँड़ि सब वच्छ, मनहि परस आँसू गिरत।।१३।।

ऋषिगण सकल विहग तनु धारी। एकटक चितवहिं कृष्ण मुरारी।।
सुनहि सदा सब वेणु निनादा। भूले सबंहि परस्पर बादा।।१४।।
को कहि नदी बहै जड़ रूपा। मोहित सुन्दर श्याम सरूपा।।
लक्षित भँवर मनोभव वेगा। लहर बाहु आलिंगन देहा।।
कमल पुष्प लेइ ऊर्मि विशाला। चरण युगल चाहत गोपाला।।१५।।
राम कृष्ण जब धेनु चरावहिं। वेणु बजावत सुमधुर गावहिं।।

घाम देखि बादल नभ छावहिं। पुष्प कली सम जल बरसावहिं।।१६।।
गोपिन्ह कुंकुम कुचहि लगावा। चरन कमल हरि जंगल लावा।।
चलत भूमि तृण लगे सो जाई। भीलनि तासू हृदय लगाई।।१७।।

सोरठा–यह पर्वत अति धन्य, भक्त प्रवर युग चरण धर।
गोप गाय कँह देत, कन्दमूल फल जल निकर।।१८।।
गोबन्धन सिर राखि, जबहि बजावत वेणु हरि।
स्थिर होत सचेत, फुलक होत बन वृक्ष गण।।१९।।
एहि विधि लीला धाम, करत रहत लीला बहुत।
कहहिं परस्पर जाय, तन्मय पुलकित गोपिका।।२०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे-दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एक विंशोऽध्यायः।।२१।।

*

।। अथ द्वाविंशोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

अब आई हेमन्त की बारी। नन्द गोप व्रज सकल कुमारी।।
खाहिं हविष्य और नहि दूजा। कात्यायनि की करतीं पूजा।।१।।
उदित अरुण सब करि अस्नाना। पूजहिं गौरि लगावहिं ध्याना।।२।।
सिकता मय तेंहि मूर्ति बनावा। चन्दन अक्षत पुष्प चढ़ावा।।३।।
गौरि मातु विनवौं पद तोरा। पति मम करहु नन्द का छोरा।।
जपत मन्त्र सब रहत कुमारी। पूजा कीन बहुत सुविचारी।।४।।
करि संकल्प मासव्रत कीन्हा। नन्द सूनु कँह पति सम चीन्हा।।५।।
उषा काल सब सखीं बुलाई। हरि गुन गाइ नदी तट आई।।६।।
वस्त्र विहाइ करहिं अस्नाना। करत सबहिं मिलि प्रभुगुण गाना।।७।।

दोहा- जानि तांहि मन कामना, योगेश्वर श्रीकृष्ण।
मित्र संग लै आ गये, पूरन करने तृष्ण ।।८।।
लेकर सब के वस्त्र को, चढ़ि कदम्ब पर जाइ।
हँसत ग्वाल संग आप भी, मित्रन दीन हँसाइ।।९।।

वसन लेहु सब आइ कुमारी। व्रत प्रभाव दुर्बल तनु सारी।।१०।।
झूठ कबहुँ कीन्ही नहि बाता। चहहु त संग, पृथक लइ जाता।।११।।
देखा कृष्ण कीन परिहासा। गोपी करहिं परस्पर हासा।।१२।।
सुनी कृष्ण की मीठी बानी। कण्ठ पूर जल मंह अकुलानी।।१३।।
मत अनीति तुम करहु गोसाई। काँपत बसन देहु लौटाई।।१४।।
देहु वसन नत कहिहौ जाई। राजा सन दासी तब गाई।।१५।।

श्री भगवान् उवाच–

दासी सोइ जो करे सेवकाई। आपन वसन स्वयं लइ जाई।।१६।।
काँपत आई गोप कुमारी। हाँथ ढाँपि करषित अति भारी।।१७।।
शुद्ध भाव गोपिन्ह कर देखा। बोले श्री हरि वचन विशेषा।।१८।।
तुम अपराध वरुण कँह कीन्हा। वस्त्र उतारि देव नहिं चीन्हा।।
दोष शमन होइहिं तब जाना। हाँथ जोड़ि जब करहु प्रणामा।।२०।।

दोहा- देखेउ जब श्रीकृष्ण तिन्ह, प्रणत गोपिजन आइ।
करुणा से अति तुष्ट हो, वस्त्र दिये लौटाइ।।२१।।

यद्यपि कृष्ण मसखरी कीना। लाज छुड़ाइ वस्त्र तिन्ह लीना।।
गोपिन्ह तदपि दोष नहि माना। हिय हरषी प्रियतम हरि जाना।।२२।।
वस्त्र धारि नहि चलत चलाये। एकटक चितवत हरिहिं लजाये।।२३।।
होइ सत्य संकल्प तुम्हारा। देखि प्रेम कह नन्द कुमारा।।२४।।
मम पूजन करि तब अभिलाषा। होइहि पूरि धरहु तुम्ह आशा।।२५।।
प्रभुहि समर्पित काम न कामा। भूँजा धान कतहुँ किमि जामा।।२६।।

जेंहि लगि व्रत तुम्ह कीन कुमारी। मानहुँ पूर्ण जाहु व्रज वारी।।२७।।

श्रीशुक उवाच–

चरण कमल निज उर पुर धारी। लब्ध काम व्रज गई कुमारी।।२८।।
एक दिवस हरि गोप सहाई। लै बलराम दूरि चलि आई।।२९।।
आतप दुसह ग्रीष्म कंह छाये। छाता इव तरुगन हरियाये।।३०।।
हे लघुकृष्ण अंशु श्री दामा। परहित निरत वृक्ष लखु नाना।।३१।।
वर्षा आतप और हिमानी। पर सुख लागि सहैं तरु मानी।।३२।।
तरु कँह जीवन परम सुभागे। सब कुछ देंहि विना ये मांगे।।३३।।
पत्र पुष्प फल छाया देहीं। बदले में ये कुछ नहि लेहीं।।३४।।
जन्म सुफल मानहु तिन्ह भाई। मन वच कर्म जे करहिं भलाई।।३५।।
करत बतकही यमुना आये। मार्ग मध्य पल्लव तरु छाये।।३६।।
स्वयं पिये गोधनहि पिलाये। स्वाद युक्त यमुना जल पाये।।३७।।
उपवन गोधन चरत सुखारी। रामश्याम तटिनी तट झारी।।
ग्वाल बाल कछु भूखे आये। युगल भ्रात सन व्यथा सुनाये।।३८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

*

।। अथ त्रयोविंशोऽध्यायः।।

गोपा ऊचुः–

दोहा– महापराक्रम राम हे, दुष्ट केतु श्रीकृष्ण।
भूख हमें है सालती, देखौ भ्रात सतृष्ण।।१।।

श्रीशुक उवाच–

ग्वाल बाल जब भूख सुनावा। हरि तिन्ह ब्राह्मण घरहिं पठावा।।२।।
पढ़हि वेद भूसुर मख कर हीं। करि अंगिरा सरग सब चहहीं।।३।।

मांगहु भात लेहु मम नामा। और बतावहु श्री बलरामा।।४।।
आयसु पाइ गये सब धाये । हाँथ जोड़ि सब शीश नवाये।।५।।
भूसुर सुनहु गोप हम आये । श्याम गौर दोउ हमंहि पठाये ।।६।।
रामकृष्ण दूनउं मृदु भाई । यही निकट महं गाय चराई।।
भूख विकल दूनउ है भ्राता । भात देहु सब धरमहि ज्ञाता ।।७।।

दोहा- जेंहि मख हिंसा होत है, ता कर खाद्य अखाद्य।
जेंहि में हिंसा न भई, तेहि कर खाद्य सुखाद्य ।।८।।

हरि कंह मागन कीन न काना। क्षुद्र कर्म बड़ बनहि सुजाना।।९।।
देश काल अरु मन्त्र विधाना। यज्ञ कर्म ऋत्विक यजमाना।।१०।।
जेंहि लगि सब सो हरि भगवाना । मूर्ख पुरुष तेंहि मानुष माना ।।११।।
अस्ति नास्ति बोले नहि विप्रा। बालक बरनेउ गती विचित्रा ।।१२।।
हंस कहि बोले देवकि जाया। अद्भुत बड़ी जगत् की माया।।१३।।
जाहु बहुरि द्विज पत्निन मांगहु। राम कृष्ण लै नाम जनावहु।।१४।।
गये ग्वाल जँह नारि सुहावा । सतीवेश शुचि किये बनावा।।१५।।
करि प्रणाम द्विज पत्निन्ह जाई। बोले हमहि पठाये यदुराई।।१६।।

दोहा- धेनु चरावत राम संग आये नन्द सपूत ।
भूख लगी सब ग्वाल कँह, भोजन देहु अकूत।।१७।।

हरि आगमन सुना जब काना। विप्र पत्नि नहि हर्ष समाना।।१८।।
नदी यथा सागर पंह जाई। तिमि सब भोजन लिये पराई ।।१९।।
भ्राता पती यदपि तिन्ह रोके। सुनि हरि कथा रुकंहि नहि छेके।।२०।।
तरु अशोक नव पल्लव नीचे। देखेउ श्याम नयन नहि मीचे ।।२१।।
श्याम गात पट पीत सुहावा। बनमाली नट वेष बनावा।।
मोर मुकुट कर कमल नचावा। कुण्डल लोल कपोल सुहावा।।२२।।
अब तक सुनत रहीं हरि लीला। देखे आजु नयन गुणशीला।।

नयन मार्ग तेंहि उर पुर लावा। मनसा भेंटि ताप बिनसावा।।२३।।
आशा सकल छाँड़ि तिय आई। देखि सहास कहेउ यदुराई।।२४।।

दोहा- स्वागत भूसुर देवियो, आसन लेहु सप्रेम।
मम दर्शन लगि आइ हो, होउ सदा शुभ क्षेम।।२५।।

जे मतिमान जगत मंह प्रानी। मानहिं मोंहि आत्म सम जानी।।२६।।
प्रान बुद्धि मन सुत धन दारा। आत्म सरिस प्रिय नाहि उदारा।।२७।।
दर्शन कीन, जाहु द्विज नारी। तव संग मख सब करत विचारी।।२८।।

पत्न्य ऊचुः–

नाहि निठुर कछु कहहु कन्हाई। करहु सत्य जो निगम बताई।।
पद सरोज तुलसी सिर धरिहौं। छाँड़ेउ भाइ बन्धु कत कइहौं।।२९।।
देहु नाथ आपन सेवकाई। सुतपति बन्धू दीन विहाई।।३०।।

श्री भगवान् उवाच–

सुत पितु बन्धु न करिय अपचारा। पूजिहिं तुमहि सकल संसारा।।३१।।
अंग संग लगि नाहि मिताई। मनहि समर्पे मम गति पाई।।३२।।

श्रीशुक उवाच–

सोरठा-लही कृष्ण उपदेश, यज्ञ भूमि गई देवियाँ।
द्विजन्ह नहीं कलेश, पूर्ण कीन मख होम विधि।।३३।।

दोहा- एक विप्र निज गोहिनी, रोके बलहिं प्रयोग।
कर्मबन्ध सब काटि के, तजी देह धरि योग।।३४।।

भोजन दीन प्रथम सब ग्वाला। स्वयं बाद में खाये गोपाला।।३५।।
लीला मनुज कीन बहुलीला। गोप गोपि संग परम सुशीला।।३६।।
विप्रन्ह सबहि कृष्ण प्रभु जाना। अति परिताप मनहि मन माना।।३७।।
निन्दहि विप्र पुरुष तनु धारी। भगति प्रशंसहि निज निज नारी।।३८।।
विप्र जन्म विद्या मख नाना। कृष्ण भगति के नाहिं समाना।।३९।।

निश्चित प्रबल विष्णु की माया। स्वार्थ लागि कीन्ही नहिं दाया ।।४०।।
यद्यपि नारि सकल गुण हीना। तदपि सकल हरि भगति प्रवीना।।४१।।
नहि संस्कार न गुरुकुल वासा। शौच क्रिया नहि तप कर आशा।।४२।।
हम संस्कार यदपि बहु पाये। विनु हरि भगति न काहु सुहाये।।४३।।

दोहा- स्वार्थ मूढ़ हम पण्डित, गृह सुत में आसक्त।
ग्वाल बाल हमे सीख दी, मत तुम होहु प्रमत्त ।।४४।।

कृष्ण स्वयं प्रभु पूरण कामा। भोजन किमि मांगत अभिरामा।।४५।।
सकल देव तजि प्रभु पद लागी। लक्ष्मी सतत विष्णु अनुरागी।।
भोजन मांगत कीन बहाना। नाहिं त सुलभ सकल मिष्ठाना।।४६।।
देश काल अरु द्रव्य अनेके। प्रभु मय निखिल एक ते एके ।।४७।।
सोइ प्रभु अखिल विश्व के स्वामी। यदुकुल जन्मे मूढ़ न जानी।।४८।।
हमंउ धन्य जाकर प्रिय नारी। निश्चल भगति कीन हरि प्यारी ।।४९।।
प्रभु अनन्त ऐश्वर्य निधाना। नमो नमः तेहि हरि बलरामा ।।५०।।
क्षमिंहि नाथ अपराध हमारे। माया वश नहि जान निहारे।।५१।।

दोहा- यद्यपि उर अभिलाष बड़, हरिदर्शन की चाह।
कंस भीत नहि जा सके, असुर करत बहु डाह ।।५२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वाधे त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

*

।। अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– कृष्ण और बलराम दोउ, व्रज मंह करत निवास।
इन्द्र याग कारण निरत, लखे गोप सायास।।१।।

जानत यदपि सकल यदुराई। तदपि नन्द सन पूँछे जाई ।।२।।
कहहु तात मोंहि होइ अचंभा। केहिं लगि होइ यज्ञ आरंभा ।।३।।
जानइ चहहुँ सो देहु बताई । साधु कार्य नहि गुप्त कहाई ।।४।।
उदासीन अरि एक समाना । गुप्त कार्य नहि करिय बखाना।।५।।
जान अजान करम कर नाना। होंहि सुफल जे कर्मंहि जाना ।।६।।
क्रिया योग जो करिहहु जाई। लौकिक–वैदिक कहहु बुझाई।।७।।

नन्द उवाच–

दोहा– इन्द्रदेव परजन्य हैं, मेघ उन्हीं के रूप ।
देत हमें जो वारि शुचि, जीवन मूल अनूप।।८।।

हम सब करंउ यज्ञ तेहि जाये। सकल वस्तु इन्द्र उपजाये।।९।।
धर्म अर्थ अरु काम निवाहा। शेष बचें ते नहि कछु चाहा ।।१०।।
कबहुँ न मंगल होइ मुरारी। जो त्यागहिं निज कुल आचारी।।११।।

श्रीशुक उवाच–

नन्द वचन सुनि केशव बोले । मानंहु रारि इन्द्र सन खोले ।।१२।।

श्रीभगवान् उवाच–

दोहा– प्राणी जन्मत कर्म से, कर्मंहि होत विलीन ।
शोक दुःख भय सम्पदा, कर्म तें लहैं अदीन।।१३।।

मानहु ईश्वर यदि बरियाहीं। देइ सुफल जे कर्म कराहीं।
जे पुनि कर्म करहिं नहि कोई। प्रभुता ताहि न तापर होई।।१४।।
निज कृत कर्म पाउ फल प्रानी। मानहु किमिति इन्द्र अभिमानी।।१५।।

कर्म अधीन देव नर नाना । असुर आदि सब कर्म बखाना ।।१६।।
उत्तम मध्यम अधम शरीरा । शत्रु तटस्थ मित्र अरु धीरा ।।
सब कछु लहंहि कर्म आधीना । कर्म बली सब कहत कुलीना ।।१७।।
यातें कहहुँ पूजि सब करमा । सोइ देवता औरु नहि धरमा ।।१८।।
कर्म देव तजि अन्य पुजावै । असती नारि किधौ सुख पावै ।।१९।।
वेद पाठ ब्राह्मण कर करना। धरनी रक्षण क्षत्रिय धरमा ।।
वैश्य वार्त्ता करहि विचारी । सेवहिं शूद्र द्विजन अविचारी ।।२०।।
वार्ता वृत्ति चारि कह वेदा । कृषि वाणिज्य गोधनहि कुसीदा ।।
तीन छाँड़ि हम चरहिं चराये । गोधन पालन हमहिं निभाये ।।२१।।
सत रज तम गुण तीन बताये । नारि-पुरुष संसृति सब जाये।।२२।।
रज से सृष्टि होइ सब जानी । रज प्रेरित अम्बुद देंइ पानी ।।२३।।

दोहा- नहीं ग्राम पुर जनपद, नाहीं धाम निकाम ।
हम बनवासी है पिता, शैल-शिखर विश्राम।।२४।।

ताते भूसुर धेनु लेवाई । अद्रि चलहु मिलि यज्ञ कराई।।२५।।
पाचिहिं विविध सूप पकवाना। पायस आनहु दूध दुहाना।।२६।।
हवन करहिं भूसुर समुदाई। अन्न धेनु बहु दक्षिणा पाई ।।२७।।
जो चाण्डाल पतित तँह आवहु । मन वांछित सब आपन पावहु ।।२८।।
सजि-बजि करहु प्रदक्षिण जाई। ब्राह्मण अग्नि गोवर्धन राई ।।२९।।
यह मत मोर तात! यदि भावे । करहु सो मख जो मोहिं सुहावे ।।३०।।

श्रीशुक उवाच–

इन्द्र दर्प विदलन मन राखी । मानेउं नन्द कही हरि साखी ।।३१।।
यथा कृष्ण चाहेउ मख कीना । स्वस्ति वचन द्विज गण आसीना।।३२।।
यवस खिलाइ धेनु करि आगे । गोबर्धन कंह घूमन लागे ।।३३।।
नारिन्ह कीन प्रदक्षिण सोई । करी शृंगार बैल रथ जोई।।३४।।

दोहा- दीन चहत विश्वास हरि, धरेउ शैल कर रूप।
अति विशाल गिरिराजजी, खात भोग अनुरूप।।३५।।

देखहु ये गिरिराज पधारे। स्वतः स्वयं को नमन उचारे।।३६।।
करहु प्रणाम जोरि जुग पानी। कहेउ कृष्ण व्रजलोग सुवानी।।३७।।

दोहा- वासुदेव की प्रेरणा, पूजे गिरिवर जाइ।
गोप संग बल साथ लें, व्रज मंह पहुँचे आइ।।३८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

*

।। अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच-

पूजा विहत देखि असुरारी। कोपेउ कृष्ण नन्द व्रजधारी।।१।।
क्रुद्ध इन्द्र सांवर्त बुलाये। मेघराज व्रजभूमि पठाये।।२।।
कहेउ तबहिं देखहु मद भारी। कृष्ण भरोस देव अपचारी।।३।।
मन्द चहहिं भव सागर तरहीं। आत्मज्ञान बिनु मख अनुसरहीं।।४।।
कृष्ण बाल वाचाल सहारे। गोप करहिं अवहेलन सारे।।५।।
श्रीमद चूर्ण करहु तुम जाई। धन्य धान्य सब धेनु बहाई।।६।।
आगे जाहु बाद मैं आवा। ऐरावत चढ़ि गोठ ढहावा।।७।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- बन्धन खुलते मेघ सब, आये गोकुल धाम।
व्रज अवनी बोरे विनु, नाहि ताहि विश्राम।।८।।

विजुली चमकत चहुँ दिशि भारी। कड़कत करका गिरहिं पचारी।।९।।
खंभा इव मोटी जलधारा। समतल इव व्रज कीन उदारा।।१०।।
बरसत पानी बहइ झकोरा। गोपहिं सरन नन्द कंह छोरा।।११।।

शिशु सब ढाँपि कृष्ण पंह आये। वर्षा से नहि बचत बचाये ।।१२।।
कृष्ण कृष्ण तुम नाथ हमारे। हम पीडित वर्षा के मारे ।।१३।।
ओला वृष्टि कृष्ण जब देखा । इन्द्रहि करनी जानि विशेषा ।।१४।।
विनु ऋतु वर्षइ मेघ पचारी। यज्ञ भंग ते खीझ नगारी ।।१५।।
इन्द्रहि श्रीमद देइहौ झारी। करिहौ सोइ उपाय विचारी।।१६।।
सत् गुण प्रमुख देव कहलाये। मान भंग एहिं शान्ति दिलाये ।।१७।।

दोहा- मम आश्रित व्रज ग्वाल सब, मानत मोकों नाथ ।
माया से सब बन्धु जन, करिहौ आजु सनाथ ।।१८।।
अस कहि एकइ हाथ से, गिरि को लीन उखाड़ ।
क्षत्रक इव धारण किये, गिरिधर लिये पहाड़ ।।१९।।
कहेउ कृष्ण सब गोप सौं, मातु पिता व्रजवास।
गोधन सब निज निज लिये, गिरि तल करहु निवास।।२०।।

हाथ छूटि गिरिवर गिर जाई। अस भय कबहुँ न कीजे भाई ।।
वर्षा बात बचे हित लाई । गिरि कँह धरे हाथ पर आई ।।२१।।
कृष्ण जबहि आश्वासन दीन्हा। गोधन धान्य शरण सब लीन्हा।।२२।।
सात दिवस गिरि रहे उठाई । भूख प्यास सुख चैन गंवाई ।।२३।।
कृष्ण प्रभाव देखि बल माया। इन्द्र सकल मेघन लौटाया ।।२४।।
आँधी वृष्टि रुकी जब भारी। बोले वचन साधि गिरिधारी।।२५।।
निकसहु सब धन बालक सहिता। वात वृष्टि जल सोखेउ सरिता।।२६।।
बाल वृद्ध लरिका डोरियाये। शकट आदि लै बाहिर आये।।२७।।

दोहा- पुरवासिन के देखते, श्रीहरि गिरि धरि दीन्ह।
सर्व भूत हित कारने, मानहु लीला कीन्ह ।।२८।।

दधि अक्षत जल पल्लव आनी। मातु तिलक करि अति हरषानी।।
पुर वासी सब धावत आये। भरि अँकवार कृष्ण हरषाये ।।२९।।

रोहिणि यशुदा अरु बलरामा। नन्द आदि व्रज प्रमुख ललामा ।।
भेटेउ आइ दीन्ह आशीषा। कातर प्रेम लीन जगदीशा।।३०।।
चारण सिद्ध साध्य गन्धर्वा। बरसे सुमन देवगण सर्वा।।३१।।
तुम्बुरु आदि लगे सब गाने। बाजहि नभ दुन्दुभी निसाने।।३२।।
आगे करि बल हरि व्रज आये। सकल गोपिका हरि गुन गाये।।३३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वाधे पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

*

।। अथ षड्विंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- देखे अद्भुत कर्म को, कृष्ण अलौकिक कीन।
नहि जानहिं जे ईश तिन्ह, कहत बतकही लीन ।।१।।

देखहु अद्भुत कृष्ण हमारा। केंहि लगि जन्मे कुलहिं गँवारा ।।२।।
सात वरस की वयस विचारहु। सात दिनन गोवर्धन धारहु।।
एक हाथ लै खड़ा गोसाई। कमल नाल कँह गज की नाई।।३।।
अल्प दिवस के रहे कन्हाई। तबहि पूतना शिशु पंह आई।।
मूँदे नयन दूध तिन्ह पीन्हा। दूध संग प्राणहु पी लीन्हा।।४।।
कछुक मास के रहे मुरारी। शकट असुर को दीन्हे मारी।।५।।
एक बरस जब बालक भयऊ। तृणावर्त कँह यमपुर दयऊ।।६।।

दोहा- माखन चोरी देखि के, दीन ओखली बाँध।
यमलार्जुन गिरा दिये, कृष्ण चाहते लाँघ।।७।।

गाय चरावन गये कन्हाई। तहाँ वकासुर यमहि पढ़ाई।।८।।
बछड़न बछड़ा बनि मिलि गयऊ। कैथ वृक्ष तर पटकन दयऊ।।९।।
रासभ राज बन्धु संग मारा। बलदाऊ को बलहिं अपारा।।१०।।

मारि प्रलम्ब महाबल शाली । गाय छुड़ाये मुसली हाली ।।११।।
कालिय दमन कीन दह जाई । जमुना विमल सलिल तब पाई ।।१२।।
नन्द तुम्हार तनय बलशाली । सबहि प्रेम राखत बनमाली ।।१३।।
तवहुँ त शंका होय विचारी । सात वरस वय गिरि कत धारी ।।१४।।

नन्द उवाच–

जेंहि ते शंका मिटइ तुम्हारी । सुनहु वचन मम बिना विचारी ।।
जो कछु कहेउ गर्ग मुनि ज्ञानी । येंहि बालक लगि सो सुनु वानी ।।१५।।

दोहा- विविध युगों में वर्णभा, रक्त, श्वेत अरु पीत ।
कृष्ण वरन अब की भया, कृष्ण नाम सुपुनीत ।।१६।।
पहिले तो वसुदेव घर, जनमे थे ये जाइ ।
वासुदेव इनका पड़ा, पिता नाम को पाइ ।।१७।।
इनके नाम अनन्त हैं, रूप गुणहिं आधार ।
जानत केवल गर्ग हैं, और को जाननि हार ।।१८।।

गोप और गोकुल हितकारी । विपदा हरिहै सब बनवारी ।।१९।।
जबहिं अराजक भयउ समाजा । दुष्टन हति नृप तुल्य विराजा ।।२०।।
दुष्टन जीतंहि यथा खरारी । कृष्ण भगत नहि होहिं दुखारी ।।२१।।
कीरति भूति सकल गुण सोई । नारायण सम यह बालक होई ।।२२।।
अस कहि गर्ग गये निज गेहा । मानंउ तबहि हरी धरि देहा ।।२३।।
व्रजवासिन्ह सुनि नन्द प्रतीती । कृष्णंहि लगि उपजी अति प्रीती ।।२४।।
होहु प्रसन्न सदा गिरिधारी । इन्द्रकोप जिन्ह हमहिं उबारी ।।
क्षत्रक इव उठाइ गिरि लीन्हा । अद्भुत कर्म मुरारी कीन्हा ।।२५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

*

।। अथ सप्तविंशोऽध्याय ।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- गोवर्धन धारण किये, व्रज रक्षण प्रभु कीन।
देवराज सुरभी सहित, आये विनय प्रवीन ।।१।।
मिलेउ अकेले कृष्ण से, लज्जित कृत अपराध।
छुये चरण निज मुकुट मणि,सूर्य-प्रकाश अगाध।।२।।

कृष्ण प्रभाव देखि सुनि काना। इन्द्र भये तब गत अभिमाना।।
हाथ जोड़ि हरि हरिपंह आये। अस्तुति कीन मोद मन छाये।।३।।

इन्द्र उवाच-

शुद्ध सत्वमय धाम तुम्हारा। ज्ञानरूप रज तमहिं निवारा।।
गुण प्रवाह तब माया रूपा । गुण प्रतीति तव अगुण स्वरूपा ।।४।।
नहि अज्ञान क्रोध अरु मोहा। देह यदपि धारहु शशि सोहा।।
दुष्ट दलन हित लै अवतारा। धारहु दण्ड हरहु महि भारा ।।५।।
जगत पिता तुम गुरु अरु स्वामी। कालदण्ड सब अन्तर्यामी ।।
स्वेच्छा धरि तनु करहु अनुग्रह। ईश मानि कर कीने निग्रह।।६।।
मोंहि सरिस जे ईश्वर मानी । तिन्ह कर गर्व हरे प्रभु स्वामी ।।
जपहिं भक्तजन तब शुभ नामा। तब अनुशासन दण्ड विधाना ।।७।।
जानहुं नहि मैं प्रभुहि प्रभाऊ। पद मद भूलि त कीन दुराऊ ।।
क्षमहु नाथ मूरख अपराधा। होउ कबहुँ नहि मदकृत बाधा ।।८।।

दोहा- तब अवतार जगत्पति, नाशन धरनी भार।
दुष्ट चमूपति नृपति हति, सज्जन लेहु उबार।।९।।
वासुदेव श्रीकृष्ण जो परम पुरुष भगवान्।
यदु कुल कुलपति को प्रभो, बारम्बार प्रणाम।।१०।।

परम स्वतन्त्र स्वरूचि अवतारा। ज्ञान रूपमय देह तुम्हारा।।
सर्व बीज तुम सब भूतात्मा। नमो नमस्ते हे परमात्मा ।।११।।

नाथ क्रोध लगि नाशन चाहा । वर्षा कीन वायु सन्नाहा ।।१२।।
प्रभो अनुग्रह मो पर कीना । नाशि गर्व मोहि दीना चीन्हां ।।१३।।

श्रीशुक उवाच-

एहि विधि कीनी इन्द्र बड़ाई । मेघ घोष बोले यदुराई ।।१४।।

श्री भगवान् उवाच-

जब ऐश्वर्य मत्त तोहिं देखा । यज्ञ रोकि, दीनी तब सीखा ।।१५।।
श्री मदमत्त न देखहिं मोहीं । करउं अनुग्रह नाशउ ओंही ।।१६।।
जाहु शक्र निजधाम बहोरी । करहुं न गर्व ढेर या थोरी ।।१७।।
सुरभी जानि सुअवसर पाई । बोली बचन हरिहिं सिरु नाई ।।१८।।

सुरभिः उवाच-

सोरठा-जय योगेश्वर कृष्ण, सकल करन कारन करन ।
लोकनाथ हे देव, तुमहि पाइ हम सब मगन ।।१९।।

तुमहिं देव तुम इन्द्र हमारे । गो द्विज देवन्ह के रखवारे ।।२०।।
तब अभिषेक हेतु चतुरानन । दीने हमंहि विविध अनुशासन ।।२१।।

श्रीशुक उवाच-

ऐरावत कर गंगाधारा । सुरभि मिलाई पयस् उदारा ।।२२।।
इन्द्र सहित सुर ऋषि अभिषेका । कीन्हे बहुरि एक ते एका ।।
नाम गोविन्द एक अरु दीना । सहस नाम हरषे प्रभु लीना ।।२३।।
विद्याधर चारण गन्धर्वा । तुम्बुरु नारद ऋषि गण सर्वा ।।
करहिं गान मुद मंगल नाना । नाचत देवनारि सुख माना ।।२४।।
सकल देव मिलि अस्तुति कीन्हा । धेनु चुवत पय वच्छन चीन्हा ।।२५।।
वृक्ष चुंवहि सब मधु कंह धारा । जोते बिनु भुंइ औषधि सारा ।।२६।।
वैर छाँड़ि क्रूरहु कर प्रीती । प्रभु अभिषेक होत परतीती ।।२७।।

सोरठा-एहि विधि करि अभिषेक, गयउ शक्र निज धाम तब ।
लहि आज्ञा श्री कृष्ण की, गये सकल सुर मुदित मन ।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

।। अथ अष्टाविंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- एकादशि का व्रत किये, पूजे श्रीधर जाइ।
लगत द्वादशी पुण्य तिथि, यमुना थाहे आइ ।।१।।

आसुरि बेला जानत नाही । नन्द घुसे यमुना जल माहीं।।
असुर एक तब तिनहि उठावा। वरुण निकट नन्दहि लै आवा ।।२।।
रोवत गोप नन्द बिनु देखे । राम कृष्ण! अब तुमहि भरोसे ।।
खोजत कृष्ण वरुण पंह आये। भक्तन भय हरि देत भगाये ।।३।।
पूजेउ वरुण अधिक मन लाई। कृष्णंहि प्रभु गुनि दीन बड़ाई ।।४।।

वरुण उवाच-

प्रभो! धन्य तनु धारण आजू। तब पद पूजि परमपद छाजू ।।५।।
नमो नमः परमात्मन् स्वामी । तब पद लगि माया विसरानी ।।६।।
जानत नहिं तुम्हार प्रभुताई। नन्द लाइ बढ़ कीन ढिठाई ।।७।।
जाहु लेवाई पिता तुम्हारे। क्षमहु नाथ अपराध हमारे ।।८।।

श्रीशुक उवाच-

नन्द लेवाइ कृष्ण घर आये। भाई बन्धु कंह मोद बढ़ाये ।।९।।
वरुणहिं प्रीति देखि नन्द राई। इष्ट मित्र सन दीन बताई ।।१०।।
गोप सबहिं मन कीन विचारी। निज पद कबहुं दिखाव बनवारी।।११।।
सब उर जानहिं अन्तर्यामी। पुरवों केहिं विधि लोभ निकामी।।१२।।
विविध कर्म सब प्राणी करहीं। तेहिं अनुरुप लोग तनु धरहीं।।१३।।
तदपि कृपा करि हरि यदुनाथा। सबंहि दिखाये हरिपद माथा।।१४।।
योगिन्ह जेहि देखहिं धरि ध्याना। गुणातीत प्रभु अगुण अमाना।।१५।।
जेहिं दह पहिले गें अक्रूरा। तेहि मंह गोप सबहि प्रभु बोरा ।।१६।।
देखेउ नन्द आदि तंह जाई। अस्तुति करत वेद हरि गाई।।१७।।
अति आनन्द उमगि अनुरागा। कृष्ण चरन मन सब कंह लागा।।१८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे अष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

।। अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः।।

श्री शुक उवाच–

शरद रात्रि आयी अलबेली। फूलीं बेला औरु चमेली।।
देखि कृष्ण क्रीडा मन कीन्हा। निज माया कंह आयसु दीन्हा ।।१।।
उमगत शशी तबहिं चलि आये । अरुणिम निजकर प्राचि सजाये ।।
दिनकर दिवस दिये परितापा। हरे शशी, प्रिय इव सन्तापा ।।२।।
विधु मण्डल देखी अरुणाई। मनहुं रमा छबि मुख पहिं आई।।
कोमल किरन लागि अनुरागे। नारि मोह कल वेणु निनादे।।३।।
दोहा–प्रीति बढ़ावन गीत सुनि, गोपिन्ह निकसीं धाइ।
बिनहिं बताये दूजि कँह, कुण्डल चारु हिलाइ।।४।।
दुहत धेनु तजि गोपी धाई । आँचि रखा पय गा उफनाई।।५।।
परसत भोजन तजि कोउ आई। दूध पियावत शिशुंहि छुड़ाई ।।
पति सेवा तजि काहू आवा। भोजन त्यागि कृष्ण पंह धावा ।।६।।
अंग राग तजि गोपी आई । आँजन एकइ आँखि लगाई।।
उलटि पलटि पट धारे नाना। आई गोपी विविध विताना।।७।।
भाइ पिता पति रोकेउ जाई। कृष्ण हरे मन, रोकि न पाई।।८।।
रोके, राह मिली नहि जाहू। आँखि मूंदि हरि देखे ताहू।।९।।
दोहा–दुसह विरह की वेदना, मिटे ताप सन्ताप ।
ध्यान लागि हरि भेंट ते, कटे गोपि के पाप ।।१०।।
जार बुद्धि यद्यपि रही, करी कृष्ण का ध्यान।
बन्धन टूटे कर्म के, मिले स्वयं भगवान् ।।११।।

राजोवाच–

दोहा– मानत कृष्णहिं कान्त सम, नहीं ब्रह्म का ध्यान।
गुण निवृत्ति कैसे हुई, मिटा कथम् अज्ञान ।।१२।।

श्रीशुक उवाच–

पहिलेहि दीन्ही तुमहि जनाई। करत द्वेष चैद्यहुं गति पाई।।
प्रेम भाव जेंहि चाहत गोपी। लही भगति किमु नाहि प्रतीती।।१३।।
नर कल्याण हेतु यदुराई। अव्यय निर्गुण प्रगटे आई।।१४।।
काम क्रोध भय प्रेम विमोहा। कवनेउं भाँति करहु हरि छोहा।।१५।।
संशय मन नहि करहु नरेशा। सुमिरत हरिंहि मिटत सब क्लेशा।।१६।।
आई देखि निकट व्रज नारी। मोहन बोले वचन विचारी।।१७।।

श्री भगवान् उवाच–

दोहा– स्वागत हे प्रिय गोपिके, प्रिय का करौ मैं तोरि।
मंगल है व्रजभूमि में, आई किधौं बहोरि।।१८।।

रात्रिकाल अति घोर कहावा। हिंस्र बाघ बन फिरहिं दुरावा।।
जाहु व्रजहिं नहि रहउ कुवांरी। रजनि मांहि नहि विचरत नारी।।१९।।
माता पिता पुत्र अरु भाई। पतिहिं तुमहि जोहत घरु जाई।।२०।।
देखे कुसुमित तरु गण नाना। छिटकि चाँदनी मरुत सुहाना।।२१।।
जाहु घरहिं सेवहु पति पाई। रोवत बछड़े धेनु पिन्हाई।।२२।।
यदि मम प्रेम आप सब आई। उचित कीन मयि जीव लुभाई।।२३।।
नारि धरम पति सन्तति सेवा। भाइ बन्धु नहि कीन बहेवा।।२४।।
उत्तम पद चाहहिं जे नारी। सेवहिं वृद्ध मूर्ख कुविचारी।।२५।।
उपपति संग जुगुप्सित भारी। नरक देइ पल सुख भयकारी।।२६।।
मम संग प्रीति न होति दृढाई। यथा श्रवण पुनि मम गुण गाई।।२७।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– अप्रिय भाषण कृष्ण का, गोपिन्ह सुनीं उदास।
चिन्ता सागर डूबतीं, गई मिलन की आस।।२८।।

सूखे अधर श्वास गरमाई। भूमि लिखें नख तें सकुचाई।।

कुच कुंकुम बहि अंजन कारे। बोलि न सकीं दुःख के मारे।।२९।।
जेंहि लगि गोपिन्ह भोग विसारे। सोइ हरि निष्ठुर बचन उचारे।।
रोवत लाल भये युग नयना। बोली गोपी गद्गद बयना।।३०।।

गोप्य ऊचुः–

अति कठोर जनि बोलहु प्यारे। तब पद लगि सब भोग बिसारे।।
आदि देव सेवहिं जिमि ज्ञानी। कृपा करहु तिमि सेवक मानी।।३१।।
पति सुत लागि धरम उपदेशू। सत्य बचन नहि कहे भदेसू।।
सब लगि आत्मा प्रियतम होई। तुम श्रीकृष्ण परम प्रिय सोई।।३२।।

दोहा– पति सुत गृह आदि प्रभु, सकल दुःख के मूल।
नित्य सत्य प्रिय त्यागि को, अप्रिय सेइंय भूल।।३३।।

चित्त रमत घर कामहि काजा। हाँथउ संग बजावत बाजा।।
हरेउ चित्त पग चलहिं न थोरा। कैसे जाउं करौं का छोरा।।३४।।
सींचहु अधर सुधा रस धारा। हँसि विलोकु करु मनसिज छारा।।
विरह आगि बरु देह जलाई। ध्यान योग प्रिय तब पद पाई।।३५।।
तुम व्रज वासिन्ह परम पियारे। रमा चहहिं पद पल्लव सारे।।
सोइ पद कमल दीन मोहि स्वामी। तैंहि बिनु रहउ न अन्तर्यामी।।३६।।
तब पद रज लगि श्री तुलसी डाहा। सोइ रज हमहि दिये नरनाहा।।३७।।
तब सेवा सब सुख कर मूला। घर कुटुम्ब होवहु प्रतिकूला।।
प्रभु मुसकान प्रेम उपजाये। देहु शरन नरपति हम आये।।३८।।

दोहा– अलक ललित तव आनन, कुण्डल लोल कपोल।
अधर सुधा रस बरसत, अभय देत भुज डोल।।३९।।

सोरठा–लक्ष्मी क्रीडा भूमि, वक्षस्थल तब रुचिर अति।
दासी है हम नाथ, लेहु शरन असरन शरन।।३९।।

नहि कोउ अस नारी जगमांही। वेणु सुनत जो जांहि अघाहीं।।

त्रिभुवन सुन्दर तब लखि रूपा । पुलकित होंहि अचेत अनूपा ।।
लोक लाज नहिं तजंहि विशेषी । ऐसी नारि कतहुँ नहि देखी ।।४०।।
व्रजमण्डल तुम पालन हारे । देवन्ह नारायण जिमि वारे ।।
वक्षस्थल मम तपत मुरारी । कर शिंर धरहु भक्त भय हारी ।।४१।।

श्रीशुक उवाच–

योगेश्वर सुनि आकुल बानी । आत्माराम रमण शुचि ठानी ।।४२।।
अच्च्युत कीन मंनहि अनुकूला । प्रिय चितवंहि अम्बुज इव फूला ।।
उज्ज्वल रदन कुन्द इव सोहा । उडुगण बीच शशी मन मोहा ।।४३।।
गोपिन गावति गावत श्यामा । बनमाली विचरत अभिरामा ।।४४।।
गोपिन लै यमुना तट गयऊ । स्वच्छ बालुका शीतल रहेऊ ।।
यमुना शीतल तरल तरंगा । कुमुद सुगन्धित वायु अभंगा।।४५।।
हाथ बढ़ाइ कीन आलिंगन । परसे ऊरु नीवी अस्तन ।।
करि विलास चितवत मुसकाने। रतिपति अस्तंभित इव माने ।।४६।।
कृष्ण परसि अतिशय सुख पाई । गोपिन्ह मन अवलेप बढ़ाई।।४७।।

दोहा- गोपिन्ह देखा प्रेम मद, हुआ गर्व भर पूर ।
अन्तर्धान हुये प्रभु, करन गर्व को दूर।।४८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे एकोन त्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

*

।। अथ त्रिंशोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

अन्तर्धान हुये गोपाला। दुखी हुयीं सारीं व्रजबाला।।
बिनु गजपति करिणी की नाईं। विना कृष्ण के दुखी लुगाई।।१।।
गति अनुराग मधुर अलापा। सोचि सोचि सब करहिं विलापा।।
भयउ कृष्ण मय ललना सारी। करहिं परस्पर नकल निहारी।।२।।
करत अनुकरण हास विलासा। चितवहिं करहिं परस्पर आशा।।
चिन्तन करत कृष्ण मति पायी। 'असौ अहम्' इति रति उपजाई।।३।।
खोजहिं कृष्ण बनहि वन जाई। सकल भूतपति नाहि दिखाई।।
करत सबहिं मिलि हरि गुन गाना। नभ इव माधव एक समाना।।
सकल वनस्पति पूंछन लागी। ताप तप्त केशव विरहागी।।४।।
पाकड़ पीपल बरगद भाई। देखे कतहँ कृष्ण यदुराई।।
प्रेम हास लै गये मन चोरा। देखे तुमहुँ नन्द के छोरा।।५।।
कहु अशोक चम्पक पुन्नागा। मान हरन मन लेकर भागा।।६।।

दोहा- तुलसी देखीं कृष्ण को,अति प्रिय माधव तोहिं।
भ्रमर युक्त माला तव, नाहि उतारत ओंहि।।७।।
मालति मलिके यूथिके, देखे कृष्ण उदार।
यंहि मग भागत श्री हरि, कीन्हे प्यार जुहार।।८।।

हे प्रियाल कचनार रसाला। जामुन बेल कदम्ब विशाला।।
पर हित लगि यमुना तट छाये। देखे कतहुं कृष्ण यहिं आये।।९।।
कहु धरती तुम का तप कीना। पुलकित लता रूप हरि चीन्हा।।
कबहूँ बामन कबहुं वराहा। पायहु कृष्ण अंग कर थाहा।।१०।।
देखी हरिणि इहाँ हरि आये। जिनहि देखि लागहु हरषाये।।
कुन्द गन्ध लइ बहत समीरा। कुच कुंकुम आमोद शरीरा।।११।।

एक हाथ शुभ कमल सुहाये। दूसर कन्ध सखा पधराये ।।
तुलसी माल धरे हरि आये । देखे तरुवर शीश झुकाये ।।१२।।
पूँछहु लता गुल्म तरु लागे । हरि नख छुये पुलक जिमि जागे ।।१३।।
कृष्ण खोजि सब करहिं प्रलापा। तन्मय कृष्ण नकल सन्तापा।।१४।।
बनी पूतना दूध पियावा । हरी बनी काहू पय पावा ।।
बालक बनी रोउ कोउ नारी । पैर चलावत कोउ सकटारी।।१५।।
दानव बनि काहू हरि लीन्हा । घुटुरुनि चलि काहू धुनि कीन्हा।।१६।।
वत्स वकासुर गोपी बनी । कृष्ण राम दोऊ तेंहि हनी ।।१७।।

दोहा- एक बजावति बाँसुरी एक बनी व्रजवाम ।
एक प्रशंसति दूसरी, बाह बाह घनश्याम ।।१८।।

एक बाहु दूजे भुज डारी । कहति कृष्ण मै देखेहु प्यारी।।१९।।
वर्षा वात डरहु जनि कोई । वस्त्र तानि एक हाथहि सोई ।।२०।।
कालिय दमन मनहु चहि कीन्हा । एक लात दूजे शिर दीन्हा ।।२१।।
एक दवानल मनंहि निहारी । 'मूंदउ नयन' कहत अविचारी।।२२।।
माला बाँधि कहीं एक गोपी। ओखली बाँधि यशोदा रोकी ।।२३।।
एहि विधि पूँछत बन-अमराई। कृष्ण चरन भुंइ दीन दिखाई।।२४।।
ध्वज अम्बुज अंकुश जब देखे। निश्चय एते चिह्न विशेषे ।।२५।।
देखेउ चरण चिह्न ब्रजनारी। संग नारि पद चिह्न दुखारी।।२६।।
हथिनी यथा गजहि संग जाई । कौन नारि संग गये यदुराई ।।२७।।
निश्चय प्रभुहिं बहुत आराधा। तबहि एकान्त हरी ने साधा ।।२८।।
जेहिं पद पर से कृष्ण ललामा । लच्छि ब्रह्म शिव पूरण कामा ।।२९।।
क्षोभ बहुत यह दियो बढ़ाई। हरि एकान्त सुधा-रस पाई ।।३०।।
देखहु अब नहि चिह्न दिखाये । लागत हरि तेंहि लिये चढ़ाये ।।३१।।
देखहु चिह्न इहाँ अति भारी । लिये उठाइ चले बनवारी।।३२।।

फूल चुनत यहँ दिये उतारी। धँसा चिह्न पग उठा मुरारी।।३३।।
बैठत हरी इहाँ मोहि लागे। केश सँवारि फूल बहु तागें।।३४।।
आत्माराम अखण्डित प्यारे। रमे रमण रमणी हित सारे।।३५।।
बन-वन भटकत गोपि अनेका। खोजत ताहि कृष्ण जेंहि छेका।।३६।।
हरि संग जो कीन्हीं मनुसाई। मानी स्वयं श्रेष्ठ गरुवाई।।३७।।
बोली हरि सन लेहु उठाई। प्रिय मोसो अब चला न जाई।।३८।।
बोले हरि चढु मेरे कान्धा। अन्तर्धान तबहि भे कान्हा।।३९।।
बोली गोपी बड़ी रुवाँसी। दर्शन देहु कृष्ण हे क्वासि।।४०।।
चरण चिह्न देखत तँह आई। गोपी दुखित देखि दुखियाई।।४१।।
दीन्ह प्रेम अभिमान नसाये। विस्मित गोपी सबन जनाये।।४२।।
आगे दीख गहन अँधियारा। लौटी गोपी न पावें पारा।।४३।।

दोहा- तन मन सर्वस कृष्ण मय, कृष्ण चेत व्यापार।
गावत गोपी हरि गुणहिं, भूले देह अगार।।४४।।
कृष्ण मिलन की कामना, आई यमुना तीर।
गावत हरि गुण सुधि गई, व्याकुल हुई अधीर।।४५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

*

।। अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ।।

गोप्य ऊचुः–

जन्मत ही व्रज मान बढ़ाये । नित्य निवास लच्छि एहिं पाये ।।
देखहु तव पद प्राणहिं डारी । गोपी खोजत रास-विहारी ।।१।।
शारद सरसिज शोभा लोचन । लिये प्राण अनमोल दासिजन ।।
नयन हने का बध न कहाई । काहे ऐसो कियो कन्हाई ।।२।।
जिन्ह राखे प्रिय! बारम्बारा । विषजलसों अरु अघहि सँहारा ।।
वर्षा मारुत अनल उबारा । वृषभ व्योम असुरन बहु मारा ।।३।।
नहि केवल यसुदा के प्यारे । सकल जीव उर बसहु मुरारे ।।
ब्रह्मा जबहि प्रार्थना कीना । यदुकुल जन्म तबहिं तुम लीना ।।४।।
पुरवहु सकल मनोरथ स्वामी । यदुकुल मणि प्रभु अन्तर्यामी ।।
चरण शरण चाहत जे आई । अभय करहु कर कमल छवाई ।।
जेंहि कर गहेउ लच्छि के हाथा । मम शिर रखि प्रभु करहु सनाथा ।।५।।

छन्द–दुख दूरि करहु व्रज वासिन्ह के, जे तव सन्निधि में चलि आये,
मद चूर करहु सब माननिनि के, मृदु मुस्कान झलक एक पाये,
प्यारे सखा तुम रुठो नहीं, तनी प्यार समेत सुनो मन लाये....
अब दासी से नाथ भई किंकरी, एहि तें कमलानन देहु दिखाये ।।६।।

चरन कमल जो पाप नसावा । लच्छि निकेतन बच्छ चरावा ।।
कालिय फन पर नाचेहु जाई । रखहु वक्ष पर चरन कन्हाई ।।७।।
मधुर गिरा सुन्दर पद रचना । मोहित बुधजन पुष्कर नयना ।।
मूर्च्छित सकल किंकरी स्वामी । अधर सुधा रस देहु निकामी ।।८।।
कथा तुम्हारी अमृत समाना । कवि अनेक कीने गुण गाना ।।
विरह पाप कंह जीवन रूपा । कल्मष हारी क्षेम स्वरूपा ।।
विस्तृत अति गावहिं जे ज्ञानी । तिनहि बड़े दानी हम जानी ।।९।।

विहसित प्यारे चितवन नीके। मंगल विहरण ध्यान सभी के।।
तुम एकान्त कही जो बानी। निष्ठुर! क्षोभ अधिक उपजानी ।।१०।।
गोचारण हित कानन जाहू। चिन्ता एक साथ सब काहू।।
कमल सुकोमल हरि के चरना। कुश कंटक से दुखी होय ना ।।११।।
सन्ध्याकाल पाइ घर आवत। धूरि धूसरित लट विखरावत।।
सोइ छवि मन मंह लेंहु उतारी। क्षन-क्षन प्रीति बढ़ावन हारी।।१२।।
प्रभु तव पद पंकज सुखदायी। लक्ष्मी सेंवहि अति मन लाई ।।
धरनी भूषण विपद नसावन । रखहु वक्षपर मम मन भावन।।१३।।
अधर अमृत तुम देहु मुरारी। नाशन शोक सुरत सुख कारी।।
वेणु राग जे मधुर सुनाहीं। अन्य राग सुधि आवत नाहीं।।१४।।

दोहा- युग सम लागत पल प्रभो, जब तुम कानन जाहु ।
श्री मुख शोभित अलक से, लहहुँ त लोचन लाहु ।।१५।।

पति सुत बन्धु सकल परिवारा। तजि आयो लगि चरन सहारा ।।
गीत सुनत मोहित होइ जाई । इनहिं तजहिं को राति कन्हाई ।।१६।।
निपट अकेले मिलत कन्हाई । प्रेम भाव मन मंह उपजाई ।।
वक्षस्थल तव रमा विराजे। देखत काम मंनहि मन छाजे ।।१७।।
दुख नाशन तुम व्रज मंह आये। सकल विश्व मुद मंगल छाये ।।
मम उर वसत प्रेम छवि प्यारे। औषधि देहु जो हृदय संवारे ।।१८।।

दोहा- पंकज ते कोमल चरण, धरउँ वक्ष सहलाय ।
तेंहि ते तुम जंगल भ्रमत, कुश कंकर धँसि जाय ।।
सोचि सोचि भय होत बहु, हम अचेत होइ जाय ।
प्राण तुम्हें अर्पित हुये, तुम्हहिं लागि जिय पाय ।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे एकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

*

।। अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– एंहि विधि विलपत गोपिका, कृष्ण दरस मन लीन ।
गावत गावत हरि गुणहिं, रुदन मधुर स्वर कीन ।।१।।

तबहिं प्रगट भे नन्द गोपाला। गले विराजत श्री बनमाला ।।
मुख अम्बुज सोहे मृदु हासा। जेहि शतकाम कीन उपहासा ।।२।।
देखत कृष्ण उठीं सब धायीं। मरत देह जिमि प्रान समाई।।३।।
कर अम्बुज हाथहिं धरि लीना। कोइ भुजदण्ड अंस धर दीना।।४।।
कोउ कर किसलय पान अगोरे। कोउ हरिचरन वक्ष युग जोरे।।५।।
प्रेम विरह कातर कोउ नारी। ओठ काटि सयनहिं तिन्ह मारी ।।६।।
कोउ निरखत मुख कमल पुनीता। यथा सन्त हरि पद नवनीता ।।७।।

दोहा– नेत्र मार्ग हरि हृदय रखि, आँखि बन्द करि दीन ।
आलिंगन मंनही करत, यथा योगि हरि लीन।।८।।

कृष्ण मिलन सुख विरह नसावा। जथा मुमुक्षू ज्ञानिहिं पावा ।।९।।
गोपिन्ह बीच सोह हरि कैसे। शक्ति समेत परम प्रभु जैसे ।।१०।।
यमुना तट पहुँचे संग नारी। हरि जँह सुरभित बहत बयारी ।।११।।
शारद शशी चन्द्रिका छायी। अन्धकार नहिं कतहुं दिखाई ।।
चहुँ दिशि मसृण बालुका व्यापी। यमुना मनंहु मंच तंह थापी।।१२।।
हरि दर्शन सब आधि मिटावा। यथा मनोरथ सब श्रुति पावा ।।
उत्तरीय शुचि रुचि फैलावा। हरि आसन अति रुचिर बनावा ।।१३।।
जोगिन्ह हृदय दीन जेंहि आसन। सोइ प्रभु बैठे इह वसनासन।।
त्रिभुवन श्री जेंहि माहि समाई। गोपिन्ह बीच सोह यदुराई ।।१४।।

दोहा– मनसिज दीपन कृष्ण संग, करत हास परिहास ।
हाथ पकड़ि कोउ उर धरत, कीन्हे वाग विलास।।१५।।

गोप्य ऊचुः–

प्रेमिन संग करते कछु प्रीती। कछु विपरीत निवाहंइ नीती।।
उभय संग कछु रखहि न भावा। इन मह उत्तम कौन कहावा।।१६।।

श्रीभगवान् उवाच–

प्रेम किये पर करहि जे प्रीती। तहँ प्रेम नहि स्वारथ नीती।।१७।।
एक पच्छ निरबाहंइ प्रीती। मात-पिता साधु परतीती।।१८।।
प्रेमिन संग करहिं नहि प्रेमा। होंहि कृतध्न धरहि नहि नेमा।।
आप्त काम अरु आत्मारामा। स्वयं कृतारथ राखु न कामा।।१९।।
मै तो प्रेमिन्ह तथा न भजहूँ। कारण चित्त मोंहि पर धरहूं।।
यथा द्ररिद्री बहुधन पाए। सोचत पल-पल ताहि गंवाये।।२०।।
तुम मम प्रिय प्रियतम मैं तोरा। मम लगि लोक-वेद तुम छोड़ा।।
मम अनुराग रहउ उर निश्चल। यहि ते दर्शन नाहि कछुक पल।।२१।।
मम लगि प्रेम अदोष तुम्हारा। तुम तजि आई घर परिवारा।।
निज स्वभाव भलु देहु चुकाई। ऋण तुम्हार हम पर अधिकाई।।२३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्ये द्वात्रिंशो ऽध्यायः।।३२।।

*

।। अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।।

सोरठा-सुनेउ कृष्ण के बैन, श्रुति पेशल सब गोपिका।
अंश संग सुख चैन, विरह ताप दुस्तर तजेउ।।१।।

रास केलि तहँ रचेउ कन्हाई। बाहु परस्पर लिये लगाई।।२।।
योगेश्वर हरि रास रचाये। गोपी दुइ दुइ युग्म बनाये।।
कण्ठ मेलि कर कृष्ण सुहाये। निकट मानि हरि सब हरषाये।।३।।

व्योम मध्य शत यान दिखाये। नारिन्ह सहित देव गन आये।।४।।
बाजत व्योम दुन्दुभी नाना। करहि सपत्नि गन्धरब गाना।।५।।
कंकण किंकिणि नूपुर भूषण। करहिं मधुर रव नारि विभूषण।।६।।
गोपिन्ह मध्य सोह हरि कैसे। मरकत मणी मणिन बिच जैसे।।७।।

छन्द- **पैर उठाइ के नृत्य करें,**
कोउ बाहु घुमाइ उठाइ घुमावें
सस्मित भौंह करी तिरछी,
कोउ आँचल वक्ष से खीच उठावें।
कुण्डल लोल पसेउ बहे,
केहु के रसना बरजोरि छुड़ावे
कृष्ण बने जनु वारिद मण्डल,
गोपिका विजुरी बनि ताहि नचावें।।८।।

दोहा- **पंचमस्वर में गा रहीं, गोपी रस में लीन।**
कृष्ण परस अति मोद में, सुखी उदधि ज्यों मीन ।।९।।

गावति गोपी हरि संग गाना। स्वर ऊँचा नहि ताहि समाना।।
साधु साधु कहि हरि हरषाये। गावत ध्रुपद मान बरसाये।।१०।।
रास थकी गोपी एक आयी। गिरते कंगन हरिहिं गहाई।।११।।
कन्ध रोपि कर खड़े कन्हाई। चन्दन सुरभि सूंघि सुख पाई।।१२।।
नाचत कुण्डल लोल सलोना। गोल कपोल लागि अति सोना।।
मुख ते मुख को दीन लगाई। चर्वित पूग दीन यदुराई।।१३।।
कूजत नूपुर गावति गोपी। थकी हाथ हरि कंह कुच रोपी।।१४।।

दोहा- **नाचत थिरकत गोपिका, श्री के एक निधान।**
गले लगाये फिर रहे, प्रेमधाम भगवान्।।१५।।

कान कनक कुण्डल अति सोहा। लुटुरुनि अलक कपोलन छोहा।।

स्वेद बिन्दु झलकत मुख ऊपर। कंकण नूपुर बाजत सुन्दर।।
गोपिन्ह सँग नाचत असुरारी। खसत-माल अति करत गुंजारी।।१६।।
बालक यथा खेलि परछाई। तिमि गोपिन्ह सँग रमे कन्हाई।।
कबहुँक अंग लगावहिं नारी। कबहुँक परसत पानि मुरारी।।
केहु संग चितइ करहिं परिहासा। केहु संग कीना रास विलासा।।१७।।
अंग संग हरि आकुल गोपी। केश दुकूल सकी नहि रोपी।।
माला-भूषण परे गिराई। चोली छिटकि धरा पर आई।।१८।।
रास देखि! मोहित सुरनारी। विस्मित भयेउ शशांक निहारी।।१९।।

दोहा- जितनी थी तँह गोपिका, उतने ही थे श्याम।
रमण किये श्रीकृष्ण ने, यद्यपि आत्माराम।।२०।।

अति बिहार गोपिन्ह थकि गयऊ। कृष्ण पाणि मुख पोंछत भयऊ।।२१।।
हरिहिं परसि कर नख सुख पावा। गोपी अतिशय मान बढ़ावा।।
कुण्डल लोल कपोल सुहाये। हरिहिं देखि नयनन मुस्काये।।२२।।
यथा श्रमित गजराज नहाये। संग करेणु बहुत सुख पाये।।
तथा गोपिका संग मुरारी। प्रविशे रवि तनया जल भारी।।
कुच कुंकुम मर्दित बनमाला। गावत किन्नर मधुप विशाला।।२३।।
गोपी सींचति विहँसि मुरारी। फेंकि सलिल मृदु करत फुहारी।।
चढ़े विमान देवगण आये। अस्तुति कीन सुमन बरसाये।।
कीन विहार सलिल व्रजराजा। यथा करेणु साथ गजराजा।।२४।।
जल विहार करि उपवन आये। सुरभित कुसुम जहाँ बहु छाये।।
सुरभित शीतल मन्द बयारी। अगणित रहीं कृष्ण संग नारी।।
गज करेणु जिमि करहिं विहारा। तिमि व्रज नाथ कीन शृंगारा।।२५।।
शरद निशा अति विमल सुहाई। रास विलास कीन यदुराई।।
काम रोकि कीन्हीं प्रभु लीला। सत्य सन्ध चिन्मय गुणशीला।।२६।।

राजोवाच–

दोहा– धर्म स्थापन हेतु प्रभु, कृष्ण स्वयं जगदीश।
पातक पुंज विनाशन, अंशहिं जन्मे ईश।।२७।।

धर्म हेतु अवतरे गोसाई। किमि अधर्म आचरे कन्हाई।।
वक्ता, कर्ता, रक्षक धर्मा। परनारी परसे केंहि कर्मा।।२८।।
आप्त काम यद्यपि असुरारी। कीन्हे अस कहुं संशय भारी।।२९।।

श्रीशुक उवाच–

ईश करहिं साहस निपुनाई। समरथ को नहि दोष कहाई।।
अग्नि यथा सब कुछ खॉवे। तदपि लोक नहि निन्दा पावे।।३०।।
जो न ईश सो कर कुछ कोई। अति अनर्थ जग मँह तब होई।।
ईश पिये विष कछु नहि जारा। अन्य पिये तो का उपचारा।।३१।।
ईश्वर वचन सत्य करि मानहु। सकल आचरन सत्य न जानहु।।३२।।
शुभ अरु अशुभ बाँधि नहि कर्मा। स्वारथ तजि तेंकर यह मर्मा।।३३।।
प्रभु सर्वेश चराचर स्वामी। मानुष भाव सोच किमि प्रानी।।३४।।

छन्द– जेंहि पाद परागा, मनसुख लागा
भगतहिं होत अघाई।
प्रभु जोग विरागा, बन्धन भागा
जोगिन्ह हरि हषाई।
गावत अनुरागा, मुनि मग मांगा
चिन्मय राह दिखाई।
लीला निक लागा, नर तनु जागा
बन्धन कहाँ कन्हाई।।३५।।

सबहिं बसहिं उर आत्म स्वरूपा। गोपिन्ह पतिन्ह एक सुर भूपा।।३६।।
कृपा करहिं मानुष तनुधारी। लीला करहिं सकल मनुहारी।।३७।।

हरि माया, व्रज वासी जानी । घरहीं रही सकल व्रज रानी ।।३८।।
ब्रह्म रात्रि सम बीती यामा । हरि इच्छा अनिच्छु गई वामा ।।३९।।
व्रज वासिन संग रास रचाई । जे हरि लीला मन लगि गाई ।।
भक्ति परम प्रभु चरणंहि पाई । हृदय रोग तिन्ह कर विनसाई ।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३३।।

*

।। अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

एक बार सब गोप जुटाये । देवदरस अम्बा वन आये ।।१।।
जाइ सरस्वति नदी नहाये । गौरी शंकर पूजि मनाये ।।२।।
गाय, स्वर्ण, मधु वसन लुटाये । ब्राह्मण पूजे देव जुटाये ।।३।।
व्रत राखे करि सरि जल पाना । नन्द आदि चह कीन विहाना ।।४।।
अजगर एक भयानक भारी । सोवत नन्दहिं ग्रसेउ विषारी ।।५।।
चीखेउ नन्द कृष्ण! अहि घोरा । लीलत मोंहि, बचावहु छोरा ।।६।।
क्रन्दन सुनि ग्वाले उठि धाये । लिये लुकाठा अहिहिं डेराये ।।७।।

दोहा– नन्दहिं नहि छोड़ेउ अहि, जारत लिये लुकाठ ।
तबहि पास से आइके, पद परसे यदुनाथ ।।८।।

छुवत चरण तिन्ह पाप नसावा । विद्याधर बनि विषधर आवा ।।९।।
करि प्रणाम विद्याधर आवा । तेजवन्त तेहि वपुष सुहावा ।।१०।।
को तुम सुन्दर रुचिर शरीरा । केंहि कारण तनु पायहु कीरा ।।११।।

सर्प उवाच–

नाम सुदर्शन रहेउं खरारी । विद्याधर प्रायः नभचारी ।।१२।।

दोहा- देखि कुरुपहिं अंगिरा, हँसे रूप के दर्प।
शाप दीन मोकों कहा, मूढ़ होहु तुम सर्प।।१३।।
शाप अनुग्रह हेतु मोहि, दिये ऋषी वरदान।
चरन परस मो कह स्वयं, देइहैं कृपा निधान।।१४।।

जे परसहिं पद पंकज स्वामी । भव भय तिन्हके हरहु निकामी।।१५।।
शरणागत मैं प्रभू तुम्हारे । देहु अनुज्ञा दास सिधारे।।१६।।
तव दर्शन छूटेहु द्विज शापा । नाम लेत छूटत सब पापा।।
श्रोता वक्ता नामहिं तारा । पद रज पायेंउ भाग्य हमारा।।१७।।
कीन्ह प्रदक्षिण अनुमति पाई । गयेउ स्वर्ग नन्दहु हरषाई।।
देखी सबहिं कृष्ण की लीला । ब्रजवासी लौटे व्रतशीला।।
गावत हरि गुन सब नर नारी । हर्षित निज-निज भवन पधारी।।१९।।

दोहा- एक बार श्रीकृष्ण प्रभु, अग्रज लीने साथ।
रात्रिकाल गोपिनसंग, वन विहरत श्री नाथ।।२०।।

गोपिन मंजुल गावत गाना । युगल भ्रात शोभित निज वाना।।२१।।
उडुगन उगे चन्द्रिका छाई । मन्द सुगन्ध कुन्द बह वाई।।२२।।
एक साथ गावत दोउ भाई । सकल प्राणि मंगल मृदु छायी।।२३।।
सुधि बिसरी सब गोपिन केरी । गिरत वस्त्र शिरमाल न हेरी।।२४।।
गावत विहरत दोउ यदुराया । शंख चूड धनद चर आया।।२५।।
देखत खड़े रहे दोउ भाई । गोपिन्ह उत्तर चला लिवाई।।
प्रमदा चीखत हाथ उठाई । रक्ष नाथ यदुनाथ गोसाई।।२६।।
दौड़े गौर श्याम दोउ भाई । दस्यु ग्रस्त गो जिमि पिछुवाई।।२७।।
मत डरपहु देखहु हम आये । पहुँचे निजकर साल उठाये।।२८।।
काल मृत्यु सम देखेउ भाई । नारि छोड़ चलि पड़ा पराई।।२९।।
बलहिं रखावत नारिन जाई । यक्षहिं पीछे धाव कन्हाई।।३०।।

थोरेहि दूर पकड़ि तेहिं श्यामा। मारि ताहि मणि लिये ललामा ।।३१।।

दोहा- शंखचूड को मारि के, मणि लाये यदुनाथ।
अग्रज को तिहि सौपिके, नारिन किये सनाथ।।३२।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

*

।। अथ पञ्च त्रिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- कृष्ण जात गोचारण, बन में होत विहान।
पल-पल दुख से काटतीं, गोपी करतीं गान ।।१।।

गोप्य ऊचुः–

वाम बाहु धरे वाम कपोला। नन्द तनय लागत अति भोला।।
तिरछी भौंह अधर धरे मुरली। छिद्रहिं देखि चलावत अंगुली।।२।।
व्योम यान चढ़ि देखहिं नारी। सिद्ध संग लइ लज्जित भारी ।।
होत अचेत विषम शर लागी। खिसके वसन नीवि सुधि भागी।।३।।
सुनहु गोपिका देउं बताई। हार हास उर विद्युत छाई।।
नन्द तनय जब वेणु बजाई। आरत जन अतिशय सुख पाई।।४।।
गाय बैल मृग झुण्ड बनाई। वेणु सुनत श्यामहिं ढिंग आई ।।
कान उठाइ छोड़ि तृण आवा। चित्र लिखित निद्रित इव भावा।।५।।

दोहा- मोर मुकुट धारण किये, धातु रंग रचि वेश।
लागत कोऊ मल्ल इव, धेनु बुलाव नरेश।।६।।

सरिता छाँड़हि आपु बहावा। चाहहिं कृष्ण चरन रज पावा।।
काँपत प्रेम भुजा इव धारा। ठहरहिं देखत नन्द कुमारा ।।७।।

वनचर गिरितट धेनु चरावत। वेणु बजावत धेनु बुलावत।।
अनुचर सतत करहिं गुण गाना। आदि पुरुष जिमि शील निधाना।।८।।
लता वृक्ष फल फूल लिवाई। विष्णु मानि झुकि मधु ढरकाई।।९।।
देखन योग तिलक वनमाला। दिव्य गन्ध तुलसी अलिमाला।।
गुंजन आदर देत कन्हाई। स्वर मिलाइ जब वेणु बजाई।।१०।।
सरसी सारस हंस विहंगा। सुनत गीत बैठहि हरि संगा।।
करहिं उपासन हरि कंह आई। मौन धारि हरिध्यान लगाई।।११।।

दोहा- अग्रज बल को साथ ले, पुष्प धरे अवतंस।
वेणु बजावत चढ़ि गिरिन्ह, हरि मुनि मानस हंस।।१२।।
कछु अपराध न होइ बड़, धीरे गरजत मेघ।
सुमन वृष्टि मानंहु करत, छाया करत सदेह।।१३।।
धेनु चरावन में निपुण, वंशी रणन प्रवीण।
अधर धरत मुरली जबहिं, उपजत राग नवीन।।१४।।

ब्रह्मा शंकर इन्द्र सुरेशा। वेणु सुनत सब विगत कलेशा।।१५।।
बज्र ध्वजांकुश चिह्न सुहाये। चलत मत्त गजराज लजाये।।
खुर खोदी व्रज भूमि सुधारी। वेणु बजावत जात मुरारी।।१६।।
देखहुं चलत जबहिं यदुराई। तिरछी चितवन काम बढ़ाई।।
तरु गति प्राप्त हुई सब नारी। गिरत न जानंहु जूड़ा सारी।।१७।।
धेनु गिनत मणि माला धारी। चर काँधे कर मुरलि पसारी।।१८।।
सुनत वेणु रव हरिणी धायी। मनंहु गोपिका सुधि विसराई।।१९।।
अयि निष्पाप यशोदा रानी। पुत्र तुमार सफल शुभ खानी।।
कुन्द पुष्प की माला धारे। घूमत यमुना नदी किनारे।।
गोधन गोप सकल सुखदायी। कोमल हृदय लगत यदुराई।।२०।।
मलय गन्ध युत शिशिर समीरा। सेवत तब सुत हर्षित नीरा।।

अस्तुति करहिं सूत की नाई। सकल गन्धरब हिय हर्षाई ।।२१।।
धेनु सकल श्यामहिं अति प्यारी। याही ते गोवर्धन धारी ।।
राह चलत बूढेहु पद वन्दहि। साँझ ढले आवत नन्द नंदहि ।।
आगे करि धेनु हरि आवत। पीछे अनुचर हरि गुन गावत ।।२२।।

दोहा- देवकि उर प्रगटित भये, आवत व्रज के चन्द्र।
नयनन के उत्सव सरिस, स्वजन शुभेच्छा कन्द ।।२३।।

मद इव लोचन लिये ललाई। वनमाली आवत यदुराई।
कुण्डल हेम कपोलहिं सोहे। नील पीत बदरी जिमि मोहे ।।२४।।
गजपति सम यदुपति अब आवत। सांझ शशी दिन ताप नसावत ।।२५।।

श्रीशुक उवाच–

एहि विधि गावत सब व्रजरानी। कृष्ण विरह सन्ताप भुलानी ।।२६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

*

।। अथ षट् त्रिंशोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच–

धेनु चराइ गोठ हरि आये। तबहिं अरिष्टासुर उपराये ।।
महाकाय धरि वृषभ शरीरा। खुरहिं विदारि मही कंह चीरा ।।१।।
धूरि उड़ावत गर्जत भारी। पूंछ उठाइ सींग महि डारी ।।२।।
मूत्र कीन गोबर महि डारी। हँकड़ सुनत डरपत गो नारी ।।३।।
गिरहिं–अकाल गर्भ व्रजनारी। बादल बैठहि ककुद मझारी ।।४।।
देखत सींग डरी पुर नारी। गोकुल तजि सब फिरहिं विचारी ।।५।।
कृष्ण कृष्ण कहि ईश पुकारी। लखेउ कृष्ण गोकुल भय भारी ।।६।।
डरपहु जनि कहि वृषभ हंकारा। गोप धेनु किमि त्रास प्रचारा ।।७।।

दोहा- दर्प दलन मैं दुष्ट का, आइ करहु संग्राम।
ताल ठोंकि आगे बढ़े, यदुपति कृष्ण ललाम ।।८।।
मित्र कन्ध धरि बाहु कन्हाई। देखि असुर बहु धूलि उड़ाई।।
पूंछ उठाइ चला बलशाली। अविचल रहे खड़े वनमाली।।९।।
आगे करि हरि सींग बढ़ावा। मानहु बज्रहिं इन्द्र चलावा।।१०।।
यथा गजहिं गज देत पछारी। कदम अठारह खींच मुरारी।।
सींग पकड़ि पीछे लै गयऊ। लात लगाइ गिरावत भयऊ।।११।।
गिरत उठा क्रोधित पुनि धावा। स्वेद शिथिल बल थाह न पावा।।१२।।
आवत असुर देखि असुरारी। सींग पकड़ि हरि लीन उखारी।।
दीन गिराइ सींग से मारा। रजक यथा पट पीट पछारा ।।१३।।
दोहा- रुधिर बमत गोबर करत, पटकत रहा विषाण।
देवन बरसे सुमन बहु, वृषभ निकाले प्राण।।१४।।
एहिं विधि मारे असुर प्रभु, बल संग आये श्याम।
ग्वाल बाल-सब गोपिका, कीने प्रभुहिं प्रणाम ।।१५।।
अद्भुत कर्मा कृष्ण ने, वृषभ दियो बधियाय।
नारद पहुँचे कंस गृह, सब कुछ दीन बताय।।१६।।
कन्या एक यशोदा जाई। देवकि जन्मे कृष्ण कन्हाई।।
रोहिणि सुत भे बलरामा। बात हमार करहु तुम काना।।१७।।
डरि वसुदेव मित्र घर डारे। नन्द कीन दूनंउ रखवारे।।
दूनउ मिलि मारे तव अनुचर। सुनतहिं क्रोधित कंस भयंकर।।१८।।
लीन उठाई खड्ग कराला। वसुदेवहिं मारन जिमि काला।।
नारद रोक्यो कंस बहोरी। करहु विचार बात नहि थोरी।।१९।।
रामकृष्ण निज मृत्यु विचारी। जकड़ेउ निगड शौरि सह नारी।।
जबहिं देवऋषि कीन पयाना। केशि बुलाइ दीन्ह फरमाना।।२०।।

कहेउ कंस, केशी व्रज जाहू। मारहु तात! युगल नरनाहू।।
तब मुष्टिक चाणूर बोलावा। शल तोशल जे वीर कहावा।।२१।।
मन्त्रिन सहित महावत आये। कंस सबंहि यह बात बताये।।२२।।

दोहा- नन्द भवन में रह रहे, शौरि पुत्र बल श्याम।
उनसे मेरी मृत्यु का, विधि ने किया विधान।।२३।।

जबहिं नगर आवत दोउ भाई। तुरत हनो मत दीनेहु जाई।।
दंगल करहु लोग सब देखें। द्वन्द्व युद्ध सब करहु विशेषे।।२४।।
भद्र महावत द्वारहिं राखहु। कुवलय हाथी से मरवावहु।।२५।।
धनुष यज्ञ मंह करहु सहाई। चौदसि तिथि बलि भैरव पाई।।२६।।
येंहि विधि कंस सवहिं समुझावा। हाथ मेलि अक्रूर बतावा।।२७।।
मित्र दान पति करहु सहाई। भोज वृष्णि कुल दोउ हिताई।।२८।।
कारज कठिन आस तव कीना। समरथ इन्द्रहु विष्णु अधीना।।२९।।
जाहु नन्द घर, रथ लै जाहू। शौरि सुतन्ह लावहु धरि वाहू।।३०।।

सोरठा-सुनहुं, देवगण कीन, दोउ बालक मम मृत्यु सम।
लावहु उभय अदीन, नन्द आदि बहु भेंट लइ।।३१।।

आवत इहाँ दोउ हते पचारी। कुवलय हस्ति बड़ा बल भारी।।
यदि उससे वचि पाया कान्हा। मल्ल मारिहें कीने हाँ हाँ।।३२।।
सुत मारे वसुदेव दुखारी। वृष्णि भोज अन्धक मैं मारी।।३३।।
उग्रसेन मम पिता बुढ़ाने। राज्य लोभ तबहूँ न बुताने।।
देवक चाचा होंइ हमारे। कंस हाथ सब जैहें मारे।।३४।।
निष्कंटक करिहों महि जाई। जरासन्ध द्विविदादिक भाई।।३५।।
शम्बर, नरक, बाण सब मिलिहैं। शत्रुन मारि राज हम करिहैं।।३६।।

सोरठा-यह सब जानेहु तात! लावहु जलदी तनय दोउ।
धनुष यज्ञ मिस आइ, देखहिं यदु कुल सम्पदा।।३७।।

अक्रूर उवाच–

दोहा– चाहहु आपन मृत्यु कंह, दूर करन तुम नाथ।
लाभ हानि सम मानंहु, फल दाता यदुनाथ।।३८।।
करहिं मनोरथ विविध विध,फल न चहहिं प्रतिकूल।
विकल होत प्रतिकूल मंह, सफल होत हिय फूल।।३९।।

श्रीशुक उवाच–

एहिं विधि सबहिं सहेजि कर,घर आयेहु खल कंस।
अक्रूरहु घर आपने, मन रखि मणि यदुवंश।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे षट् त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।

*

।।अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

आवा केशी कंस पठावा। खुर खोदत भुंइ धूरि उड़ावा।।
अश्व रूप धरि पशु व्रज आवा। सटा मारि नभ यान गिरावा।।१।।
नयन बड़े मुंह खोह समाना। चाहत करन कंस हित नाना।।
नील मेघ सम वपु विकराला। आवा जहाँ नन्द व्रज लाला।।२।।
देखेउ कृष्ण स्वजन भयभीता। पूंछ विदारत मेघ अभीता।।
ढूंढ़त असुर रहा असुरारी। गर्जेउ सिंह समान मुरारी।।३।।
दोहा– देखेउ सन्मुख कृष्ण कंह, क्रोधित दौड़ा आय।
कमल नयन श्रीकृष्ण पंह, दीन्हा लात चलाय।।४।।
कुद्ध कृष्ण उसको लिये, दोनों पैर उठाय।
फेंके शत धनु दूर तिन्ह, यथा गरुड़ अहिराय।।५।।
आवा होश उठा पुनि केशी। कृष्ण भुजा निज पशु मुख पेशी।।

विस्मित नाहीं तनिक कन्हाई। यथा सर्प निज बिल मंह जाई ।।६।।
निज कर तप्त अयस् जिमि कीन्हा। दन्त गिरेउ निकसी बड़ जींहा।।
रोग बढै विनु दवा कराये। तिमि भुज बाढ़ि केशि मुख बाये।।७।।
भुज बाढे गये प्राण पखेरू। लेड़ गिराइ मरा हय गोरु।।८।।
कांकरि इव विहलान शरीरा। निज भुज खींचे कृष्ण प्रवीरा।।
देवन्ह अति विस्मय तब भयऊ। फूल बरसि प्रभुदित मन लयऊ।।९।।

दोहा– भक्तवर्य नारद तबहिं, आये यदुपति पास।
देखि परम एकान्त तंह, बोले वचन सुपास।।१०।।

कृष्ण कृष्ण योगी जगदीश्वर। वासुदेव यदुवंश प्रवर।।११।।
तुमहिं व्याप अग जग हे साई। अग्नि व्याप जिमि दारु समाई।।१२।।
निज माया सर्जहु गुण खानी। सत संकल्प अनीह अकामी।।१३।।
भारभूत राजा बनि आये। दुष्ट दैत्य दीने विनसाये।।१४।।
केशी क्रीडा करि तुम मारे। जेंहि से डरपत सुरगण सारे।।१५।।
देखहुं परसों हाथ तुम्हारे। कंस मल्ल मुष्टिक द्विप मारे।।१६।।
शंख यवन नरकासुर मारण। इन्द्रजीति सुरतरु आहारण।।१७।।
वीर सुता सन करब विवाहू। नृगहिं तारि द्वारका जाहू।।१८।।
लाइ स्यमन्तक पत्नी संगा। मृत सुत दइ करि बाभन चंगा।।१९।।
पौण्डक मारि काशिका दाहन। राजसूय शिशु पालहिं मारन।।२०।।

दोहा– अद्भुत अन्य पराक्रम, वसत द्वारका नाथ।
जो करिहों सो देखिहों, कवि जन करब सनाथ।।२१।।

अर्जुन सारथि होइहो जाई। काल रूप बहु सैन्य खपाई।।२२।।
सत्यसन्ध प्रभु सत्यस्वरूपा। एक एकरस धाम अनूपा।।२३।।
तब माया वश भेद दिखावा। यदुकुल पति पद मैं शिर नावा।।२४।।

श्रीशुक उवाच–

एहिं विधि यदुपति पद शिर नाई। नारद गये भूलोक विहाई ।।२५।।
केशिन्ह हति मोहन हरषाये। ग्वाल-बाल अति प्रीति बढ़ाये ।।२६।।
एकबार खेलत सब ग्वाले। कोउ बन चोर त कोउ रखवाले ।।२७।।
भेड़ बना विहरत कोउ ग्वाला। निर्भय कोइ खोजत रखवाला ।।२८।।
मय सुत व्योम बना एक ग्वाला। ग्वाल उठाइ कन्दरा डाला ।।२९।।
ग्वालहिं घेरि कन्दरा डाला। चारि पाँच बचि रहिगें ग्वाला ।।३०।।
जानेउ कृष्ण व्योम की करनी। केहरि वृक ज्यों पटके धरनी ।।३१।।
गिरि सम रूप व्योम तब धरी। सकेउ न छूटि पकड़ नर हरी ।।३२।।

सोरठा–पशुवत् मारे ताहि, पटकि धरनि भूधर सरिश ।
देखत सारे देव, चढ़े विमानहिं पत्नि सँग ।।३३।।

दोहा– शिला पट्ट सब तोड़िके, बाहर कीने ग्वाल।
देव गोप अस्तुति करत, व्रज आये गोपाल ।।३४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

*

।। अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– रात बिताई मधुपुरी, श्री अक्रूर सुजान ।
प्रातः रथ पर बैठिके, गोकुल किये पयान ।।१।।

राह चलत अक्रूर सुभागा । कमल नयन हरि मंह मन लागा ।।२।।
कहहु कौन मैं कीन सुकर्मा । कौन तपस्या कीना धरमा ।।
कौन दान दीना मैं भाई । जो देखउं मैं आजु कन्हाई ।।३।।
सन्तहु दुर्लभ दर्शन जासू । वेद पाठ नहि शूद्र सुपासू ।।४।।

मम अधमहुं हरि दर्शन होई। क्षुद्रहु बहत पार लगि कोई।।५।।
सकल अमंगल मिटे हमारे। सुफल जनम पाये फल सारे।।
योगिहुं जेहिं ध्यावे हरि चरना। करउं प्रणाम जाइ तिन्ह सरना।।६।।
कंस अनुग्रह मो पर कीना। पद वन्दन कर अवसरु दीना।।
जेंहि पद नख ध्यावें मुनि ज्ञानी। सो अवतरेउ कृष्ण व्रज मानी।।७।।

दोहा- ब्रह्मा शंकर देवगण, जेंहि ध्यावें मन लाय।
लक्ष्मी पूजति नित्य ही, पद पंकज हरषाय।।
धेनु चरावन सोइ पद, बन वन में भटकाय।
गोपिन्ह कुच कुंकुम लगे, आजु देखिहों जाय।।८।।

अवस देखिहों सुन्दर नासा। गोल कपोल धरे मृदु हासा।।
कमल नयन मुख कमल समाना। अलक छटा तंह मधुपहिं जाना।।९।।
प्रभु अवतरेउ हरन महि मारा। निज इच्छा नर वपु तेंहि धारा।।
देखिहों आजु ताहि मैं भाई। लोचन लाभु लेंहु अधिकाई।।१०।।
दृश्य जगत् द्रष्टा हरि एका। चिन्मय जाहि अहं नहि छेका।।
निज मायाबल रचहिं विताना। इन्द्रिय बुद्धि जीव जग नाना।।११।।
सोइ वाणी गावइ गुण जोई। जो न गाव शव इव सो होई।।१२।।
सुर हित सोइ अवतरे गुसाई। यदुकुल निज यश दीन बढ़ाई।।१३।।
आजु सगुन मोंहि लागत नीका। देखिहों निश्चित प्राण सभी का।।
त्रिभुवन सुन्दर ललित ललामा। जेंहि चाहत रामा अभिरामा।।१४।।

दोहा- रथ तजि पकड़ौ युग चरन, राम श्याम गुण धाम।
जेंहि ध्यावत वन योगिजन, ग्वाल बाल भगवान।।१५।।
मैं पापी निजकर कमल, सिर रखिहे गोविन्द।
अभय दान करिहें हमें, कालहुं काल मुकुन्द।।१६।।

जेंहि कर परसि इन्द्र पद पाये। बलि त्रिलोक सम्पदा लुटाये।।

परस पाइ जाकर व्रज नारी। रास मध्य सब भई सुखारी।।१७।।
यद्यपि मै खल कंस पठाया। शत्रु भाव नहि करिहैं दाया।।
समदर्शी प्रभु अन्तर्यामी। देखहि सकल विश्व हिय आनी।।१८।।
चरणमूल मैं पैठउं जाई। हाथ जोड़ि देखंउ यदुराई।।
दया दृष्टि मो पर हरि करिहें। जनम कोटि अघ प्रभु सब हरि हैं।।
स्वजन मानि प्रभु वक्ष लगावा। तीर्थ समान देह होइ जावा।।२०।।

दोहा- **करि प्रणाम आलिंगन, मोंहि देखि व्रज राज।**
तात तात अक्रूर कहि, मोंहि बुलइहें आज।।२१।।
प्रिय अप्रिय कोई नहीं, समदर्शी यदुनाथ।
जो जेहिं भाव भजत प्रभु, तेंहि सन होत सनाथ।।२२।।

दोहा- **अग्रज श्री बलराम भी, कर में लेके हाथ।**
गृह भीतर सब पूंछिहे, कंस कपट यदुनाथ।।२३।।

श्रीशुक उवाच-

एहिं प्रकार मग सोचत जाहीं। श्वफलक सुत पहुँचे व्रजमाहीं।।२४।।
देखेउ चरण चिह्न यदुराया। अम्बुज यव अंकुश दिखराया।।
जेंहि पद रज वन्दत सुर ईशा। लोक पाल मणि मुकुट महेशा।।२५।।
देखत चरण चिह्न हरषाये। रथ तें कूदि अवनि पर आये।।
लोटन लगे धूरि सिर डारे। पद रज परखत नयन उधारे।।
देह धरन को शुभ फल एहू। दम्भ छाँड़ि प्रभु चरणन नेहू।।२७।।
गाय दुहावत दूनउ भाई। नील पीत अम्बर पहिराई।।२८।।
गौर श्याम छविधाम किशोरा। सुन्दरवर गज शावक वीरा।।२९।।

दोहा- **अंकुश वज्र ध्वजादि से, अंकित थे पदकंज।**
मन्द मन्द मुसकान से, शोभित गौर मुकुन्द।।३०।।

युगल भ्रात वनमालाधारी। चन्दन चर्चित केश सँवारी।।३१।।

आदि पुरुष बल केशव रूपा। जग कारन दुइ रूप अनूपा ।।३२।।
एक मरकत एक रजत प्रकाशा । तिमिर भगावत करत उजासा ।।३३।।
देखत राम कृष्ण दोउ भाई । चरनहि पड़े लकुट की नाई ।।३४।।
पुलक गात लोचन जल छाये। कण्ठ रूँधा नहि नाम बताये।।३५।।
प्रभु जानत उर अन्तर्यामी । भेटउ ताहि परम प्रिय मानी ।।३६।।
बलरामहु तेहि कण्ठ लगावा। हाथ मेलि गृह भीतर लावा।।३७।।

दोहा- स्वागत कीन विविध प्रभु, दीन वरासन लाइ ।
पद पखारि अक्रूर के, दीनी शहद चखाइ ।।३८।।
भेंट कीन गो अतिथि को, पैर दबाये कृष्ण।
शुचि भोजन श्रद्धा सहित, दीन्हे रहे सतृष्ण ।।३९।।

करि भोजन मुखवास दिलाये। श्रीबलराम प्रीति दिखलाये ।।४०।।
पूंछत नन्द कुशल कहु भाई । भेड़ खुशी किमि जिअत कसाई।।४१।।
भगिनी सुतन्ह मारि जो पापी । ताकर प्रजा सुखी किमि मापी ।।४२।।
नन्द बचन सुनि प्रेम पियारे। अक्रूरहु सब ग्लानि विसारे ।।४३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे अष्टत्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

*

।। अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

राम कृष्ण कीन्हे सनमाना। सुखासीन अक्रूर सुजाना ।।
जो कछु चाहा मग मनमांही। सो सब पूर इहाँ व्रज पांही ।।१।।
नहि दुर्लभ ता कहं कछु होई । जेहि पर कृपा करहि प्रभु सोई।।२।।
सन्ध्या भोजन किये कन्हाई । अक्रूरहिं हरि बात चलाई।।३।।

श्रीभगवान् उवाच

तात पितासम व्रज मे आये। स्वागत कुशल कहहु मनलाये ।।
सुखी स्वजन जे बन्धु हमारे। कुशल अनामय सुख से सारे ।।४।।
पूंछहुं काह कुशल परिवारू। बढइ रोग इव कंस कुठारू ।।५।।
मम कारण मां बाप दुखारी। पुत्र निधन बन्धन बड़भारी ।।६।।

दोहा- बहुत दिनन से सोचऊं, स्वजन भेंट जो होत।
आजु पूर्ण इच्छा हुई, कहहु आगमन हेत ।।७।।

श्रीशुक उवाच

जो कछु पूंछे कृष्ण कन्हाई। अक्रूरहु सब दीन बताई ।।
वसुदेवहि शठ मारन ठाना। यदुकुल आपन रिपुगण माना ।।
कंसहु कर सन्देश सुनावा। जेहि कारण दूत बनि आवा।।९।।
जो कछु नारद कहेउ बखानी। शठ सब सत्य यथावत मानी ।।
सुनि विंहसे केशव दोउ भाई। नन्दहु नृप आदेश सुनाई ।।१०।।
नन्द गोपजन आयसु दीन्हा। जोरहु शकट चलहु लै चीन्हा ।।
होत विहान करब प्रस्थाना। देखहु उत्सव विविध विताना ।।
सब मिलि गोरस कंसहि देइहों। भीड़ बहुत तंह देखन पइ हों ।।१२।।
गोपिन्ह समाचार जब पाये। हुई व्यथित अतिशय दुख लाये ।।१३।।
हृदय ताप आनन मुरझाये। वस्त्र वलय गिरि जान न पाये।।१४।।
केंहुकर ध्यान श्याम पद लागा। विषय निवृत्त आत्म सुख जागा।।१५।।
सुधिकरिं श्याम गौर परिहासा। मोहित हुई कीन बहु आशा।।१६।।
मटकत चाल प्रेम मुसकाना। गोपी करत रहत नित ध्याना।।१७।।
विरह जन्य आँसू बहिराये। गोपिन्ह मिलि यह गीत सुनाये ।।१८।।

गोप्यु ऊचुः

दोहा- धन्य विधाता की गती, दया मोह कछु नांहि।
एक मिलावत एक सों, क्षणहि देहि विलगाहि ।।

दोहा- अहो विधाता तृप्ति भी, अभी मिली थी नांहि।
दूर करहु तुम कान्ह को, बालक क्रीडा जांहि ।।१९।।

असित केश सुकपोल मुरारी। शोक विमोचन हास उदारी।।
विधि अनुचित करतूति तुम्हारी । कृष्ण दिखाइ ओट किमिडारी ।।२०।।
विधे! तुमहि आये धरि रूपा। नाम अक्रूर औ क्रूर स्वरूपा।।
अंगहि अंग तोरि निपुनाई। देखउ किमि अब आँखि चुराई।।२१।।
नन्द तनय क्षण मांहि विगारी । प्रेम दीन जो व्रज की नारी।।
स्वजन पुत्र निज पतिन्ह विहाई । नित नवीन देखहिं यदुराई ।।२२।।
कल प्रभात मुद मंगल कारी । देखिहिं नन्द सूनु पुर नारी।।
मृदु मुसकान करहिं शुचिपाना। मथुरा नगर नारि कल्याना।।२३।।
परम मनस्वी कृष्ण हमारे। नगर नारि पर जैहे वारे।।
लौटहिं नहि देखि पुर नारी । हम गंवार ग्वालिन वेचारी।।

दोहा- मथुरा के सब देखिहै, रूप श्याम छविधाम।
उनके भी उत्सव मने, जेंहि मग जैहें श्याम।।२५।।

यहिकर नाम अक्रूर न सोहा। प्रीति देखि उर मोह न छोहा।।२६।।
देत नाहि कछु धीरज जाता। जैसे नाहि रखत कछु नाता।।
भाग्य आज प्रतिकूल हमारे। नाहिं सयानउ होत सहारे।।२७।।
निष्ठुर बैठे रथ पर जाई । ग्वाल-गोप सब जल्दी मचाई ।।
आवहु सब मिलि रोकहु जाई। का कारिहें कुलवृद्ध सहाई ।।
एक पल तजत नाहि जेहि रहहूँ। भाग्य चहत तेहि दूरइ करहूँ।।२८।।

दोहा- प्रेम पगे मीठे वचन, वंकिम हास विलास ।
धवल चाँदनी रात में, कीने हमने रास।।
बहुत बड़ी सी रात भी, क्षण इव वीती हाय।
कृष्ण विना कैसे जिये, विरहातुर निरुपाय ।।२९।।

सन्ध्या को जब लौटते, बलहिं संग श्रीकृष्ण।
धूरि धूसरित उभय छवि, देखत रही सतृष्ण।।
वेणु क्वणन तिरछे नयन, मन्द मन्द मुसकात।
बिनु देखे गोपी किधो, जियें कृष्ण चलजात।।३०।।

श्री शुक उवाच-

एहि विधि विरहातुर व्रजनारी। कृष्णहि मन देइ चैन विसारी।।
लाज छौंड़ि सुललित स्वरमांही। रोवत कृष्ण नाम लै छांही।।३१।।
रोवत रहीं रात भर सारी। कातर व्यथित गोप व्रज नारी।।
प्रात काल सविता उग आये। अक्रूरहु रथ दिये चलाये।।३२।।
नन्द आदि सब शकट जोराये। भरि घी दूध तिन्हहिं पछियाये।।३३।।
कृष्ण निकट पहुँची सब गोपी। प्रिय सन्देश सुनहिं मन रोपी।।३४।।
देखे यदुपति विरह दुखारी। 'आवहुंगो' कहि चले मुरारी।।३५।।
जब तक धूरि पताका देखी। चित्र लिखित सब खड़ी विशेषी।।३६।।
जबहीं ओझल भये मुरारी। भई निराश लौटि व्रज नारी।।३७।।

दोहा- लिये राम अक्रूर संग, हरि आये सरि तीर।
पाप विनाशिनि रवि सुता, बहती निर्मल नीर।।३८।।

सोरठा-मरकत मणि सम नील, पिये सलिल अमृत सरिस।
स्यन्दन चढ़ि संग वीर, खड़ा रहा जो वृंक्ष मंह।।३९।।

अक्रूरहि मन भयउ उछाहा। लेइहों यमुना जल अवगाहा।।४०।।
जल महं पैठि जपत यदुराई। सलिल मध्य देखे दोउभाई।।४१।।
रथ बैठाइ युगल मैं आवा। सलिल बीच कस दर्शन पावा।।४२।।
बार-बार तब मूड़ उठाई। लखेउ अक्रूर उभय दिंग पाई।।४३।।
फिर देखेउ बलरामहिं तहवाँ। चारण सिद्ध पूजि अहि जहवाँ।।४४।।
सहस शीष फण माथ विराजे। नील वसन हिमगिरि सम छाजे।।४५।।

तेहि पीछे पीत पटधारी । धरे चतुर्भुज रूप मुरारी ।।४६।।
अति प्रसन्न मुख सुन्दरनयना। सुन्दर कान सुखद मृदु वयना ।।४७।।

दोहा- अति प्रलम्ब आजानु भुज, वक्षहि रमा निवास।
शंख रूचिर ग्रीवा सुधर, उदर जगत अधिवास ।।४८।।

कटितट वृहत् नितम्ब विताना। हस्ति शुण्ड बाहू उपमाना ।।४९।।
अरुण गुल्फ अरु पदनख ज्योती । कमल पंखुरी उपमा होती ।।५०।।
मणिमय मुकुट हार केयूरा । यज्ञ सूत्र मण्डित छवि पूरा ।।५१।।
कमल हस्त दर चक्र गदाधर । कौस्तुभ मणि शोभित प्रशस्त उर।।५२।।
नन्द सुनन्द सब पार्षद प्रमुखा । इन्द्र शर्व विधि सेवित सुमुखा ।।५३।।
नारद वसु प्रहलाद भक्तगण । स्तुतिरत सब कृष्ण परायण ।।५४।।

दोहा- कमला पुष्टी शारदा, कीर्ति कान्ति अरु तुष्टि ।
विद्याऽविद्या शक्तियाँ, मूर्तिमती हरि पुष्टि।।५५।।

देखेउ पूर्ण पुरुष वर झांकी । अक्रूरहु भरि आई आँखी।।५६।।
गिरंउ लकुट इव हरिपदशरना। गदगद् गिरा कहेउ मृदु वचना।।५७।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

*

।। अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ।।

अक्रूर उवाच–

कारण कारण कृपा निधाना। नमो नमः नारायण भगवाना।।
नाभि कमल तव विधि उपजाये। जगत चराचर जिनहि बनाये ।।१।।
पंचभूत तव अंग स्वरूपा। भूजल पावक वायु ख रूपा ।।२।।
जड़नहिं जानहिं तुमहिं कन्हाई। आत्मरूप तुम व्याप गोसाई ।।३।।
तुमहि योगिजन यजन कराहीं। आत्म, भूत, अधिदैव कहाहीं।।४।।

त्रयी मानि वैतानिक जग कोई। इन्द्र आदि कहि पूजहिं सोई ।।५।।
ज्ञानी धरहिं कर्म संन्यासा । ज्ञान स्वरूपहिं लहि अभिलाषा ।।६।।
चतुर्व्यूह मानहि एक व्यूहा । तन्मय ध्यावहिं मूर्ति समूहा ।।७।।

सोरठा-तुमहिं मानि शिवरूप, शैव मार्ग पूंजहि कछुक।
विविध पन्थ बहुभेद, तुमहि उपासत विज्ञजन ।।
अन्य देव हिय राखि, जो पूजंहि बहु देव गण।
सो सब पूजत तोहि, सर्वदेव मय ईश तुम ।।९।।

दोहा- नग से उपजै जिमिनदी, लहै मेह से नीर।
बहत जात सागर मिले, तथा नमन यदुवीर ।।१०।।

सत्व रजः तम तीनेउ गुना । ओत प्रोत सूत जिमि वसना ।।११।।
सर्व रूप तुम रहहु अलिप्ता । साक्षी रूप सदा निर्लिप्ता ।।
सकल सृष्टि अविद्या छाई । सबसे पृथक नमामि कन्हाई।।१२।।
अग्नि तुम्हारे मुख है साखी । पृथ्वी चरण भानु शशि आँखी ।।
व्योम नाभि तव कान दिशायें । स्वर्ग शीर्ष सब देव भुजायें ।।
कोख तुम्हार समुद्र कहाये। प्राण तुम्हारे बलहि बताये ।।१३।।
वृक्ष वनौषधि रोम तुम्हारे। मेघ सकल शिर केश सँवारे।।
पर्वत अस्थि समूह नखानी । नेत्र निमीलन रात्रि दिनानी ।।
जनन प्रजापति वर्षा सारी । शक्ति रूप हे प्रभु अविकारी ।।१४।।
सकल लोक प्रतिपाल गोसाईं। गूलर फल इव मशक गिनाई ।।१५।।
क्रीडा हेतु रूप बहुतेरे । गावत कवि तव कीर्ति घनेरे ।।१६।।
प्रलय समुद्र बने तुम मीना । हयग्रीव मधुकैटभ छीना ।।१७।।
मन्दर धारी कच्छपरूपा । धरनी धर वाराह स्वरूपा।।१८।।
धरे नृसिंह रूप भयकारी । वामन बनि बलि छले मुरारी ।।१९।।

दोहा- क्षत्रिय कुल अन्तक बने, लिये परशु अवतार।
नमो नमः श्री राम को, रावण दीने तार।।२०।।
वासुदेव संकर्षण, श्रीप्रद्युम्न अनिरुद्ध।
यदुकुल भूषण आपको, नमोनमः अतिशुद्ध।।२१।।
बुद्ध शुद्ध अरु कल्कि को, बारम्बार प्रणाम।
म्लेच्छ प्राय मही जबहि, करिहे धरती त्राण।।२२।।
जीव लोक जँह देखेउ जाई। सो सब माया तोर कन्हाई।।२३।।
धन सुत दार स्वजन सब स्वामी। स्वप्न सदृश भवलोक इमानि।।२४।।
मानहुं नित्य अनित्यन देवा। द्वन्द्व ग्रस्त जानहुं नहि सेवा।।२५।।
मूर्ख यथा जल छौंड़ि विरानी। मृगतृष्णा वश भागइ प्रानी।।२६।।
मन रोके नहि रुकहि गोसाईं। इन्द्रिय विवश ताहि लै जाई।।२७।।
सब तजि तव पद आयहुं स्वामी। मोक्ष लहहुं प्रभु अन्तर्यामी।।२८।।
दोहा- प्रभु विज्ञान रूप तुम, कारण स्वाधिष्ठान।
अमित शक्ति परमात्मा, वारहि वार प्रणाम।।२९।।
वासुदेव संकर्षण, हृषीकेश भगवान।
शरण पड़ा मैं आपके, पाहि पाहि घनश्याम।।३०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।

*

।। अथ एक चत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

अक्रूरह बहु अस्तुति कीन्हा। नट इव हरि माया हर लीन्हा।।१।।
अन्तर्हित हरि देखउ जबहीं। अक्रूरहिं भा विस्मय तबहीं।।२।।
नित्य नियम सद्यः निपटाये। जहाँ कृष्ण तहं रथ पर आये।।३।।

पूंछेउ कृष्ण चकित कहु कैसे। जल अरू भूमि लख्यों कछु जैसे।।४।।

अक्रूर उवाच

जल थल नभ सब में तुम स्वामी। तुमहि विलोकि न विस्मय हामी।।५।।
अगजग सब में प्रभु तुम छाये। तुमहि देखि कछुउर नहि आये।।६।।
श्वफलक सुत रथ दीन चलाये। शाम होत मथुरा लइ आये।।७।।
पुरवासी सब भये सुखारी। श्याम गौर दुइ रूप निहारी।।८।।
नन्द गोप पुर पहिले आई। करत प्रतीक्षा उपवन जाई।।९।।

दोहा- हाथ मेलि अक्रूर सों, हँसत कह्यो यदुनाथ।
आप जाहु घर आपने, पुर बल देखउं साथ।।१०।।

अक्रूर उवाच

तुम विन नगर न जैहों भाई। भक्त जानि मत तजहु कन्हाई।।११।।
आवहु मम गृह करहु सनाथा। लइ बलराम गोपालहिं साथा।।१२।।
निज पद रज घर करहु पवित्रा। जेहि लगि तरहिं हमारे पित्रा।।१३।।
पद पखारि बलि पायहु धामा। अतुलित श्री सौभाग्य ललामा।।१४।।
तव पद सलिल सगर सुत तारे। शिव शिर राखहिं गंग मुरारे।।१५।।

दोहा- हे यदुवंश शिरोमणे, देवों के हे देव।
जगन्नाथ नारायण, नमो नमो भू देव।।१६।।

श्रीभगवान् उवाच

तव घर अइहौ हम दोउ भाई। यदुकुल द्रोहिहिं मारि गिराई।।१७।।

श्री शुक उवाच

सुनि अक्रूर विमन घर आये। कंसहि पहिले जाइ बताये।।१८।।
दूसरे पहर कृष्ण बहिराये। मथुरा पुरी दिखावन आये।।१९।।
फटिक मणी गोपुर दरवाजे। स्वर्ण जटित तोरण बहु छाजे।।
खाईं पीतल बनी सुहाई। उपवन सुन्दर मन सुखदायी।।२०।।

सोहे। सभा भवन सब के मन मोहे।।
सुवरन शृंगारक बहु सोहे। सभा भवन सब के मन मोहे।।
हीरे पन्ना मणिमय मोती। देखत दृष्टि विशद हिय होती।।२१।।
छज्जा बैठे मोर कपोता। शोर करहि चहुँदिशि नर तोता।।
चौराहे पर चलत फबारे। कुसुम सुरभि बहु खील उबारे।।२२।।

दोहा- दरवाजों पर थे रखे, अक्षत दही सुगन्ध।
केले के खम्भे सजे, मधुप माधवी अन्ध।।२३।।

ग्वाल संग आये दोउ भाई। देखन बढ़ी नारि अगुवाई।।२४।।
देखन ललक न कीन शृंगारा। उलटि पलटि भूषण तेंहि डारा।।
एकइ कान पत्र कोउ डारा। एकइ नुपूर पहिर सिधारा।।
एकइ आँखि अँजी कोउ भागी। युगल दरस इह युगलहिं त्यागी।।२५।।
फेंकि कौर भोजन तजि धाई। रहीं नहात सुनी सुठि आईं।।
दूध पियावत तजि शिशु माता। दौड़ी देखन अद्भुत नाता।।२६।।

सोरठा-कमल नयन भगवान्, चलेउ मत्त गजराज जिमि।
मधुर हास मुसकान, हरेउ नगर नारी सुमन।।२७।।

देखेउं आजु कृष्ण भारि आँखी। कान देत बहु कालहिं साखी।।
नयन मार्ग भरिलीन अँकोरा। पुलक शरीर देखि नद छोरा।।२८।।
चढ़ी भवन तिय बरसहिं फूला। देखेउ श्याम गौर अनुकूला।।२९।।
दधि अक्षत चन्दन हरि पाती। पूजा कीन्हे सकल द्विजाती।।३०।।
पुरवासी सब कहत कहानी। गोपिन्ह पुण्य न जाइ बखानी।।३१।।
रजक एक आवत हरि देखे। मांगे तिन्ह कंह वस्त्र विशेषे।।३२।।

दोहा- देहु हमंहि तुम वस्त्र शुभ, अंगहि उचित अमांहि।
देने से कल्याण तव, होइहिं संशय नांहि।।३३।।

एहि विधि याच्यों लीला धारी। दुष्ट रजक तेंहि दीन नकारी।।३४।।
दुर्मुख बोल्यो वचन कठोरा। राजवस्त्र [illegible] चह चोरा।।३५।।

यदि चाहहु आपन तुम प्राना। जाहु भागि न त पावु अपमाना ।।३६।।
एतना सुनत हरहिं कोप भा भारी। रजकहिं शिर हरि दीन उतारी ।।३७।।
रजकहिं अनुचर वस्त्र विहाई। भागे, वसन लिये यदुराई।।३८।।
निजप्रिय वस्त्र भ्रात दोउ छांटे । शेष सकल गोपन्ह को बाँटे।।३९।।
दरजी मिला नेक समरूपा। सिलेउ वसन सब मेलि स्वरूपा।।४०।।

दोहा- सजे अलंकृत वेष मह, गौर श्याम दोउ भाइ।
पर्व समय मनु बालगज, चलत हर्ष इतराइ।।४१।।

वायक पर प्रमुदित भगवाना। दियो सरूप मोक्ष श्रीधामा।।४२।।
कान्ह सुदाम मालि गृह आये। देखि चकित उठि शीष झुकाये।।४३।।
अर्घ्य पाद्य आसन वरु दीन्हा। उभय भ्रात कंह पूजन कीन्हा।।४४।।
कहेउ सुफल भा जनम हमारा। पितर सकल प्रभु दीने तारा ।।४५।।
दृष्टि विषम नहि राखहु स्वामी। सर्व भूतहित प्रभुहिं नमामी।।४७।।
दास तुम्हार करउं सेवकाई। जीव कृपा यश देहु लगाई।।४८।।
अस कहि दीन्ह सुदामा माला। परम सुगन्धित रुचिर विशाला।।४९।।
भये अलंकृत माला धारे। वर मांगहु यह वचन उचारे।।५०।।
अविचल भगति मांग सो लीन्ही। भगत वछल सो कह हरि दीन्ही।।५१।।
कीरति आयु शक्ति प्रभु दीना। लक्ष्मी तेहि कुल कंह आधीना।।५२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

*

।। अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– राजमार्ग पर चल रहे, श्याम गौर दोउ भ्रात।
देखे कुब्जा सुन्दरी, अंगराग लइ जात।।१।।

रसिक शिरोमणि श्रीयदुराई। पूंछेउ हँसत ताहि पंह जाई।।
यह चन्दन केहि सन लइ जाहू। देहु हमहु शुभ होइहि ताहू।।२।।

सैरन्ध्री उवाच

सुन्दर! सुनहु कंस प्रिय दासी। नाम त्रिवक्रा जग उपहासी।।
मम अनुलेप कंस अतिभावा। आप सरिस सत्पात्र न पावा।।३।।
देखि रूप माधुर्य मनोहर। अंगराग मन कीन निछावर।।४।।
निज अनुरूप सुलेप लगाये। युगल भ्रात शोभा अति पाये।।५।।
हुये प्रसन्न दरस फल दायी। कुब्जहि सीध करत यदुराई।।६।।
निजपद कुब्जा पैर दबावा। चिबुक पकड़ि हरि ताहि उठावा।।७।।

दोहा– हरि परसत सीधी हुई, बड़े नितम्ब गंभीर।
प्रमदा सी शोभित भई, धरे पयोधर धीर।।८।।
रूप आदि गुणयुक्त हो, कह केशव से आय।
उत्तरीय को खींचकर, काम विवश निरूपाय।।९।।

आवहु वीर चलहु घर मेरे। छोड़िहु नहि पदकंज घनेरे।।१०।।
रामहिं चितइ हँसे यदुराई। कहेउ वचन संगिन मुंह लाई।।११।।
भामिनि आवहुगे घर तोरा। कार्य साधि नहि और है ठौरा।।१२।।
मधुमय वाणी लीन विदाई। पूजे युगल वणिक मंहकाई।।१३।।
हरि दर्शन उर आव हिलोरा। नारिन्ह जूड़ा वसन न जोरा।।१४।।

दोहा– पुरजन पूंछत आइगें, रंग भूमि मे आप।
तहाँ पहुँचि देखे प्रभु, इन्द्र धनुष सम चाप।।१५।।

रक्षक रहे तहाँ बहु रोके। कृष्ण उठाइ लीन एक झोंके।।१६।।
बाम हाँथ हरि धनुष उठावा। खींच बीच दुई खण्ड बनावा।।
जिमि गज ईख देइ लघु तोरा। तिमि तोरेउ हरि धनुष कठोरा।।१७।।
टूटत धनुष शब्द भा भारी। कंस डरेउ उर कीन विचारी।।१८।।
रक्षक चाप कहेउ अतताई। बांधहु कृष्ण जाइ न पाई।।१९।।
दुष्ट हृदय जाना तिन्ह केरा। रामकृष्ण तिन्ह हते धनेरा।।२०।।
मारेउ सकल सैन्य तहं आई। शाला द्वार निकसि दोउ भाई।।२१।।
पुरवासी घर जाइ जनाये। देव पुरुष दुइ बालक आये।।२२।।

दोहा- **विचरत अग्रज संग हरि, सूर्यदेव भे अस्त।**
गोप लिये आये चले, जहाँ शकट थे व्यस्त।।२३।।
गोपिन्ह ने जो कुछ कहा, प्रस्थित होते कृष्ण।
मथुरा की सब नारियाँ, श्री हरि देखि सतृष्ण।।२४।।

करि मज्जन हरि भोग लगावा। पायस आदि रुचिर जो भावा।।२५।।
सैन्य सँहारि कीन धनु भंगा। सुनि कंसहि मन रहेउ न चंगा।।२६।।
डरेउ कंस तेहि नींद न आवा। मृत्यु दूत मनु रूप बनावा।।२७।।
शिर विहीन देखी परछाईं। दुइ दुइ दीपक चन्द्र दिखाई।।२८।।
छाया छिद्र घोष नहि काना। निज पद चिह्न न दीख अयाना।।२९।।
देखा स्वप्न प्रेत गल बाँही। तेल लगाइ नग्न विष खाँही।।३०।।
असगुन देखि व्याप उर माया। मृत्यु निकट जाना घबराया।।३१।।
हुआ प्रभात सूर्य नभ आये। कंस तबहि दंगल करवाये।।३२।।
रंगभूमि सब निपुण सजावा। तुरही भेरि मृदंग बजावा।।३३।।
यथा नियम तँह बैठि समाजा। बैठे नृप आसन सब राजा।।३४।।

दोहा- **मध्य मंच पर बैठेउ, मंत्रिन घेरे कंस।**
अति सखिन्न मन साथ में, भोज वंश अवतंस।।३५।।

बजेऊ नगाड़े मल्ल पधारे । मल्लगुरू तँह रहे किनारे ।।३६।।
शल तोषल मुष्टिक चाणूरा । निज आसन बैठे सब शूरा ।।३७।।
नन्दहि खल कंस बुलावा । भेंट लीन आसन बैठावा ।।३८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४२।।

*

।। अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

सकल शौच करि लिये बनाये । रामकृष्ण मख देखन आये ।।१।।
रंग द्वार पहुँचे दोउ भाई । देखु अम्बठ गजहिं अड़ाई ।।२।।
परिकर खोंसि कुटिल करि भौंहे । कहेउ महावत तनिक रिसौंहे ।।३।।
देहु राह हम दूनउ भाई । ना हित गज संग यमहि पठाई ।।४।।
एतना सुनत महावत कोपा । क्रोधित गज कृष्णहिं आरोपा ।।५।।
करि हरि पकरि गिरावन चाहा । प्रभु चाहत करिवर बल थाहा ।।६।।
क्रोधित गज हरि नाहि न पावा । सूंघि इते उत दिये दिखावा ।।७।।

दोहा- पूंछ पकड़ि लै खीचते, लइ गये धनुष पचीस ।
गरुड यथा खेल मंह, डोलत संग अहीश ।।८।।

दाये बायें करि हरि घूमे । पाइ न सका करी कर चूमे ।।९।।
सन्मुख हरि मूका एक हना । गिरा कुवलया अति कनमना ।।१०।।
हरि गज कंह लीन्हे दौड़ाई । गिरा धरनि रद भूमि गड़ाई ।।११।।
थकत देखि हस्तिप तेहिं मारा। टूटेहूं हरिहिं कीन चिघ्घारा ।।१२।।
गिरत देखि हरि आगे आये । सूंड़ पकड़ि तेहि धरनि गिराये ।।१३।।
गिरत कुबलया दाँत उखारे । हस्तिप संग दीन दोउ मारे ।।१४।।

दोहा- मारि गजहिं रद कन्ध धरि, आये प्रभु रनधीर।
स्वेद विन्दु मुख कमल पर,लसें ज्यो अम्बुद नीर।।१५।।
ग्वाल बाल आगे करि, गौर श्याम दोउ वीर।
हस्ति दन्त धारे प्रभु, आये रंग सुधीर ।।१६।।

मल्ल सकल वज्रोपम माना। मनुज तांहि नवरत्न बखाना।।
नारिन्ह कामदेव सम लागे। स्वजन गोप कंह लागत आगे।।
दुष्ट नृपति शासक इव माने । वृद्ध सकल बालक सम जाने ।।
भोज राज यम राजहिं माना। अज्ञ विराट कहंहि मनमाना।।
योगिन्ह परम तत्व हरि देखा। यदुकुल परदेवता विशेषा।।
बलदेवहिं संग आयेहु श्यामा । लोक यथामति किये अनुमाना।।१७।।

दोहा- कुबलय हन्ता देखि दोउ, भाइन परम सुबीर ।
विचलित तब कंस भा, मन मंह अति अधीर ।।१८।।
नट इव शोभित दोउ बली, प्रभा धाम चित चोर ।
चित्रवेष धारण किये, विचरत रंग किशोर ।।१९।।

मंचहि बैठे जन समुदाया। उत्सुक नयन लाभ तिन्ह पाया।।२०।।
नयनहिं पियत रहे भलु नीके । रसना मानहु चखत अमी के ।।
नासा सूंघि रहत मनु तांही । हृदय लगावत बाहु भुजाहीं।।२१।।
कहहिं परस्पर जन समुदाई। जैसे सुने रूप गुण पाई ।।२२।।
नर नारायण दूनउ भाई । वसुदेवहिं घर जन्मे जाई ।।२३।।
देवकि जनमे गोकुल जाये। नन्द सदन ये रहे छिपाये।।२४।।
हती पूतना केशी मारे । चक्रवात दानव संहारे।।
यमलार्जुन कर किये उद्धारा । धेनुक असुर आदि सब मारा ।।२५।।
दावानल से गोप बचाये । कालिय, इन्द्र दर्प विनसाये।।२६।।

दोहा- सात दिनों तक एककर, धरे गोवर्धन जाय ।
वर्षा आतप वज्र सम, गोकुल लिये बचाय ।।२७।।

गोपी नित्य मुदित इन्ह देखे । विविध ताप मानहिं किमि लेखे।।२८।।
लोग कहैं यदुवंश शिरोमणि । होइहैं कृष्ण सकल भूपमणि।।२९।।
बड़भाई बलराम दुलारे । वत्स प्रलम्ब वकासुर मारे ।।३०।।
करत बतकही यदुकुल सारे । युगल, भ्रात चाणूर पुकारे ।।३१।।
रामकृष्ण तुम दूनउ भाई । मल्ल निपुण नृप लिये बुलाई।।३२।।
राजहिं प्रिय करि प्रजा सुखारी । मन वचकर्म नत होइ दुखारी ।।३३।।
गाइ चरावन जंगल जाहू । खेलत मल्ल करत मनसाहू।।३४।।

दोहा- आवहु हम तुम मल्लकरि, राजहिं करिह प्रसन्न।
राजहिं हरषे हरष सब, नृपति दुखी अवसन्न ।।३५।।

सुनि चाणूर वचन हरि बोले । उचित देश काल सब तोले।।३६।।
सकल प्रजा हम कंसहि राजा। करउं सोइ जो राजहिं छाजा ।।३७।।
बालक बालक संग मिलि लरिहै । जोड़ि बराबर सभा बखनि हैं ।।३८।।

चाणूर उवाच

तुम नहि बालक नांहि किशोरा। खेलहि खेल हते द्विप धोरा।।३९।।
नाहि अनीति इहाँ कछु भाई । बल मुष्टिक मम तोर लड़ाई ।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

*

।। अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

तब चाणूर कृष्ण संग जूझा । मुष्टिक बलभद्रहिं बल बूझा ।।१।।
हाथ हाथ से देत मिलाई । खींचत पैरंहि देत भिड़ाई ।।२।।
पंजा बाँधि वक्ष भिड़काये । शिर से शिर पर चोट कराये ।।३।।
एक घुमाइ पटकनी देंही । पैर पसारि खीचि पुनि लेहीं ।।४।।
एक उठाइ नचाइ गिराये । उठे तुरत पछारि न पाये ।।५।।
देखत नारि सांस सब रोकी । कहत एक बल दूसर टोकी ।।६।।
अधरम होत आज बड़ भारी । बालक एक बली पर डारी ।।७।।
वज्र समान मल्ल कँह भाई । कोमल कुसुम किशोर कन्हाई ।।८।।

दोहा– जहाँ धर्म पालन नहीं, नहि जँह होत विवेक ।
तहाँ कबहु जावो नहीं, बैठहु नाहीं टेक ।।९।।

ऐसी सभा कबहु नहिं जाहू । बिनु बोले नहि धरम निबाहू ।।१०।।
कृष्ण लखहु श्रम सीकर आये । मनहु कमल जल बिन्दु सुहाये ।।११।।
देखहु सखी राम मुख शोभा । मुष्टिक सन बाजत मन छोभा ।।१२।।
व्रज नारिन्ह कर पुण्य बहूता । देखहि नयन मुरारि स्वरूपा ।।
बल संग विहरत धेनु चराई । रमा रमण तँह वेणु बजाई ।।१३।।
कौन तपस्या गोपिन्ह कीन्हा । रूप सार रस पावत चीन्हा ।।
शोभा धाम रूप अभिरामा । श्री निवास सौन्दर्य ललामा ।।१४।।
दूध दुहत दधि मथत बुहारे । गावत सन्तत हरे मुरारे ।।
बालक दीन्ह हिंडोला डारे । धन्य गोपिका कृष्ण पुकारे ।।१५।।

दोहा– प्रात जात गोचारण, लौटत सन्ध्या मांहि ।
वेणु बजावत कृष्ण मुख, निरखि गोपि हर्षांहि ।।१६।।

नारिन मन योगेश्वर जाना । शत्रु हनन कर निश्चय ठाना ।।१७।।

सुनि सभीत नारिन्ह कर बाता। तिय समेत शौरी पछिताता ।।१८।।
जो युध कौशल कीन मुरारी। सोइ दॉव बलदेवहु मारी ।।१९।।
हरी वज्र सम कीन तोड़ाई। चाणूरहु तब मूर्च्छा आई ।।२०।।
उठा बाज सम मुठिका मारा। कृष्ण वक्षपर सहे प्रहारा ।।२१।।
मुष्टि प्रहार सहे हरि कैसे। माला भार लगे द्विप जैसे।।२२।।
बाहु पकड़ि तेहि कृष्ण उठावा। बार बार नभ मांहि घुमावा।।
पटकि धरनि हरि लीन्हे प्राना। छिटके भूषण वस्त्र निशाना।।२३।।

दोहा- एंहि विधि मुष्टिक मुष्टिका, कीना बलहिं प्रहार।
बली तबहिं बलभद्र ने, दीना थप्पड़ मार।।२४।।

गिरा भूमि मुंह रुधिर बहावा। आँधी जिमि तरु देहि ढहावा ।।२५।।
आयेहु तबहि कूट बलवाना। मुष्टि प्रहार शेष हरे प्राना ।।२६।।
शल तोषल आये दोउ भाई। पद प्रहार मारे यदुराई।।२७।।
शल तोषल मुष्टिक चाणूरा। मारे गये एक तें शूरा ।।
शेष रहे ते चले पराई । प्राण भीख तिन्ह दीन कन्हाई।।२८।।
ग्वाल बाल संग मिलि विहरन लागे। भेरी नुपूर बाजे बाजे।।२९।।

दोहा- रामकृष्ण बल देखिके, हर्पित भे सब लोग।
कंस छांड़ि सबही कहे, साधु-साधु बल ओज।।३०।।

मल्ल सकल जे गये पराये। कंस वाद्य सब बन्द कराये।।३१।।
आयसु दीन सेवकन्ह जाई। राम कृष्ण पुर ढेहु भगाई।।३२।।
बाँधहु दुर्मति नन्द कठोरा। सकल गोप धन लेहू छोरा।।
वसुदेवंहु अब देहूं मारी। उग्रसेन मम पिता ममारी।।३३।।
एहि विधि बकत रहा जब कंसा। मंच चढ़ेउ मुनि मानस हंसा।।३४।।
देखा कंस मृत्यु इव आये। ढ़ाल खड्ग तब लिये उठाये।।३५।।
खड्ग हस्त वह दाये बायें। देखेउ बाज सरिस बरियाये।।

पकड़े कृष्ण ताहि बल भारी। यथा सर्प पकड़हिं सर्पारी ।।३६।।
मुकुट सहित हरि ताहि गिरावा। विश्वमूर्ति तेहि ऊपर आवा।।३७।।
मरा कंस तनु खीचे जाई। यथा सिंह गज देहि गिराई।।३८।।
खींचत कृष्ण शब्द भा भारी। हाय हाय सब प्रजा पुकारी।।

दोहा- सोवत जागत रात दिन, कृष्णहि ध्यावत कंस।
मुक्ति स्वरूपा पा गया, जो दुर्लभ मुनि हंस ।।३९।।

कंक न्यग्रोध आदि अठ भाई। चाहत हठ सब करन लराई।।४०।।
आवत देखि ताहि बलरामा। हतेउ सिंह इव पशु संग्रामा।।४१।।
ब्रह्मा शिव सब नभ पर छाये। बरसे सुमन दुन्दुभी बजाये।।४२।।
कंस सहित भाइन सब नारी। आईं शिर पीटत दुखियारी।।४३।।
वीर शयन पति देखेउ जाई। रोवत विलखत अंग लगाई।।४४।।
हे करुणामय वत्सल प्यारे। मरे सदृस हम बिना तुम्हारे।।४५।।
तुम्हरे विनु नगरी यह सूनी। भइ अनाथ हमहूँ ते दूनी।।४६।।

दोहा- निरपराध सब जीव सन, किये द्रोह अति घोर।
ताही ते यह भइ दशा, द्रोहिन शान्ति अछोर ।।४७।।
सकल लोक रक्षक हरी, सृष्टि प्रलय आधार।
कबहुँ सुखी सो होत नहि, जे न भजे करतार ।।४८।।

श्री शुक उवाच

राजरानि कहं ढाढस दीन्हा। ऊर्ध्व कर्महित आयसु कीन्हा।।४९।।
मातु पितहि तब जाइ छुड़ाये। राम कृष्ण पद माथ नवाये।।५०।।
मातु पितहि भा यह विश्वासा। जगदीश्वर आये मम पासा।।
यद्यपि तनय युगल पद लाये। ईश मानि नहि कण्ठ लगाये।।५१।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

*

।। अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

मातु पिता जानहिं भगवाना। माया प्रेरि लीन्ह हरि ज्ञाना ।।१।।
सादर पहुँचि कहेउ दोउ भाई। कहहु तात! अब सुनहु रे माई।।२।।
बाल किशोर पौगण्ड बिताये। अन्तइ तुम सब देख न पाये।।३।।
रहेउ कुभाग्य साथ नहि रहेऊँ। जननी जनक दुलार न गहेऊँ ।।४।।
देत शरीर मातु पितु कीन्हे। सेव शतायुष उऋण न चीन्हे ।।५।।
मातु पिता सेवहि नहि जोई। यमहि खियाव मांस निज सोई।।६।।
मातु पिता गुरुसन्तति नारी। इनहि न सेव नरक अधिकारी ।।७।।
कंस त्रास वश पास न आये। इतने दिन हम वृथा गंवाये।।८।।

दोहा– क्षमहु तात परतन्त्र हम, सेवा कीन न तोर।
दुष्ट कंस बहु दीन दुःख, परवश सहे बहोर।।९।।

श्रीशुक उवाच

दोहा– माया मनुज मुकुन्द की, गिरा सुनी हरषाय।
जननी जनक विमोहित, अंक लीन उठि धाय।।१०।।

सींचन लगे अश्रु की धारा। कण्ठ रूंधे नहि वचन उचारा।।११।।
मातु पिंतहि दीने आश्वासन। उग्रसेन कंह दीन नृपासन।।१२।।
कहेउ नृपति सन आयसु देहू। यदपि ययाति शप्त पद एहू ।।१३।।
मैं सेवक करिहों सेवकाई। सकल देव नृप करहिं मिताई।।१४।।
कंस त्रास यदु वृष्णि पराये। अन्धक मधु दाशार्ह बुलाये।।१५।।
निज घर मंह सब दिये बसाई। सबहि अमित धन दिये कन्हाई ।।१६।।

दोहा– रामकृष्ण बल रक्षित, सुखी हुआ यदुवंश।
पूर्ण मनोरथ थे सभी, रक्षक अंशी अंश ।।१७।।

नित्य करहिं हरि दर्शन प्रीता। रहहि सदा सब लोग अभीता ।।१८।।

बालक बूढ़े और युवाना । करहिं मुकुन्द कथा रस पाना।।१९।।
राम श्याम दोउ नन्द पहिं आये । उर मिलाइ मृदु बचन कहाये ।।२०।।
मातु पिता तुम्ह पालन कीन्हा। तनु ते अधिक छोह मोहि दीन्हा।।२१।।
सोइ जननी सो जनक पुनीता । जे पालंहि पर सुत सुपुनीता ।।२२।।
जाहु तात ब्रज नेह दुखारी । स्वजन सुखी करि आउं दुवारी।।२३।।
बहुविधि कृष्ण नन्द समझाये । वास बसन भूषण दिलवाये।।२४।।

दोहा- कण्ठ मेलि दोउ तनय तब, नन्द विरह मंह दीन।
अश्रु गिरत सब गोप सँग, व्रज प्रयाण सो कीन ।।२५।।

शौरि पुरोहित द्विजन्ह बुलाये । युगल तनय द्विजकर्म कराये ।।२६।।
दीन्ह अलंकृत सुन्दर गायें । वच्छ सहित दक्षिणा सुहाये।।२७।।
जन्म समय जो गउयें दीन्ही । कंस द्विजन्ह सब सह हरिलीन्ही।।२८।।
पुनि वसुदेव कीन्ह तिन्ह दाना । जन्म नखत आवा तिन्ह माना ।।२९।।
नर लीला रत दूनउ भाई । जगदीश्वर सब विद्या पायी ।।३०।।
गुरुकुल गये पढ़न यदुराई । सान्दीपनि उज्जैन सुहाई।।३१।।

दोहा- गुरु सेवा रत भ्रात दोउ, विद्या लही समग्र।
आदर गुरु से भी मिला, लोक सीख प्रत्यग्र ।।३२।।

अति प्रसन्न गुरु दूनउ भाई । दिये वेद वेदांग पढ़ाई ।।३३।।
धनुर्वेद सरहस्य बताये । राजनीति के पाठ पढ़ाये।।३४।।
रामकृष्ण सब विद्या धामा । सुनत लहे सब ज्ञान ललामा ।।३५।।
चौसठ दिन महं कला सिखाये। गुरु दक्षिणा हेतु मनसाये ।।३६।।
गुरु जानहि शिष बुद्धि बड़ाई । कीन मंत्रणा तिय संग जाई ।।
गुरु सुत एक समुद्रहिं मारा। लाउ प्रभाष क्षेत्र तेहिं प्यारा।।३७।।
रथ चलि युगल प्रभासहि आये। पूजाकीन जलधि शिरुनाये।।३८।।
कहेऊ समुद्रहि गुरु सुत देहू। तव तरंग डूबा सोइ एहूं।।३९।।

समुद्र उवाच

दोहा- तव गुरु सुत को मैं नहीं, शंखासुर है लीन ।
मम अगाध जल मध्य मे, रहत पंचजन पीन।।४०।।

सुनत घुसे जलमध्य मुरारी । हने असुर तेहि उदर विदारी ।।४१।।
विप्र तनय सो तँह नंहि पावा । रथ चढ़ि हरि यमलोक सिधावा।।४२।।
पाञ्चजन्य दर कृष्ण बजावा । संयमनी पति बाहर आवा ।।४३।।
पूजन कीन बहुत मन लाई । यम बोले का करहुँ कन्हाई ।।४४।।

श्री भगवान् उवाच

कर्मबन्ध वश गुरु सुत आवा । देहु देव! नहि अन्य बनावा।।४५।।
यमतें लाइ गुरुहिं सुत दीना । कहेउ और कछु मांगु अदीना।।४६।।

गुरु उवाच

उचित दक्षिणा दीन मुरारी । तव गुरु भयऊँ तोष मोहिं भारी।।४७।।
लहहु कीर्ति घर आपन जाहू। लोक वेद सब सदा निबाहू।।४८।।
गुरु आयसु लइ घर दोउ आये। स्यन्दन मेघ वेग धरि धाये ।।४९।।

दोहा- मथुरावासी लोग सब, राम कृष्ण दोउ भाइ।
देखत परमानन्द वश, मन नहि हर्ष समाइ ।।५०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४५।।

*

।। अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

कृष्ण सखा उद्धव अतिज्ञानी। गुरु के शिष्य परम मतिमानी।।१।।
एकबार हरि तिनहि बुलावा। हाथ मेलिं बहुविधि समुझावा।।२।।
उदधव तुम व्रज जाहु अभीके। मातु पितहिं समझावहु नीके।।
मम वियोग गोपिका दुखारी। कहि संदेश तिन्ह करहु सुखारी।।३।।
मम लगि गोपिन्ह प्राण सुखाये। पुत्र पतिन्ह सब दीन छुड़ाये।।
मोहिं सब प्रिय नहि औरहुं दूजा। नित्य नियम मम करती पूजा।।
सब तजि मोहि भजत ते प्रानी। तेंहि कर पोषण मम व्रत मानी।।४।।
मानहि दूर इहाँ चलि आये। विरह व्यथा अतिशय अकुलाये।।५।।
अतिशय कष्ट धरहिं ते प्राना। मम सन्देश अमिय सब माना।।६।।

श्रीशुक उवाच

दोहा– उद्धव से जब कृष्ण ने, कहीं अकेले बात।
रथ चढि उद्धव चल पड़े, नन्द भवन हरषात।।७।।

अथवत सूरज उद्धव आये। पशु खुर धूरि पड़े धुरियाये।।८।।
साँड़ लड़त धावत पछियाये। धेनु वच्छ कंह दूध पियाये।।९।।
श्वेत वच्छ धावहिं चहुँ ओरा। गाय दुधत रव होत कमोरा।।१०।।
गावहिं गीत मधुर सुपुनीता। राम कृष्ण गुण गान गृहीता।।११।।
अग्नि अतिथि गो विप्र पुजाई। धूप दीप शुभ गन्ध सुहाई।।१२।।
फूले कमल दीख चहुँ ओरा। कलरव पक्षी भ्रमर चकोरा।।१३।।

दोहा– नन्द सुने अभ्यागत, पुत्रहिं पठये जान।
भेटें अति हर्षित मन, तिनहि कृष्ण सम मान।।१४।।

करि भोजन आसन बैठाये। उद्धव सन बोले नंद राये।।१५।।
कहहु सुखी है सखा हमारे। शौरि सहित सब पुत्र दुलारे।।१६।।

कंस मरो निज पापंहि लागे। साधुन द्वेष कीन बहु आगे।।१७।।
कबहुं करत सुधि कृष्ण कन्हाई। मातु पिता व्रज गोपिन्ह गाई ।।१८।।
कबहु जो आवत कृष्ण दुलारा। देखउं कमलनयन अति प्यारा ।।१९।।
दावानल वृष सर्पहिं मारा। कृष्ण राम भय सब टारा।।२०।।
कृष्ण पराक्रम हास-विलासा। सुमिरत शिथिल क्रिया सब आशा।।२१।।
सरित शैल बन विचार कन्हाई। लखत चिह्न तन्मय होइ जाई ।।२२।।
भाखेउ यथा गर्ग मुनि आई। राम कृष्ण हरि विष्णु कहाई।।
देव कार्य लगि दूनउ भाई। आये धरनि सत्य होइ जाई।।२३।।

दोहा- नाग अयुत बल कंस कंह,गजपति मल्लहि मारि।
लीला इव लीला पुरुष,पशु जिमि हते मृगारि ।।२४।।

तीन ताड़ सम धनुष कन्हाई। तोरेउ गज जिमि छड़ी दुराई ।।
सात दिवस गोवर्धन धारे। वर्षा आतप व्रजहि उबारे।।२५।।
बक धेनुक लम्बक तृण मारे। सुर अरु असुर जयी थे सारे।।२६।।

श्रीशुक उवाच

बार बार सुधि करत कन्हाई। विह्वल नन्द बोलि न जाई।।२७।।
सुनत यशोदा कृष्ण कहानी। आँखिन अश्रु दूध ढरकानी।।२८।।
उद्धव युगल प्रीति अस देखी। प्रमुदित बोले वचन विशेषी।।२९।।

उद्धव उवाच

धन्य धन्य तुम दूनउ प्रानी। पुत्र भाव नारायण मानी।।३०।।
राम कृष्ण दोउ पुरुष पुराने। ब्रह्म जीव सचराचर जाने।।
सोइ कारण सो कार्य स्वरूपा। अगुण अनीह अनादि अनूपा।।३१।।
अन्तकाल मन ताहि लगावा। ब्रह्म परम पद दुर्लभ पावा।।३२।।

दोहा- पुत्र भाव से देखियत, नारायण भगवान।
तुम दम्पति के मतिम को, भाग्यवान गुणवान्।।३३।।

अइहै भगत वछल यदुराई । जलदिहिं प्रियकारण दोउभाई ।।३४।।
जबहि कंस रंग हते मुरारी। आवन कहे तुमहि असुरारी।।३५।।
सत्य करन सोइ अइहै भाई । सत्यसन्ध मानहु यदुराई।।
हृदय विराजत सबंहि मुकुन्दा। मत सोचहु अइहै गोविन्दा।।३६।।
नहि कोइ अप्रिय प्रिय वा स्वामी। उत्तम मध्यम अधम निकामी ।।३७।।
माता पिता पुत्र अरु नारी । शत्रु मित्र नहि लखें मुरारी।।३८।।
कर्म अकर्म कतहुं कछु नाहीं। सन्त हेतु प्रभु वपुष धराहीं ।।३९।।
सत् रज तम गुण धरहि हरीशा। जन्म मरण रक्षण प्रभु ईशा।।४०।।

दोहा- धरती धूमति लागती, धूमत मनुज कहांहि ।
कर्ता तैसे चित्त मंह, अहं भाव समुहांहि ।।४१।।

नहि केवल तव सुत जगदीशा । सकल प्राणि पित मातु हरीशा ।।४२।।
भूत भविष्यत् अग जग स्वामी। बिना कृष्ण नहि काहु निसानी ।।४३।।
करत बतकही रात बितानी । उद्धव नन्द कृष्ण गुण खानी ।।
गोपिन्ह उठि घर वार संवारा। वास्तु पूजि दधि मन्थ संभारा।।४४।।
दही मथत लागत अति नीका। कर कंगन रूचि माथे टीका ।।
कुण्डल लोल कपोलन सोहे । हिलत नितम्ब हार मन मोहे।।४५।।
गावत कमल नयन हरि गाना। दधि मन्थन रव कीन्ह विहाना ।।४६।।
उगत तरनि रथ देखेउ जाई । नन्द भवन पर कंह केहु आई ।।४७।।
कंस मित्र उद्धव सोइ आवा। रामकृष्ण मधुपुरी पठावा।।४८।।
हमउ संग मधुपुर लै जावा। कंसहि अंजुरी पानि देवावा।।४९।।
ऐसेइ कहत रहीं व्रजवारी। आयेउ उद्व मित्र मुरारी।।५०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४६।।

*

।। अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

कृष्ण सखा देखीं ब्रजनारी। भुज अज्ञानु पीताम्बर धारी।।
लोचन कमल समान विशाला। गले विराजत पुष्कर माला ।।
मणिमय कुण्डल कानन सोहे। आनन कमल देखि मन मोहे ।।१।।
कृष्ण समान वेष धरि आवा। घेरि खड़ी व्रजनारि सुहावा ।।२।।
जानी रमा रमण के दूता । गोपिन्ह किय सत्कार बहूता।।
कहहिं रहसि आसन बैठाई। वंकिम चितवन हास बजाई ।।
जानउं यदुपति भेजे आये। मातु पिता सुख देन पठाये ।।४।।
नाहि त केकर सुधि तेहि आई । मुनिहु न छॉड़हि बन्धु मिताई।।५।।
गैरहु प्रीति स्वार्थ कर नाता। पुरुष नारि जिमि भ्रमर कलीका।।६।।

दोहा- निर्धन को गणिका तजहिं, परजा अक्षम नाथ।
पढ़े शिष्य गुरुजन तजहि, ऋत्विज द्रव्य सनाथ ।।७।।
निष्फल तरु खग त्याग हीं, भुक्त अतिथि गृह त्याग।
दावानल मृग त्यागत, जार भुक्त तिय भाग।।८।।

गोपिन्ह मन हरि लीन चोराई । अनुचित उचित जानि न पाई ।।९।।
लै बचपन कैशोर कन्हाई। लीला कीन मधुर सुखदायी ।।
सुधि करि गावति रोवति नारी। लज्जा तजि सुधि अपन बिसारी।।१०।।
भंवरा उड़त एक ने देखा। दूत मानि तेंहि कहे विशेषा।।११।।

गोपी उवाच

मधुप छुवो नहि पैर हमारे। तुमहूँ श्याम सखा से कारे ।।
मथुरा मांहि सौति बहु रहहीं। कुच कुंकुम पराग तिन्ह धरहीं ।।
निज स्वामी इव तुमहु सयाने। जँह पराग तँह जाइ लुभाने।।
मधुपति मानिन्ह जाइ मनाई। व्रज मँह होइहि बहुरि हँसाई।।१२।।

अधर सुधा एक बार पिलाई। भ्रमर सरिस तजि दीन कन्हाई।।
मधुप तुमहुं हो मधु के कामी। तजहु फूल रस लिये निकामी।।
रमा रमहि तेहि केहि गुन लागी। मीठ बोलि तेहि कीन सुभागी।।१३।।
मधुप इहाँ नहि ताहि बखानहु। हम अगेह यदुपति कह जानहुं।।
जाहु मधुप गुन गावहु नीके। मथुरा नारि जुड़ावनि जी के।।१४।।
तीन लोक मंह अस नहिं नारी। कपट विलास न छलइ मुरारी।।
एहि गुन रीझी चंचल कमला। जिनके आगे बोलो हम हैं का।।
दीन जानि मत तजहु कन्हाई। उत्तम श्लोक विरद चलि जाई।।१५।।
छोड़हु पद शिर टेकहु नाहीं। चाटुकार हरि सरिस कहाँही।।
छाँड़ेहु स्वजन बन्धु पितु भाई। जिनहिं लागि सोइ तजेउ कन्हाई।।
कहु केहि लागि करउ विश्वासा। कैसी सन्धि कौन सी आशा।।१६।।

दोहा- राम रूप धरि बालि कहं, हनेहु व्याध की नाइ।
स्त्रीजित सूर्पणखिंह, दीन विरूप कराइ।।
बलिंहि छलेउ बामन वनि, दीन्ह पताल पठाइ।
सबसे छलिया श्याम है, चर्चा हमहिं सुहाइ।।१७।।

रागद्वेष सुख दुख मिटि जाई। लीला अमृत श्रवन सुठि आई।।
छाँड़ि सबहि धन धान्य परानी। विहग समान भक्ति रस आनी।।
गावहि सतत कृष्ण गुन ग्रामा। छाँड़ि मुक्ति चह भगति ललामा।।१८।।
व्याध गान पर करि विश्वासा। हरिणी पाउ यथा वन त्रासा।।
तैसे छलिया छले मुरारी। काम रोग नखयोग उभारी।।
कहहु औरु कछु कथा कहानी। दूत कृष्ण कंह तुम मै जानी।।१९।।
प्रियतम साखा लौटि फिर आये। कान्हा तुमको फेरि पठाये।।
सब प्रकार तुम मान्य हमारे। कहहु चाह को आहि तुम्हारे।।
चाहहु हमहिं उहाँ लइ जाना। जेहि उर लक्ष्मी वसति सदा ना।।२०।।

कहहु भ्रमर! है सुखी हमारे। आर्यपुत्र मधुपुरी पधारे ।।
कबहुं करहिं सुधि पितु अरुमाता। कबहुंक गोपग्वाल बलभ्राता।।
कबहुं त सोचहिं गोपिन्ह दासी। कब शिर रखिहैं हाथ सुवासी।।२१।।

श्रीशुक उवाच

दोहा- कृष्ण दरस की लालसा, गोपिन्ह की सुन बात ।
देत सान्त्वना उद्धव, बोले हर्षित गात ।।२२।।

लोक पूज्य तुम धन्य नागरी। वासुदेव मन जासु लागरी ।।२३।।
दान यज्ञ तप होम विधाना । साधन सकल साध्य भगवाना ।।२४।।
बड़े भाग हरि भक्ती पायी । मुनि दुर्लभ तव भगति सुहाई ।।२५।।
सुत पति देह गेह सब त्यागे । परम पुरुष हरि मन तव लागे ।।२६।।
अग-जग सब मंह हरि कंह देखी। विरह व्यथा मयि कृपा विशेषी।।२७।।
प्रिय सन्देश सुनहु मन लाई । जेंहि लगि भेजे मोंहि कन्हाई ।।२८।।

श्री भगवान् उवाच

तुमसे विलग कबहुं मैं नाहीं। सब में मैं सब मोहि समाही।।
पंचभूत जिमि जगत बनावहिं। तिमि मन प्राण ममाश्रित जानहिं।।२९।।
मम माया लगि सृष्टि प्रकारा। थिति पालन लालन संहारा।।३०।।
आत्मा शुद्ध ज्ञानमय अगुणा । माया जाग्रत सुप्ति स्वप्न त्रिगुणा।।३१।।

दोहा- स्वप्नहि दीखे सत्य जो, जागत मिथ्या जान ।
जागत इन्द्रिय देखियत, लोकहु मिथ्या मान ।।३२।।

यथा नदी मिलि उदधि अगाधा। सांख्य योग दम तप मोंहि साधा।।३३।।
जो कछु दूरि रहौ तुम्ह केरे। ध्यान धरहु मम निकट घनेरे ।।३४।।
नारिन्ह एक विचित्र सुभाऊ। दूर गये प्रिय सोचहिं ताऊ।।
आँखिन पास रहे प्रिय जोई । तेंहि पर प्रीति तथा नहि होई।।३५।।
छाड़ि सकल वृति मम मन लागी। पइहों अचिर प्रीति मम पागी ।।३६।।

जबहि रात्रि बन रास रचाये। कछु गोपी जन नहि तँह आये ।।
चिन्तन करत मोहि सो पावा। सो तस चितइ जो तेहिं भावा ।।३७।।

सोरठा-गोपिन्ह भा आनन्द, निज प्रियतम सन्देश सुनि ।
कीन्ह कृष्ण की याद, बोलीं उद्धव से लिपट।।३८।।

गोप्य ऊचुः

बड़े भाग भा कंस संहारा। युदुकुल द्वेषी निज अघ मारा ।।
सकुशल अच्युत रहंहि सुखारी। बड़े भाग सुख लहंहि मुरारी।।३९।।
जैसेहि प्रीति हास हम कीने। मथुरा पुर नारिन्ह हरि दीने ।।४०।।
रति विशेष जानहि यदुराई । रीझें प्रीति नगर तिय पाईं।।४१।।
कबहुँक नगर नारि हरि पाई । गोपिन्ह याद करत यदुराई ।।४२।।
कबहुंक सुधि आवत सोइ रासा। कुमुद चन्द्र बन बीच विलासा ।।
क्वणित चरण नुपूर यदुराया । सुमधुर लीला गान रचाया।।४३।।

दोहा- इन्द्र यथा जल बरसि के, जीवन देंहि समाज ।
विरह व्यथा से तपत को, कब अइहैं सव्याज ।।४४।।
शत्रुन सब संहारि हरि, राज-सुता करिव्याह ।
राज काज में रमि रहे, कहाँ हमारी चाह ।।४५।।

लक्ष्मी पति हरि पूरण कामा । ग्वालिन् किम् किमि नारि ललामा।।४६।।
आशा दुख निरास सुख मूला । कही पिंगला वचन समूला ।।
जानहुँ आश दुःखकर मूला । तजौ न ताहि जानि प्रतिकूला ।।४७।।
कहहु को छाँड़हि कृष्ण कन्हाई। तजति न कमला जेहि पद पाई ।।४८।।
सरिता पर्वत बन अरु गाई । बलहि संग हरि वेणु बजाई।।४९।।
सकल करावहिं हरि सुधि नीके। चरणधूलि भवरोग अमी के ।।५०।।
ललित हास गति मधुर विलोका । मधुर गिरा किमि कीन अशोका।।५१।।
हे रमानाथ व्रजनाथ मुरारे। सब गोप गोपिका तारो प्यारे।।५२।।

श्रीशुक उवाच

दोहा- सुनि संन्देश श्रीकृष्ण का, विरह व्यथा थी शान्त।
उद्धव की पूजा किये, आत्म मानि श्रीकान्त।।५३।।
कछुक मास उद्धव रहे, गोपिन्ह मेटे शोक।
गावत लीला हरि कथा, गोकुल कीन्ह अशोक।।५४।।
जितने दिन उद्धव किये, व्रज में वास सुवास।
व्रजवासिन्ह क्षण इव लगे, कृष्ण दरस की आश।।५५।।

सरिता गिरि वन देखी जाई। कुसुमित कानन धेनु चराई।।
देखि सकल उद्धव हरषाहीं। तन्मय होत देह सुधि नाहीं।।५६।।
प्रेम विकल गोपिन्ह तँह देखा। शिर झुकाइ तिन्ह कहेउ विशेषा।।५७।।
सुफल जनम गोपिन्ह कर भाई। कृष्ण चरण रति प्रीति दृढ़ाई।।
भव भयभीत योगि जेहि लागी। ब्रह्म कल्प तप करहि न पागी।।५८।।
कँह गँवार दूषित व्रज नारी। कँह श्री कृष्ण ब्रह्म भयहारी।।
जाने विनु विभूति हरि सेई। पाव अमृत फल अज्ञहु देई।।५९।।
जो प्रसाद हरि गोपिन्ह दीन्हा। रास विलास प्रेम वश कीन्हा।।
पदम गन्धि सुर नारि न पावा। रमा स्वयं जेहि निशि दिन ध्यावा।।
कण्ठ मेलि भुज रास रचावा। प्रेम विवश तेंहि कन्ध उठावा।।६०।।
अहह धन्य गोपी बड़भागी। हरि पद गहे गेह कुल त्यागी।।
चाहहु लता गुल्म बनि जाऊं। गोपिन्ह चरण धूलि नित पाउँ।।
जेहि मुकुन्द पद वेद न पावा। सोइपद व्रज रज नित्य उड़ावा।।६१।।
जेहि पद पूजत कमला रानी। विधि महेश योगेश बखानी।।
गोपिन्ह सोइ पद वक्ष लगावा। हृदय ताप सब भाँति मिटावा।।६२।।

दोहा-बन्दउ गोपिन चरण युग, धूलि निरन्तर धीर।
जेहि मुख निकले गीत सब, हरहि त्रिलोकी पीर।।६३।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- ग्वाल गोपि से लै विदा, नन्द यशोमति भेंटि।
रथारूढ़ उद्‌धव तब, चले दुःख सब मेंटि।।६४।।

देखत जात प्रीति उर छायी। विविध भेंट लेकर सब धाई।।६५।।
बोले प्रीति प्रवण मृदुवानी। मन वच काय कृष्णरति मानी।।६६।।
कर्म लागि जीवन कहुं पाऊँ। कृष्ण चरन रति नाहिं नसाउँ।।६७।।
कृष्ण भगत कंह कीन्हे माना। आये उद्‌धव चढ़ि रथ याना।।६८।।

दोहा- करि प्रणाम श्रीकृष्ण को, भगति बखानी ताहि।
दियें भेंट सब को यथा योग्य समर्पे याहि।।६९।।

।। इति श्रीमद्‌भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।।४७।।

*

।। अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच-

कृष्ण स्वयं प्रभु अन्तर्यामी। कुब्जा सुख हित आये स्वामी।।
कुब्जा सदन सोह बहुभाँती। रत्नजटित रसराज प्रभाती।।१।।
मोतिन झालर कीन विताना। शयनासन रूचि मधुमय पाना।।
सुरभित धूप दीप गृह सोहा। माल्यगन्ध मधुकर मन मोहा।।२।।
आवत देखि कृष्ण उठि धायी। सखिन संग कुब्जा हरषाई।।
पूजन कीन अधिक अनुरागा। भाग्य आजु कुब्जा कर जागा।।३।।
उद्‌धव की भी पूजा कीन्हा। आसन आपन धरनी चीन्हा।।
लोकाचार निपुन यदुराई। कुब्जा सेज गहे तँह जाई।।४।।
करि मज्ञन रूचि वसन सुहाई। लेप सुधा आसव अधिकाई।।
करि श्रृंगार माधव पहिं आई। लज्जित लीला भाव दिखाई।।५।।

दोहा- नव संगम वश लज्जित, कुब्जा लीन्ह बुलाइ।
शय्या पर बैठाइ के, हाथ गहे यदुराइ।।
अंगराग अर्पित किये, कुब्जा पुण्य न थोर।
रमण किये श्रीकृष्ण ने, लिये चित्त तिय चोर।।६।।
कुब्जा कृष्ण चरण उर लावा। काम ताप क्षण मांहि नसावा।।
भुज उठाइ हरि कण्ठ लगावा। विरह व्याधि सब ताप बुझावा।।७।।
मोक्ष दायि दुर्लभ पद जासू। अंग संग दुर्भग लह तासू।।८।।
कछुक दिनन यह रहु बनमाली। क्रीडा करहु परम बलशाली।।९।।
देइ अभीष्ट वर घर प्रभु आये। मान दीन पूजित हरषाये।।१०।।
दुराराध्य श्री विष्णु मुरारी। पाइ विषयसुख मांग कुनारी।।११।।
दोहा- अब आये अक्रूर गृह, बलहिं संग श्रीकृष्ण।
कछुक काम चाहत करन, देखे ताहि सतृष्ण।।१२।।
आवत देखि युगल दोउ भाई। उठि अक्रूर तेहि हृदय लगाई।।१३।।
कीन्ह प्रणाम युगल तेहि बन्दे। करि पूजा अक्रूर अनन्दे।।१४।।
चरण धोइ पादोदक लीन्हा। अम्बर दिव्य गन्ध स्त्रक दीन्हा।।१५।।
पूजन करि तेंहि चरण दबावा। कृष्ण राम से विनय बतावा।।१६।।
बड़े भाग तुम कंसहि मारे। यदुकुल संकट लीन उबारे।।१७।।
कारण करण युगल नर रूपा। भूत भव्य भव सर्व स्वरूपा।।१८।।
निज माया जग रचेहु कन्हाई। श्रव्य दृश्य अग जग तुम सांई।।१९।।
दोहा- जेंहि विधि कारण तत्त्व से, बनते विविध शरीर।
कार्य रूप प्रभु आप ही, भासहु जगत् प्रबीर।।२०।।
सत् रज तम तव शक्ति अपारा। रचहु सुपालहु करहु संहारा।।
गुण कृत बन्धन तुमहि न स्वामी। शुद्ध ज्ञान मय अन्तर्यामी।।२१।।
तव नहि जन्म मृत्यु नहि होई। सकल अविद्या कह बुध सोई।।२२।।

जग कल्याण वेद पथ कीन्हा। देखि पाखण्ड शुद्ध तनु लीन्हा।।२३।।
सम्प्रति सोइ हरन महि मारा। बलहिं संग प्रभु लिये अवतारा।।
सौ अक्षौहिणि दानव मारेहु। यदुकुल यश प्रभु विस्तारेहु।।२४।।
सारे देव पितर तव रूपा। नृपति भूतगण तोर स्वरूपा।।
जगत् पिता अघनाशिनि गंगा। पदनख निकसी धवल तरंगा।।२५।।
अस पण्डित को है जगमाहीं। तुमहि छाँड़ि गह दूसर छाँही।।
भक्तन सकल कामना पूरे। आत्म दानि तुम सम नहि रूरे।।२६।।

दोहा- बड़े भाग्य दर्शन मिले, इन्द्रहुं जो दुष्प्राप।
धन सुत दारा बन्धन, काटहु श्रीमन् आप।।२७।।

श्रीशुक उवाच

दोहा- इस प्रकार अक्रूर ने, पूजे हरिहिं विशेष।
मुस्कुराय तब कृष्ण ने, कहा मोहि अनिमेष।।२८।।

श्री भगवान उवाच

सब प्रकार तुम गुरू हमारे। चाचा पिता समान पियारे।।
हम बालक तुम पालन हारे। कृपा पात्र हम सदा दुलारे।।२९।।
सन्त पुरुष तुम सेवन जोगू। मंगल करन न स्वारथ भोगू।।३०।।
नहि जल तीरथ मूरति देवा। दर्शन साधु देत फल मेवा।।३१।।
आपु परम हित सोचनि हारे। पाण्डु सुतन सुधि लावहु प्यारे।।३२।।
पाण्डु मरे बालक घर आये। कुन्ती सहित दुःख बहु पाये।।३३।।
अन्ध नृपति निज पुत्र उदारा। भातृ सुतन्ह लगि अति अनुदारा।।३४।।
जाहु कुशल तेंहि लावहु नीका। करउं सो बेगि शुभ होइ सभीका।।३५।।

दोहा- इस प्रकार अक्रूर को, कहकर श्री भगवान्।
उद्धव बल दाऊ सहित, भवन कीन प्रस्थान।।३६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धेपूर्वार्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।।४८।।

*

।। अथ एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– हास्तिन पुर में जाइके, पुरुयश अंकित शेष।
देखे अम्बासुत प्रभृति, भीष्म विदुर सविशेष।।१।।

द्रोण कर्ण कृप द्रौणि विशेषा। सहित सुयोधन पाण्डव देखा।।२।।
भेंटि सकल अक्रूर सुहाये। पूंछि कुशल निज क्षेम सुनाये।।३।।
कछुक मास तंह रह अक्रूरा। देखे अन्धनृपति नय शूरा।।४।।
तेज ओज बल पाण्डव देखी। अन्ध तनय नहि सहसिं विशेषी।।५।।
कुन्ती विदुर दिये बतलाई। केहिं विधि कौरव जहर पिलाई।।६।।
गान्दिनि सुत कुन्ती गृह आये। नैहर सुधि नैन जल छाये।।७।।
कबहुं करत सुधि पिता हमारे। माता भाइ भगिनि सखि प्यारे।।८।।

दोहा– कृष्ण औरु बलराम दोउ, भक्तबछल भगवान्।
भाइ पुफेरन की कबहुं, करत भतीजा ध्यान।।९।।

हरिनी पड़ी भेड़ियन बीचा। कबहुंक हरि अनाथ कंह सीचा।।१०।।
कृष्ण कृष्ण योगी सुखदायी। शरण पड़ी मोहि राखु कन्हाई।।११।।
संसृति सकल मृत्यु के द्वारे। चरण शरण मोंहि पाहि मुरारे।।१२।।
योगी योग कृष्ण नरभूपा। नमः परात्मन् ब्रह्म स्वरूपा।।१३।।

श्रीशुक उवाच

राजन्! बहु रोई तव आजी। स्वजनन सुधिकर मोहन ब्याजी।।१४।।
सम सुख दुख अक्रूर सुहाये। सहित विदुर तेंहि शान्ति बँधाये।।१५।।

दोहा– अन्धनृपति पंह आये, बोले बचन गंभीर।
भरी सभा में कृष्ण के, दिये सन्देशे धीर।।१६।।

अक्रूर उवाच

दोहा- पाण्डु-निधन पर पाये, राजासन गम्भीर।
हे धृतराष्ट्र बढ़ाइये, कौरव कीर्ति, सुवीर ।।१७।।

पालहु धरनी धर्म धुरीणा। स्वजन सकल सम लोक प्रवीणा।।
यह जग यश सदगति परलोका। रंजन प्रजा हरत त्रयशोका।।१८।।
येहि विपरीत करहु यदि राजा। जइहो नरक समेत समाजा।।
निज सुत सम सब पाण्डव जानी। करहु समत्व सोइ सुख खानी ।।१९।।
यहि जग क्षणिक मिलन है राजा। सुत जाया निजदेह समाजा ।।२०।।
जन्मि जीव पुनि मरइ अकेला। पाप पुण्य फल भोगु सहेला।।२१।।
अधरम अर्जित वित्त हराहीं। हम तुम्हार कह जोंक की नाहीं।।२२।।

दोहा- मूर्ख जीव जेंहि पालता, करि अधर्म दिनरात।
प्राण पुत्र धन आदि तेहि, देत न एकउ साथ ।।२३।।
पाप स्वयं ही लादि के, जात नरक में जीव।
जेंहि लागि अधरम किये, काम न आवत सीव ।।२४।।
राजन ! इस संसार को, स्वप्नतुल्य तुम मान।
देखहु अपने आप को, आनहु आपन जान।।२५।।

धृतराष्ट्र उवाच

कहीं दानपति! बात भलाई। तृप्ति नांहि मृत सुधा नहाई।।२६।।
सुत अनुराग ग्रसित मनमाहीं। तोर बचन चपला सम जांही ।।२७।।
विधि विधान को टारनि हारा। भार हरन हृरि लिये अवतारा।।२८।।
प्रभु अचिन्त्य माया गुणशाली। को करि सके विवेक कुचाली।।
करहिं प्रवेश सृष्टि मंह जोई। करत विवेक कर्म फल सोई।।
दुरवबोधगतिमहं नमामी। सृष्टि चक्र गति पालक स्वामी ।।२९।।

श्रीशुक उवाच

दोहा- अन्धनृपति मति जानिके, गान्दिनि सुत अक्रूर।
मित्रन्ह मांगि विदा तब, आये यदुपुर शूर।।
कहेउ कृष्ण बलराम सों, अन्ध नृपति व्याहार।
जैसा पाण्डव साथ में, होता दुरव्यवहार।।३०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां
पारमहंस्यां संहितायाम् दशम स्कन्धे पूर्वार्धे
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

*

।।समाप्तमिदं दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धम्।।
।।श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

*

।।इति श्री पण्डित भानुदत्तपाण्डेय सूनुना
कूराडीह, प्रतापगढ़ लब्धजन्मना
डॉ.गायत्री प्रसाद पाण्डेयेन
काशीवास्तव्येन कृते श्रीमद् भागवत महापुराणस्य
हिन्दी दोहा चौपाई
रूपान्तरणे दशमस्कन्धस्य पूर्वार्धः सम्पूर्णः।।
।।श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

दशम स्कन्धः

(उत्तरार्धः)

।। अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

अस्ति प्राप्ति दुइ कंस की रानी। आई पिता सदन रजधानी ।।१।।
पिता जरासन्ध बलवाना। कहीं सकल वैधव्य निदाना ।।२।।
मगध राज अति अप्रिय माना। यादव हीन मही करि ठाना ।।३।।
तेइस अक्षौहिणि सेना प्रेरी। जाइ चतुर्दिक मथुरा घेरी ।।४।।
देखेउ कृष्ण स्वजन भयभीता। मानहु लांघेउ सिन्धु परीता ।।५।।
मम अवतार भयउ केहि हेतू। सोचन लगे कृष्ण यदुकेतू ।।६।।
जरासन्ध लायेहु बल भारी। धरनि भार रण हतों पचारी ।।७।।

दोहा– वीर अश्व रथ कुंजर, लाया सैन्य अछोर।
सबहिं मारि मागध तजौं, कर्ता सैन्य बटोर ।।८।।

येहि तें भयउ मोर अवतारा। साधुन त्राण दुष्ट संहारा ।।९।।
धर्म त्राण हित धरउं अनेका। रूप स्वरूप एकतें एका ।।१०।।
यह सब सोचत रहे मुरारी। आये दोउ रथ सज्जित भारी ।।११।।
आयुध दिव्य देखि यदुराई। बलभद्रहि तब कहेउ बुझाई ।।१२।।
आर्य! विपति यदुकुल पर आई। देखहु आयुध आये भाई ।।१३।।
साधु त्राण हित जन्म हमारा। रथ चढ़ि करहु दुष्ट संहारा ।।१४।।

दोहा– कीन मंत्रणा भ्रात दोउ, भूमि भार करु क्षीन।
बीस तीन अक्षौहिणी, एकहि बार विलीन ।।१५।।
निकले दोनों भ्रात तब, सेना थोड़ी साथ।
दारुक सारथि शस्त्र युत, शंख हने यदुनाथ ।।१६।।

प्रतिपक्षी दल डरपेहु भारी । बोला जरासन्ध दै गारी ।।१७।।
पुरुषाधम बालक हे कृष्णा । गुप्त बन्धु न होत वितृष्णा।।
बाल एक संग करों लड़ाई । मन्द! मोंहि को वीर कहाई।।१८।।
हे बलराम होइ विश्वासा । युद्ध मृत्यु पर स्वर्ग की आशा ।।
धैर्य होइ त करहु लड़ाई । मारहु मरहु समान भलाई ।।१९।।

श्रीभगवान् उवाच

समर भूमि नहिं बँहसहिं शूरा । पौरुष करहिं सदा भरपूरा ।।
मरणशील आतुर जो होई । ताकर वचन सुनहि नहिं कोई ।।२०।।

श्रीशुकउवाच

जरापुत्र की सेना भारी । घेरी रामकृष्ण रणचारी ।।
यथा वायु घन सूर्यहि घेरे । धूम आगि ढकि लेंहि घनेरे।।
तथा यान ध्वज सैन्य घेराने । आवा जरासन्ध बल माने ।।२१।।

दोहा- गरुड़ चिह्न माधव ध्वजा, ताल ध्वजा बलराम ।
देखघिरी रिपु सैन्य से, मूर्च्छित गोपुर वाम ।।२२।।

देखे हरि रिपु वाण प्रहारा । मानहुं मेध बरस जलधारा ।।
शार्ङ्ग धनुष तब लिये उठाई । देखे व्यथित सैन्य समुदायी।।२३।।
लिये चढ़ाये खीचें छोड़े । नाना बाण शत्रु मन तोड़े ।।
घूमे यथा अलात लुकारी । अश्व हस्ति रथ पत्तिन मारी।।२४।।
हस्ति वाजि शिर कटे अनेका । सारथि रथ ध्वज कीन विशोका ।।
पैदल सैन्य गिरहिं कटि अंगा । काहुक भुजा काहु कर जंघा ।।२५।।
रुधिर नदी तंह बही अपारा । बाहु सर्प शिर कच्छप धारा ।।
अश्व ग्राह द्विप दीपहिं लागे । बलहि देखि कायर कछु भागे ।।२६।।
कर उरु मीन त केश सेवारा । अस्त्र लता अरु धनुषहिं धारा ।।
ढाल भयानक भँवर समाना । मणि आभूषण कंकण जाना ।।२७।।

दोहा– मुशल प्रहार कीन बल, शूरंहि मन उत्साह।
भीर डरे तब युद्ध से, देखे रुधिर प्रवाह ।।२८।।
अंग सैन्य दुर्गम जलधि, दुस्तर दुर्जय जोय।
क्षण मँह नाशे सकल बल, ईश पराक्रम सोय ।।२९।।

सर्ग प्रलय पालन क्षण माहीं। करहिं ईश तँह अचरज नाहीं ।।
शत्रु सैन्य सो शीघ्र संहारा । लीला मनुज वर्ण्यभा सारा ।।३०।।
विरथ जरासुत पकड़े रामा । हते सैन्य केहरि अभिरामा ।।
रहेउ शरीर प्राण अवशेषा । जकड़े ताहि स्वयं शतशेषा ।।३१।।
वरुण पाश तेहि बाँधत देखा । रोकेउ श्रीहरि तबहि विशेषा ।।३२।।
लज्जित अति तव कीन्ह विचारा। छाँड़े यदुपति नृपति निवारा ।।३३।।
नृपति ताहि बहुविधि समुझाये। कर्म भोग वश बन्धन पाये ।।३४।।

दोहा– सेना सब मारी गयी, जरासन्ध खिसियान।
ईश उपेक्षित हो तभी, मगध कीन प्रस्थान ।।३५।।

अक्षत बल तँह केशव रहेऊ। सोखेउ सैन्य सिन्धु जो कहेऊ ।।
देवन वरसे सुमन सुहाये । अनुमोदन के वचन सुनाये ।।३६।।
मुदित नगर वासी तँह आये । बन्दीजन सब विरद गवाये ।।३७।।
पुर प्रविशे हरि दुन्दुभि बाजी । वीणा वेणु मृदंगहि साजी ।।३८।।
सीचें पथ बहु ध्वजा सजाये । वेद घोष तोरण लहराये ।।३९।।
दधि अक्षत अंकुर बरनारी । बरसंहि निरखहि नयन उघारी ।।४०।।
रणतें वित्त विभूषण लाये । नृपंहि समर्पि कृष्ण सुख पाये ।।४१।।

सोरठा–एहि विधि सत्रह बार जरासन्ध कीना समर।
तीन अधिक अरु बीस, अक्षौहिणि हर बार हत ।।४२।।

दोहा– कृष्ण तेज से यादव, मारे सैन्य अपार।
जरासन्ध लज्जित सदा, लौटा अपने द्वार ।।४३।।

बार अठारह जब पुनि भावा। कालयवन देवर्षि पठावा ।।४४।।
तीन कोटि सेना लइ आवा। यदुवंसिन्ह कँह वीर मनावा ।।
रूधी मथुरा सकल सुरारी। अद्भुत असम भयानक भारी ।।४५।।
चिन्तन कीन्ह कृष्ण बलरामा। आयेउ विपति उभय बलधामा ।।४६।।
एक ओर से यवनहिं घेरा। आजुकाल्हि मागध नृप डेरा ।।४७।।
यवनहि लड़त रहे दोउ भाई। मागध बन्धु मारि ले जाई ।।४८।।
आवहु दुर्ग बनावहु अवहीं। बन्धु तहाँ रखि लड़िहौ तबही ।।४९।।

दोहा– ऐसी करि हरि मंत्रणा, द्वादश योजन मान।
बीच सिन्धु रचना करी, मायापति भगवान ।।५०।।

ऐसा सुन्दर नगर बसावा। वास्तु शास्त्र अनुरूप सुहावा ।।
सड़क गली सुन्दर चौराहे। शिल्प निपुणता देखि सराहे ।।५१।।
सुरद्रुम उपवन रुचिर बनाये। स्वर्ण शिखर गोपुर लहराये ।।५२।।
चाँदिन्ह अन्नकोश बनवाये। स्वर्ण कलश प्रतिगृह रखवाये ।।
मरकत मणि की भूमि बनाई। रत्नराशि सब ओर लगाई ।।५३।।
चारि वर्ण के योग बनाये। यदुपति गृह सब भाँति सुहाये ।।५४।।
सभा सुधर्मा सुरतरु आये। देवराज ने स्वयं पठाये ।।
मृत्युधर्म जँह व्यापत नाहीं। सोइ सभा सुरतरु की छाँही ।।५५।।
एक कान जिन्हं श्याम विराजा। ऐसे अश्व दिये जलराजा ।।
भेजे धनद विशेष विभूती। लोक पाल निधि दीन अकूती ।।५६।।

दोहा– पहुंचाये सब द्वारका, पुरजन परिजन श्याम।
शेष भार रक्षण हित, साधि लिये बलराम ।।
बिना अस्त्र कोई लिये, पद्म कण्ठ भगवान।
निकले पुरके द्वार से, रामहिं कीन प्रणाम ।।५८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५०।।

।। अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

कालयवन आवत हरि देखा। मानहुं धरती पर शशि लेखा।।
श्याम वर्ण वपु देखनि हारे। पीताम्बर शरीर पर डारे।।१।।
कौस्तुभ मणि हरि गले विराजा। वत्स चिह्न वक्षस्थल पर छाजा।।
चारि भुजा आजानु विशेषा। अरुण कमल सम नैनहिं देखा।।२।।
नित्यमुदित सुकपोल विराजे। कुण्डल मकराकृति सुभ साजे।।३।।
वासुदेव यह पुरुष अनूपा। वनमाली सुन्दर अभिरूपा।।४।।

दोहा- लक्षण जो नारद कहे, सो सब एहि में आँहि।
विना शस्त्र पैदल चलत, लड़िहों धरिके बाँहि।।५।।
ऐसा निश्चय करि यवन, पीठ दिखावत जात।
दौड़ा हरि के ग्रहण को, चाहत करना घात।।६।।

अब पकडेंउ तब पकड़ेउ जाई। हाँथ दूरि तेहिं रहे कन्हाई।।
एहि विधि ताहि दूरि लै आवा। गिरि कन्दर तँह दिये दिखावा।।७।।
यदुकुल जनमें भागहु काहू। किये पलायन नाहि निबाहू।।
एहि प्रकार बहु कीन बुलावा। अशुभ शेष नहि हरि को पावा।।८।।
यवन बखाने हरि कदराई। गिरि कन्दर हरि पहुँचे जाई।।
यवन घुसा तँह सोवत देखा। पुरुष एक अति सुन्दर वेषा।।९।।
सोचा काल यवन मन मांही। मोंहि चलाइ सोवत गिरि छांही।।
जानि कृष्ण पद कीन प्रहारा। मूर्ख जान नहिं होवन हारा।।१०।।
बहुत दिनन सोवा अब जागा। आँखि खोलि सब देखन लागा।।
देखा पुरुष खड़ा एक आगे। देखत क्रोध तेंहि बहु लागे।।११।।
क्रुद्ध भाव सोइ देखा जबहीं। देखत छार भयउ सो तबहीं।।१२।।

राजोवाच

कहु का नाम रहा बलशाली। देखत छार कीन जो काली।।
केंहि कारण जा गुहा लुकाई। सोवत रहा काल अति पायी।।१३।।

श्रीशुक उवाच

दोहा- मान्धाता के तनय थे, वंश इक्ष्वाकू जान।
नाम रहा मुचुकुन्द जो, सत्य सन्ध बलवान।।१४।।

असुरत्रास सुरपति तिन्ह मागा। रक्षा करत बहुत दिन जागा।।१५।।
कार्तिकेय सुररक्षक भयऊ। मुचुकुन्दंहि सुरेश तब कहेऊ।।
राजन् कीन बहुत रखवारी। सहेउ दुःख हम अति आभारी।।१६।।
छोड़ेउ नृपति राज परिवारा। सुरपालन सब इच्छा मारा।।१७।।
सुत गृह नारि अमात्य नसाने। बली काल नहि तजे निशाने।।१८।।
काल सकल बीरन पर भारी। ग्वाल यथा पशु कंह रखवारी।।१९।।
मोक्ष छाँड़ि पर मागहु भाई। मोक्ष देत केवल यदुराई।।२०।।

दोहा- देव दिये निद्रा तबहि, माँगेउ सोइ हितलागि।
गुफा जाइ सोये नृपति, आज गयउ पुनि जागि।।२१।।

सोवत तोंहि जगावहि जोई। सद्यः भस्म अवसि को होई।।२२।।
यवन भस्म जब भयउ सुरारी। मुचुकुन्दहिं तब मिले मुरारी।।२३।।
पीत वसन घनश्याम मुकुन्दा। कौस्तुभमणि देखे मुचुकुन्दा।।२४।।
चारि भुजा वैजन्ती माला। मकराकृति कुण्डल सुविशाला।।२५।।
जीवमात्र प्रिय देखन योगू। तरुण सिंह इव लागत लोगू।।२६।।
धर्षित तेज भयउ मुचुकुन्दा। तेज देखि पूंछेउ गोविन्दा।।२७।।

मुचुकुन्द उवाच

कौन आप गिरिकन्दर गामी। कमल-चरण बन विचरहु स्वामी।।२८।।
मूर्तिमान तुम तेज स्वरूपा। सूर्य अग्नि सुरराज अनूपा।।२९।।

तीन देव मँह को तुम एका। करत प्रकाश अन्धतम छेका ।।३०।।
चाहउं सुनत रूप गुण खानी। नाम गोत्र सब कहहु बखानी ।।३१।।
मैं इक्ष्वाकु वंश मँह जाया। मान्धाता सुत मुचुकुन्द कहाया ।।३२।।
चिर जागा सोयेउ यहिं आई । विजन मानि कोउ दिये जगाई।।३३।।
ज़रेउ सोउ निज पापहिं लागे। तबहिं आप आये मम आगे ।।३४।।

दोहा- परम तेज श्रीमान् कँह, देखि सकउं मैं नांहि।
प्राणि मात्र के मान्य तुम,वेगि देहु मोंहि आँखि ।।३५।।
इतना कहते नृपति के, भूत भव्य भगवान्।
बोले हंसि के बचन तब, वाणी मेघ समान।।३६।।

श्रीभगवान् उवाच

जन्मकर्म अरु नाम हमारा । अहइ अनन्त न बरनै पारा ।।३७।।
बरु सिकता कण लेहु गिनाई। जन्म कर्म मम गिना न जाई।।३८।।
परम ऋषी जे अहइं सुजाना। तेउ कहइं पार नहि पाना ।।३९।।
तदपि सुनहुं सम्प्रति गुण नामू। प्रिय राजन् मै कहो बखानू।।४०।।
भार बढ़ेउ धरनी पर जबही। ब्रह्मा आइ कहे मोहि तबही ।।
असुर सँहार हेतु अवतारा। आयेउं हरण महीं कँह भारा।।
मैं वसुदेव तनय यदुवंशी । वासुदेव प्रिय लागत वंशी ।।४१।।
कंस प्रलम्ब आदि गये मारे। काल यवन तुम देखत जारे ।।४२।।

दोहा- किये अराधन प्रथम तुम, गुफा पधारे तोहिं।
कीन कृपा तुम पर बहुत,भगत वछल मैं सोंहि।।४३।।

वर मागंहु मैं देइहों तोही। सकल मनोरथ पावहु मोहीं ।।४४।।
मम शरणागत जो कोउ होई। वस्तु अलभ्य रहे नहिं सोई।।

श्रीशुक उवाच

दोहा- कृष्ण वचन एतना सुनत, भे मुचुकुन्द सहर्ष।
जानि तिनहि नारायण, गर्गाचार्य विमर्श ।।४५।।

मुचुकुन्द उवाच

तव माया मोहित जग स्वामी । नारि पुरुष नहिं भजहिं निकामी ।।४६।।
बड़े भाग मानुष तनु पाये । जे न भजहिं ते आप नसाये ।।
घर के कूप पड़ा पशु सोई। चरण कमल जेहि भगति न होई।।४७।।
व्यर्थ समय मम गयउ गोसाईं। सोचत राज्य कोष बरियाई ।।४८।।
देह मोर घट भीति समाना। मानेहुँ भूपति करि अभिमाना ।।
रथ गज वाजि घिरा मैं रहेउं । मैं मदान्ध जगधावत भयऊँ ।।४९।।
बाढ़त विषय लालसा भारी । काल रूप तुम ग्रसहु मुरारी ।।
यथा सर्प मूषक धरि लेहीं। विनु प्रमाद तुम मारहु तेंही ।।५०।।

दोहा- स्वर्ण जटित रथ पर चढ़ा, गजहिं चढ़ा बन राज ।
सोइ शरीर पुनि काल वश विट् कृमि कहत समाज ।।५१।।
विजय दिशाओं पर किया, सिंहासन पर बैठ ।
क्रीडा पशु बनता तभी, नारी लेती ऐंठ ।।५२।।

करहिं तपस्या देहीं दाना । दूसर जनम राज पुनि पाना ।।
बार-बार नृप पद अभिलाषा। तृषा बढ़ी कंह सुख की आशा।।५३।।
जनन मरण कर चक्र अनन्ता। टूटत तबहि मिलत जब सन्ता।।
सन्त मिलत मति निर्मल होई। निर्मल मन पावइ प्रभु सोई।।५४।।
प्रभु तव कृपा राज्य मम छूटा। भयउ अनुग्रह तोर अटूटा ।।
भलेउ अखण्ड भूप रह कोई । कानन जाइ करहि तप सोई ।।५५।।
माँगउ चरण भगति वर एहू। मोक्षकाम बन्धन को लेहू ।।५६।।

दोहा- तीनंउ गुण छॉड़न चहौं, छाँड़ि सकल अभिमान ।
निर्गुण अव्यय ब्रह्म तव, शरण गहौं भगवान ।।५६।।

छहों शत्रु दुख देत नित, कर्मभोग फल पाइ।
चरण शरण आयउं प्रभु, पाहि माम् यदुराइ ।।५७।।

श्री भगवान् उवाच

महाराज! तुम मति अस पाई। माँगत वर नहि गई लुभाई।।५९।।
लीन परीक्षा कह वरदाना। भगत भगति चाहत नहि आना।।६०।।
प्राणायाम करहिं दिनराती। विषय वासना तबहुँ न जाती।।६१।।
विचरहु धरनि कतहुं फिरि जाई। देंउ भगति तुम कँह अनपायी।।६२।।
क्षत्रिय तुम कीनी बहु हिंसा। होउ समाहित मानु अहिंसा।।
जो अघ शेष बचा तव राजा। भगति प्रभाव नष्ट सब छाजा ।।६३।।
अगले जनम विप्र होइ जाये। ब्रह्म भाव मोहिं तबहि समाये ।।६४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे एक पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

*

।। अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

एहि विधि कृष्ण अनुग्रह पाई। श्रीमुचुकुन्द उठे हरषाई ।।
कीन प्रदक्षिणा बारम्बारा। निकसे आइ गुफा के द्वारा।।१।।
देखे क्षुद्र मनुज पशु जाती। छोटे लागे वृक्ष वनस्पती ।।
जाना कलियुग आया जबही। उत्तर दिशि प्रस्थित मे तबहीं।।२।।
तप श्रद्धा मन धैर्य अभंगा। मनहिं कृष्ण गंधमादन अंगा।।३।।
बदरीवन तब पहुँचे जाई । वर्षातप सहि मन हरि लाई।।४।।
लौटे कृष्ण म्लेच्छ सब मारे। धन सब लइ द्वारका सिधारे ।।५।।

दोहा- जब धन को ले जा रहे, बैल नरन्ह पर लाद।
बीस तीन अक्षौहिणी, लिये सन्ध कर नाद ।।६।।
देखेउ प्रबल सैन्य बल आवा। रामकृष्ण तब वेग बढ़ावा ।।
लीला करत मनुज तनु धारी। भागे युगल भ्रात भयहारी ।।७।।
भागेउ तब सब वित्त विहाई। कमल चरण मनु डरे कन्हाई।।८।।
मगध राज हरि भागत देखा। पीछा कीन न जान विशेषा ।।९।।
कछुक थके बल संग कन्हाई। गिरी प्रवर्षण चढ़ं दोउ भाई।।१०।।
गिरि मँह छिपे जानि दोउ भाई। जरासन्ध तँह अग्नि लगाई ।।११।।
देखा जलत उभय तट भूधर। ग्यारह योजन कूदेउ भूपर ।।१२।।
दोहा- जरासन्ध देखा नहीं, सैनिक सब अज्ञान।
अपने पुर में आ गये, शेष संग भगवान ।।१३।।
जरा सन्ध मन कीन विचारा। बल केशव भे जरिके छारा।।
आपन सेना लीन बहोरी। मागध चला मगध की ओरी।।१४।।
नृपति अनर्त रैवतक रहेऊ। रेवति सुता बलहि जो दयऊ।।
चतुरानन तँह प्रेरक भयेऊ। तुमहि कथा मैं पहिले कहेऊ।।१५।।
कीन रुक्मिणी संग विवाहू। भीष्मक सुता हरे नरनाहू।।१६।।
जैसे सुधा गरुड लै जाई। शाल्व चैद्य पर पक्ष हराई ।।१७।।

राजोवाच

दोहा- भीष्मक पुत्री रूक्मिणी, संग कृष्ण भगवान।
किये विवाह सुनें हम, राक्षस रहा विधान।।१८।।
चाहूँ सुनउं कृष्ण नर लीला। जीते यथा चैद्य बलशीला ।।१९।।
कृष्ण कथा अति मधुर सुहाहीं। नित्य नई को सुनत अघाहीं ।।२०।।

श्रीशुक उवाच

विदर्भ देश के भीष्मक राजा। पाँच पुत्र एक पुत्री छाजा।।२१।।

अग्रज, केश, बाहु, रथ माली । रुक्म आदि अक्षर बलशाली।।
बीर विक्रमी पाँचहु भाई। रूक्मिणि ताकर बहिन कहाई ।।२२।।
सुनी रूपगुण शील निधाना। होइहि पति मेरो भगवाना।।२३।।
कृष्णहुं सुने रुक्मिणी रूपा। चाहा व्याह ताहि नरभूपा।।२४।।

दोहा- कृष्ण संग चाहत रहे, ब्याह बन्धु अनुरूप।
कृष्ण द्वेष रुक्मी चहे, चैद्य होइ वर भूप।।२५।।

जाना रुक्मिणी किये विवाहू। चैद्य संग नहि होइ निबाहू।।
आप्त एक द्विज लिये बुलावा। कृष्ण पास तेंहि दिये पठावा।।२६।।
पुरी द्वारका पहुँचे जाई। स्वर्णासन पर देख कन्हाई।।२७।।
देखेउ विप्र तुरत उठि आये। निज आसन ब्राह्मण बैठाये।।
पूजन कीन ताहि भगवाना। यथा देव हरि पूज विधाना।।२८।।
करि भोजन द्विज किय विश्रामा। चरण दबावत पूंछे श्यामा।।२९।।
द्विजवर! मानहु धरम पुराना। धरहु तोष नहि चाहहु आना।।३०।।

दोहा- यथालाभ सन्तुष्ट जो, विप्रवर्य समुदाय।
धर्म कबहुं त्यागे नहीं, ताकर धर्म सहाय।।३१।।
इन्द्रहु नहि सन्तोष यदि,भटकत लोक अनेक।
भलेहु अकिंचन चैन से, तुष्ट सोव भुंइ टेक।।३२।।

सदा संतोषी विप्रन्ह देखी। करौ नमन कर जोर विशेषी।।३३।।
कहहु विप्र नृप धरम निसाई। जो जन पालहि ताहि मिताई।।३४।।
दुर्गम मार्ग पार करि आये। कहहु गुप्त का करौ सहाये।।३५।।
पूंछेउ जब लीला तनुधारी। कहीं सकल ब्राह्मण सुविचारी।।३६।।

रुक्मिणी उवाच

सुनेउ गुणन तव भुवन ललामा। अंग ताप मेटे सब कामा।।
रूप तुम्हार नयन फल दाता। लाज छाँड़ि चित तोंहि समाता।।३७।।

शील रूप सौन्दर्य अनूपा । आपु समान आपु सुरभूपा।।
कन्या कौन भला जगमाहीं । पति स्वरूप तोहिं चाहत नाहीं ।।३८।।
मैने वरण किया प्रभु तोंरा। आत्म समर्पण जानहु मोरा।।
चैद्य छुवहि नहि हाथ हमारा। सिंह भाग नहि स्यार जुठारा।।३९।।
पूर्त इष्ट व्रत नियम जो कीना । गुरु पूजन कछु दान जो दीना।।
तो मम पाणि ग्रहहिं जगदीशा। नहि शिशुपाल बनहि मम ईशा ।।४०।।
अजित! आप शुभ दिन पर आई। गुप्त रूप सुचि सैन्य लिवाई।।
मथहु चैद्य मगधेन्द्र बरुथा। यातुधान विधि व्याह अनूठा ।।४१।।
अन्तः पुर में रहहुं कुंवारी। कैसे मिलिहैं राजकुमारी।।
सब उपाय मैं तोंहि बताऊँ । जेहि प्रकार मैं प्रभुपद पाऊँ ।।
गिरिजा पूजन देहिं पठाई । पहिले दिन विवाह तिथि पाई ।।
बड़ी होइ कुलदेवि पयाना । आव नाथ! मो कंह लइ जाना।।४२।।

दोहा- जाहि चरण रज चाहत, स्वयं शम्भु जगदीश ।
सोइ प्रसाद प्रभु चाहहुं, प्राण तजहुँ भुइ शीश ।।४३।।

ब्राह्मण उवाच

नाथ! रुक्मिणी के सन्देशा। गोपनीय तब दिये सुरेशा ।।
करहु विचार सोचि पुनि आजू। देव! यथा नहि विगरिहं काजू।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।

*

।। अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

वैदर्भी के सन्देश सुनि, बोले श्री जगदीश।
हँसत हाथ में हाथ ले, रहे साथ अवनीश।।१।।

श्रीभगवान् उवाच

हमरेहु मन मँह राजकुमारी। एहि तें नीद न आवइ प्यारी ।।
जानउं रुक्मी कृतमम द्वेषा। सोइ निवारि सम्बन्ध विशेषा।।२।।
दुष्ट नृपति मथि लइहौ आई । अग्निशिखा जिमि दारु मथाई।।३।।

श्रीशुक उवाच

जानेउ तिथि विवाह की आई । सारथि दारुक लीन बुलाई।।४।।
मेघ बलाहक शैव सुग्रीवा। अश्व जोति लाये नतग्रीवा।।५।।
विप्र चढ़ाइ चढ़ेउ रथ माहीं। एकइ राति विदर्भ दिखाहीं।।६।।

दोहा– कुण्डिन पति सुत नेह वश, कीन उपक्रम जाइ।
शिशुपालहि वैदर्भि को, मनहि समर्पे आइ।।७।।

नगर मार्ग सब गये बुहारे । प्रमुख राजपथ जल छिरकारे ।।
ध्वजा पताका घर घर सोहे। तोरण नगर द्वार मन मोहे ।।८।।
वस्त्राभरण सोह नरनारी । अगरु धूप घर मांहि पसारी ।।९।।
देव पितर सब पूजे जाई । बाचहिं मंगल द्विज समुदाई।।१०।।
कृत कौतुक मंगल लइ आई । भूषण भूषित कन्या पायी।।११।।
त्रयी वेद विद रक्षा कीन्ही । अथर्व वेद ग्रह आहुति दीन्ही ।।१२।।
गुड़ तिल द्विजन्ह दीन भरि दोना । राजा दीन रजत अरु सोना ।।१३।।

दोहा– एहि विधि चेदिनरेश भी, किये कर्म दमघोष ।
ब्राह्मण विज्ञ बुलाइ के, कीने मंगल घोष।।१४।।

कुण्डिन पुर नृप पहुँचे जाई । हाथी घोड़ा सैन्य सजाई।।१५।।

नृपति विदर्भ कीन सत्कारा। दिये निवास बने जनवारा।।१६।।
जरासन्ध अरु शाल्व विदूरथ। दन्तवक्त्र आये लइ रथ।।१७।।
चैद्य पक्ष से पौण्ड्रक आवा। सबहीं कीने विविधबनावा।।१८।।
शिशुपालहिं मिले राजकुमारी। यही लागि कीनी तैय्यारी।।
रामकृष्ण के द्वेषी राजा। बैठें नित निज सहित समाजा।।
यदि आये अरु हरे कन्हाई। सब मिलि तासौं करौ लड़ाई।।१९।।

दोहा- सुनेउ शत्रु अभिसन्धि जब, अग्रज श्रीबलराम।
कन्या को हरने गये, आजु अकेले श्याम।।२०।।

तब बलराम कीन मन शंका। भाइ प्रेम वश चले अशंका।।
लै सेना चतुरंगिणि भारी। कुण्डिन पुर पहुँचे हलधारी।।२१।।
भीष्मक सुता सोचु पुनि तबहीं। विप्रदेव नहि आये जबहीं।।२२।।
एक राति बा शेष विवाहू। आये नाहि अबहु नर नाहू।।
जेंहि लगि मैं सन्देश पठावा। सोउ विप्र काहे नहि आवा।।२३।।
जानऊ कछुक कमी मोहिं पाई। करन विवाह न आव कन्हाई।।२४।।
भयउं विधाता वाम हमारे। गौरी विमुख न कृष्ण पधारे।।२५।।

दोहा- ऐसा सोचत रूक्मिणी, भईं कृष्णपद लीन।
आँखि मूदि बैठी रही, आँसू नयन मलीन।।२६।।

एहि विधि सोचत रही कुंवारी। वाम नयन उरु फरकेउ भारी।।२७।।
आवत तबहिं विप्र कँह देखा। कृष्ण संग जो आइ विशेषा।।२८।।
देखि प्रसन्न विप्र कहँ आना। अइहें कृष्ण कीन अनुमाना।।२९।।
कहेउ विप्र आये यदुराई। कीन प्रतिज्ञा हरि लै जाई।।३०।।
कृष्ण आगमन रुक्मिणी जानी। विप्रहिं करि प्रणाम सन्मानी।।३१।।
राम श्याम दोउ भ्राता आये। देखन मंगल कारज छाये।।३२।।
दीन्ह वस्त्र मधुपर्क मंगाये। नाना भेंट उपायन लाये।।३३।।

दियो निवास महामति राजा। ठहराये सब सैन्य समाजा।।३४।।

दोहा- जितने आये थे नृपति, नृपति भीष्म के द्वार।
यथा वित्त बल बुद्धि सब, सबहिं किये उपचार।।३५।।

आयेउ कृष्ण लोग सब जाने। निरखि कंज मुख नैन जुड़ाने।।३६।।
भीष्मक सुता योग वर एहू। एहि के पत्नी रूक्मिणि होहू।।३७।।
जो कछु पुण्य प्रभाव हमारे। होंउ सहाय देवगण सारे।।
पाणिग्रहण अच्युत करि सोई। वैदर्भी के पति हरि होई।।३८।।
कहहिं प्रेमवश लोग लुगाई। रुक्मिणि तब गौरीगृह आई।।३९।।
मनमँह ध्यान करत यदुराई। पैदल गौरी मन्दिर आई।।४०।।
रहीं मौन सखियाँ सब घेरे। रक्षक रहे शस्त्र सब प्रेरे।।
बजे मृदंग शंख बहु बाजे। तुरही ढोल नगाड़े साजे।।४१।।

दोहा- पूजा की थाली लिये, विप्र नारि समवेत।
सभी अलंकृत वारबधु, घेरे सहित विवेक।।४२।।

वन्दी मागध सूत सुहाये। गायक वादक सब मिलि गाये।।४३।।
धोइ हाथ पद कमलहिं वामा। पैठी गौरी निकट ललामा।।४४।।
भंवहि भवानिहि शीश झुकाये। विप्र पत्नि वन्दन करवाये।।४५।।
वन्दउ गणपति गौरि दुलारे। होंइ कृष्ण मम पती पियारे।।४६।।
स्त्रक चन्दन भूषण पहिराये। गौरी पूजन किये बनाये।।४७।।
पूजेउ सकल नारि अहिबाती। दिये अपूप दिखाई बाती।।४८।।
विप्रनारि तेहि आशिष दीन्हा। करि प्रणाम कोइंछा भर लीन्हा।।४९।।

दोहा- त्यागेउ तब व्रत मौन का, गौरी मन्दिर द्वार।
हाथ पकड़ि सखि हाथ को, वामा निकसी पार।।५०।।

मोहित करती वीर निकाया। मानहु स्वयं विष्णु की माया।।
कुण्डल मण्डित आनन साजे। मध्य भाग करधनी विराजे।।

कुंचित कुन्तल नैन नचावा। दुइ कपोत मनु वक्ष धरावा ।।५१।।
कुन्दकली इव दन्त विराजा। अरुणिम अधर लालिमा छाजा ।।
राजहंस गति चलीं कुमारी। नुपूर शिंजन रही पसारी।।
मोहे सकल वीर तँह आये। मानहु मनसिज वाण चलाये ।।५२।।
फेंके अस्त्र शस्त्र भुंइ माहीं। देखि रुक्मिणी कछु सुधि नाही ।।

दोहा- हरिहिं निछावर रूप करि, मन्द मन्द मुसकात।
देखि जात सब रुक्मिणी, नृपति भूमि गरिजात।।५३।।

चंचल पद्म कोश पग डारे। कृष्णहि वामा लगी निहारे ।।
बाम हाथ निज अलक उठाये। हरषीं कृष्ण झलक के पाये।।५४।।
चाहति रथ बैठन सो वामा। बैठाये कर धरि बल धामा ।।
देखत शत्रुन के लइ गयऊ। गरुड़ध्वज तह शोभित भयऊ ।।५५।।
यथा सिंह निज भाग गहाहीं। देखत सब शृगाल रहि जाहीं ।।५६।।
जरासन्ध वशवर्त्ती राजा। सहि न सकहि अपमान समाजा।।
धिक्कारहिं करि आप बड़ाई। सिंह भाग मृग लिया पराई ।।५७।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

*

।। अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

एहि प्रकार क्रोधित सब राजा। धाये लइ निज सैन्य समाजा।।१।।
यदुवंशिन जब आवत देखा। ठाढ़ भये लै शस्त्र विशेषा ।।२।।
अश्व पीठ गज कन्धर मारा। बरषहिं शस्त्र यथा जलधारा ।।३।।
बाण ढकीं पति सेना देखी। डरपत लाज सहित प्रभु पेखी ।।४।।
रुक्मिणि से बोले भगवाना। डरहु नाहि लव बल बलवाना।।५।।

क्षण मँह मरिहैं अरि समुदायी । तव सेना कोउ जीति न पाई ।।६।।
शत्रु सैन्य सहि सके न वीरा । गज रथ भंजेंहु गद रणधीरा ।।७।।

दोहा- बाण लगे मस्तक गिरे, कुण्डल सहित किरीट ।
हाथ पैर ऊरू कटे, खच्चर हाथी ऊँट ।।८।।

विजयश्री यदुवंशी पाये । जरासन्ध सब सेन पराये ।।९।।
हरी नारि मुख रहा सुखाई । जरासन्ध कह चैद्यहिं आई ।।१०।।
तजहु तात ! चिन्ता नर नाहू । सुख दुख सदा न देखे काहू ।।११।।
प्रभु इच्छा जग दिये नचाई । यथा दारु योषित की नाई ।।१२।।
हरि मोंहि सत्रह बार हरावा । बार अठारह जीति मैं पावा ।।१३।।
नहि प्रसन्न नहि शोक मनाऊँ । जानऊँ एक काल कर नाऊँ ।।१४।।
अबहु छली हमें कृष्ण हरावा । यद्यपि हम सब बीर कहावा ।।१५।।
होइहि काल कबहुँ अनुकूला । जीतब शत्रु भूलि सब शूला ।।१६।।

सोरठा-एहि विधि दीन्ही सीख, चैद्यहिं भा सन्तोष तब ।
अनुग संग गयो देश, सकल बचे नृप पुर गये ।।१७।।

रुक्मी द्वेष कृष्ण सन राखा । बहिन हरे उर राखे माखा ।।
अक्षौहिणि ले सेना आवा । कृष्णहिं बली लाग पछियावा ।।१८।।
धनुष हाथ लै प्रण सोइ कीना । नृपति सुनाइ क्रुद्ध मतिहीना ।।१९।।
भगिनि छुड़ाइ विना हरि मारे । कुण्डिन नहि अइहौ सुनु प्यारे ।।२०।।
अस कहि रथ चढ़ि बोलि पराई । जहाँ कृष्ण तह लै चलु भाई ।।२१।।
आजु गोपालहिं मरिहौं जाई । जो मम भगिनि हरी बरियाई ।।२२।।
बमकत रुकहु कृष्ण गोहरावा । मूढ़ मन्द हरि थाह न पावा ।।२३।।

दोहा- धनुष खींचि शर मारेउ, तीन तीन एक साथ ।
बोलेउ क्षण भर रुकहु तुम, कुल कलंक यदुनाथ ।।२४।।

कौवा हव्य यथा लै जाई । मम भगिनी तुम तथा चोराई ।।

आजु हरौ मद मन्द तुम्हारा। माया निपुण न पइहौं पारा ।।२५।।
जब तक बाण मोर तोहि लागे। छाड़ि भगिनि जाहु तुम भागे।।
एतना सुनत कृष्ण शर मारे । छः छः बाण रुक्मि पर डारे।।२६।।
आठ बाण हरि वाजिन्ह मारा। सारथि दुइ ध्वज तीन शर डारा।।
रुक्मी दूसर धनुष उठावा । पांच बाण सोइ हरिन्ह चलावा।।२७।।
खण्डित किये पुनः असुरारी। बार-बार नव धनुष सम्हारी।।२८।।
शूल परिध असि तोमर लीना। रुक्मिहि काटे शस्त्र अदीना।।
रुक्मी जो जो अस्त्र उठावा । विनु प्रयास हरि ताहि नसावा।।२९।।

दोहा- रथ से कूदा बेग से, खड्ग चर्म लेइ हाथ।
जिमि पतंग पावक मँह, मारन चह यदुनाथ।।३०।।

आवत लखि रुक्मिहिं हरि धाये। तेहि मारन तलवार उठाये।।३१।।
भाइ निधन तब निश्चित जानी। बोली रुक्मिणि वचन सयानी।।३२।।
देव देव योगेश गुसाईं। मत मारहु मोर बड़ भाई।।३३।।

श्रीशुक उवाच

काँपत भयवश, डरपत वानी। कण्ठ सूख रुक्मिणि हकलानी।।
गिरा हार हरि चरण गहाये। करुणा करि रुक्मिहिं बहिराये।।३४।।
वस्त्र बाँधि शिर केश मुड़ाये। करि विरूप रुक्मिहिं धकियाये ।।
शत्रु सैन्य यदुवीर ढहाये। यया मथंहि गज नलिनी पाये।।३५।।
कृष्ण निकट आये बलरामा। रुक्मिहि लखे विरूप सुजाना।।
कहेउ कृष्ण तुम अनुचित कीन्हा। बन्धन मुक्त हली तेहि चीन्हा।।३६।।
करि विरूप यहि बध तुम कीना। निन्दित कर्म न करहि कुलीना।।३७।।

दोहा- साध्वी मत मानहुँ बुरा, भाइ विरूपे जात।
सुख दुख दाता अन्य नहि, स्वयं किये फल खात।।३८।।

वध्य बन्धु नहि मारन जोगू। करहि त्याग मृत मार न लोगू।।३९।।

क्षात्र धर्म विधि रचे कठोरा। भाइंहि भाइ हते पुनि घोरा ।।४०।।
राज्य भूमि धन तिय लगि मारे। जे मदान्ध, नहि करहिं विचारे ।।४१।।
विषम बुद्धि तव भयउ कुमारी। बन्धु तुम्हार प्राणि अपकारी ।।४२।।
हरिमाया वश होइहिं मोहा। मित्र शत्रु संशय सन्दोहा ।।४३।।
आत्मा एक देह पुनि नाना । भेद उपाधि मूढ़ नहि जाना ।।४४।।
आदि अन्त दोउ देह के धर्मा । जन्म मृत्यु सो लहे स्वकर्मा।।४५।।
यथा सूर्य दृक दृश्य दिखावा। योग वियोग आत्म नहि पावा।।४६।।

दोहा- जन्म आदि छः भेद जे, देह विकारहु जानि।
कला हानि शशि के भय, कहूँ चन्द्र नहि हानि।।४७।।
सोवत प्रानी स्वप्न मँह, भोग्य भोग फल पाव।
तथा अबुध अज्ञान वश, संसृति चक्र कहाव।।४८।।

तजहु शोक कारण जो मोहा। होउ स्वस्थ सुस्मित सोइ सोहा ।।४९।।

श्रीशुक उवाच

येंहि विधि राम रमा समुझावा। छाँड़ि शोक सब तजी दुरावा।।५०।।
प्राण दान रूक्मी जब पावा। भा विरूप सब मान नसावा ।।५१।।
नाम भोज कट नगर बसावा। तँह रह रुक्मी लिये दुरावा ।।
कृष्ण हते बिनु कुण्डिन आना । सम्भव नाहि भरा अभिमाना ।।५२।।

सोरठा-एहि विधि राजहिं जीति, भीष्म सुता लाये नगर।
कीने सविधि विवाह, राजन! श्रीकृष्ण तब।।५३।।

घर घर उत्सव हुआ बधावा। प्रेम अनन्य प्रजा कँह पावा।।५४।।
नर नारी मणि कुण्डल धारे। दम्पत्ति पँह लइ भेंट पधारे।।५५।।
मथुरा पुरी सोह विधिनाना। ऊँचे ध्वज अरु सजे विताना ।।
द्वार द्वार मंगल घट सोहे। अगरु धूप दीप मन मोहे।।५६।।
सादर भूपति नेवति बुलाये। हाथिन मद सब मार्ग धोवाये ।।

कदली पूग वृक्ष सब द्वारे। लोगन्ह रुचिकर कीन सँवारे।।५७।।
कुरु संजय कैकय के राजा। धावत प्रमुदित सहित समाजा ।।५८।।

दोहा- हरण रुक्मिणी गानकर, हर्षित हुआ समाज ।
चकित परस्पर देखते, राजहु के अधिराज ।।५९।।
लक्ष्मी रूपा रुक्मिणी, कृष्ण स्वयं भगवान ।
देखि द्वारका हर्षित, नारी नर अभिराम ।।६०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५४।।

*

।। अथ पञ्च पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

रुद्रहिं पहिले काम नसावा। विष्णु अंश सो हरि पँह आवा ।।१।।
रुक्मिणि सुत प्रद्युम्न कहाये। सोइ काम हरि गुण सब पाये।।२।।
शत्रुजानि शम्बर तेहिं लावा। फेंकेउ सागर कीन दुरावा।।३।।
लीलेउ ताहि मच्छ एक भारी। मछुआ गहा जाल तँह डारी ।।४।।
केवट लाइ शम्बरहि दीन्हा। अद्भुत मत्स्य जानि नृप लीन्हा ।।
पाचक मिलि सब कीन कटाई। मत्स्य पेट बालक दरसाई।।५।।

दोहा- सुन्दर बालक देखिके, मायावति को दीन्ह।
बालक जन्म कथा सब, नारद कही प्रवीन ।।
रही काम पत्नी रति, मायावती अधीर।
शम्भु क्रोध से दग्ध था, काम देव सशरीर।।६।।

करत प्रतीक्षा रही कुमारी। होइहि भेंट पुष्पशर धारी ।।७।।
पाक कर्म रत रही सुकन्या। कीन प्रीति रति शिशुहि अनन्या।।८।।
अल्प काल यौवन सो पावा। कृष्ण तनय नारिन्ह मन भावा ।।९।।

कमल नेत्र दुइ भुजा विशाला। कान्त भाव देखी तेंहि बाला।।१०।।
कृष्ण तनय मन संशय भारी। पूछे लखहु पतिंहि जिमि नारी।।११।।

रति रुवाच–

हरिसुत तोहिं शम्बर लावा। तुम अनंग मैं रती कहावा।।१२।।
जन्मत तोंहि सिन्धु मँह डारा। शम्बर असुर कीन अपकारा।।
लीलेउ मत्स्य, उदर ते आये। इहाँ नाथ मैं निज प्रभु पाये।।१३।।
मायाशत जानत यह पापी। मारहु तुम हो परम प्रतापी।।१४।।

दोहा– जननी तव अति व्याकुल, चिन्तित सदा अधीर।
पुत्र प्रेम वश दीन ह्वै, आकुल यथा कुरीर।।१५।।
इतना कहि मायावती, प्रद्युम्नहिं विद्या दीन।
माया महा विनाशिनी, करइ जगत आधीन।।१६।।

विद्या पाइ जाइ ललकारे। असह बचन बहुबार उचारे।।१७।।
कुचला फन जिमि फणि फुफकारे। क्रोधित शम्बर आया द्वारे।।१८।।
गदा उठाइ सो कीन प्रहारा। वज्र घोष करि बहु ललकारा।।१९।।
प्रद्युम्नहु निज गदा उठावा। मारि ताहि अरि गदा गिरावा।।२०।।
शम्बर माया लीन सहारा। प्रद्युम्नहिं बहु शस्त्र प्रहारा।।२१।।
रुक्मिणि सुत प्रद्युम्न सुबीरा। मायावी कँह माया चीरा।।२२।।
यक्ष पिशाच नाग की माया। शम्बर निज पौरुष दिखलाया।।२३।।
प्रद्युम्नहु तब खड्ग उठावा। मुकुट सहित अरि शीश गिरावा।।२४।।

दोहा– निज पत्नी को साथ ले, पुर आये यदुनाथ।
अस्तुति करते देवगण, लिये पुष्प दोउ हाथ।।२५।।

अन्तःपुर पहुँचे नभचारी। मानहु विद्युत मेघ पधारी।।२६।।
मेघ वर्ण पीताम्बर धारी। सुस्मित वदन आँख रतनारी।।२७।।
आनन कमल अलक घुंघराले। कमल कोष मनु भृंग निराले।।

नारिन्ह सकल कृष्ण जिमि देखा। छिपीं नारि इत उत्र विशेषा।।२८।।
नारिन्ह कछु लगाउ अनुमाना। नाहिं कृष्ण, दम्पति यह आना।।२९।।
रुक्मिणि जब प्रद्युम्नहि देखा। नष्ट पुत्र सुधिकीन अशेषा।।३०।।
नर पुंगव यह केकर लाला। गर्भ धेरउ का का एहिं पाला।।३१।।
जो मम बालक कोउ लइ गयऊ। जीवत रहत त-ऐसन भयऊ।।३२।।
आकृति, चाल, हास, स्वर सोई। जो कहु मम स्वामी मंह होई।।३३।।
होइ न होइ सोइ यह छोरा। वाम बाहु फरकत मम कोरा।।३४।।

दोहा- इतना सोचत रुक्मिणी, हाथ धरे निज माथ।
जननी जनकहिं साथ ले, आइ गये यदुनाथ।।३५।।

यद्यपि सब जानत यदुराई। साधि मौन तँह रहे कन्हाई।।
नारद ऋषि आये तँह ज्ञानी। शम्बर की सब कही कहानी।।३६।।
अति आश्चर्य मगन सब रानी। स्वागत कीन सहित अगवानी।।३७।।
देवकि शौरि कृष्ण बलरामा। भरि अँकवार प्रद्युम्न ललामा।।३८।।
आये प्रद्युमन मगन नर नारी। भागि सराहंहि होइ सुखारी।।३९।।

दोहा- कृष्ण और प्रद्युम्न का, रूप साम्य सविशेष।
नारिन्ह दोनों देखतीं, रहती सब अनिमेष।।
कामदेव प्रद्युम्न थे, माया रति अवतार।
युगल रूप को देखिके, को मन सके सम्हार।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे पञ्च पञ्चाशन्तमोऽध्यायः।।५५।।

*

।। अथ षट् पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच–

दोहा– पहले सत्राजित स्वयं, कृष्णहिं दोष लगाय।
मणी स्यमन्तक के सहित, कन्या दीनी जाय।।१।।

राजोवाच–

हरिहिं नृपति का दोष लगावा। मणी स्यमन्तक कैसे पावा ।।२।।

श्रीशुक उवाच–

रहेउ सत्राजित भक्त पुराना। सूर्यदेव पूजे विधि नाना ।।
अति प्रसन्न दिनकर तेंहि दीन्हा। मणी स्यमन्तक आपन चीन्हा ।।३।।
कण्ठ धरि मणि नगरहिं आवा। तेज पुंज कोउ चीन्ह न पावा ।।४।।
लोगन्ह नयन गयेउ चुंधियाई। सूर्य मानि हरि दीन्ह बताई ।।५।।
नमो नमो माधव यदुराई। चक्रपाणि कंजाक्ष कन्हाई ।।६।।
तव दर्शन लगि सविता आये। लोगन्ह नयन तेज चुँधियाये ।।७।।

दोहा– प्रभो तुम्हारे मार्ग को, ढूंढत देव समाजु।
यदुकुल में तोंहि जानिके, सविता आये आजु।।८।।

श्रीशुक उवाच–

बाल वचन सुनि हँसि भगवाना। कमल नयन तब कहे सुजाना ।।
मणि धारे सत्राजित आवा। नहि रविदेव द्वारका पावा।।९।।
द्विजन्ह बुलाइ सुमंगल कीन्हा। देव सदन मँह मणि धरि दीन्हा ।।१०।।
आठ भार नित सोना देई। पूजित मणि बाधा हरि लेई।।११।।
कबहुँ कृष्ण तेहि कहेउ सुनाई। नृपहिं समर्पहु मणि तुम जाई।।
अर्थ लोभ वश मणि नहिं दीन्हा। ईश वचन लंघन सो कीन्हा ।।१२।।
रहेउ प्रसेन सत्रजित भाई। एक दिवस मणि कण्ठ लगाई ।।
अश्वारुढ़ महाबन जाई। करत अखेट रहा बरियाई ।।१३।।

अश्व समेत प्रसेनहिं मारा। मणि छीना केसरी कुमारा।।
जाम्बवान तेहि सिंहहि मारा। मणी लीन गिरि गुफा सिधारा।।१४।।
मणि संग खेलत ऋच्छ कुमारा। सत्राजित दुख भयउ अपारा।।१५।।

दोहा- मणी कण्ठ में धारि के, भाइ गये वन मांहि।
सम्भव है, श्रीकृष्ण ने, ताहि बधे वन जांहि।।१६।।
नारायण ने जब सुना, यह कलंक मम माथ।
नगर जनों को साथ ले, बनहिं गये यदुनाथ।।१७।।

मरा प्रसेन अश्व संग देखा। आगे सिंह मरा पुनि पेखा।।१८।।
ऋच्छ गुफा देखी यदुनाथा। सबहि निवारि लीन नहि साथा।।
किये प्रवेश एक यदुराई। ऋच्छ राज की गुफा सुहाई।।१९।।
मणि संग खेलत एक कुमारा। लेन चहत हरि ताहि निहारा।।२०।।
देखेउ एक मनुष्य सुवेशा। धाय कीन तब शब्द विशेषा।।
शब्द सुनत धावा बलशाली। ऋच्छराज क्रोधित दे ताली।।२१।।
प्राकृत पुरुष जानि तेहि जूझा। ऋच्छ क्रोधवश हरि नहि बूझा।।२२।।
द्वन्द्व युद्ध दोउ किये प्रचण्डा। वृक्ष उपल आयुध भुज दण्डा।।२३।।
दिवस अठाइस विनु विश्रामा। मुष्टि प्रहार किये अविरामा।।२४।।

दोहा- हरि के मुष्टि प्रहार से, शक्तिहीन ऋच्छराज।
अंगबन्ध ढीले हुये, विस्मित बोले आज।।२५।।

जानऊं तुमहि सकल जग स्वामी। प्राण ओज बल अन्तर्यामी।।२६।।
पुरुष पुरातन विष्णु स्वरूपा। कालहुं काल अनादि अनूपा।।२७।।
किञ्चित क्रोध जलधि पर कीना। डरे सकल जलचर बड़ मीना।।
सेतु बाँधि यश उज्जवल छाये। लंका जाइ सब रक्ष नसाये।।२८।।
एहि विधि जाम्बवन्त पहिचाने। बोले श्री हरि तब मुसकाने।।२९।।
कर परसा तब ऋच्छ शरीरा। कमल नयन कह वचन गभीरा।।३०।।

मणिकारण हम गुफा में आये। झूठ कलंक कछु मोहि लगाये ।।३१।।

दोहा- जाम्बवन्त इतना सुना, मणि संग पुत्री दीन।
जाम्बवती के साथ ही, पूजन हरि का कीन।।३२।।

बारह दिन सब कृष्ण अगोरे। लौटे नहि हरि दुखित बहोरे ।।३३।।
गुफा द्वार नहि निकले श्यामा। जानि शोक कीन्ही सब बामा।।
देवकि रुक्मिणि स्वजन सखाया। सब पर रही शोक की छाया ।।३४।।
देहि सत्राजितहिं सब गारी। दुर्गा शरण गये नर-नारी ।।३५।।
देवी कृपा कीन तेंहि काला। नारि सहित हरि आये कृपाला ।।३६।।
अति आनन्द भयउ पुर माँही। पत्नी संग कण्ठ मणि आँही।।३७।।
सभा माँहि सत्राजितहिं बुलावा। दीन मणी सब कथा सुनावा।।३८।।
लज्जित सत्राजित मणि लयऊ। पाप बोझ नत मस्तक भयऊ।।३९।।
पाप सोचि मन व्याकुल भयऊ। केंहि विधि मो पँह हरि दयऊ ।।४०।।
करउं सो काह जाहि मन सींचा। क्षुद्र मूढ़ पापी मैं नीचा।।४१।।
देउ रत्न संग कन्या तेंही। मम अपराध शमन कछु होंही।।४२।।

दोहा- अस विचारि सत्राजित, कन्या कृष्णहिं दीन।
साथ स्थमन्तक शुभ मणि, हरिहिं हवाले कीन।।४३।।

बहुत नृपति चाहे सत्यभामा। सविधि वियाहे कृष्ण ललामा।।४४।।
कृष्ण कहेउ मैं मणि नहि राखूं। सूर्य भक्त तुम, फल मैं चाखूं।।४५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

*

।। अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– यद्यपि जानत सत्य हरि, जरेउ पाण्डुसुत जान।
पोषण करत परम्परा, बल संग कीन्ह प्रयान।।
भीष्म द्रोण कृप विदुर निहारी। प्रकट कीन हरि शोक विचारी।।२।।
कृतवर्मा अक्रूर बुलाये। शतधन्वा को बहुरि बुझाये।।
काहे न लेहु स्यमन्तक छीनी। सत्राजितहिं जो दिनकर दीनी।।३।।
कन्या रत्न देन प्रण कीन्हा। हमहिं तिरस्कृत करि नहि दीन्हा।।
कृष्णहि दीन ताहि पुनि जाई। भातृ लोक सत्राजित पाई।।४।।
सोवत सत्राजित सो मारा। शतधन्वा नहि कीन विचारा।।५।।
रोवत नारिन्ह दीन न ध्याना। मणि लै धन्वा कीन पयाना।।६।।
दोहा– पिता निधन को देखिके, भामा रोवति जाइ।
तात तात कहती हुयी, विलपत गइ मुरुझाइ।।७।।
तेल पात्र मृत देह लेटावा। सत्या तब सब हरिहिं सुनावा।।८।।
यद्यपि सब जानत यदुराई। मानुष लीला कीन कन्हाई।।
कृष्ण राम बहु दुःख जनाये। लीला पुरुष नयन जल छाये।।९।।
नारि सहित अग्रज संग आये। शतधन्वा बध कीन उपाये।।
केंहि विधि धन्वा मरे अधर्मा। मणी मिलइ सो सोचत कर्मा।।१०।।
संकट प्राण देखि शतधन्वा। शरण गया सद्यः कृत वर्मा।।११।।
ईश्वर से नहि करुउं लड़ाई। क्षेम लहै को ईश दुराई।।१२।।
जानहु कंसहि जो प्रभु मारे। मागध सत्रह बार पछारे।।१३।।
दोहा– कृतवर्मा की बात सुन, मन अति हुआ मलीन।
हाथ पकड़ि अक्रूर का, धन्वा याचत दीन।।१४।।

तब अक्रूर ताहि समुझावा। कृष्ण राम दोउ ईश बतावा।।
देखत जाहि सृष्टि लय होई । चतुरानन नहि जानहि सोई।।१५।।
सात बरस के रहे कन्हाई। एक हाथ गिरिराज उठाई।।१६।।
नमो नमः हे अद्‌भुत कर्मा। जय अनन्त कूटस्थ अकर्मा।।१७।।
जब अक्रूर ताहि समुझावा। मणी सौपिं शत योजन धावा।।१८।।
रथ चढ़ि पीछा कीने जाई । गरुड़ध्वज रथ चढ़ि दोउ भाई।।१९।।
मिथिला जाइ अश्व सो त्यागा। शत धन्वा पैदल तब भागा।।२०।।

दोहा- पैदल पीछा करत हरि, लिये सुदर्शन हाथ।
रहे श्यमन्तक ढूंढते, शिर काटे यदुनाथ।।२१।।

खोजे मिली मणी नहि जब हीं। अग्रज से बोले हरि तबहीं।।
व्यर्थहि शतधनु को मैं मारा। मिली मणी नहि तेहि के द्वारा।।२२।।
तब बलराम कृष्ण समुझावा। जाहु नगर मणि ढूढ़े पावा।।
शतधनु दिये होउ मणि कोऊ। पुरुष सिंह तुम खोजहु सोऊ।।२३।।
मिथिला पति हैं मित्र हमारे। देखन चहों ताहि मम प्यारे।।२४।।
बलहिं देखि मिथिलापति धाये। पूजन करि आसन बैठाये।।२५।।
कछुक बरस तँह रहे बलरामा। जनक दीन आदर सन्माना।।
दुर्योधनहिं तँह गदा सिखाये। अवसर पाइ नगर निज आये।।२६।।

दोहा- केशव आये द्वारका, सत्यहिं दिये बताय।
शतधन्वा मारा गया, मणी मिली नहि हाय।।२७।।

बन्धु संग ले हरि तँह आये। सत्राजित की क्रिया कराये।।२८।।
कृतवर्मा अक्रूर डेराने। दोउ द्वारिका छौड़ि पराने।।
जेहिं दिन ते अक्रूर सिधारे। बाधा तीनिउ बही बयारे।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा। आइ द्वारका तीनिउ व्यापा।।३०।।
अस कोउ कहहिं अज्ञ जे भाई। तँह विपत्ति कस जँह यदुराई।।३१।।

कबहु अवर्षण कहहिं पुराने। काशी माँहि न जाइ बखाने।।
काशिराज निज कन्या दीन्हा। श्वफलक जामाता निज कीन्हा।।
पाइ गान्दिनी हरष जवाँई। काशी में तब वर्षा आयी।।३२।।

सोरठा-श्वफलक सुत अक्रूर, जहाँ जाहिं जेहि देश मँह।
तहाँ नहीं उपताप, दैहिक दैविक मानसिक।।३३।।

हरि जानत सब सत्य कहानी। वृद्ध वचन तबहूँ हरि मानी।।
दूत भेजि अक्रूर बुलाये। प्रेमालाप कीन मन लाये।।३४।।
स्वागत कीन अधिक अनुरागा। अक्रूर हुँ तब संशय भागा।।३५।।
शत धन्वा तुमही मणि दीन्हा। दानपते! मैं जानहुं चीन्हा।।३६।।
पुत्र नाहि शतधन्वा केरा। दुहिता सुत करिहैं सब प्रेरा।।
करिहैं श्राद्ध तिलांजलि देई। शेष बचे धन नाती लेई।।३७।।
बल भद्रहि मन नहि विश्वासा। मणी धरहु तुम अपने पासा।।
अन्य कोउ मणि सकइ न धारी। तुमहि बिना नहि कोउ व्रतधारी।।३८।।

दोहा- मणि दिखाइ संशय हरहु, करहु यज्ञ घर जाइ।
शान्ति लहहिं सब बन्धुजन, स्वर्णिम वेदि बनाइ।।३९।।

एहि विधि अक्रूरहिं समुझावा। वस्त्र ढंकी मणि तबहि दिखावा।।४०।।
कृष्ण स्यमन्तक सबहिं दिखावा। निज कलंक एहि भाँति मिटावा।।
कृष्ण मणी अक्रूरहिं दीन्हा। यद्यपि राखि सके प्रभु चीन्हा।।४१।।
जो यह कथा सुनइ मन लाई। मिटे कलंक शान्ति सुख छाई।।४२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे सप्तपञ्चाशत्तमो ऽध्यायः।।५७।।

*

।। अथ अष्टपञ्चाशन्तमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– पाण्डुसुतों को देखने, एकबार भगवान।
इन्द्रप्रस्थ सात्यकि सहित, कीन नगर प्रस्थान ।।१।।

पाण्डुतनय हरि आवत देखा। उठे साथ लहे प्राण विशेषा ।।२।।
भेटें वीर कृष्ण संग आये । अंग परस सब पाप नसाये ।।
मुख सरोज मृदुहास निहारे । भये प्रेमवश पार्थ सुखारे ।।३।।
भीम युधिष्ठिर कँह हरि वन्दे । अर्जुन भेंटि, युगल अभि नन्दे ।।४।।
परमासन बैठे यदुराई । कृष्णा कीन प्रणाम लजाई।।५।।
कृष्ण समान सात्यकिहिं जाने। आसन दीन पार्थ सन्माने।।६।।
फुआ पास पहुँचे भगवाना। कीन प्रणाम कुशल सब जाना।।
कुन्ती हरि को गले लगावा । बन्धु क्षेम सुनि अति सुख पावा।।७।।

दोहा– प्रेम विकल कुन्ती भई, बहे नेत्र से नीर ।
सोचि सोचि कहने लगी, हरि सो आपन पीर ।।८।।

तबहिं कुशल भा कृष्ण हमारे। तुम भेजे अक्रूर पधारे।।९।।
विश्व सुहृद तब आपु न आना । तुमहि सुमिरि नर लह कल्याना।।१०।।

युधिष्ठिर उवाच–

कौन पुण्य पूर्वुज मँह कीन्हा । योगि अलभ हरि दर्शन दीन्हा।।११।।
चारि मास बरसात बिताये। नयनानन्द दिये, सुख पाये ।।१२।।
एक बार अर्जुन रणरंगा । बैठे रथ ले गाण्डीव निषंगा।।१३।।
संग कृष्ण बन विहरत जाई। बाघ सिंह जहँ लेत जम्भाई ।।१४।।
तहाँ जाइ रुरु महिष वराहा। वाघ शरभ मारे नरनाहा।।१५।।
यज्ञ योग पशु नृपहिं पठाये । प्यास लगी यमुना पँह आये।।१६।।
पिये वारि शुभ अर्जुन श्यामा। देखी एक सुन्दरी वामा ।।१७।।

दोहा- देखि सुन्दरी अर्जुनहि, कृष्ण कहे समझाय।
जाहु तात पूंछहु तुम, परिचय जानहु जाय।।१८।।
पूछेउ अर्जुन युवतिंह जाई। कौन देवि! तुम कहाँ से आई।।१९।।

कालिन्दी उवाच–

सूर्यदेव हैं पिता हमारे। विष्णु होइ पति, तप तनु जारे।।२०।।
होंउ प्रसन्न मों पर श्री नाथा। अन्य चाहुँ नहि, रहउं अनाथा।।२१।।
यमुना जल मँह रहउं कुवाँरी। कालिन्दी हरि दर्शन प्यारी।।२२।।
अर्जुन जाइ कृष्ण सो भाखे। रथ चढ़ाइ नृपति पँह राखे।।२३।।
कृष्ण कहे विश्वकर्मा आवा। अद्भुत एक नगर बनावा।।२४।।
बहुत दिनन तँह रहे मुरारी। खाण्डव अग्नि सौंपि असुरारी।।२५।।
दोहा- अर्जुन के सारथि बने, आज्य अग्नि मुख कीन।
अग्निदेव तेहि धनुष शर, श्वेत अश्व रथ दीन।।२६।।
अर्जुन मय दानवहिं बचावा। खाण्डव बन जो वास बनावा।।
प्रति उपकार दनुज तब कीन्हा। सभा भवन निर्मित करि दीन्हा।।२७।।
दुर्योधन मति तँह गई हेराई। जल-थल भेद कीन नहि पाई।।
कछु दिन बीते आय मुरारी। पुरी द्वारका भई सुखारी।।२८।।
शुभ दिन सुन्दर लगन दिखाई। कालिन्दी वियहे यदुराई।।२९।।
विन्द अनुविन्द अवन्ती राजा। दुर्योधन वश रहे समाजा।।
तेहि भगिनी कृष्णहिं मन दीन्हा। रोके भाइ, न कृष्णहि चीन्हा।।३०।।
दोहा- भरी सभा से हर लिये, विन्दा को भगवान।
अधि देवी तनया रही, मित्रा रूप निधान।।३१।।
रहे नग्नजित कोशल भूपा। सत्या कन्या तिनहिं अनूपा।।३२।।
राजा कीन प्रतिज्ञा जाई। सात बैल जो जीति बँधाई।।
तीखे सींग वृषभ सब क्रोधी। वीर पुरुष बधु गन्ध विरोधी।।३३।।

बिनु जीते नहि मिलइ कुमारी। कौशल पुर आये बनवारी ।।३४।।
कोशलेश पूजे हरि जाई । कीन प्रशंसा प्रभु गुण गाई ।।३५।।
सत्या लख कृष्ण अभिरामा। होउ पती मम पूरण कामा।।
जो कछु व्रत कँह पुण्य हमारे। होउ सफल, हरि मोंहि उबारे ।।३६।।

दोहा- जिनके पद रज चाहते, लक्ष्मी ब्रह्म महेश।
लोक पाल सब पूजते, शारद शेष गणेश।।३७।।

निज इच्छा नर रूप बनावा। जेंहि चाहत हरि सो तेहि पावा।।३७।।
कोशलेश पुनि पूछे जाई। पूर्णकाम का करुं सेवकाई ।।३८।।

श्रीशुक उवाच–

अति प्रसन्न बोले भगवाना। आसन लीन मेघ इव श्यामा ।।३९।।

श्रीभगवान् उवाच–

क्षत्रिय धरम न मांगइ काहू। माँगउ कन्या करब वियाहू।।
बढ़इ प्रेम कछु लेन न देना। शुल्क प्रथा यदुवंसिह है ना ।।४०।।

राजोवाच–

तुम्ह से अधिक कौन गुणशाली। कन्या वर मिलिहैं वनमाली ।।४१।।
किन्तु एक प्रण पहले कीना। पुरुष शौर्य बल चाहूँ चीन्हा ।।४२।।
सात दुष्ट ये वृषभ हमारे । राजसुतन्ह के गात विदारे ।।४३।।
करुहु स्ववश वृष नाथहु जाई। वरइ सुकन्या बनहु जवाँई।।४४।।

दोहा- राजहिं ऐसा प्रण सुने, कमर कसे यदुनाथ।
सात रूप आपन धरे, बैलहिं लीने नाथ।।४५।।

एक साथ सातहुँ डोरियाये। देखि कृष्ण, सब बैल डेराये।।
कठघोड़ा जिमि बालक खेला। दुस्सह वृषभ कृष्ण तँह ठेला।।४६।।
विस्मित नृपति नग्नजित जाई । व्याही कन्या कृष्ण कन्हाई ।।४७।।
रानिन्ह देखा हरि भगवाना । हर्षित निज जामाता माना ।।४८।।

बाजे बजे दीन्ह आशीषा । विप्र सकल सज्जित तिय ईशा।।४९।।
तीन सहस्र युवती नृप दीन्हा । धेनु सहस दस दाइज चीन्हा।।५०।।
नव सहस्र गज रथ नव लाखा। दशगुन अश्व मनुज को भाखा ।।५१।।
दोहा- रथ चढ़ाइ पुत्री विदा, कीन नृपति सन्मान।
दम्पति मन विह्वल हुआ, हरि तब किये प्रयान।।५२।।
अमरष वश भूपति तँह आये। रूँधे पथ जेहिं कृष्ण सिधाये।।५३।।
लागे बरसन शस्त्र प्रहारा । अर्जुन तब सब नृपहिं पछारा ।।५४।।
लइ दाइज सत्या सँग आये। पुरी द्वारका कृष्ण सुहाये ।।५५।।
श्रुत कीरति केकय की रानी। भद्रा सुता न जाइ बखानी ।।
भाई सन्तर्दन मन कीन्हा । कृष्ण संग भद्रहिं करि दीना ।।५६।।
नाम लक्ष्मणा मद्र कुमारी । हरे हरी जिमि सुधा विषारी।।५७।।
दोहा- येंहि प्रकार श्री कृष्ण की, रही हजारों नारि।
भौमासुर को मारि के, मुक्त कीन असुरारि।।५८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५८।।

*

।। अथ एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।।

राजोवाच–

दोहा– भौमासुर को कृष्ण ने, कैसे मारा जाय।
नारिन्ह बन्दी क्यों किया, कैसे कृष्ण छुड़ाय ।।१।।

श्रीशुक उवाच–

भौमासुर अतिशय बलवाना। छत्र छीनि कृत इन्द्र विमाना।।
अदितिहिं कुण्डल दीना जाई। मणि पर्वत लीना हथियाई।।
इन्द्र कहेउ तब कृष्णहिं पाई। ज्योतिष पुर गवने यदुराई।।२।।
शस्त्र दुर्ग गिरि दुर्ग विशेषी। अग्नि सलिल दुर्गम करि लेखी।।
पाश धारि मुर की रखवारी। नगर जाइ पहुँचे बनवारी।।३।।
गदा मारि गिरि दुर्ग ढहावा। वाण मारि आयुधहिं गिरावा।।
मुर पाशहिं असि काट गिराई। सलिल वायु पर चक्र चलाई।।४।।
शंखनाद करि यन्त्र विदारे। गदा मारि प्राकार उजारे।।५।।

दोहा– पाञ्चजन्य की ध्वनि सुनी, पाँचों मूड़ उठाय।
जागा सोवत सिन्धु मँह, चला मुरु अनसाय।।६।।

प्रलय काल रवि तेज समाना। लिये त्रिशूल चला बलवाना।।
पंच वदन ग्रस चाह त्रिलोका। उरग गरुड़ कह चाह विशोका।।७।।
पाँचउ मुख करि नाद अछोरा। शूल उठाइ गरुड़ पर छोरा।।८।।
आवत शूल देखि यदुनाथा। वाण प्रहार कीन तेंहि माथा।।
गदा प्रहार कीन मुरु जबहीं। शर प्रयोग कीना हरि तबहीं।।९।।
गदा प्रहार गदाधर छीना। छिन्न भिन्न आयुध कर दीना।।
वाहु युद्ध मुरु चाहत कीना। चक्र काटि पाँचउ शिर छीना।।१०।।

दोहा– शिर कटते ही गिर पड़ा, सिन्धु मध्य बलवान।
आयुध लिये महान।।११।।
सातपुत्र दौड़े तभी,

दोहा- ताम्र विभावसु वसु अरुण, श्रवण, रिक्ष नभस्वान।
पीठहिं सेनापति किये, धाये शस्त्र प्रमान।।१२।।
कृष्णहिं बाणन कीन प्रहारा। शक्ति त्रिशूल गदा तें मारा।।
हरि अमोघ तेहिं शक्ति अपारा। तिल सम काटि कीन तेहिं छारा।।१३।।
मरा पीठ विनु पीठ दिखाये। साथिन्ह सब यमलोक पठाये।।
निकला धरा पुत्र बलवाना। नरकासुर रण कीन पयाना।।१४।।
गज सेना लइ बाहिर आवा। मद प्रवाह गज बहुरि सुहावा।।
श्याम मेघ जिमि गगन मंझारी। भार्या सहित दीख बनवारी।।
कृष्णहि लक्ष्य शतघ्नी मारा। सकल सैन्य तब कीन प्रहारा।।१५।।
मारे कृष्ण शिलीमुख नाना। काटे उरु बाहू भटमाना।।
मरे अश्व, रथ कुञ्जर मारे। कृष्ण सकल दानव संहारे।।१६।।
दोहा- भौमासुर ने शस्त्र से, किया कृष्ण पर वार।
एक बाण से तब हरी, कीना प्रती प्रहार।।१७।।
गरुड़हि पंख गजन्ह बहुमारे। चोंच, पंख चहुँ ओर पसारे।।१८।।
पक्षिराज कँह मारत देखा। नरकासुर भय भयउ विशेषा।।१९।।
गरुड़ ताकि सो वज्र चलावा। अविचल जिमि करि माल्य चढ़ावा।।२०।।
भौमासुर तब शूल उठावा। हरी सुदर्शन चक्र चलावा।।
गज आरूढ़ असुर था तब हीं। कटा शीर्ष भुंई लोटा जब हीं।।२१।।
कुण्डल चारु किरीट लोटाने। हाय हाय कहि बन्धु पराने।।
साधु साधु ऋषि देवन्ह कीन्हा। पुष्प माल्य हरि कँह बहु दीन्हा।।२२।।
दोहा- धरा स्वयं तँह आइ के, कुण्डल कंकण दीन।
छत्र दिये मणि संग में, वरुणहि भौम जो लीन।।२३।।
अस्तुति कीन बहुत मन लाई। धरनी मनहिं भक्ति अधिकाई।।२४।।

भूमिरुवाच-

नमो नमो हे देव मुरारी। भगत हेतु नाना तनु धारी।।२५।।
पंकज नाभि कमल की माला। धारे पंकज नयन विशाला।।
चरण कमल भक्तन हितकारी। नमो नमस्ते हे असुरारी।।२६।।
वासुदेव हे विष्णु स्वरूपा। आदि पुरुष प्रज्ञान अनूपा।।२७।।
अज अनादि अव्यक्त गुणाकर। अमित शक्ति परमात्म सुधाकर।।२८।।
सृष्टि काल प्रभु! रज अपनाये। नाश हेतु तुम तमस् लुभाये।।
पालन हेतु सत्त्व गुण धारी। काल रूप जय जयति मुरारी।।२९।।
क्षिति जल पावक पवन अकाशा। मन इन्द्रिय महतत्व प्रकाशा।।
कर्ता आप चराचर स्वामी। अद्वितीय भ्रम होत निकामी।।३०।।

दोहा- भौमासुर का पुत्र यह, शरणागत भयभीत।
कर सरोज शिर राखहु, यातें होत अभीत।।३१।।

श्रीशुक उवाच-

येंहि विधि धरनी याचन कीन्हा। अभय दीन तेंहि निर्भय चीन्हा।।
बहु समृद्धि देखी तब जाई। भौम भवन प्रविशे यदुराई।।३२।।
तँह बन्दी नृप कन्या देखा। संख्या सोलह सहस विशेषा।।३३।।
निरखि रूप सब नारि लुभानी। मन ही मन पति आपन मानी।।३४।।
करहु विधाता पूरण कामा। पती होंइ श्रीकृष्ण ललामा।।३५।।
भूषण वसन सबहिं दिलवाये। शिविका मँह द्वारका भेजाये।।३६।।
चौसठ ऐरावत कुल भूषण। भेजे गज तब शत्रु निषूदन।।३७।।
इन्द्र सदन पत्नी संग गयऊ। अदितिंह कुण्डल सौंपत भयऊ।।३८।।

दोहा- सत्या प्रेरित कृष्ण तँह, सुरतरु लीना जाय।
इन्द्र आदि को जीति के, गरुड़ धरे घर आय।।३९।।

सत्या के उद्यान लगाये। पारिजात भौरे रस पाये।।४०।।
इन्द्र आदि सुर की प्रभुताई। स्वारथ हित सब करहिं मिताई।।

कृष्ण चरण निज मुकुट धरा हीं। बने काम तेंहि जानत नाहीं ।।४१।।
एकइ साइत नाना रूपा । सबंहि वियाहे हरि नरभूपा ।।४२।।
सकल सम्पदा प्रति गृह सोहा। रमा रमण गृहपति मन मोहा ।।४३।।
हास विलास करत भगवाना। ब्रह्मादिक यह मरमु न जाना।।
व्यजन करत प्रभु पान खिलावहिं । घिस घिस चन्दन माथ लगावहिं।।४४।।
यद्यपि दासी रही घनेरी । सेवा कीन प्रभुहिं बनि चेरी।।४५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे एकोन षष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

*

।। अथ षष्टितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

एक दिवस हरि सुख आसीना । रुक्मिणि बैठि डुलावति बेना ।।१।।
सृष्टि जगत् पालन क्षय होई। लीला प्रभु यदु जन्मे सोई ।।२।।
मुक्ता दाम दीप मणि सोहा । रुक्मिणि सदन देखि मन मोहा ।।३।।
जाल मार्ग शशि किरन सुहाई। पुष्प गुच्छ अलि रहे लुभाई ।।४।।
सुरतरु गन्ध व्याप सब ओरी। अगरु धूप लै सुरभि बहोरी।।५।।
दुग्ध फेन सम उज्जवल आसन। बैठे श्री हरि धरि पद्मासन ।।६।।
सखी हाथ लै व्यजन डुलाती। हरिहिं सेव रुक्मिणि हरषाती ।।७।।

दोहा– बाल व्यजन लै रुक्मिणी, हाथ डोलावत जात ।
मणिनूपुर के शब्द से, कुच कुंकुम हरषात।।८।।
घुँघराली अलकें निरखि, कुण्डल लोल कपोल।
लीला तनु देखीं रमा, माधव बोले बोल।।९।।

श्रीभगवान् उवाच–

चाहत तुमहि सबै नरनाहू। लोकपाल चह करन बियाहू।।१०।।

चैद्य आदि राजा तुम त्यागी। भाइ-बाप तजि मो सँग लागी ।।११।।
मागध भय वश सागर वासा। नाहीं इहाँ नृपति पद आशा।।१२।।
लोक मार्ग प्रिय जानहुँ नाहीं। मोर संग तिय शोचन जाँही।।१३।।
हमहिं अकिंचन जन से प्रीती। धनिक न करहि मोर परतीती।।१४।।
रूप, द्रविण, ऐश्वर्य बढ़ाई । लखि समान शुभ व्याह मिताई ।।१५।।
सुनु वैदर्भि बिना मोंहि जाने । कीन व्याह तुम भिक्षु बखाने ।।१६।।

दोहा– अबहिं कछू विगरौ नहीं, देखि श्रेष्ठ नर भूप।
जाहु वियाहहु रुक्मिणी, लहहु लाभ अनुरूप।।१७।।

मागध शाल्व जरासुत आई। द्वेष करत रुक्मी तव भाई।।१८।।
लखत मदान्ध तोंहि हरि लाये। मान भंग कीना तँह जाये।।१९।।
उदासीन हम रहहिं सदाहू। स्त्री धन हम हरहिं न काहू।।२०।।

श्रीशुक उवाच–

रुक्मिणि मन भा गरब विशेषा। सब ते मैं प्रिय हरि की सविशेषा।।२१।।
चाहत गरु मेटन यदुराई । इतना कहि हरि मौन सिधाई।।२२।।
रुक्मिणि सुनि अति अप्रिय वानी। काँपी उर अतिशय घबरानी।।२३।।
नख लिख भूमि अश्रु जल सीचें। दोउ उरोज, नयनन करि नीचे।।२४।।
बुद्धि हरी, कंगन गिरि गयऊ । चंवर हाथ से कम्पित भयऊ।।
विखरे केश देह सुधि नाँही। कदली तरु इव गिरी पछाहीं।।२५।।

दोहा- देखि कृष्ण भगवान तब, प्रिया प्रेम पतियाय।
हास्य भाव समुझी नहीं, जानि प्रभू पछिताय।।२६।।

पलंग उतरि दौड़े असुरारी। पोछें मुख कर केश सँवारी।।२७।।
पोंछि अश्रु तेहि गले लगावा। देखि अनन्य भाव पछितावा।।
लगे बुझावन ताहि मुरारी। कीन हँसी भूल भइ भारी।।२८।।

श्री भगवान् उवाच–

वैदभी सुनु बात हमारी । जानंऊ मैं तुमको अति प्यारी ।।
चाहउं सुनउं तोर मृदुबाता । मानहु, मोर प्रेम कर नाता।।२९।।
देखन चहूँ ओठ रतनारे । कैसे फड़कत होहिं तुम्हारे ।।
नयन कोण किमि छाई लाली । प्रमय कोप किमि लागहु आली।।३०।।
भामिनि मानहु बात हमारी। करहि गृहस्थ नर्म हितकारी ।।३१।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- कृष्ण दीन जब सान्त्वना, रुक्मिणि भा विश्वास ।
प्रियतम के तब त्याग की, बात हास परिहास ।।३२।।
करि कटाक्ष, प्रिय देखिमुख, बोली बचन प्रवीन ।
पुरुष ऋषभ श्री कृष्ण तब, सुनत रहे लवलीन ।।३३।।

रुक्मिणी उवाच–

सत्य कहेउ नव कंज विलोचन। तब समान मैं नहिं भवमोचन ।।
निज महिमा स्थित गुण स्वामी। गुणाधीन मैं प्रकृति अजानी।।३४।।
सत्य वचन तब उदधि निवासा। भय कारण नहि आत्म प्रकाशा ।।
इन्द्रिय नृपति संग तब स्वामी । बैर अकारण अन्तर्यामी ।।
राज सिंहासन प्रिय नहि तोहीं । तब सेवा से बड़ नहि ओहीं ।।३५।।
सत्य कहे तब मार्ग अबूझा । चरण कमल रत मुनिहु न सूझा।।
तब पथ चलहिं अनन्त अनादी। नर पशु किमि पावहिं तव आदी।।३६।।
कहेउ अकिञ्चन अपनेहु स्वामी। तुम से इतर नाहिं कछु जानी ।।
ब्रह्मादिक तव पूजन कर हीं। जेंहि लगि लोग जतन मन धरहीं।।३७।।

दोहा- नहि धनाढ्य पूजा करहि, सत्य कहेउ यदुनाथ।
इन्द्रिय रत जानत नहीं, काल रूप शिर हाथ ।।३८।।

चारि पदारथ लोक कहाये। सकल मूल प्रभु आप सुहाये।।
सुमति चाह तब पद संगा। तजहि सकल भव रोग असंगा ।।

विषयी कबहुं लहइ नहि प्रेमा। तव पद कंज छाँड़ि नहि क्षेमा ।।३८।।
सत्य कहे भिक्षुक गुण गाये । भिक्षुक जे संन्यास गहाये ।।
आत्मा जानि वरण तव कीना। आत्मदान तुम करहु अदीना।।
इन्द्रादिक सब काल बसाई । चैद्य आदि किमि लेखे जाई ।।३९।।
झूंठ इहै तुम कहे गोसाई । सिन्धु निवास राज डर ताँई।।

दोहा- शार्ङ्ग धनुष टंकार सुनि, भागे नृपति अनेक।
सिंह सदृश निज बलि चुने, पशू सबै शिर टेक ।।४०।।

इहउ झूंठ तुम कहे मुरारी। कष्ट लहहिं जे भजि असुरारी।।
भरत ययाति अंग पृथु राजा । छाँड़ि राज बन कीन समाजा ।।
तव पद प्रेम बसइ उर जाके। कंज नयन, तुम बस उर ताके ।।४१।।
तुम जो कहेउ अन्य मै बरेऊँ। इहौ ठीक नाहीं तुम कहेऊ।।
सकल गुणालय लच्छि निवासा। तुमहि छाँड़ि मोंहि कहाँ सुपासा।।४२।।
मै अनुरूप बरेउं प्रभु तोंही। पूरण काम मिलेहु प्रभु मोंही ।।
जगत अधीश आत्म प्रभु स्वामी। चरण शरण राखहु उर आनी ।।
जो तोहि भजत भगत मनु लाई । आत्म रूप तिन्ह देहु गोसाई।।४३।।

दोहा- रासभ बैल बिलार सम, नृपति लहैं तिय ताँहि।
शिव विरंचि के गीत पुनि, श्रवण पड़े जिन्ह नांहि।।४४।।

त्वचा केश नख ढँका शरीरा। अस्थि मांस कफ शोणित कीरा।।
शव शरीर चाहति सोइ नारी । कान पड़े नहि सुधा मुरारी ।।४५।।
कमल नयन तव पद अनुरागा । आत्माराम सदा से जागा ।।
धारि रजस् देखहु मम ओरा । मानहुं कृपा परम यह तोरा।।४६।।
करु अनुरूप वरण नर कोऊ । सत्य कहेउ कामिनि मन सोऊ ।।
काशि सुता अम्बा इव काहू । विजित अन्य नर चाहु विवाहू ।।४७।।
कुलटा मन चाहइ पर संगा। बुध नहि चाहत नीच प्रसंगा।।४८।।

श्री भगवान् उवाच–

दोहा– राजपुत्रि यह सुनहिं को, तोंहि वञ्चना कीन ।
तुमने मेरे कथन की, सत्य व्यंजना दीन ।।४९।।

भामिनि जो कछु चाहहु कामा । देउं सदा मैं पूरण कामा ।।५०।।
देखेउं तब पति प्रेम अभंगा । विचलित नहि तब मति व्यासंगा।।
मोहित ते जे धरि उर कामा । करहिं तपस्या व्रतहिं विधाना ।।
मैं अपवर्ग देउं, पुनि मोंही । याचत मूढ़ सकाम विछोही।।५२।।

छन्द–

मोंहि पाइ के कछु मन्दमती । नहि चाहहिं मोक्ष, बड़े कुमती ।
धन सम्पत्ति चाहहिं मूढ़मना । तिनके हित नरकहि घोर बना ।५३।
सुनु भामिनि! भक्ति करी तुमने। निष्काम न चाह करी मन में ।
यह दुष्कर कार्य असम्भव है । जिनका बड़ प्रेम रहा तन में ।५४।
भामिनि तोहिं समान प्रिया । मोहिं और न दूसर काहु दिखानी।
गुण मेरो सुनी, नृप त्याग दिये । द्विज भेज दिये द्वारका रजधानी।५५।
तव भ्रात विरूप किये जब हीं । बल मारि दियो जब द्यूत रचाई ।
मम योग वियोग न काहू कही । सजनी मन जीति तू कृष्ण कन्हाई।५६।
तुम दूत पठाई, न दीख हमें । सब लोक त शून्य लगे तब जाई।
तुम देह को त्यागन सोच लियो । ऋण तोर अछोर ये मान कन्हाई ।५७।

श्रीशुक उवाच–

प्रभु श्रीकृष्ण सदात्मारामा । मनुज रूप धरि सेवत वामा ।।५८।।
सकल नारि सँग रह जगदीशा। लोक धर्म पालत प्रभु श्रीशा ।।५९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे षष्टितमोऽध्यायः ।।६०।।

*

।। अथ एक षष्टितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– दस दस पुत्र हुये सभी, नारिन्ह के अभिरूप।
हुये सभी सुत कृष्ण के, तुल्य मनोहर रूप ।।१।।
कृष्ण कबहुँ नहि बाहिर जाहीं। सब से प्रिय हम सबहिं कहाहीं।।
नहि जानहिं कोउ प्रभु प्रभु ताई । यातें यह मति सबहीं पाई ।।२।।
कमल कोष सम वदन निहारहिं। बाहु नेत्र आयत मन डारहिं ।।
मुग्ध स्वयं रस रूप निहारी। बाँधि न सकीं कबहुँ बनवारी।।
सोलह सहस अधिक सब नारी। मन्द हास मृदु भाव सँवारी।।३।।
काम शस्त्र चँह बींध मुरारी। तबहुँ न बिधे कृष्ण बनवारी।।४।।
शिव विरंचि जेंहि गति नहि जानहि। ताकर पति तिय आपन मानहिं ।।
हास विलास करहिं दिन राती। सेवा रत नहिं कबहुँ अघाती।।५।।
दोहा– यद्यपि दासी शत रहीं, हर नारिन्ह के धाम।
तदपि सकल सेवा करीं, नारिन्ह कृष्ण ललाम ।।६।।
दस दस सुत मैं कहेउ बखानी। पुत्र गिनावउं अठ पटरानी।।७।।
रुक्मिणि सुत प्रद्युम्न कहाये। चारु, सुदेषा, देह कहलाये ।।८।।
चारु, सुचारु, गुप्त बलधामा। भद्र, चन्द्र, अरु चारु विरामा ।।९।।
भानु, सुभानु भये स्वर्भानू। चन्द्र भानु वृहभानु प्रभानू।।
श्रीभानू, रतिभा प्रति भानू। सत्या के दस पुत्र बखानूं।।१०।।
साम्ब, सुमित, पुरजित चितकेतू। विजय सहस जित वसु द्रविणि क्रतू।।११।।
जाम्ववती के ये तनय ललामा। पिता समान सकल बलधामा।।१२।।
दोहा– नाग्निजिती के पुत्र दस, नाम सुनहु मन लाय।
वीर चन्द्र चित्रगु वृष, कुन्तिवीर वसु शंकु कहाय।।१३।।
श्रुत कवि वीर सुबाहू भद्रा। शान्ति दर्श सोमक नहि तन्द्रा।।

कालिन्दी के ये सुत बलशाली। रूप कान्ति सब सम बनमाली ।।१४।।
घोष, गात्र, सिंह बल प्रबला। ऊर्ध्वग ओज अपराजित सबला।।
माद्री के दस पुत्र कहाये। दसवाँ महाशक्ति कहलाये।।१५।।
हर्ष, अनिल, वृक, वर्धना। पावन वह्नि क्षुधि अन्नाद कर्दना।।
मित्रविन्दा सुत किये बखाना। नाम समान कर्म कर नाना।।१६।।
अरिजित जय सुभद्र सत्य वामा। सूर, सेन, संग्राम महाना ।।
भद्रा के सुत मैं दीन बताई। सबै शूर कुल रीति निभाई।।१७।।

दोहा- रुक्मिणि सुत प्रद्युम्न ने, रुक्मा से करि ब्याह ।
जिनसे श्री अनिरुद्ध जी, जन्मे शौर्य अथाह ।।१८।।
माता थीं षोडश सहस, उससे अधिक प्रमान ।
पुत्र-पौत्र कोटिक गिने, ऐसो कौन सुजान ।।१९।।

राजोवाच–

कृष्ण कीन रुक्मी अवमाना। रहा घात में वह बलवाना।।
शत्रु तनय कँह कन्या दीन्हीं। केंहि कारण वश नाता चीन्ही।।
कहहु कथा सुनिहो मन लाई। शत्रु बीच मैत्री किमि आई ।।२०।।
योगी जानइं सकल कहानी। देखहिं भूत भविष्य अमानी ।।२१।।
रहे प्रद्युम्न काम अवतारी। रुक्मवती तेहिं बरीं विचारी।।
रचेउ स्वयम्बर रुक्मी जाई। राजंहि जीति एकरथ लाई ।।२२।।
यद्यपि रुक्मी मन अति क्रोधा। रुक्मिणि सोच वियाहे योधा।।२३।।
रुक्मिणि सुता चारुमति नामा। कीन वियाह बली सँग वामा ।।२४।।
बहिन प्रेम वश नतिनी व्याही। नाम रोचना अनिरुद्ध निवाही ।।
रुक्मी अधरम जानत कीन्हा। मन मँह कछु छल रख लीन्हा।।२५।।

दोहा- नगर भोजकट में गये, ले बरात घनश्याम।
साम्ब रुक्मिणी आदि के, संग रहे बलराम ।।२६।।

भा विवाह, कालिंग बुलावा। रुक्मिंह बार-बार समुझावा।।
द्यूत रचहु, बलराम खेलाई। आवहु जीतहु कपट रचाई।।२७।।
द्यूत व्यसन बलदाउहिं भारी। यद्यपि वे नहि सधे जुआरी।।२८।।
शत सहस्त्र दश गुण करि दामा। रुक्मी जयी पराजित रामा।।
हँसेउ कलिंगा दाँत दिखाई। बलरामहि अति रोष दिलाई।।२९।।
रुक्मी तब एक लाख लगावा। जीते बल, रुक्मी कर दावा।।
'मै जीता' रुक्मी जब बोला। बल रामहिं क्रोध तब खौला।।३०।।
पर्व देखि जिमि उदधि उठावा। क्षुब्ध राम दस लक्ष लगावा।।३१।।

दोहा- अबकिंउ जीते राम जब, रुक्मिंहु भा मन क्षोभ।
बोला निर्णय कलिंग पति, देइहिं कर के शोध।।३२।।

भई व्योम वाणी तेंहि काला। बलरामहिं भइ जीत विशाला।।३३।।
रुक्मी कीन अनादर तेंही। हँसत बचन बोला अति द्रोही।।३४।।
जुआ खेल भल जानहि राजा। का जानत जे ग्वाल समाजा।।३५।।
रुक्मी क्रोध दिलाया जबहीं। मुदगर हते रुक्मि बल तबहीं।।३६।।
नृप कलिंग जो दाँत दिखाये। दाँत तोड़ि दस पद दौड़ाये।।३७।।
बाहु जाँघ बलदाऊ तोरे। नृपति शेष जो बचे थे थोरे।।३८।।
अच्छा-बुरा कहे नहि कोऊ। रुक्मिणि बलदाउहिं हरि सोऊ।।३९।।

दोहा- रथ चढ़ाइ आये नगर, बलहि संग श्रीनाथ।
सकल प्रयोजन सिद्ध भा, वर कन्या भे साथ।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे एक षष्टितमोऽध्यायः।।६१।।

*

।। अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः ।।

राजोवाच–

दोहा– यदुवंशी अनिरुद्ध किये, बाण सुता सँग व्याह ।
शंकर और श्रीकृष्ण ने, किया समर उत्साह।।

योगिवर्य तुम कहहु बखानी। उषा और अनिरुद्ध कहानी ।।१।।

श्रीशुक उवाच–

राजा बलि हरि भगत पुराने। बामन दीन भूमि तनु दाने।।
सौ सुत बलि के रहे सुरारी। बाण जेठ अतुलित बल धारी।।२।।
बाण सदा शिव भगति अधारा। सत्य सन्ध, मतिमान उदारा ।।३।।
शोणितपुर सुन्दर रजधानी। करत राज बाणासुर मानी ।।
शम्भु प्रसाद अमर गण चाकर। आज्ञा मानि रहहि बस ताकर।।
ताण्डव नृत्य करत त्रिपुरारी। सहस बाहु वादन करि भारी।।४।।

दोहा– शरणागत वत्सल शिव, सर्वभूत भगवान।
मांगहु वर कह बाण से, शिवहिं माग वरदान ।।५।।
एक बार गिरिजा संग, बैठे रहे महेश।
बाण आइ बोला बचन, चरण राखि निज शीष ।।६।।

बिनवउ तोहि चराचर स्वामी। पूर्णकाम प्रभु अन्तर यामी ।।७।।
भुज सहस्त्र मोहि दीन पुरारी। भार भूत नहि जात सम्हारी ।।
तब समान योधा नहि होई। जो लड़ि सके मोर संग कोई ।।८।।
एक बार बल भुजा खुजाने। चलेउ दिग्गजहि, चले पराने।।
लौटत मारग पर्वत पाये। चूर्ण कीन भुजबल धकियाये ।।९।।
सुनत क्रोध मन कीन महेशू। कहेउ, मूढ़ मत मान कलेशू ।।
जेहिं दिन ध्वजा गिरइ तुम्हारी। मम सम बीर युद्ध तुम्ह हारी।।१०।।
सुनत बचन कुमती हर्षाना। शिव कर शाप भाग्य निज माना।।११।।

दोहा- बाणासुर-तनया रही, उषा नाम सुकुमारि।
स्वप्न देखि अनिरुद्ध को, भई काम वश नारि।।१२।।
स्वप्न टूट, जागी उषा, कही कहाँ हो नाथ।
सखी बीच लज्जित हुयी, कान्त, कान्त कर माथ।।१३।।

बाण सचिव कुम्भाण्ड सुजाना। निज तनया को सुत सम माना ।।
उषा सखी रही चित्रलेखा। कौतूहल वश ऊषहिं देखा।।१४।।
पूंछी कर धरि हाथ पियारी। केहिं खोजहुं तुम राजकुमारी ।।१५।।

ऊषोवाच–

स्वप्न एक सुन्दर नर देखा। कमल नयन पट पीत विशेषा।।१६।।
अधर अमृत सुठि मोहि पियावा। गयेउ कान्त बड़ कीन छलावा ।।१७।।

चित्रलेखा उवाच–

विरह व्यथा मैं करिहों दूरी। लइहों जाइ गयेउ कित दूरी ।।१८।।
अस कहि लेखा चित्र बनावा। देव मनुज गन्धर्व सुहावा।।१९।।
यदुवंसिन्ह कर चित्र उकेरा। राम कृष्ण प्रद्युम्न चितेरा।।२०।।
लखि प्रद्युम्न गई शरमाई। कछु विलम्ब आपन सुधि आई।।
जब अनिरुद्धहिं लखी कुमारी। इहै, इहै कहि लज्जित भारी ।।२१।।

दोहा- कृष्ण-पौत्र तिन्ह जानिके, तबहि व्योम-पथ जाइ।
कृष्ण सुरक्षित द्वारका, लेखा पहुँची आइ।।२२।।

सोवत तब अनिरुद्ध उठावा। योगकला निजपुर लइ आवा।।
शोणितपुर लेखा पहुँचावा। सखिहिं प्राणनाथ दिखलावा ।।२३।।
सुन्दर वर को पाइ कुमारी। मुदित विहार कीन सुकुमारी ।।२४।।
गन्ध पुष्प आसन तेंहि दीन्हा। भक्ष्य भोज्य देइ पूजन कीन्हा ।।२५।।
कन्यापुर अतिगुप्त कहावा। उषा प्रेम दिन दून बढ़ावा।।२६।।
रहइ प्रसन्न उषा दिन राती। लहि अनिरुद्ध न प्रेम अघाती।।२७।।

कुल दूषित कन्या करि दीना। कहेउ बाण सन चर अधीना।।२८।।
दोहा- अन्तः पुर रक्षित उषा, पुरुष सकैं नहि देखि।
सावधान रक्षक सकल, कारन अबुझ विशेषि।।२९।।
व्यथित बाण ऊषा गृह धावा। देखेउ तँह अनिरुद्ध बिठावा ।।३०।।
कामतनय त्रिभुवन कमनीयम्। पीत वसन अम्बुज नयनीयम्।।
कुण्डल कुन्तल बाहु विशाला। मन्दहास शोभित वरमाला।।३१।।
क्रीडा द्यूत करत यदुराई। कण्ठ माल कुंकुमहि सुहाई।।
उषा निकट बैठे तिन्ह देखा। चकित बाण मन भयउ विशेषा ।।३२।।
लखि अनिरुद्ध सैन्य बहु आये। वीर वर्य निज परिध उठाये।।
तब अनिरुद्ध लागि तँह कैसे। दण्ड धरे अन्तक हों जैसे ।।३३।।
सूकर यथा श्वान को मारे। यदु पुंगव सब सैन्य सँहारे ।।३४।।
दोहा- कुपित तभी बाणासुर, नागपाश से बाँध।
स्ववश कीन्ह अनिरुद्ध को, ऊषा मनहि विषाद।।३५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।

*

।। अथ त्रिषष्टितमोऽद्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- बिनु देखे अनिरुद्ध के, चार मास गये बीत।
यदुवंशी व्याकुल विरह, चिन्तित शोक परीत।।१।।
नारद आकर दिये बताई। नागपाश अनिरुद्ध बँधाई।।
शोणित पुर तब कीन पयाना। यदुकुल के श्री हरि भगवाना।।२।।
गद सारण युयुधान प्रबीरा। साम्ब प्रद्युम्न आदि रणधीरा।।
राम कृष्ण सँग लिये बहोरी। नन्द उपनन्द भद्र की जोरी।।३।।

शोणितपुर सब घेरेउ जाई। अक्षौहिणि द्वादश अधिकाई।।४।।
देखा गोपुर परिखा तोड़ी। बाण बराबर सेना जोड़ी।।५।।
बाण पक्ष से स्वयं पुरारी। सगण ससुत नन्दी असवारी।।
एक पक्ष ते रहे मुरारी। अपर पक्ष से लड़ त्रिपुरारी।।६।।
कार्तिकेय प्रद्युम्नहि जूझे। शंकर कृष्ण परस्पर बूझे।।
अद्भुत युद्ध कीन त्रिपुरारी। तुमुल नाद संग लड़े बिहारी।।७।।

दोहा- बाणासुर सँग सात्यकी, कूपकर्ण कुम्भाण्ड।
लड़े युगल बलराम से, बाण पुत्र से साम्ब।।८।।
ब्रह्मादिक सब देवता, चढ़ि चढ़ि व्योम विमान।
सकल सिद्ध चारण मुनि, देखे समर विधान।।९।।

भूत प्रेत गुह्यक यतुधाना। शंकर के गण फैले नाना।।१०।।
भागे तीक्ष्ण बाण के लागे। ठहरि सकें किमि हरि के आगे।।११।।
शंकर जो जो अस्त्र चलावा। बिनु, प्रयास श्रीकृष्ण नसावा।।१२।।
ब्रह्मशस्त्र ब्रह्मास्त्र निवारा। पर्वतास्त्र वायव्य सँहारा।।
अग्निशस्त्र पर्जन्य सम्हारा। नारायण पाशुपतहिं नेवारा।।१३।।
जृम्भणास्त्र श्रीकृष्ण चलावा। शिव समेत सेना मुंह बावा।।१४।।
तब प्रद्युम्न बाण शतमारे। कार्तिकेय शिव सदन सिधारे।।१५।।
कूपकर्ण कुम्भाण्ड गिराये। मुसल मारि हलधर मुसकाये।।१६।।
सात्यकि छाँड़ि कृष्ण पर धावा। बाणासुर क्रोध अति आवा।।१७।।

दोहा- बाणासुर प्रेरे तबहि, धनुष पाँच शत तानि।
एक धनुष पर बाण दोउ, सहसबाहु भय मानि।।१८।।

एक साथ हरि काटि शरासन। सारथि अश्व भेजि यमसादन।।
पाञ्चजन्य श्री. कृष्ण बजाये। सुनत देव गण मन हर्षाये।।१९।।
नाम कोटरा जननी आवा। बाण प्राण हित किये बनावा।।२०।।

नग्न देखि श्री हरि मुँह फेरे । भागि चला बाणासुर घेरे ।।२१।।
तीन पाद शिर ज्वर तब आवा । देखा शिवगण चले दुरावा ।।
दसहूँ दिशा जलन तब लागी । दौड़ा हरि सन शठ उन्मादी ।।२२।।
नारायण आपन ज्वर मारा । दूनउं ज्वर मिलि लड़त पछारा ।।२३।।

दोहा- वैष्णव ज्वर से दग्ध भा, शंकर ज्वर चिल्लान।
त्राहि माम् हरि सन कहा, पाहिमाम् भगवान् ।।२४।।

ज्वर उवाच–

बिनवउं अमितशक्ति परमेशा। जेंहि सेवत ब्रह्मादि सुरेशा ।।
आत्मरूप सर्ग स्थिति हेतू । विगत विकार सदा श्रुति केतू ।।२५।।
कर्म स्वभाव जीव तब माया। शरण गहौं रखु आपन दाया ।।२६।।
नाना रूप धरहु असुरारी । साधुन रक्षहु असुर सँहारी ।।
पृथ्वी भार उतारन आये । यदुकुल मौलि देव हरषाये ।।२७।।
तपत देह तव ताप मुरारी । शरणागत त्रयताप निवारी ।।२८।।

श्रीभगवान् उवाच–

त्रिशिरा तुमहिं न ताप जराये । निर्भय होत शरण मम पाये ।।
पढ़हि सुनहिं संवाद हमारे । तिन्ह के ज्वर नहि होत दुखारे ।।२९।।
अस कहि पशुपति ज्वर शिर नावा । गया बाण रथ चढ़ि फिरु आवा ।।३०।।

दोहा- सहस बाहु धारे विविध, अस्त्र शस्त्र संघात ।
क्रोधित हो श्रीकृष्ण पर, लगा करन प्रतिघात ।।३१।।

तब श्रीहरि निज चक्र चलावा। वृक्ष डारि सम बाहु गिरावा ।।३२।।
कटे बाहु बोले भवनाथा । भक्त बाण शिव कीन सनाथा ।।३३।।

श्रीरुद्र उवाच–

तुम व्यापक प्रभु वेद बखाना । शुद्ध हृदय देखहिं भगवाना ।।३४।।
व्योम नाभि मुख अग्नि सुरेता । स्वर्ग सिरस् दिक कान प्रचेता ।।

सूर्य नेत्र शशि मन अहमादी। उदधि उदर अरु भुज इन्द्रादी ।।३५।।
औषधि रोम मेघ तब केशा। ब्रह्मा मति तब धरम हृदेशा।।
सकल लोक तब देह मुरारी। परम पुरुष तुम पूज्य पुरारी ।।३६।।
धर्मत्राण हित तब अवतारा। सात लोक यश व्याप तुम्हारा ।।३७।।
अद्वितीय तुम एक मुरारी। माया तोर त्रिविध गुणधारी ।।३८।।
यथा सूर्य घन माया घेरा। रूप प्रकाशत विविध घनेरा।।
स्वयं प्रकाश तथा तुम स्वामी। गुण अरु गुणी प्रकाश निकामी।।३९।।

दोहा- तब माया मोहित मति, पुत्र दार गृह नेह।
डूबत मज्जत रात दिन, ममता भरा सदेह।।४०।।
नर शरीर को पाइ के, इन्द्रिय वश जे जाँहि।
चरण कमल सेवत नहि, सोचु मनुज ते नाहि।।४१।।

तुमहि छाँड़ि जे अन्य गहाई। छाँड़ि सुधा ते विष को खाई।।४२।।
मैं, ब्रह्मा अरु देव सकारे। शरणागत हैं प्रभू तुम्हारे।।४३।।
कारण आप जगत् के एका। भजन करहिं हम सहित विवेका।।४४।।
बाणासुर मम सेवक होई। अभय दान दीना मैं सोई।।
कृपा यथा प्रहलादंहि कीना। तथा प्रसाद बाण चह जीना।।४५।।

श्रीभगवान् उवाच–

कहेउ यथा भगवन त्रिपुरारी। देंउ अभय बाणहि भय हारी।।४६।।
प्रह्लादंहि पहिले वर–दीना। बध न करउं तब कुल आधीना।।४७।।
बलिसुत नहि है बध्य हमारा। भुजा काटि केवल मद झारा।।
धरा–भार सेना अति भारी। भारहरण हित तेंहि सब मारी।।४८।।

दोहा- चारिभुजा इसकी अजर, अमर रहें त्रिपुरारि।
बाणासुर तव पार्षद, प्रमुख होइ भय हारि।।४९।।

अभय पाइ बाणासुर धावा। सह अनिरुद्ध उषा लइ आवा।।५०।।

सुभग अलंकृत सुन्दर वासा। अक्षौहिणी सैन्य करि दासा।।
लीन अनुज्ञा शिव सन जाई। चले बधू सहित यदुराई।।५१।।
तोरण ध्वजा सजी रजधानी। सजी द्वारका अति शुभ खानी।।
शंख दुन्दुभी दिये बजाये। पुर अभिनन्दित हरि गृह आये।।५२।।
दोहा- कृष्ण विजय शंकर समर, कथा सुने मन लाय।
नहीं पराजित हो कहीं, विजय अवस सो पाय।।५३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः।।६३।।

*

।। अथ चतुः षष्टितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- एक बार राजन्! गये, उपवन यदू कुमार।
चारु प्रद्युम्न साम्ब गद, करने लगे विहार।।१।।
खेले बहुत देर सब भाई। लगी प्यास जल की सुधि आई।।
देखे कूप किन्तु जल नाहीं। अद्भुत जीव दिखा तँह पांही।।२।।
गिरगिट गिरि सम पड़ा दिखाई। लगे निकालन मिलि सब भाई।।३।।
चर्म रज्जु से खींच न पावा। विवश जाइ श्रीकृष्ण बतावा।।४।।
कमल नयन आये भगवाना। बाम हस्त खीचें घनश्यामा।।५।।
कर परसत कृकलास शरीरा। अद्भुत रूप धरा नर बीरा।।
स्वर्ण वर्ण गौरांग सुहावा। माल्य वस्त्र शुभ रूप बनावा।।६।।
दोहा- यद्यपि सब जानत हरी, तबहु जनावन लोक।
पूंछे, तुम हो कौन सुर, महाभाग! मन शोक।।७।।
कौन कर्म कीने तुम जाई। गिरकिट योनि यथा तुम पाई।।
लागइ उचित बतावहु नीके। जानत चहत लोग सब ही के।।८।।

श्रीशुक उवाच–

कीन प्रश्न गोविन्द ललामा। करि प्रणाम बोला अभिरामा।।९।।

नृग उवाच–

नृप इक्ष्वाकु तनय नृग नामा। दानिन्ह बीच मोर अभिधाना।।१०।।
अविदित नहि कछु तुमहि गोसाई। कहउं तदपि मैं आज्ञा पाई।।११।।
धरती मंह सिकता गिन कोई। व्योम नखत जाने कित होई।।
बरसत धारा गिनइ जो काहू। गिनि न सके गोदान निबाहू।।१२।।

दोहा– दूध देत तरुणी गऊ, सोना सींग मढ़ाय।
चाँदी खुर, बछड़ा सहित, दीन दुकूल ओढ़ाय।।१३।।

व्रती शील गुण आदि विचारी। द्विजन्ह दीन कपिला सुकुमारी।।१४।।
भूमि, गाय, घर, हाँथी घोड़े। तिल गिरि कन्या दीन न थोड़े।।
यज्ञ विधान किये बहु नाथा। वस्त्र, रत्न रथ द्विजन्ह सनाथा।।१५।।
एक बार इक गाय विछोही। मिली धेनु सँग जानु न ओही।।१६।।
दीन, ताहि एक ब्राह्मण पावा। यह हमार कहि विप्र दुरावा।।
यही धेनु मैं पहिले पायउं। दीन्ह नृपति, मोहि का समुझायेउं।।१७।।
करत विवाद विप्र दुइ देखा। उपजा मन सन्देह विशेषा।।१८।।

दोहा– दोउ बुलाइ विप्रन्ह कहे, देहु धेनु मोहिं तात।
एक लाख तुम धेनु लो, बदले में, हरषात।।१९।।

सेवक से गलती भइ भारी। नरक योनि से लेहु उबारी।।२०।।
दूसरि गाय न लेइहों जाई। लाख अयुत देइहों कित आई।।
असकहि दूनउ विप्र सिधारे। झगड़ि-झगड़ि सब काज बिगारे।।२१।।
अन्तकाल यम दूत लेवाई। दीन्ह यमपुरी मोंहि पहुँचाई।।२२।।
पूंछेउ यम शुभ पाप निहारी। पहिले कौन भोगिहऊ भारी।।
दान पुण्य चिरकाल तुम्हारा। पाप अल्प चहु भोगनि हारा।।२३।।

पहिले पाप कर्म फल चहऊं। तेंहि ते मैं गिरगिट बन गिरेऊँ।।२४।।

दोहा- ब्राह्मण सेवक दास तब, मन मँह राखी आश ।
स्मृति लोप न होइ मम, मन मँह धरि विश्वास ।।२५।।

जोगिहुं जाकर दरस न पावा। सो प्रभु मेरे आगे आवा।।
कर्म व्यसन बन्धन कर मूला। दरस तुम्हार हरत भवशूला।।२६।।
देव देव गोविन्द मुरारे । नारायण अव्यय असुरारे ।।२७।।
देवलोक अब जाउं मुकुन्दा। चरण सुरति राखहु गोविन्दा ।।२८।।
अमित शक्ति योगेश हरीशा । चरण कमल बन्दउं धरि शीशा ।।२९।।
अस कहि हरिंहि प्रदक्षिण कीना। गयेउ विमान देव पथ चीन्हा।।३०।।
तब माधव सब स्वजन बुलाये। क्षत्रिय धर्म तिनहि समुझाये ।।३१।।

दोहा- रंच मात्र धन भू सुरहिं, पावक नाँहि पचाय ।
अपने को राजा समुझि, क्षत्रिय काह बसाय ।।३२।।
हालाहल विष मानु नहि, औषधि ताहि उपाय।
विष तो ब्राह्मण धन कहूँ, जाकी नाहि दबाय।।३३।।
पियत हलाहल जन मरै, जल पाबकहिं बुझाय ।
ब्रह्म अग्नि कुल मूल को, दहै, वेद बतलाय ।।३४।।

बिनु सम्मति भूसुर धन लेई। तीन पुस्ति कर नासइ सोई।।
बल प्रयोग ब्राह्मण धन लेई । बीस पीढ़ि आन्हर सो होई ।।३५।।
जे मदान्ध नृप द्विज धन हरहीं। रौरव नरक घोर ते पर हीं।।३६।।
वृत्ति हरे द्विज अश्रु गिरावहिं। धरती रज कण बहुरि भिगावहिं।।३७।।
रज कण सम ते बरस बिताहीं। कुम्भीपाक नरक ते जाहीं ।।३८।।
स्वयं दत्त पर दत्त हरा हीं । ब्रह्म वृत्ति सम विष कछु नाहीं।।
साठ हजार बरस सन काला। कृमि विष्ठा के करहि नेवाला ।।३९।।
अल्पायुष नर द्विज धन चहहीं। मृत्यु भये सर्प बन रहहीं।।४०।।

करहु द्वेष जनि द्विज सन भाई। मारहिं, शापहि, शीष नवाई।।४१।।
करहुं त्रिकाल यथा परनामा। तेसैहिं करहु द्विजन सन्माना।।
जो मम आज्ञा लघिहे जाई। दण्ड हमार सो निश्चय पाई।।४२।।
जानि अनानि विप्र धन लेई। नृग इव नरक अवस सो सेई।।४३।।

दोहा- एहि विधि-सबहि बुझाइ हरि,स्वजन बन्धु भगवान्।
सकल लोक पावन चरित, किये भवन प्रस्थान ।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे चतुः षष्टितमोऽध्यायः।।६४।।

*

।। अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- एक बार बलभद्र मन, आया एक विचार ।
रथ बैठे गोकुल चले, देखन घर परिवार ।।१।।

गोप गोपिका कण्ठ लगाये। जननी जनक बन्दि सुख पाये।।२।।
तुम जगदीश्वर कृष्ण समाना। रक्षा कीन सबहि विधिनाना।।
मातु पिता निज गोद विठावा। अश्रु पात करि तेंहि नहवावा।।३।।
गोप यथावय वन्दन कीन्हा। बड़हि प्रणत लघु आशिष दीन्हा।।४।।
हांथहि हांथ लिये बलरामा। करंहि हास परिहास ललामा।।५।।
गये कृष्ण त्यागे भव भोगा। गद् गद गिरा प्रश्न कर लोगा।।६।।
राम कहहु सब कँह कुशलाई। गृह धन दार बीच सुधिआई।।७।।

दोहा- बड़े भाग तुम मारेहु, बहुत शत्रु कंसादि ।
सुहृद बन्धु स्वाधीन कर, दुर्ग बसहु पुत्रादि।।८।।

गोपिन हसति पूंछि बलरामा। सुखी कृष्ण बहु नारि ललामा।।
मातु पिता सब बन्धु कन्हाई। कबंहु करत सुधि देहु बताई।।९।।

मातु दरस हित कबहुं मुरारी। अइहैं एकउ बार अघारी ।।
गोपिन्ह सेवा सुधि करि श्यामा। देइहौं दरस कहहु बलरामा ।।१०।।
जेहि लगि पति सुत सकल कुटुम्बा। तजेउं, एक माधव अवलम्बा ।।११।।
तजेउ हमहि चलि गयेउ मुरारी। अब विश्वास करे को नारी।।१२।।
नगर नारि अति चतुर प्रवीणा। हम तो रही गँवार ग्रमीणा ।।
मधुर हास बश व्याकुल रहेउं। छाँड़ि कृतघ्न हमहिं चलि गयऊ।।१३।।

दोहा- कही एक गोपी तबहिं, औरु करहु कछु बात।
हमहि बिना जैसे उनहि,दिन हमार कटि जात ।।१४।।
सुमिरि कृष्ण की मृदुहँसी, प्रेम भरा दृक पात।
आलिंगन की सुधि करी, गोपी रोवत जात।।१५।।

तबहिं दाउ सन्देश सुनाये। दीन सान्त्वना सब सुख पाये ।।१६।।
रहे मास दुइ तँह बलरामा। गोपिन्ह मधु माधव विश्रामा ।।१७।।
पूर्ण चन्द्र यमुना के कुंजा। कुसुम कुमुदिनी अलिंगन गुंजा।।
गोपिन्ह सँग लिये बलरामा। करत विहार देत सुख वामा ।।१८।।
वरुणहि भेजी वारुणी मनोहर। किये सकल बन सुरभित सुन्दर।।१९।।
मधु धारा तँह मरुत पठावा। गोपिन्ह सँग छके सुख पावा ।।२०।।
गोपिन करत राम गुण गाना। विहरत श्री बलराम सुजाना ।।२१।।
पुष्प हार शित कण्ठ विराजा। स्मित मुख मृदु स्वेदहिं छाजा ।।२२।।

दोहा- जल क्रीडा के हेतु तब, यमुना लिये बुलाय।
नहि आई, यह जानिके, हल की नोक लगाय ।।२३।।

यमुने! कीन अवज्ञा मेरी। सौ सौ धारा करिहों तेरी।।२४।।
यमुना दौड़ि चरण शिर नावा। विनु भय कहौ कौन पतियावा ।।२५।।
महाबाहु बलराम भुलानी। तब विक्रम मैं अवगुण खानी।।
एक अंश तब धरनी धारा। तुमहिं सकल विश्व आधारा।।२६।।

तब प्रभाव मैं भूली स्वामी। क्षमहु नाथ प्रभु अन्तर्यामी ।।२७।।
राम देखि यमुना की व्रीडा । गोपिन्ह संग कीन जलक्रीड़ा।।२८।।
जल विहार करि बाहर आवा । नीलवसन भूषण पहिरावा।।२९।।
नीलवसन मणि भूषण धारे । ऐरावत सम बलदाऊ न्यारे।।३०।।

दोहा- आजहुँ तँह यमुना लगत, खिंची खिचीं सी रेख।
मानहु रवि तनया कहत, देख देख बल देख ।।३१।।
येंहिं प्रकार व्रज में रमत, बीती बहुतें रैन ।
बलदाऊ के प्रेम से, गोपिन पाई चैन।।३२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे पञ्च षष्टितमो ऽध्यायः।।६५।।

*

।। अथ षट् षष्टितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- गोकुल में जब ते गये, श्री बलराम ललाम ।
वासुदेव श्रीकृष्ण मैं, नृप करूष अभिमान।।१।।

पौण्ड्रक नृप अतिशय अज्ञानी। स्वयं कृष्ण मानत अभिमानी ।।
मूर्ख सचिव राजहिं बहकाये। जगत् त्राण हित धरनी आये ।।२।।
पौण्ड्रक दूत द्वारका भेजा। स्वयं कृष्ण के चिह्न सहेजा ।।३।।
सभा मध्य बैठे यदुराई। आइ दूत सन्देश सुनाई।।४।।
वासुदेव मैं और न दूजा। छोड़ु नाम नहि पावहु पूजा।।५।।
यादव तुम मम चिह्न धरावा। छाँड़ि सकल मम शरण गहावा।।६।।

श्रीशुक उवाच-

मूढ़ मन्दमति पौण्ड्रक राजा। सुनि सँदेश सब हँसे समाजा ।।७।।

दोहा- बोले श्री भगवान तब, मूढ़ करहु अभिमान।
चक्र आदि सब छोड़िहों तुम पर करि अभियान ।।८।।

मूढ़ तोंहि समुझावत जेंही । मरिहें शीघ्र समर मँह तेंही ।।
चील गीध तोंहि खइहै जाई । श्वान शरण तुम पइहों आई ।।९।।
पौण्ड्रंहि जाकर दूत सुनावा । रथ चढ़ि कृष्ण कीन्ह पुर धावा ।।१०।।
अक्षौहिणि दुइ लइ पौण्ड्रक आवा । नगर निकस रणभूमि बनावा ।।११।।
पौण्ड्रक सखा काशिपुर राजा । तीन अक्षौहिणी सहित विराजा ।।
पौण्ड्रक नृपति कृष्ण जब देखा । उपजा उर आश्चर्य विशेषा ।।१२।।

दोहा- शंखचक्र धारी नृपति, गदा शार्ङ्ग धनु हाथ ।
कौस्तुभ बनमाला धरे, नृपति लखे यदुनाथ ।।१३।।

पीतवसन गरुण ध्वज धारी । शिर किरीट कुण्डल भुजचारी ।।१४।।
कृत्रिम भूषा वसनहि धारे । हँसे कृष्ण प्रतिरूप निहारे ।।१५।।
गदा प्रास तोमर तलवारा । अरिगण हरि पर कीन प्रहारा ।।
प्रलय काल जिमि अग्नि जलावा । कृष्ण तथा सब शत्रु गिरावा ।।१६।।
गदा चक्र असि रिपु पर मारे । गज रथ सैन्य सकल संहारे ।।१७।।
समर भूमि लागत विकराला । गज खर उष्ट्र रक्त बह नाला ।।
रंग भूमि जिमि पशुपति प्यारी । शूरहिं अति उत्साह प्रचारी ।।१८।।

दोहा- पौण्ड्रक से बोले हरी, दूत कही जो बात ।
अस्त्र शस्त्र सब छोड़िहों, अब झेलो संघात ।।१९।।

मूर्ख! छुड़ावहुँ आपन नामू । देखहु आजु समर परिणामू ।।
करि न सकूँ यदि आनु लड़ाई । शरण गहों मैं तेरे आई ।।२०।।
असकहि विरथ पौण्ड्रकहि कीना । चक्र काटि शिर-अन्तक दीना ।।२१।।
पौण्ड्रक सखा काशिपति मारे । यथा वायु सरसिज सुम डारे ।।२२।।
सखा सहित पौण्ड्रक को मारे । पुरी द्वारका कृष्ण पधारे ।।२३।।

भले कुभाव धरे हरि रूपा। पौण्ड्रक पाये मुक्ति सरूपा ।।२४।।
कुण्डल सहित गिरा शिर देखा। राजद्वार भा शोक विशेषा।।२५।।

दोहा- काशिराज महिषी सकल, बान्धव पुत्र समेत।
नाथ नाथ कहते हुए, व्याकुल हुये अचेत।।२६।।

रहा सुदक्षिण सुत नृप प्यारा। ऊर्ध्व देह सब कर्म सम्हारा।।
मन हीं मन संकलप सो कीन्हा। पितृघात कर बदला लीना।।२७।।
कुलगुरु जोरि शम्भु आराधे। रहा सुदक्षिण रिपु मन बाधे।।२८।।
काशीपति वर मांगन कहेऊ। पितृघात रिपु मारन चहेऊ।।२९।।
दक्षिणाग्नि की करहु साधना। द्विजन संग अभिचार मन्त्रणा ।।
प्रमथ संग जब प्रकटे आगी। करइ सत्य संकल्प प्रमादी ।।३०।।
आशुतोष गै अस समुझाई। कीन प्रयोग सुदक्षिण जाई ।।३१।।
यज्ञ पूर्ण उपजे अति घोरा। अग्निदेव अति तपन कठोरा।।
शिखा रोम तनु कपिश पिशंगा। बरसत अग्नि नयन सब अंगा ।।३२।।
नग्न देह मुख भृकुटि कराला। लिये त्रिशूल प्रकट तनु ज्वाला ।।३३।।
ताल सदृश पद कंपित धरनी। वपु अनुरूप करन चह करनी ।।
प्रमथ भूत संग नगरी आवा। वपुष तेज सब दिशा जलावा ।।३४।।

दोहा- दक्षिण अनल विलोकि के, डरे पुरी के लोग।
दावानल व्याकुल यथा, होय हरिण को भोग।।३५।।

पाशा खेलि रहे यदुराई। त्राहि त्राहि धुनि काने आई ।।३६।।
देखा स्वजन भीत भगवाना। डरहु नांहि हँसि कहे सुजाना ।।३७।।
जानत सकल चराचर स्वामी। माहेश्वर कृत्या प्रभु जानी।।
चक्रहि आज्ञा दीन मुरारी। नासहु जाइ तपन तप मारी ।।३८।।
सूर्य कोटि सम चक्र प्रभावा। प्रलयानल इव तुरतहिं धावा।।
दक्षिण अग्नि बुझी तेहिं आगे। भूत प्रमथ सब डरपत भागे ।।३९।।

ऋत्विक सहित सुदक्षिण मारा। निज अभिचार भयेउ संहारा।।४०।।
दोहा- बड़े बड़े प्रासाद को, काशीनगर विशाल।
भस्मसात करि चक्र ने, बना नगर का काल।।४१।।
दोहा- विष्णु चक्र लौटा बहुरि, कृष्ण पास सविशेष।।४२।।
सुनत कथा श्री विष्णु की, मेटत सकल कलेश।।४३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे षट्ट षष्टितमोऽध्यायः।।६६।।

*

।। अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।।

राजोवाच–

दोहा- मुने! बहुरि चाहहुं सुनत, अद्भुत शक्ति अपार।
अप्रमेय बलराम के, शौर्य कर्म समुदार।।१।।

श्रीशुक उवाच–

द्विविद नाम वानर बलशाली। नरकासुर का मित्र कुचाली।।
मैन्द अनुज सुग्रीव सखाया। सकल जीव कीने निरुपाया।।२।।
भौमासुर बध सुनि बउराना। नगर अनेक दहेउ विधि नाना।।३।।
शैल उखाड़ि नगर पर डारा। देश अनर्तहिं कीन प्रहारा।।४।।
कबहुँ जलधि मैह पैठइ जाई। जल उलीचि तट देश डुबाई।।५।।
ऋषि आश्रमहिं वृक्ष सब तोड़े। यज्ञकुण्ड दूषित कर छोड़े।।६।।
नर नारिन्ह गिरि गुफा छिपाई। द्वार देत गिरि शिला ओढ़ाई।।७।।
दोहा- एक बार तिय दूषण, नारिन्ह करि अपमान।
गीत सुनत मंजुल कपि, रैवत गिरि तब आन।।८।।
तँह देखा यदुवंश विभूषण। श्री बलराम कुमुद कुल पूषण।।

बनमाली शुभ गौर शरीरा। नारिन्ह मध्य सोह क्षवि धीरा।।९।।
जनु गजराज करिणि के संगा। वारुणि मद शोभित शुभ अंगा।।
गान करत मधु मदन अहीशा। अरुन नयन झूमत रुचि शीशा।।१०।।
तबहिं द्विविद शाखा चढ़ि आवा। किल किलाइ निज रूप दिखावा।।११।।
करत धृष्टता द्विविदहिं देखा। बलदाऊ प्रिय नारि विशेषा।।१२।।
गुदा दिखाइ कीन अपमाना। मुँह मटकावत हलधर जाना।।१३।।

दोहा- पत्थर ढेला फेंक बल, द्विविद कीन निज त्रान।
मदिरा कलश उठाइ कपि,वञ्चित किय बलराम।।१४।।

मदिरा कलश तोड़ि कपि दीन्हा। वसन फाड़ि कोपित बल कीन्हा।।१५।।
बली द्विविद कर वारम्बारा। श्री बलराम शेष अपचारा।।१६।।
कपिहिं धृष्टता हलधर देखा। मुसल उठाई लीन अहीशा।।१७।।
महाबली कपि शाल उठावा। बलरामहिं तकि फेंकि पठावा।।
पर्वत इव अविचल रह रामा। देखा कपि तरु किय विश्रामा।।१८।।
निज सुनन्द मूसल बल मारा। कपि के शिर बही शोणित धारा।।१९।।
गेरू जिमि पर्वत पर झरई। रुधिर गिरत अविचल कपि रहई।।
दूसर तरु उखाड़ कपि लीना। पत्र हीन करि बल पर दीना।।२०।।

दोहा- सौ सौ खण्ड किये बल, कपि पुनि कीन प्रहार।
क्रुद्ध अहीश तेंहि काटि के, द्विविदहिं दिये पछार।।२१।।

वृक्ष उपारि लड़त कपि राया। बन तें वृक्षन कीन सफाया।।२२।।
शिला फेंकि कपि करत प्रहारा। चूर्ण करत तेहिं बल लघु सारा।।२३।।
ताड़ बाहु मुठिका कपि मारा। रौहिणेय हँसि सहे प्रहारा।।२४।।
हल मूसल उठाइ बल लीना। कण्ठ मेलि हल मुसल प्रवीना।।
रुधिर वमत धरनी पर आवा। कपि अपनी करनी फल पावा।।२५।।
नाव हिलत जिमि वायु झकोंरा। धरती कँपी शब्द चहुँ ओरा।।२६।।

जय जय करत सिद्ध मुनि आये। फूल बरसि बलहि शिरु नाये ।।२७।।
दोहा- एहि विधि द्विविदहिं मारि बल, जगत त्राण हित राम।
सकल लोक अस्तुति करत, नगर प्रविश भगवान्।।२९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे सप्त षष्टितमोऽध्यायः।।६७।।

*

।। अथ अष्टषष्टितमोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- सुता सुयोधन लक्ष्मणा, हेतु स्वयम्बर जान।
बीर मध्य हरि ले गये, साम्ब बीर बलवान ।।१।।
कौरव कहे ढीढ यह बालक। कन्या हरेउ वृष्णि कुल घालक ।।२।।
बाँधहु दुष्ट, यादवहिं जाना । हमसे पाइ भूमि उत्ताना ।।३।।
बन्दी सुत सुनि यदि यदु आवा । चूर-चूर करि दर्प पठावा।।४।।
अस विचारि शल कर्ण प्रबीरा। यज्ञकेतु दुर्योधन धीरा ।।
सम्मति कुरु वृद्धन सब पावा। साम्बहिं बन्धन यत्न बनावा।।५।।
देखा साम्ब कौरवन पीछे । डटे धनुष ले सिंह सरीखे।।६।।
आगे आइ कर्ण ललकारा। खड़ा होहु यदुकुल अंगारा।।
निकट आइ बहु बाण चलाये। गगन बीच अम्बुद इव छाये ।।७।।
बरसत बाण साम्ब लख कैसे। क्षुद्र हरिण मृगपति लख जैसे।।८।।
दोहा- कर्ण आदि छः बीर पर, पृथक रथहिं असबार।
एक एक छः बाण से, कीने साम्ब प्रहार ।।९।।
चारि बाण चहुँ अश्वन मारे। एक बाण सारथि पर डारे।।
रथिंह एक शर घायल कीना। शत्रुन मुंखहि प्रंशसा छीना ।।१०।।

सब मिलि साम्बहि लड़त लड़ाई। अश्व मारि सारथिंहि गिराई।।
धनुष काटि विरथ तेंहि कीन्हा। रुक्मिणि तनय बाँध कुरु लीन्हा।।११।।
विजय मानि कौरव घर आये। सहित लक्ष्मणा साम्बहि लाये।।१२।।
नारद जाइ यदुन्ह बतलावा। उग्रसेन रण कँह उक सावा।।१३।।
तबहिं सबहिं हलधर समुझाये। यदु कौरव रण तेंहि न सुहाये।।१४।।
कुल गुरु वृद्धहिं आगे कीन्हा। हास्तिनपुर हलधर मग चीन्हा।।१५।।

दोहा- नगर पहुँचि उपवन रुके, भेजे उद्धव राम।
कौरव की रणनीति का, करत रहे अनुमान।।१६।।

उद्धव जाइ सबहिं सनमाने। भीष्म द्रोण धृतराष्ट्र बखाने।।१७।।
आयउ राम बताये सबहीं। मंगल पाणि चले कुरु तबहीं।।१८।।
अर्ध्य समर्पि किये परनामू। यथा योग बय मिले रामू।।१९।।
कीन परस्पर कुशल बहोरी। धीर गिरा कह हलधर थोरी।।२०।।
उग्रसेन नृप आज्ञा दीन्हीं। करहु सो बेगि समय शुभ चीन्ही।।२१।।
सब मिलि बाँधेहु साम्ब अकेला। क्षमा करउं नहि बढ़इ झमेला।।२२।।
हलधर कहेउ शक्ति अनुरूपा। सुनि क्रोधित भये कुरु कुल भूपा।।२३।।

दोहा- अहो! परम आश्चर्य यह, काल बली दिखलात।
पैरों की जूती, लखो, करत मुकुट से बात।।२४।।

यदु वंसिन्ह सँग ब्याह हकारी। सह भोजन सह रहनि विचारी।।
किये बराबर अपने आजू। हमरि दीन यदु भोगत राजू।।२५।।
छत्र चँवर सिंहासन भोगे। हमरि उपेक्षा मुकुटादिक शोभे।।२६।।
अब यादव नहि शासन योगू। तजहिं नृपति पद लांछन लोगू।।
बाढ़त विष अहि दूध पियाये। हमरी कृपा पाइ शठियाये।।२७।।
भीष्म द्रोण अर्जुन विनु दीन्हे। इन्द्रहु आपन भाग न छीने।।
सिंह ग्रास किमि मेखहि पावा। यदुकुल नृप सब मोर बनावा।।२८।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- वंश, बन्धु परिवार का, कौरव को अभिमान।
बलहि बहुत दुर्वचन कहि, कीन नगर प्रस्थान ।।२९।।

कुरुजन केरि धृष्टता देखी। सुनत दुर्वचन क्रोध विशेषी।।
तमतमाइ बोले बलरामा । हँसी क्रोध दुइ गिरा प्रमाना।।३०।।
पशु इव दण्ड न आन उपाई। मद वश शान्ति न उद्धत पाई।।३१।।
कृष्ण कुपित यदुगण समुझाये। शान्ति करावन हम यँह आये।।३२।।
दुष्ट मन्द मति कलह पियारी। इनहिं लखहु देत मोंहि गारी।।३३।।
उग्रसेन नहि राजा जानहि । जाकर आयसु इन्द्रहु मांनहि।।३४।।
कीन सुधर्मा वश मँह जोई । पारिजात तरु लायहु सोई।।३५।।

दोहा- चरण युगल सेवत सदा, लक्ष्मी दासी मान।
वे लक्ष्मीपति कृष्ण भी, तजहिं राज सम्मान ।।३६।।

जेंहि पग धूरि मुकुट पर लेहीं। लोकपाल सब पूजत तेंहीं।।
ब्रह्मा शिव जेहि पूजि अनन्ता। सोइ कृष्ण अज श्री भगवन्ता।।
पद रज धारति लक्ष्मी गंगा । ताहि नृपासन कतहुँ असंगा ।।३७।।
कुरुहि दीन भुंइ यादव रहहीं। कौरव शिर यादवकुल पनहीं ।।३८।।
मदमाते कौरव कुल भाई। इनकी बात न जात सहाई।।३९।।
कौरव हीन करउं महि आई। क्रुद्ध राम हल लिये उठाई।।४०।।
हलहिं नोक सब नगर उजारा। हलधर गंगधार चह डारा।।४१।।

दोहा- सकल नगर तब कौपेउ, देखि गिरत जलधार।
मानहुं बड़ जलयान कोउ, गिरत उठत मझधार ।।४२।।

आये सकल साम्ब करि आगे। सहित लक्ष्मणा कातर लागे ।।४३।।
राम शेष तुम जगदाधारा । मूढ़ न जानउं तेज तुम्हारा।।४४।।
स्थिति लय पालत तुम स्वामी। सर्वाधार अनीश अकामी।।

सकल लोक तुम खेलन हारे। सृष्टि खिलौना सरिस तुम्हारे।।४५।।
सहस माथ तुम धरनी धारे। प्रलय काल शेष तुम प्यारे।।४६।।
लोक सिखावन कीने क्रोधा। त्रिभुवन मंह को तुम सम योधा।।४७।।
सर्व शक्तिधर अव्यय देवा। शरण पड़े हम करिबे सेवा।।४८।।

श्रीशुक उवाच–

कौरव करत प्रार्थना जानी। भये, प्रसन्न राम सन्मानी।।४९।।
दीन दहेज सुयोधन भारी। बारह सौ कुञ्जर शृंगारी।।५०।।
दस सहस्त्र घोड़े नृप दीन्हे। छ हजार रथ आगे कीन्हे।।
पुत्री हित दासी उपहारा। स्वर्ण कण्ठ सो दीन हजारा।।५१।।
अंगीकृत करि सब उपहारा। सहित दम्पती नगर पधारा।।५२।।
नगर पहुँचि बलभद्र सुनाये। जो कछु किये और जो पाये।।५३।।

दोहा– दक्षिण दिशि उन्नत कछु, नगर हस्तिना लाहु।
गंगाधार ढुकत जिमि, कहत राम बल बाहु।।५४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे अष्टषष्टितमोऽध्यायः।।६८।।

*

।। अथ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– नरकासुर को मारिकरि, नारिन संग वियाह ।
एक अकेले कृष्ण को, देखन नारद चाह ।।१।।

नारद उर चिन्ता अति भारी। एक साथ हरि बरीं कुमारी।।
सोलह सहस रही राजकुमारी। कृष्ण अकेल रहे भयहारी।।२।।
हरि लीला सोइ देखन चाहा। देवऋषी मन भयउ उछाहा।।
पुरी द्वारका जाइ पधारे। पुर उपवन कुसुमित अलि प्यारे।।३।।
कुसुमित कमल सरोवर नीके। सारस हंस सुबोल अमी के।।
शोभित नव लख भवन विराजे। रजत फटिक मणि सब पर छाजे।।४।।
मरकत मणि आँगन मंह सोहे। स्वर्ण जटित सब कर मन मोहे।।५।।
राजमार्ग आयत चौराहे। सभाभवन मन्दिरहिं सराहे।।
लगे पताके लाग न घामा। जल सिंचित–उपवन आरामा।।६।।

दोहा– अन्तःपुर पूजित सदा, लोक पाल के साथ।
कुशल विश्वकर्मा जिन्हे, सिरजे अपने हाथ।।७।।

सोलह सहस भवन तँह देखा। नारिन्ह रुचि तँह रचे विशेषा।।
एक भवन मँह पहुँचे जाई। देव ऋषी नारद हरषाई।।८।।
इन्द्रनीलमणि भीति सँवारी। मूंगा खम्भ विदूर्य किवारी।।९।।
मुक्ता झालर सोह चँदोंवे। हाथी दाँत सु आसन होवे।।१०।।
दासी दास अलंकृत सोहे। स्वर्णाभरण नयन मन मोहे।।११।।
रत्न–प्रदीप करहिं तम नाशा। अगरु धूम व्यापहिं चहुँ आशा।।
जानि मेंह नाचहिं सब ओरा। बलभी बैठे मोर चकोरा।।१२।।
बैठे तँह देखे यदुनाथा। रुक्मिणि व्यजन डोलावति हाथा।।

रूप समान हजारों दासी। यद्यपि टहल करत सुख राशी ।।१३।।
नारद देखि उठे यदुराई । हाथ जोड़ि आसन बैठाई।।१४।।
पद पखारि शिर मांहि लगावा। जगद्गुरू गुरु ब्राह्मण पावा।।१५।।
अमृत बचन बोले यदुनाथा। करउं सो काज बतावहु नाथा।।१६।।

नारद उवाच–

दोहा– अद्भुत नहिं तुम्ह नाथ कँह, जगत् चराचर स्वामि।
दुष्ट दलन सज्जन हित, जन्म लीन प्रभु आनि।।१७।।

देखेउ चरण कमल तव स्वामी। ब्रह्मादिक तव आदि न जानी ।।
करउ कृपा ऐसेइ तुम देवा। सुधि तुम्हार, चरणन रति सेवा ।।१८।।
मायापति प्रभु लीला करेऊ। देखन भवन अन्य ऋषि गयऊ ।।१९।।
खेलत चौसर उद्धव सँग जाया। पूजित कीन कृष्ण मुनि राया ।।२०।।
बनि अजान पूंछे यदुराया । कब आये ऋषि! पूरन काया।।२१।।
देउ सुअवसर सेवउ नाथा । नारद चकित देखि यदुनाथा ।।२२।।
फिर दूसर घर गयेउ मुनीशा । देखे सुत संग खेल हरीशा।।
एक भवन देखे मुनिराई। जात नहान करन यदुराई।।२३।।

दोहा– यज्ञ करत कौनेउ भवन, आहुति कतहूँ देत ।
कतहु जिमावत विप्रगण, जूठन उनकर लेत ।।२४।।

सन्ध्या वन्दन करत कन्हाई। मौन जपत कहुँ ब्रह्म दिखाई।।
कतहुँ खड्ग लै करत तयारी। कतहुँ ढाल रोपत बनवारी।।२५।।
कतहुँ त गज चढ़ि करत पयाना। कतहुँ त बन्दी करत बखाना ।।२६।।
उद्धव संग मन्त्रणा करते । जल क्रीडारत कतहुँ विचरते ।।२७।।
करत गोदान अलंकृत कतहूँ। सुनत पुराण रहे हरि कतहूँ।।२८।।
प्रिया संग करि हँसी ठिठोली । सेवत अर्थ काम प्रिय बोली।।२९।।
कतहुँ ध्यान धरि बैठे स्वामी। गुरु सेवा रत कतहुँ निकामी।।३०।।

दोहा- कतहुँ करत विग्रह प्रभु, कतहुँ सन्धि में लीन।
सज्जन हित चिन्ता करत, राम संग आसीन ।।३१।।

लड़का लड़की कतहुँ वियाहत। सदृश देखि कुल धर्म निबाहत।।३२।।
विदा करत कहुँ कन्या देखे। कतहुँ बोलावत बधू विशेषे।।३३।।
यज्ञ करत कहुँ देव बुलाये। कुआँ बाग मठ कतँहु बनाये।।३४।।
यादव लइ मृगया रत कबहूँ। याग हेतु पशु मारत कतहूँ।।३५।।
प्रजा भाव निरखत प्रभु कबहूँ। भेष बनाइ विचर रह तहहूँ।।३६।।
माया मय प्रभु देखे जबहीं। मुसकुराइ नारद कह तबहीं।।३७।।
ब्रह्मादिक तव जानि न माया। जानेउं तब प्रसाद यदुराया।।३८।।
आयसु देउ जांउ मैं श्यामा। करउं सदा गुणगान निकामा।।३९।।

श्रीभगवान् उवाच–

धरम सिखावन करउं मैं कामा। पुत्र! लहहु मन मँह विश्रामा।।४०।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- एहि विधि धर्म धुरीण प्रभु, देखेउ नारद जाइ।
सदा रहत सब नारि संग, सकल लोक हरषाइ।।४१।।

हरि अनन्त हरि शक्ति अनन्ता। विस्मित नारद रहे घुमन्ता।।४२।।
पुरुषारथ रत देखे स्वामी। पूजित नारद चले निकामी।।४३।।
मानुष रूप धरे हरि देखे। सोलह सहस वर नारि विशेषे।।४४।।
जन्म स्थिति लय कारण श्यामा। अगम अगोचर श्री भगवाना।।
श्रवण गान जो करिहे कोई। भगवद् भक्ति पाव जन सोई।।४५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोन सप्ततितमोऽध्यायः।।६९।।

*

।। अथ सप्ततितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– प्रातकाल कुक्कुट ध्वनि, श्रवण सुनत खिसियानि।
श्याम गात लिपटी पिया, विरह सोचि अकुलानि ।।१।।

सुर द्रुम सुरभित बहत बयारी। गुंजत भृंग दुवारि दुवारी।।
कलरव खगकुल करत पराहीं। मानहु बन्दि जगावन जाहीं ।।२।।
बाहुपाश लिपटी रुकमिनी। समुझि प्रभात होत अनमनी ।।३।।
प्रात काल उठि के यदुराई । आत्मलीन मन ध्यान लगाई।।४।।
स्व प्रकाश एक ब्रह्म स्वरूपा। स्वगत सजाति भेद अनुरूपा।।५।।
ध्यान बाद शुचि नीर नहाये । नित्य नियम जप होम कराये।।६।।
उदित सूर्य कँह अरघ प्रदाना। देव पितर ऋषि तर्पण माना ।।७।।

दोहा– दीन्ह सवत्सा दान प्रभु, धेनहुं सींग मढ़ाइ।
मोती माला कण्ठ में, खुर मँह रजत लगाइ ।।९।।

दोहा– धेनु विप्र कुल वृद्ध सुर, गुरु जन शीश नवाइ ।
मंगल मय शुभ वस्तु को, परस रहत यदुराइ ।।१०।।

निज शरीर शोभा करि श्यामा । भूषण वसन लसत अभिरामा।।
आज्य मुकुर निज रूप निहारे। द्विज देवन के पाँव पखारे।।११।।
पुरवासिन मन पूरन हारे। सकल प्रजाजन कीन सुखारे ।।१२।।
माला चन्दन पान बहोरे। मित्र नारि कोउ बचा न ओरे।।१३।।
एतना करत रहे जब श्यामा। सारथि रथ लाये अभिरामा ।।१४।।
सारथि हाथ गहे श्री धामा। चढ़े साथ उद्धव जिमि घामा ।।१५।।

दोहा– अन्तःपुर की रानियाँ, लाज–प्रेम से देखि।
बड़े कष्ट देती विदा, हँसत श्याम मन लेखि ।।१६।।

यदुवंसिन्ह सँग जाइ विराजे। सभा सुधर्मा अनुपम छाजे ।।

भूख प्यास छः भीति न घेरी। नाम सुधर्मा सभा घनेरी।।१७।।
अंग कान्ति शुचि दिशा सुहाई। सभा भवन बैठे यदुराई।।
उडुगन बीच सोह शशि जैसे। यदु वंसिन हरि सोहत तैसे।।१८।।
हास लास नर्तन तँह होई। सेवा करत गुनी सब कोई।।१९।।
वीणा मुरज मृदंग बजाये। मागध सूत बन्दि गुन गाये।।२०।।
भूसुर ब्रह्म कहंहि हरषाई। सुनत कृष्ण नृप कथा बुझाई।।२१।।

दोहा- एक बार अद्भुत पुरुष, आया पहिली बार।
द्वारपाल पूछे हरिहिं, पहुँचाये प्रतिहार।।२२।।

हाथ जोड़ि हरिबन्दन कीना। कहेउ मगध बन्दी नृप दीना।।२३।।
जरासन्ध दिग्विजय रचावा। जे राजा शिर नाहि झुकावा।।
जरातनय तेहि बन्दि बनावा। बीस सहस नृप दास करावा।।२४।।
कृष्ण कृष्ण अतुलित बलशाली। शरणागत रक्षक बनमाली।।२५।।
कालरूप हे कृष्ण नमामी। जीव विकर्म निरत खल कामी।।
भगति विमुख सब लोक सकामा। आशा लता सँजोवहि नाना।।२६।।
जगन्नाथ प्रभु सज्जन पालक। कलावतार, दुष्टकुल घालक।।
पुण्य पाप नहि जानउं स्वामी। तव सेवारत तव अनुगामी।।२७।।

दोहा- स्वप्न सरिस नृप पद प्रभो, यह शरीर निर्जीव।
छाँड़ि आत्म सुख शाश्वत, माया परवश जीव।।२८।।

शरणागत वच्छल भगवाना। त्राहि त्राहि हे कृपा निधाना।।
चरण कमल तव शोक नसावा। मागध बन्दी देहु छुड़ावा।।
अयुत नाग बल मागध सोई। भेड़ सरिस राखे नृप गोई।।२९।।
बार अठारह युद्ध रचाये। सत्रह बार प्रभु आप हराये।।
एक बार मागध जो जीता। हुआ जरासुत तदपि अभीता।।
मानव चरित आप जो कीन्हा। करहु नाथ देहु तेहि चीन्हा।।३०।।

दूत उवाच–

दोहा– मागध बन्दी सकल नृप, चरण शरण तब आइ।
दर्शन चाहत आपके, कृपा करहु यदुराइ ।।३१।।

श्रीशुक उवाच–

दूतहिं इतना कहत पधारे । देव ऋषी सुर कार्य सँवारे।।
स्वर्णिम जटा सोह शिर कैसे। अरुणाचल रवि सोहत जैसे ।।३२।।
देखि ऋषिहिं हरि उठि बैठारे। वन्दन कीन सभाजन सारे।।३३।।
आसन देहि हरि पूंछत तेहीं। वाणी मधुर तृप्त मन कीन्ही।।३४।।
तीनउ लोक कुशल कहु नारद । विचरत रहत ज्ञान गुण पारद ।।३५।।
नहि कछु अविदित तुमहि गोसाई। पाण्डव इच्छित देहु बताई।।३६।।

नारद उवाच–

दोहा– देखी तब माया विभो, शिव विरंचि दुर्बोध।
यथा दारु भीतर अनल, जीवहि व्याप अमोघ।।३७।।

निज माया जग रचहु मुरारी। सत्य भास तब सृष्टि खरारी ।।
को जानइ का करिहो स्वामी। अविगत गति किमि जान सकामी।।
बार बार प्रभु विनवउं तोंही । माया दूरिहिं राखेउ मोही ।।३८।।
जन्म मृत्यु वश नाचत जीवा । जानत नाहि मुक्ति कब सीवा ।।
दीपक इव अवतार .तुम्हारा । खोज लेइ पथ, जीव सहारा ।।३९।।
परब्रह्म सब जानहुं नाथा । कहहुं तदपि कारज कुरुनाथा ।।४०।।
राज सूय मख चाहत कीना। नृपति युधिष्ठिर तब अधीना।।४१।।

दोहा– तेंहि मख में, सब आइहै, देवादिक नृप लोग ।
सभी यशस्वी मानि है, दर्शन का शुभ योग ।।४२।।

सोरठा–तब दर्शन से नाथ, कहहु कवन फल ते लहहिं।
श्रवण ध्यान से आप, तारि देहु जब अन्त्यजहिं।।४३।।

त्रिभुवन मंगल कीर्ति तुम्हारी। स्वर्ग धरा पाताल पसारी।।
भोगवती पाताल विराजी। मन्दाकिनी नाक में साजी।।
धरा पवित्र करति जो कोई। गंगा नाम विमल शुभ होई।।४४।।

श्रीशुक उवाच–

यद्यपि सभा चाह रण कीना। जरासन्ध निग्रह मन चीन्हा।।
उद्धव से पूंछे यदुनाथा। सुस्मित आनन गिरा सनाथा।।४५।।

श्रीभगवान् उवाच–

सुहृद सखा तुम नयन हमारे। कहहु उचित हम करिहि विचारे।।४६।।
सकल लोक पति स्वामी पूंछत। शिर धरि आयसु उद्धव बूझत।।४७।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दहाय स्केष उत्तरार्धे सप्ततितयोऽध्यायः।।७०।।

*

।। अथ एकसप्ततितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- देव ऋषी के वचन सुनि, उद्धव वाक्य प्रवीण।
सभ्य सनातन मत लिये, बोले वचन अदीन।।१।।

उद्धव उवाच–

ऋषि जो कहेउ भाउ मन नीके। राज सूय मख पुण्य सभी के।।
शरणागत रक्षण शुचि धरमू। भाइ फुफेरा करत सुकर्मू।।२।।
राजसूय क्रतु करिहे सोई। दिग विजयी राजा जो होई।।
दुहूँ भाँति शुभनीति हमारी। जीत जरासुत मख रखवारी।।३।।
जीति जरासुत बन्दि छुड़ावा। कीरति विपुल उभयविध पावा।।४।।
दस सहस्त्र गज बल पुनि ताके। भीम छाँड़ि समबली न बाकें।।५।।

सौ अक्षौहिणि सेना भारी। जीतब कठिन त सैन्य मझारी।।
एक-एक दुइ बीर लड़ाहीं। शत्रु पराजय दुर्गम नाहीं।।
जरासन्ध विप्रन्ह अति माना। याचत विप्र देइ बहु दाना।।६।।

दोहा- विप्रवेष धरि भीम तेंहि, युद्ध मांगि यदि लेंहि।
युद्ध होइ दोउ मध्य में, समर मारिहें तेहिं।।७।।

सृष्टि प्रलय प्रभु तब आधीना। कालरूप जब चाहहु छीना।।
ब्रह्मा शिव सब कारण रूपा। तुमहि अरूपी काल स्वरूपा।।८।।
बधे जरासुत कीरति गाई। शत्रु नारि निज भवन सुहाई।।
गोपिन्ह सहित सकल मुनि गाई। जिमि गजेन्द्र मैथिली छुड़ाई।।९।।
जरासन्ध निज दुष्कृत मारे। जाहु कृष्ण नृप यज्ञ सम्हारे।।१०।।

श्रीशुक उवाच-

उद्धव कथन सबंहि मन भाये। यादव कृष्ण ऋषी हरषाये।।११।।
करहु प्रयाण कहेउ भगवाना। गुरु आयसु दारुक सन्माना।।१२।।
पुत्र कलत्र भेजि प्रभु दीना। बलदाऊ से अनुमति लीना।।
गरुज ध्वज रथ बैठे जाई। सूत सारथिन्ह कीन बड़ाई।।१३।।
ढोल शंख अरु बजे नगारे। चतुरंगिनि विभु सैन्य सँवारे।।१४।।
निज सन्तति लै सब पटरानी। चढ़ी पालकी शुभ गुण खानी।।
सुन्दर वसन विभूषण नाना। सज्जित रक्षित चारु विताना।।१५।।

दोहा- अनुचर नारि स वार वधु, उष्ट्र महिष खर लादि।
विविध उपस्कर साथ ले, चली मनहि अह्लादि।।१६।।

चलत कोलाहल भयउ अपारा। सिन्धु नक्र जिमि लहर प्रचारा।।
छत्र चँवर बहु ध्वजा विराजा। दिनकर किरन सैन्य सब छाजा।।१७।।
अति प्रमुदित नारद चलि गयऊ। प्रभु सत्कार पाइ सुख लयऊ।।१८।।
दूतहिं हरि बोले मुसकाई। डरहु नाहि, देइहों मरवाई।।१९।।

इतना सुनत दूत चलि गयऊ। बन्दी नृपन्ह बतावत भयऊ।।
बन्धन मोक्ष चाहि नृप लोगू। सोचहिं दर्शन होत सुयोगू ।।२०।।
लाँघत पर्वत नदी अनेका। देश अनर्त सौवीर समेता ।।२१।।
मत्स्य देश पांचाल बिताई। नदी दृषद्वति सुरसति पाई ।।
देखत देश प्रदेश कन्हाई। इन्द्रप्रस्थ तब पहुँचे जाई ।।२२।।
दुर्लभ दर्शन हरि कँह मानी। सुहृद संग नृप किय अगवानी।।२३।।
वेद घोष करि गान बजाना। अजात शत्रु भेटें भगवाना ।।२४।।

दोहा- गदगद नृपति युधिष्ठिर भेटें बारम्बार ।
बहुत दिनन देखें प्रभुहिं, दीन्हे तेहि अकबार।।२५।।

छन्द-

परसत दुइ बाहू नृपहिं उछाहू
रमा रमण श्रीनाथा,
सब पाप नसाने नृप सुख माने
भेंट गात यदुनाथा।
आँसू भरि लोचन सब दुख मोचन
परमानन्द सनाथा,
पुलकित सब अंगा प्रेम प्रसंगा
सुधि बिसरे कुरुनाथा।।२६।।
मातुल सुत भेटे भीम लपेटे
गले लगे दोउ भाई।
अर्जुन पुनि आये वक्ष लगाये।
अश्रुन हरि नहवाई।।२७।।
जुड़वे दोउ भ्राता जन सुखदाता
कीन प्रणाम कन्हाई।

भुसूर सन्माने वृद्धहिं माने
उर हरि प्रीति दृढ़ाई।।२८।।

कुरु सृञ्जय कैकय सब आये। मान दिये मान सब पाये ।।
बन्दी मागध अस्तुति कीनी । प्रभु-दर्शन भाव भरि भीनी ।।२९।।
नृत्य करत गावत सब गाना । वाजत शंख ढोल निसाना ।।३०।।

सोरठा-एहि विधि सुहृद समेत, पुर प्रविशे यदुवंशमणि।
लोक करत अभिषेक, गावत हरि के शुभ चरित।।३१।।

इन्द्रप्रस्थ मारग सब सींचे। गज मद सुरभित सलिल उलीचें।।
तोरण कनक पूर्ण मग नाना। अति विचित्र तँह रहे विताना ।।
भूषण वसन नवल नर नारी । माल्य गन्ध रुचि रुचिर सँवारी ।।३२।।
भवन-भवन मणि दीप सजाये । धूप गन्ध नभ मँह शुचि छाये ।।
कनक कलश राजत पट सोहे। इन्द्रप्रस्थ देखत मन मोहे।।३३।।
आवत जानि कृष्ण नर नारी। उत्सुक भागे काज विसारी।।३४।।
गज रथ अश्व सैन्य सब देखे। नारिन्ह संग हरी सब देखे।।
स्वागत करती चढ़ी अटारी । सुमन लुटावत नयन निहारी।।३५।।

दोहा- कवन पुण्य नारिन्ह करीं, जे देखत दिन रात।
प्रेम पूर्ण संस्मित मुख, मोद न हृदय समात।।३६।।

पुर वासी सब पूजा कीन्हीं। मंगल वस्तु प्रभुहिं शुभ दीन्हीं ।।३७।।
अन्तःपुर रानी सब आई । करि पूजा अद्भुत सुख पाई।।३८।।
पृथा विलोकति कृष्ण भतीजे। बधू-संग युग नयन पसीजे ।।३९।।
प्रेम विवश राज मनमानी। पूजा कीन न अनुक्रम जानी ।।४०।।
बहिन सुभद्रा द्रौपदी बन्दे। कुन्तिहि हरि वन्दत आनन्दे।।४१।।
द्रौपदि सासु अनुज्ञा पायी । रुक्मिणि आदि पूजि हरषायी ।।४२।।
जाम्ववती सत्या कालन्दिी। शैव्या नाग्नजिती मित्र विन्दी।।

यथा योग सत्कार करावा। मेलि भेंटि दुगुन सुख पावा।।४३।।
धर्मराज श्रीपति ठहराये। सैन्य समेत परमसुख पाये।।४४।।
सोरठा-खाण्डव कानन दाह, रक्षित भय राखे यथा।
सोइ मयासुर निर्मित, राज सभा अद्भुत बहु।।४५।।
दोहा- कछुक मास तँह रमि रहे, राजंहि बहु सुख दीन।
चढ़े रथहिं फाल्गुन सहित, परम अनुग्रह कीन।।४६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे एक सप्ततितमोऽध्यायः।।७१।।

*

।। अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- एक बार नृपसदन में, धर्मराज आसीन।
ब्राह्मण क्षत्रिय आदि भी, भ्राता संग प्रवीन।।१।।
कुलगुरु अरु आचार्य से, बान्धव सकल बहोरि।
सुनत सबहिं नृप धैर्य से, बोले दोउ कर जोरि।।२।।

युधिष्ठिर उवाच–

राजसूय मख करन विचारा। माधव पूरा करहु हमारा।।
तब विभूति आवाहन होई। करहु यतन पूरन मख होई।।३।।
मंगल करनि अमंगल हारी। नाथ चरण पादुका तुम्हारी।।
जनन मरण संसृति भय हारी। भव वैभव सब देत उदारी।।४।।
देखउ सकल लोक मख आई। भक्त अभक्त बीच बरियाई।।
कुर सृंजय मँह को बड़भागी। प्रीति पात्र को कौन विवादी।।५।।
आपन आन न भेद निबाहू। परब्रह्म माधव नरनाहू।।
सब कछु त्यागि करहिं जे सेवा। कल्पवृक्ष सम पावहिं मेवा।।६।।

श्रीभगवान् उवाच–

दोहा– सत्य कहेउ नृपराज तुम, उत्तम बहुत विचार।
राजसूय मख होम ते, होइ कीर्ति विस्तार।।७।।

राजसूय सब कँह प्रिय होई। पितर देव ऋषि सम्मत सोई।।८।।
जीति सकल राजन्ह लै आई। करहु यज्ञ विधि विहित बनाई।।९।।
लोकपाल के अंश तुम्हारे। अनुज, मोहु तव वश करि डारे।।१०।।
देव लोक मँह अस कोउ नाहीं। मोर भगत जेहि पाँहि डेराहीं।।११।।

श्रीशुक उवाच–

हरि के वचन नृपति मन भाये। आयसु दीन अनुज बोलवाये।।१२।।
दक्षिण विजय करहु सहदेवा। पश्चिम नकुल जितें महि देवा।।
उत्तर दिशि अर्जुनहिं पठाये। पूरब विजय भीम जोरियाये।।१३।।

दोहा– नृपहिं जीति लाये धन, वीर अनुज तत्काल।
यज्ञ करन उद्यत हुये, विगत शत्रु महि पाल।।१४।।

अविजित जरासन्ध जब जाना। हरि तब उद्धव राय बखाना।।१५।।
विप्र रूप धरि हरि तँह आये। अर्जुन भीम सरूप सुहाये।।१६।।
बेला अतिथि समुझि तहँ आये। जरा तनय द्विज भक्त कहाये।।१७।।
राजन! मंगल होउ तुम्हारे। दूरदेशसे अतिथि पधारे।।
जो मांगउ तुम देइउ सोऊ। अतिथिहिं देव जो मानत होऊ।।१८।।
सहनशील सब सहहिं बिसारी। कौन अकारज पर अपकारी।।
नहि अदेय, जे होहि उदारा। समदर्शिन कँह कौन पियारा।।१९।।

दोहा– नाशवान् संसार में, अविनाशी यश होइ।
नहि संचय जो कीर्ति को, शोक योग्य सो गोइ।।२०।।
रन्तिदेव हरिचन्द्र बलि, व्याध कपोत अनेक।
अतिथिहिं सर्व समर्पि करि, कीर्ति शेष सब नेक।।२१।।

श्रीशुक उवाच–

स्वर आकृति धनु चिह्न निहारी। जरासन्ध मन कीन बिचारी।।
नहि ब्राह्मण, क्षत्रिय कुल जाये। पहिले इनहिं कहाँ हम पाये।।२२।।
क्षत्रिय होइ याचक बनि आये। देहुं इनहि जो मानस भाये।।२३।।
बाभन बनि बलि छले मुरारी। तदपि कीर्ति बलि पाये भारी।।२४।।
रोके गुरुहिं मही जो दीना। ब्राह्मण वटु सरबस भलु छीना।।२५।।
ब्रह्म लागि जो सब कुछ देई। नश्वर देह अमर यशु लेई।।२६।।
अस उदार मति हिय मँह धारी। कहेउ छदम् द्विज रूप निहारी।।
माँगहु विप्र जौन मन आवा। सिरहुं देउ विनु किय पछितावा।।२७।।

श्रीभगवान् उवाच–

सोरठा–द्वन्द्वयुद्ध तुम देहु, नहि ब्राह्मण याचक हम।
क्षत्रिय हमको जान, अन्नदान हम लेउं नहि।।२८।।

अर्जुन भीम भाइ ए दोऊ। शत्रु तुम्हार कृष्ण मैं होऊ।।२९।।
कृष्ण वचन सुनि नृपति उठाना। देंउ युद्ध का तुमको दाना।।३०।।
तुम अति भीरु न योगु लड़ाई। मथुरा छाँड़ि सिन्धु तुम जाई।।३१।।
अर्जुन मम सम बली न होई। भीम संग मैं लड़िहों सोई।।३२।।
अस कहि गदा भीम कँह दीन्हा। दूसर गदा स्वयं कर लीन्हा।।३३।।
बाहिर नगर अखाड़े जाई। गदा युद्ध दोउ बीर रचाई।।३४।।
दायें बायें घूमत बीरा। रंगभूमि रण करत अधीरा।।३५।।

सोरठा–गदा युद्धरत बीर, करत शब्द चटचट भिड़े।
मानहु हाथी दोउ, भिड़त दन्त बहु ध्वनि किये।।३६।।

गदा प्रहार बेग भुज करहीं। कन्ध बाहु उरु भंजत रहहीं।।
यथा द्विरद दुइ करत लड़ाई। देहिं वृक्ष तृण गुल्म ढहाई।।३७।।
गदा टूटि दुइ भिरे प्रबीरा। मुष्टि युद्ध रत हुये अधीरा।।

मुष्टि प्रहार सहत दोउ कैसे। घन कर मार लोह सह जैसे।।३८।।
शिक्षा बल समान रह दोऊ। तनिक न क्षीण लखे तँह कोऊ।।३९।।
रात्रि मित्र सम संग गुजारी। बीस सात दिन लड़े जुझारी।।४०।।
दिवस अट्ठाइस आये जब हीं। हरिहिं वृकोदर बोले तबहीं।।
मागध जीतब कठिन मुरारी। कहहु नाथ रिपु जेहि विधि हारी।।४१।।

सोरठा–हरि जानत विधि–सोइ,जेहि ते रिपु मरिहे प्रबल।
जरा–सन्धि को भेद, भीमहि दीने विपुल बल।।४२।।

प्रभु अमोघ दर्शी सब जानी। चीरि दिशाये विटप निसानी।।४३।।
बूझेउ भीम मागधहिं गिराये। भूतल गिरत शीष चकराये।।४४।।
एक पैर चढ़ि दूसर चीरा। जिमि शाखा द्विप चीरहि बीरा।।४५।।
सकल प्रजा देखी दुइ खण्डा। जरासन्ध भुवि पड़ा प्रचण्डा।।४६।।
हाय हाय कहि प्रजा दुखारी। भेटेउ भीमहिं जिष्णु मुरारी।।
सहदेवहिं सुत मागध दीन्हा। करि अभिषेक राज तेहिं कीन्हा।।४७।।

दोहा– जरासन्ध मरवाइ के, राजन्ह दीन छुड़ाय।
बन्दी थे जो मगध में, सबहि हरी हरषाय।।४८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विसप्रतितमोऽध्यायः।।७२।।

*

।। अथ त्रिसप्रतितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

बीस सहस्त्र अष्ट शत राजा। बन्दीकृत संग सेन समाजा।।
मलिन वस्त्र गिरिमध्य निवासा। मुक्त किये हरि विनहि प्रयासा।।१।।
क्षुधा क्षीण मुख दुर्बल गाता। देखे पीतवसन जग त्राता।।२।।
अरुण नयन श्रीवत्स विराजा। चारिं बाहु शुभ कुण्डल छाजा।।३।।
शंख चक्र कौमोदकि सोहा। पद्म हार कटि सूत्र विमोहा।।४।।
सुन्दर मणि ग्रीवा मंह धारे। बनमाला रुचि वक्ष सँवारे।।
देखत नृपति नयन नहि थाके। सूंघत पद सरोज मुख ताके।।५।।
मनहु भुजा आलिंगन कर हीं। विगत पाप हरि पद सिर धरही।।६।।

दोहा– कृष्ण दरस आनन्द उर, मिटा क्लेश सन्ताप।
अस्तुति करि श्रीकृष्ण की, विनसे संसृति ताप।।७।।

देव देव शरणागत पालक। अव्यय कृष्ण असुर कुल घालक।।८।।
जरासन्ध भल कीन हमारी। दर्शन लहेउ भगत भय हारी।।९।।
राजहि मद अति होत मुरारी। तब माया मोहित असुरारी।।१०।।
मृगतृष्णा वश धावत रह हीं। असत वस्तु सब सत कहहीं।।११।।
हम मदान्ध रण रचेंउ बहोरी। यमंहि भुलाइ कीन बहु चोरी।।१२।।
तब प्रभाउ सव गर्व नसाने। प्रभु तब कृपा न जाइ बखाने।।१३।।
अब नहि राज भोग कर इच्छा। स्वर्ग लोभ नहि देउ परिच्छा।।१४।।

सोरठा–कृपा करहु अब नाथ, देहु चरण रति आपनी।
कबहुँ न भूलउं नाम, योनि कतहुँ विचरत रहौं।।१५।।

प्रणत क्लेश हारी भगवाना। नमो नमो गोविन्द श्री धामा।।१६।।

श्रीशुक उवाच–

एहि विधि नृपगण अस्तुति कीना। बोले श्री हरि वचन प्रवीना।।१७।।

श्रीभगवान् उवाच–

भूप जथा तुम चाहहु होई। एवमस्तु मम भगति न गोई ।।१८।।
तुम जो कहे नीक मोंहि लागा। धन मद मादक करहि अभागा।।१९।।
हैहय नहुष वेन नरकादी। रावण श्रीमद से तनु त्यागी।।२०।।
जगत अनित्य जानि भलु जाई। पालहु प्रजा प्रीति मम पाई।।२१।।
राखहु वंश प्रजा मरजादा। धर्म करहु सब विनहि प्रमादा ।।२२।।
आत्माराम व्रती सब होऊ। अन्तकाल शुभ गति लह सोऊ।।२३।।

दोहा– अस कहि श्री भुवनेश्वर, दीने आयसु नारि।
पुरुष आदि सज्जित करन, मज्जन मंगल वारि।।२४।।

तब सहदेव नृपति सनमाने। वस्त्र विभूषण चारु सुहाने।।२५।।
भोजन मधुर कराये राजा। पान भोग रुचि रचे समाजा।।२६।।
श्री हरि नृपन्ह मान अति दीना। कुण्डल शोभित नृपति अदीना।।२७।।
स्वर्ण जटित रथ पर बैठाये। सबंहि नृपति निज देश पठाये।।२८।।
कारागृह से कृष्ण छोड़ाये। ध्यान धरत प्रभु भवन सिधाये।।२९।।
महापुरुष हरि लीला गावत। चले नृपति सब सुख अति पावत।।३०।।

दोहा– जरा सुतहि मरवाइ हरि, अर्जुन भीम समेत।
पूजा लहि सहदेव से, चले नगर श्रीकेत।।३१।।

पहुँचि नगर सब शंख बजाये। शत्रु मित्र दुख सुख बहु छाये।।३२।।
शंख ध्वनि सुनि सब अनुमाने। रिपु जीते मख पूरण माने।।३३।।
करि प्रणाम नृपति सब भाषे। जो कछु कीन जरासुत माखे।।३४।।
धर्म राज सुनि नयन पसीजे। कृष्ण कृपा लखि मौन सहेजे।।३५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

*

।। अथ चतुः सप्ततितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– जरा सन्ध बध नृपति सुनि, बोले बचन विनीत ।
सब कछु महिमा कृष्ण की, भय भी जिनसे भीत ।।१।।

युधिष्ठिर उवाच–

लोक पाल अज शंकर देवा। शिर धरि आज्ञा करते सेवा।।२।।
कमल नयन हमहि नृप मानी। आयसु करत मनुज धरि वानी।।३।।
पर ब्रह्म तुम सूर्य समाना। तेज न धटइ करम करि नाना ।।४।।
मै अरु मोर बुद्धि पशु केरी । मैं तुम्हार लह प्रीति घनेरी।।५।।

श्रीशुक उवाच–

समय देखि शुभ यज्ञ करावा। हरि अनुमत द्विज वरनहि पावा ।।६।।
व्यास सुमन्तु गौतम भरद्वाजा । असित वशिष्ठ द्विजवर्य समाजा ।।७।।
च्यवन कण्व मैत्रेय पधारे। वामदेव क्रतु आसन डारे।।८।।
ऋषी पराशर गर्ग अथर्वा । कश्यप वैशम्पायन मुनि सर्वा।।
परशुराम कवि आसुरि आये । वीर सेन मधुछन्द सुहाये।।९।।
भीष्म द्रोण धृतराष्ट्र बुलाये। विदुर महामति मख मंह आये।।१०।।

दोहा– ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अरु, शूद्र जुटे मख मांहि ।
राज सूय मख देखिबे, मन मंह लिये उछांहि ।।११।।

सुबरन हल मख भूमि जोताये। नृपति युधिष्ठिर आयसु पाये ।।१२।।
स्वर्ण पात्र मख करत नरेशा। यथा कीन शुभ यज्ञ जलेशा ।।१३।।
लोक पाल इन्द्रादिक आये । ब्रह्मा शंकर देखि जुड़ाये ।।
नाग यक्ष विद्याधर सर्वा । किन्नर चारण अरु गन्धर्वा ।।१४।।
राजहि दम्पति लिये बोलाई । राजसूय सब देखन आई ।।१५।।
कृष्ण भगत पार्थहि सब जाना । महि आचरज करत मख नाना।।

वरुण यथा मख पहिले कीन्हा। तेसेइ यज्ञ पार्थ शुभ चीन्हा।।१६।।
सफल सोमरस पार्थ निकाले। पूजन करि द्विज होत निहाले ।।१७।।

दोहा- प्रथम पूज्य किसको करें, करत विचार नवीन ।
निर्णय पर पहुँचे नहीं, मन मँह हुये मलीन।।१८।।

तब सहदेव कही मृदुवानी। प्रथम पूज्य श्रीकृष्ण बखानी।।
देश काल धन देव बहोरी। सबहि श्रेष्ठ श्री हरि नहि ओरी।।१९।।
सकल यज्ञ श्रीकृष्ण स्वरूपा। आहुति मंत्र होम हरि रूपा।।२०।।
एक कृष्ण सब जगत विधाता। पालक नाशक सब के त्राता।।२१।।
इनहिं लागि सब कर्म कराहीं। अर्थ चारि इनके वश मांही।।२२।।
अतः कृष्ण की पूजा होई। इनहि पूजि जग पूजित सोई।।२३।।
शान्त पूर्ण श्री कृष्ण मुरारी। भेद रहित निर्गुण अविकारी।।२४।।

सोरठा-अस कहि श्री सहदेव, विरत वचन बैठें जबहिं ।
साधु साधु कहि लोग, अभिनन्दित उनको किये।।२५।।

मत सम्मत सब सज्जन पावा। पार्थ पूजि हरि प्रभु गुन गावा।।२६।।
चरन धोइ शिर राखे वारी। भाइ नारि सकुटुम्ब निहारी।।२७।।
पीत वसन भूषण पहिराये। अश्रु नयन प्रभु देखि न पाये।।२८।।
बरसहिं सुमन देव जयकारी। नमो नमः कह सब पुर नर नारी।।२९।।
तब शिशुपाल उठा अभिमानी। कहा कठोर बचन रिपु मानी।।३०।।
काल प्रबल वेदहु अस भाखा। बूढहि मति बालक इव चाखा।।३१।।
ज्ञान वृद्ध मत मानहु सोऊ। जो मतिमन्द कहा येहि होऊ।।३२।।

दोहा- छाँड़ि तपस्वी ब्रह्मरत, विज्ञ, ज्ञान सम्मान ।
कुल कलंक गोपाल जिमि, हव्यहिं वायस पान।।३४।।

बरन हीन कछु आश्रम नाहीं। धरम बहिष्कृत किधौ पुजाहीं।।
निर्गुण मर्यादा नहि जेके। अग्र पूज्य किमि होइ अचेते।।३५।।

पुरा ययाति शाप कुल दीन्हा । प्रथम पूज्य मख मँह कत चीन्हा।।३६।।
देश मुनिन्ह कह छोड़ि समाजू । रहत सिन्धु कत पूजिय आजू।।
दुर्ग बनाइ रहहिं बनि राजा । निकसत लूटहिं सभ्य समाजा ।।३७।।
कह शिशुपाल अभद्र बहूता । शान्त कृष्ण जिमि सिंह शिवा रुता।।३८।।
हरि निन्दा सुनि सभ्य पराने । कान मूँदि शिशुपालहिं ताने।।३९।।

दोहा- हरि हर निन्दा कान सुनि, जे नहि बाहिर जाँहि।
पाप घोर लागत तिनहि, पुण्य सकल जरि ताँहि ।।४०।।

पाण्डव कैकय मत्स्य उठाये। शस्त्र घोर तिन्ह मारन धाये।।४१।।
शिशु पालंहु तब खड्ग उठावा। निर्भय समर हेतु बहिरावा।।४२।।
सबहि निवारि कृष्ण भगवाना। झपटत चैद्य कण्ठ निरवाना ।।४३।।
मरत चैद्य कोलाहल भारी। राजन्ह भागत प्राण सँवारी।।४४।।
उल्का यथा भूमि पर गिरई । चैद्य तेज प्रभु सद्यः मिलई ।।४५।।
तीन जनम लगि वैर निवाहा। हरि चिन्तन तन्मय मन थाहा।।
अन्तकाल मति होइहि जैसी । जीव पाव गति सद्गति वैसी ।।४६।।
धर्मराज सब बिप्र बोलाये । पूजि सबहि धनराशि लुटाये।।४७।।
पूरन करि मख रहे मुरारी। कछुक मास सज्जन हित कारी।।४८।।
नृपहिं पूंछि सब नारि समेता। गये द्वारिका कृपा निकेता।।४९।।
राजन् ! तुम्हहिं कथा समुझावा। विप्रशाप जय जन्म कहावा।।५०।।

सोरठा-करि अवभृथ अस्नान, राजसूय मख अन्त में ।
धर्म राज पूजित हुये, यथा इन्द्र सब देव मँह ।।५१।।

सुर मानव खेचर सब जेते। कृष्ण नाइ सिर गवने तेते ।।५२।।
सुखी भये सब पुर नर नारी। एक सुयोधन मन दुख भारी।।५३।।
भगवत् कथा सुनहि जे काना। पाप नाश शुभ पुण्य विहाना।।५४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे चतुः सप्ततितमोऽध्यायः ।।७४।।

।। अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।।

राजोवाच–

दोहा– धर्मराज के यज्ञ को, देखि प्रसन्न समाज।
सुर नर मुनि आदि सब, होंहि सहाय सुकाज ।।१।।
दुर्योधनहिं दुःख अति भारी। कारन कौन कहहु सुविचारी।।२।।

ऋषि रुवाच–

रहे पितामह सन्त तुम्हारे। बन्धु सखा मख काम सम्हारे ।।३।।
भोजन कार्य भीम के हाँथे। कोष सुयोधन के था माथे।।
पूजन श्री सहदेव सम्हाले। द्रव्य जुटावहिं नकुल निहाले ।।४।।
गुरु सेवा अर्जुन व्रत माना। चरण पखारत श्री भगवाना।।
परसत स्वयं द्रौपदी रानी। दान करावत् कर्ण सुदानी ।।५।।
सात्यकि विदुर विकर्ण सम्हारे। भूरिश्रवा सन्तर्दन सारे ।।६।।
विविध कार्य सब करहिं विचारी। धर्मराज उर प्रीति निहारी ।।७।।
दोहा– ऋत्विजादि जब गृहगये, पूजित दान समान।
चैद्य तेज हरि लीन भा, नृपति किये अस्नान।।८।।
धर्मराज अवभृथ अस्नाना। वाजहिं शंख पणव विधिनाना।।९।।
नर्तक नाचत गावत गाथा। स्वर्ग लोक तक कीर्ति सनाथा।।१०।।
विविध वाद्य बहु ध्वजा पताका। चले अलंकृत नृप करि हाका।।११।।
यदु–सृंजय कम्बोज विसाला। चले कँपावत भूमि निहाला।।१२।।
बरसहिं सुमन देव गन्धर्वा। विप्र पढ़हि तब वेद अथर्वा।।१३।।
नारि अलंकृत क्रीडा कर हीं। गन्ध लेप आपस में डरहीं ।।१४।।
वार बधू पुरुषहिं नहवाये। गोरस तेल कुसुम्भ लगाये।।१५।।
चढ़ी विमान देवगण नारी। उत्सव देखत होत सुखारी।।
शिविका चढ़ी नृपति कुल महिषी। देखि महोत्सव उर पुर हरषीं।।

कृष्ण समेत सखा हरषाहीं। रंग डारि पिचकारि भराहीं।।१६।।

दोहा- पिचकारी भरि रंग से, भीजे देवर लोग।
केश पाश नारिन्ह खुले, कामिन्ह काम संयोग।।१७।।

नारि संग नृप सोहत कैसे। क्रिया संग मख सोहइ जैसे।।१८।।
यज्ञ नहान करावत राजा। गंगाजल शुचि विप्र समाजा।।१९।।
बजत दुन्दभी बरसहिं फूला। देव पितर ऋषि भे अनुकूला।।२०।।
चारिउ वरन नहावत पाछे। सकल पाप सुरसरि मंह कांछे।।२१।।
रुचिर वसन नृप धारण कीन्हा। विप्रन्ह पूजि भूरि धन दीन्हा।।२२।।
भाइ बन्धु-परिवार बुलाये। करि सन्मान वसन पहिराये।।२३।।
कुण्डल मणिमय पगड़ी दीन्हा। कनक मेखला नारिन्ह कीन्हा।।२४।।
वेद पढ़त सब विप्र अघाने। चारिउ वर्ण नृपति सन्माने।।२५।।
लोक पाल सब देव विसर्जे। पितर लोग गये सब स्वर्गे।।२६।।

दोहा- अमृत पान करि देवगण, यथा न पूर्ण अघात।
धर्मराज के यज्ञ की, सबहिं प्रशंसे जात।।२७।।

राजा सब सम्बन्धि मिताई। विरहातुर हरि रोके जाई।।२८।।
साम्ब आदि हरि भेजि पठाये। कृष्ण स्वयं कछु दिन ठहराये।।२९।।
कृष्ण सहाय मनोरथ सागर। दुस्तर पार कीन नय नागर।।३०।।
अन्तःपुर की शोभा देखी। दुर्योधन मन डाह विशेषी।।३१।।
देखि सुरासुर नृपति विभूती। दुर्योधन उर क्षोभ बहूती।।
मय दानव निज हाथ सँवारी। अद्भुत अनुपम शोभा न्यारी।।
सेवा पतिन्ह करत तँह रानी। द्रौपदि देखि लच्छि सकुचानी।।३२।।
कृष्ण सहित बहु रानि विराजे। कंकण किंकिणि ध्वनि शुभ छाजे।।
कुच कुंकुम सोहत अरुणाई। मुक्ता हार अरुण दिखलाई।।३३।।
मय दानव कृत सभा सुहाई। हरिहिं संग नृप बैठे जाई।।३४।।

दोहा- इन्द्र सरिस बैठे तहाँ, हेम सिंहासन राज।
अतुलित वैभव देखिके, बरनत बन्दि समाज।।३५।।
भाइन्ह सँग दुर्योधन आवा। खड्ग हाथ बहु किये बनावा।।३६।।
जानि सलिल निज वसन उठावा। भूमि समुझि जल मांहि गिरावा।।
मय माया सुविचित्र बनावा। भूमि सलिल जल थलहि दिखावा।।३७।।
गिरत देखि तेहि भीम ठठाये। अन्य नृपति नारिन्ह हरषाये।।
धरमराज बरजें तेंहि काला। कृष्णहिं सम्मत हँसे भुवाला।।३८।।
तब दुर्योधन लज्जित भयऊ। क्रोधातुर हास्तिनपुर गयऊ।।
हाहाकार सुजन तब कीन्हा। धरमराज मन भयेउ मलीना।।
भूमि भार हित रत यदुनाथा। दृष्टि दोष तँह भयेउ सनाथा।।३९।।
दोहा- राजन ! पूछीं जो कथा, हमने दीन सुनाय।
राज सूय मख में हुई, डाह सुयोधन हाय।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे पञ्च सप्ततितमोऽध्यायः ७५।।

*

।। अथ षट् सप्ततितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- लीला मानुष कृष्ण के, और सुनहु यशगान।
शाल्व सौभपति यथा, हने स्वयं भगवान्।।१।।
चैद्य कर सखा शाल्व बलवाना। मंगल कारज रुक्मिणि जाना।।
यदुवंशिन तब सबहिं हराये। जरासन्ध आदिक जे आये।।२।।
सबहिं नृपन्ह कर किये सुनाई। शाल्व प्रतिज्ञा कीन ढिठाई।।
यदुवंशिन्ह कर करिहों नाशा। देखहु मम पौरुष करि आशा।।३।।

मुठिका राख फांकि धरि आसन। पशुपति ध्यान धरा पद्मासन।।४।।
एक बरस बीते शिव आये। बर मागंहु कहि शाल्व लुभाये।।५।।
देव असुर मानुष गन्धर्वा। अभेद यान मांगा करि गर्वा।।६।।
कहि 'तथास्तु' जब गये पुरारी। शाल्वहिं दीन यान मय भारी।।७।।

दोहा- तमोधाम तब यान लै, सौभ नाम रणधीर।
गया द्वारका धाम वह, यदुकुल बैर अधीर।।८।।

चतुरंगिनी सेन करि आगे। उपवन जाइ उजाड़न लागे।।९।।
गोपुर द्वारा प्रसाद ढ़हाये। यानहि चढ़ि बहु शस्त्र गिराये।।१०।।
वृक्ष शिला वज्रास्त्र गिरावा। चक्रवात करि धूरि बिछावा।।११।।
त्रिपुरासुर पीडित जिमि धरनी। हुई द्वारिका मर्दिततरनी।।१२।।
रथ चढ़ि तबहि प्रद्युमन आये। डरहु नाहि कहि सबहि सुनाये।।१३।।
सात्यकि चारुदेष्ण अक्रूरा। गद सारण साम्बादिक शूरा।।१४।।
लिये धनुष निकसे सब बीरा। कवच धारि रथ अश्व गभीरा।।१५।।
भिरे शाल्व सैनिक तब आई। देवासुर जिमि करत लड़ाई।।१६।।
रवि कर निकर भेद तम जैसे। रुक्मिणि सुत शाल्व कँह तैसे।।१७।।
बीस पाँच शर दिये चलाई। शाल्व चमूपति दिये गिराई।।१८।।
शत सायक शाल्वहि तब मारे। एक एक सैनिक पर डारे।।
दस-दस वाण सारथिन मारे। तीन-तीन वाहन संहारे।।१९।।

दोहा- देखि पराक्रम अद्भुत, प्रद्युम्नहि सन्मान।
निज पर सैनिक साधु कहि, कीन्ह प्रशंसा मान।।२०।।

एक रूप बहुरूप दिखावा। माया विरचित यान बनावा।।२१।।
कबहु भूमि कब गगन दिखावा। गिरि जल थल समरूप उड़ावा।।२२।।
जँह जँह शाल्व यान संग आवा। यदु सैनिक तँह अस्त्र चलावा।।२३।।
सूर्य अग्नि सम बरसत वाणा। मूर्च्छित शाल्व बचावत प्राणा।।२४।।

शाल्व पक्ष कत लागत भारी। दुहूँ लोक जीतन मति न्यारी ।।२५।।
शाल्व सचिव शुभनाम द्युमाना। देखि प्रद्युमन गदा निज ताना ।।२६।।
गदाघात प्रद्युम्नहिं लागा । दारुक सुत सारथि लै भागा ।।२७।।

दोहा- सूत ठीक कीना नहीं, रण से लायउ मोंहि ।
मूर्च्छा गई प्रद्युम्न की, डाँटि कहेउ निर्मोहि ।।२८।।

यदुवंसिन मँह अस कोउ नाहीं। बिना विजय रण छोड़ा जाहीं ।।२९।।
का कहिहों मैं सम्मुख जाई। रण ते आयंउ पीठ दिखाई।।३०।।
भौजाइन्ह करि हँसी घनेरी। कहिहै क्लीव न प्रीत निबेरी।।३१।।

सारथि रुवाच–

सूत धरम मैं जानउं स्वामी । संकट काल सो कीन निकामी।।
सूत धरम पुनि रथी सुरक्षा। रथी धरम सारथि करि रक्षा ।।३२।।
शत्रु गदा तव उपरि चलावा। मूर्च्छित तुमहि तात मैं लावा ।।३३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे षट्र सप्ततितमोऽध्यायः ७६ ।।

*

।। अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- सलिल परसि धारित कवच, धनुष लिये यदुबीर ।
सारथि से प्रद्युम्न कहं, कहाँ द्युमान प्रवीर।।१।।

तब द्युमान यदु सैन्य हँकारा। आठ बाण प्रद्युमन मारा।।२।।
चारि बाण रथ अश्व सँहारा। सारथि धनुष ध्वजा शिर मारा ।।३।।
गद सात्यकि अरु साम्ब प्रहारा। सौभ चढ़े गिरे अम्बुधि धारा ।।४।।
दिवस सताइस चली लड़ाई। करहिं परस्पर सेन चढ़ाई ।।५।।

धर्मराज मख गयेउ मुरारी। मखहिं समापि चैद्य गा मारी ।।६।।
पुरी द्वारका चले कन्हाई। असगुन देखि नगर सुधि आई ।।
कुन्ती तनय अनुज्ञा लीन्हा । गुरुजन पूंछि गवन हरि कीन्हा।।७।।
मनहि विचार करत यदुनाथा। इहाँ करत बलभद्र सनाथा।।
उहाँ शत्रु मम पुरी सतावा। चैद्य पक्ष तँह कीनेसि धावा ।।८।।

दोहा- देखि विपति आई तहाँ, नगर सुरक्षित कीन।
सौभ शाल्व को देखि पुनि, दारुक आयसु दीन ।।९।।

शाल्व निकट रथ रोपहु जाई। माया देखि न जाहु डेराई।।१०।।
दारुक रथ रिपु सन्मुख लावा। गरुण ध्वजा हरि तँह फहरावा।।११।।
शाल्व क्षीण बल श्यामहि देखा। शक्ति उठाइ सारथिहिं पेंखा।।१२।।
उल्का इव नभ आवत कारे। कृष्ण ताहि शतधा करि डारे।।१३।।
सोलह बाण कृष्ण तिन्ह मारे। सौभ विमान भेदि हरि डारे।।१४।।
शाल्व तबहि सायक सन्धाना। शार्ङ्ग धनुष छूटा भगवाना।।१५।।
हाहाकार भयेउ तब भारी। बोला गरजि शाल्व हंकारी ।।१६।।
मूढ़ हरे मम मित्रहिं नारी। सभा मध्य शिशु पालहिं मारी ।।१७।।
मानहु स्वयम् अजेय अनारी। भेजउं यमपुर तोंहि मुरारी ।।१८।।

श्रीभगवान् उवाच–

दोहा- मूढ करहु बकवाद तुम, पास न देखहु काल।
शूर समर करि बीरता, नाहिं बजावत गाल।।१९।।

अस कहि श्री हरि गदा चलावा। रुधिर बमत धरनी पर आवा ।।२०।।
गदा लौटि, अरि अन्तर्धाना। पुरुष एक हरि कीन प्रणामा।।२१।।
रोवत बोला वचन प्रवीना। मैं मातु देवकी कंह आधीना।।
यथा बाँधि पशु चलत कसाई। तथा पिता तब शाल्व लिवाई।।२२।।
अप्रिय सुनि माधव दुख पावा। मानुष तनु धरि किये बनावा।।२३।।

सुर अरु असुर जीति नहि रामा। तिनके अछत भयउ विधि वामा।।२४।।
इतना कहत रहे यदुराया। ले वसुदेव शाल्व तहँ आया।।२५।।
बोला शठ जेंहि जीवहु नीके। देखत हनिहों इहाँ सभी के।।२६।।
यदि कछु होइ पराक्रम तोरे। लेहु बचाइ पिता निज ओरे।।
अस कहि मायी खड्ग उठावा। काटि सिरहिं लै सौभ सिधावा।।२७।।

दोहा- एक मुहूरत ह्वै दुखी, पिता जानि रणधीर।
जानी माया असुर की, क्षण मंह सम्हले वीर।।२८।।

नहि तँह दूत न पिता शरीरा। माया सब समुझे यदुवीरा।।
देखेउ शाल्व विमानहि जाता। निश्चय तब कीन्हे सुरत्राता।।
बधिहों आजु शाल्व कँह जाई। ऐसी मति कीनी यदुराई।।२९।।
अस कहि कोउ ऋषि करें बखाना। सब माया ऊपर भगवाना।।३०।।
शोक मोह भय कहाँ समाई। कहाँ अखण्ड ज्ञान यदुराई।।३१।।
जेहिं पद सेइ लहहिं बुध ज्ञाना। तहाँ मोह का कहाँ ठिकाना।।३२।।
करत प्रहार शाल्व हरि जाना। कीन प्रहार बधे भगवाना।।
कवच, धनुष मणि दीन गिराई। सौभहिं गदा मारि यदुराई।।३३।।
सौभहि गिरत देखि जल माँही। गदा पाणि आवा हरि पाँही।।३४।।
भल्ल प्रहार कीन श्री नाथा। गदा सहितकाटा तेहिं हाथा।।
चक्र सुदर्शन लिये मुरारी। प्रलय काल मानहु तिमिरारी।।३५।।
काटा सिर कुण्डल असुरारी। वृत्रहि हतेउ जथा अचलारी।।३६।।

दोहा- शाल्व मारि श्रीकृष्ण ने, सौभहिं नाशे जाइ।
करत प्रशंसा देवगण, नभ दुन्दुभी बजाइ।।
दन्तवक्त्र तँह आवऊ, उर राखा अति रोष।
चँद्य घात सुनि मित्र कंह, कीन बहुत आक्रोश।।३७।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे सप्त सप्ततितमोऽध्यायः।।७७।।

।। अथाष्ट सप्ततितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- शाल्व, चैद्य, शिशुपाल का, लेने बदला आजु ।
दन्त वक्त्र दुर्मति महा, आया त्यागि समाजु ।।१।।

गदा घुमावत एकल आवा। महाशक्ति पद भूमि कँपावा।।२।।
आवत देखि रिपुंहि भगवाना। गदा पाणि धाये अगवाना।।३।।
दुर्मद बोला बचन कठोरा। बड़े भाग आये मम ओरा।।४।।
यद्यपि मातुल तनय मुरारी। मरिहों तोंहि गदा लगि भारी।।५।।
मूर्ख! सुहृद नहि शत्रु हमारे। मारि तोहि ऋण सुहृद उतारे।।६।।
हस्तिप अंकुश गजंहि प्रहारा। हरिहिं बेधि खल गदा सम्हारा।।७।।
लगी गदा नहि व्यथित मुरारी। बाहु मध्य कौमौदकि मारी।।८।।

दोहा- गदाघात चूर्णित हृदय, रुधिर बमत गत प्राण ।
केश बाहु फैले धरणि, दन्तवक्त्र उत्तान।।९।।

सूक्ष्म ज्योति तेंहि तनु से आई। यथा चैद्य, हरि माँहि समाई।।१०।।
भाइहिं शोक विदूरथ आवा। उष्ण श्वांस बहु किये बनावा।।११।।
आवत देखि चक्र हरि मारा। मुकुट समेत शीष भुंइ डारा।।१२।।
एहि विधि शाल्व सौभ प्रभु मारे। अनुज सहित दँतवक्र सँहारे।।१३।।
सुर मुनि मानव पूजा कर हीं। किन्नर चारण यश उच्चर हीं।।१४।।
पितर यक्ष अप्सरा आये। निज मति लागि कृष्ण गुन गाये।।
बरसत कुसुम नगर मंह आये। मथुरा पति श्रीपति कहलाये।।१५।।

दोहा- एहि विधि लीला करत हरि, लागत हारत जीत ।
मूर्ख बुद्धि हारत लखंहि, हरि सर्वदा अजीत।।१६।।

सुनि कौरव पाण्डव संग्रामा। तीर्थ व्याज प्रस्थित बलरामा।।१७।।
पहुँचि प्रभास क्षेत्र बलदाऊ। पितर तर्पि सरसुति सरि जाऊ।।१८।।

विन्दुसरस, त्रितकूप पृथूदक। चक्रतीर्थ, प्राची सरितोदक।।१९।।
गंग-यमुन जल जाइ नहाये। नैमिष मँह देखन मख आये।।२०।।
दीर्घ सत्र तँह करत मुनीसा। भेटें कीन प्रणाम अहीसा।।२१।।
आसन ग्रहण कीन अहिनाथा। देखे ऋषि कुल सूत सनाथा।।२२।।
उठेउ सूत नहि वन्दन कीन्हा। देखि राम क्रोधित मन चीन्हा।।२३।।

दोहा- यह प्रतिलोमज दुर्मति, ऊँचे आसन पाइ।
विप्रन्ह वेद सिखावत, सूत, मृत्यु विनसाइ।।२४।।

व्यास इसे बहु शास्त्र पढ़ावा। सब पुराण येहिं कण्ठ करावा।।२५।।
नट इव स्वाँग रचत बरियाई। यह अविनीत सीख नहि पाई।।२६।।
येहिं लगि भयउ मोर अवतारा। धर्मध्वजि पातकिन्ह सँहारा।।२७।।
अस कहि कुश कर नोक उठावा। सूतहि अहि यमपुर पहुँचावा।।२८।।
हाय हाय करि खिन्न ऋषी गन। बोले अधर्म किये संकर्षन।।२९।।
ब्रह्मासन हम सूतहिं दीना। यज्ञकाल तक रहहु अदीना।।३०।।
जाने बिनु, ब्रह्म वध कीना। योगेश्वर नहि वेद अधीना।।३१।।
प्रायश्चित तदपि प्रभु करहू। लोक यथा तब पथ अनुसरहू।।३२।।

श्रीभगवानुवाच-

दोहा- लोक अनुग्रह हेतु मैं, करिहौ शुभ मन लाय।
प्रायश्चित्त विधान तुम, हमहिं देहु बतलाय।।३३।।

आयु प्रबल येहिं देइहुं जाई। योग शक्ति सब करहुं सुहाई।।३४।।

ऋषय ऊचुः-

शस्त्र तुम्हार वचन मम जोई। होउ मृषा नहि करहु प्रभु सोई।।३५।।

श्रीभगवानुवाच-

आत्म समान पुत्र श्रुति भाखा। सूत तनय अब कहिहैं शाखा।।३६।।
अनजाने भा मम अपराधा। प्रायश्चित्त करउं मैं साधा।।३७।।

ऋषय ऊचुः–

इल्लल सूत बल्वल बलवाना। दानव करत रहत अपमाना।।३८।।
विष्ठा मूत्र करहि मख आगी। ताहि बधहु बलराम सुभागी।।३९।।
एक बरस सब तीरथ जाई। प्रायश्चित्त करहु मन लाई।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे अष्टसप्ततमोऽध्यायः ।।७८।।

*

।। अथ एकोनाशीतितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– पर्व दिवस को पाइ के, वायु प्रचण्ड झँकोर।
धूरि उड़त चारिहु दिशि, पीब गन्ध चँहु ओर।।१।।

बल्लव दानव शूल उठाई। यज्ञ भूमि मल मूल गिराई।।२।।
महा काय अंजन गिरि लागा। लाल शिखा मुख कुटिल अभागा।।३।।
सुमिरे हल मूसल यदुराई। सुमिरत दैत्य दमन दोउ आई।।४।।
हल से खीचिं गगन चर काला। मुसल मारि तेंहि हते विशाला।।५।।
गिरा भूमि बहु रुधिर बहावा। अरुण पहाड़ मनहुं भुंइ आवा।।६।।
इन्द्रहिं पूजत जिमि सुर सारे। ऋषि गण अवितथ वचन उतारे।।७।।
दिव्य वसन भूषण पहिराये। माला वैजन्ती उर छाये।।८।।

दोहा– बिदा पाइ नैमिष पँह, गये कौशिकी तीर।
पहुँचे सरवर के निकट, सरयू जँह बह नीर।।९।।

सरयू पुलिन छाँड़ि प्रभु आये। पहुँचि प्रयाग त्रिवेणि नहाये।।
देव पितर तर्पण बल कीना। पहुँचे आश्रम पुलह अधीना।।१०।।
गोमति गण्डकि शोण विपाशा। गंगा सागर गया यियासा।।११।।

नग महेन्द्र बलराम पधारे। सप्त गोदावरि वेणा पारे।।१२।।
करि स्कन्दहिं दर्शन रामा। गये श्रीशैल शम्भु के धामा।।
दविड देश वेंकट प्रभु देखे। अचल देखि उर हरख विशेषे।।१३।।
काम कोटि कांचीपुर आये। कावेरी में जाइ नहाये।।
महा पुण्य दर्शन श्रीरंगा। विष्णु विराजत जहाँ अभंगा।।१४।।
विष्णु क्षेत्र ऋषभाद्रि पधारे। दक्षिण मथुरा जाइ निहारे।।
सागर सेतुबन्ध पँह आये। जाहि देखि सब पाप नसाये।।१५।।
दस सहस्र गो विप्रन्ह दीन्हा। ताम्रपर्ण कृतमाला चीन्हा।।
मलयाचल पहुँचे यदुरायी। जहाँ सात पर्वत जोरियाई।।१६।।

दोहा- जहाँ वसत कुंभज ऋषि, करि प्रणाम कर जोर।
लहि अशीष आज्ञा धरि, गये सिन्धु की ओर।।१७।।

फाल्गुन तीर्थ गये बलरामा। पंच सरस् कीन्हे अस्नाना।।
दस हजार गो दान विधाना। जहाँ वसत विष्णु भगवाना।।१८।।
चलि त्रिगर्त केरल गये रामू। गये गोकरण शिव कँह धामू।।१९।।
आर्या देवि दरस बलरामा। शूर्पारक गे क्षेत्र ललामा।।
मज्जन कीन पयोष्णी जाये। विन्ध्य लांघि दण्डकवन आये।।२०।।
शेष नर्मदा तट पर आये। जहाँ नहाइ प्रभास सिधाये।।२१।।

दोहा- सुनी कथा तँह द्विजन सों, कौरव कुल को नाश।
नृपन्ह मारि भूभार हरि, हरी पाण्डुकुल आस।।२२।।

भीम सुयोधन जानि लड़ाई। रोकन गदा युद्ध यदुराई।।२३।।
देखा नृपति जिष्णु भगवाना। बलरामहिं सब किये प्रणामा।।
सोचत काह कहन ये आये। सहमें, चुप साधे निरुपाये।।२४।।
गदा युद्ध दोउ करत प्रवीरा। बोले हरधर गिरा गभीरा।।२५।।
नृपति सुयोधन और वृकोदर। एक बली अरु एक प्रखर।।२६।।

हार-जीत नहि होवनि हारा। बन्द करहु यह वृथा प्रहारा।।२७।।
दूनउ बद्ध वैर रणधीरा। सुने नाहि बलरामहि पीरा।।२८।।
जानि प्रबल प्रारब्ध महीसा। गये द्वारकापुरी अहीसा।।
उग्रसेन आदिक सब आये। बलरामहिं सब गले लगाये।।२९।।

दोहा- नैमिष बन आये प्रबल, श्री बलराम अवैर।
निखिल यज्ञ के अंग को, यज्ञ कराये ढेर।।३०।।

दीन विशुद्ध ज्ञान भगवाना। आत्म तत्व बहुभाँति बखाना।।३१।।
रेवति सँग अवभृथ अस्नाना। भले अलंकृत श्री बलरामा।।३२।।
किये अनन्त कर्म भगवन्ता। को कहि सकेअनन्त अनन्ता।।३३।।
जो अनन्त गुण कह मन लाई। साँझ सुबह श्री हरिको पाई।।३४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

*

।। अथ अशीतितमोऽध्यायः ।।

राजोवाच-

दोहा- भगवन ! औरु मुकुन्द की, कथा कहहु मुनिराय।
लीलाधर-लीला सुनत, मन कबहूँ न अघाय।।१।।

काम बाण मूर्च्छित को होई। हरि लीला सुनि मन नहि गोई।।२।।
वाणी सोइ जो कृष्ण गुण गावै। कर सोइ सेवा करहि रिझावै।।
मन सोइ सुमिरि चराचर स्वामी। कान सोइ सुनि कथा निकामी।।३।।
सोइ शिर सोह झुकहि प्रभु पाये। चक्षु सोइ हरि दरस अघाये।।
सोइ सब अंग विमल करि जाना। करहि सदा चरणोदक पाना।।४।।

सूत उवाच-

विष्णुरात पूंछे मन लाई। कही कथा शुकदेव बुझाई।।५।।

श्रीशुक उवाच–

कृष्ण–सखा एक ब्राह्मण रहेऊ। विषय विरक्त शान्त सब कहेऊ ।।६।।
बिना याचना जो कछु पावा। संग नारि घर–बार चलावा ।।७।।

दोहा– एक दिवस बोली सजल–नयन दोउ कर जोरि।
क्षुधा–क्षाम कृश गात अति, पति सन दुखी बहोरि।।८।।

सखा तुम्हार कृष्ण भगवाना। लक्ष्मीपति सब लोक बखाना।।
शरणागत द्विजकुल हितकारी। भगत बछल आरत भय हारी।।९।।
दीन जानि देइहैं धन भारी। जाहु नाथ तिन्ह पास मुरारी।।१०।।
भोज वृष्णि अन्धक के स्वामी। बसहिं द्वारका पुरी अकामी।।
सुमिरत चरण कमल यदुनाथा। अर्थ काम दे करत सनाथा।।११।।
येंहि विधि नारि बहुत समुझावा। विप्र गुनत हरि दर्शन पावा।।१२।।
द्विज हरि दरस सोचि मन कीन्हा। देइहों भेंट उनहि का चीन्हा।।१३।।

दोहा– मुठिका तन्दुल चारि घर, द्विजसन मांगी जाय।
एक वस्त्र में बाँधि कर, पतिहिं भेजि निरुपाय।।१४।।

हरि दर्शन कैसे मोंहि हो ही। सोचत द्विजवरचले बटोही।।१५।।
पहुँचि द्वारका शिविर निहारे। तीन गुल्म, कक्षा के पारे।।
अन्धक वृष्णि रहहिं पुर जाके। परम अगम्य काहु नहि ताके।।१६।।
सोलह सहस रानि घर देखे। देखि ब्रह्म सुख लहे विशेषे।।
एक भवन अति सुन्दर माना। किये प्रवेश विप्र श्रीधामा।।१७।।
प्रिया संग बैठे यदुनाथा। दूरहि देखेउ विप्र अनाथा।।
सहसा उठि धाये श्रीधामा। हरषि बाहु लीन्हे द्विज थामा।।१८।।

दोहा– विप्र अंग परसे प्रभु, परमानन्द स्वरूप।
कमल नयन आँसू झरत, कृष्ण स्वयं अभिरूप।।१९।।

द्विजंहि पलंग विठाय श्रीधामा। पूजन कीन स्वयं अभिरामा।।२०।।

पद पखारि चरणोदक लीन्हा। लोक पवित्र करन प्रभु चीन्हा ।।
चन्दन कुंकुम देह लगावा । अस करि कृष्ण परम सुख पावा।।२१।।
धूप दीप सुरभित, गोदाना । पान भेंटि स्वागत करि नाना।।२२।।
मलिन कुचैल क्षीण तनु श्यामा । चँवर करत रुक्मिणि श्रीधामा ।।२३।।
कृष्ण कीन पूजा द्विज देखी। रानिन्ह उर विस्मय सविशेषी ।।२४।।
कौन पुण्य अवधूतहिं होई। श्रीविहीन भिक्षुक जो कोई।।२५।।
श्री निवास हरि पूजत जाही। बल इव पलंग विठाये ताही ।।
कृष्ण विप्र संग हाथ मिलाये। गुरुकुल चर्चा करि हरषाये ।।२६।।

श्रीभगवान् उवाच–

गुरु गृह लौटि कहहु तुम भाई। निज अनुरूप लहे भौजाई ।।२७।।

दोहा– विषय भोग आसक्त नहि, नहि गृह में तव प्रीति ।
धन अर्जन में रुचि नहीं, मैं जानऊ द्विज रीति ।।२८।।
कर्म करंहि कोउ रात दिन, विषय वासना त्यागि।
माया तजि मम सदृश ते, लोक सिखावन लागि ।।२९।।

कबहुँ करहु सुधि गुरु कुल वासा । आत्म ज्ञान हित परम सुपासा ।।३०।।
सखे! द्विजातिन्ह त्रय अनुकूला। पिता, गुरू हरि हर भव शूला।।३१।।
गुरु भगवान् स्वयं हरि रूपा । जेहि उपदेश तरहिं भव कूपा ।।३२।।
गुरु सेवा लगि मम परितोषा। नहि जप योग यज्ञ यति रूखा ।।३३।।
सुधि करु मित्र गुरुकुल वासा। ईधन हेतु मातु गुरु त्रासा।।३४।।
जंगल जात बिना ऋतु पानी । आँधी, विद्युत निशा सिरानी ।।३५।।
अथवत रवि चहुँ दिशा हेरानी । चारिंउ ओर भरा भुंइ पानी ।।३६।।

दोहा– वर्षा आँधी तडित गति, और लगत बौछार ।
दिशा मूढ़ घूमत बन, हाथ पकड़ि दृग पार।।३७।।

उदित सूर्य, गुरु खोजत आये । आतुर सान्दीपनि हम पाये ।।३८।।

पुत्र! मोंहि लगि कष्ट उठाये। आत्म दान करि सेवा धाये।।३९।।
गुरु ऋण उऋण होंइ ते जाना। शुद्ध भाव अर्पण तन प्राणा।।४०।।
सुफल कामना होहिं तुम्हारे। शास्त्र अधीत साथ रह सारे।।४१।।
गुरु गृह वसत रहत हम लोगू। गुरु जन कृपा सुफल संयोगू।।
गुरुकुल रहत प्रीति अधिकाई। विनु गुरु कृपा शान्ति को पाई।।४२।।

ब्राह्मण उवाच–

अब कर्तव्य कहहु समुझाई। देव देव श्रीकृष्ण कन्हाई।।४३।।
वेद ब्राह्मण पुरुषार्थ तुम्हारे। होइ गात गुरुकुल किमि तारे।।
नर लीला करि बल श्री धामा। आये पढ़न हेतु गुरुधामा।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे अशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

*

।। अथ एकाशीतितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– करत बतकही विप्रसन, हरि बोले मुसकाय।
जानत सब के मन प्रभू, मन नहि मोद समाय।।१।।
चितवत द्विज कँह प्रेम से, विप्रदेव भगवान।
हरिहिं देखि मिट जात दुख, जहाँ कृष्ण नहि आन।।२।।

श्रीभगवान् उवाच–

कहहु विप्र भेंट का लाये। घर तें अब तक नाहिं दिखाये।।
भगत प्रदत्त थोरु बहु लागे। दिये अभक्त ढेर नाहि पागे।।
भगत दिये अणु से परितोषा। दीन अभक्त विपुल नहि तोषा।।३।।

पत्र पुष्प फल जल जो देवा। भगत दीन मैं करहुं कलेवा।।४।।
श्रीपति बोलत रहे सुबयना। तबहुँ न द्विज तेंहि दीन चबैना।।५।।
सब के मन हरि जानन हारे। द्विज आयेउ केंहि लागि विचारे।।
लच्छि लोभ यहि मन महि आवा। भगति भजन यहि काम नसावा।।६।।
सखा चहत घरनी मन राखा। देहौं धन सुर-दुर्लभ याखा।।७।।
अस विचारि का लिये छुपाई। कहि चावल कण हरि लिये बलाई।।८।।
तव यह भेंट मोंहि प्रिय लागा। याते सकल विश्व तृप्त होइ जागा।।९।।
एक मुष्टि हरि तण्डुल खाये। दूसर मुट्ठी हाथ लगाये।।१०।।
रुक्मिणि हाथ पकड़ि तब लीन्हा। सदा संग रह श्री तेंहि चीन्हा।।११।।
बस करु नाथ और जनि खाहू। लोक सकल एतनेहि निबाहू।।१२।।

दोहा- विप्रदेव हरि मन्दिर, सुख से सोये रैन।
तँह भोजन जलपान कर, स्वर्गिक पाये चैन।।१२।।
प्रात होत घर को चले, प्रभु दर्शन सुख मान।
यद्यपि कछु पाये नहीं, तदपि प्रसन्न सुजान।।१३।।

धन पाये नहिं, नहि कछु मांगा। लज्जित मन दर्शन सुख जागा।।१४।।
सोचत मन ही मन भूदेवा। हरि श्री सन करवाये सेवा।।१५।।
कहाँ दरिद्र दुखी मैं पापी। श्री पति मोंहि लगाये छाती।।१६।।
हाथ मोहि निज पलंग विठायो। रुक्मिणि मोंहि पर चँवर डुलायो।।१७।।
पद पखारि सेवा मम कीन्हा। देवदेव भूदेवहि चीन्हा।।१८।।
स्वर्ग मोक्ष चरणहिं बस जाके। सो प्रभु मोंहि सेइ नहि थाके।।१९।।
अधन जानि मोंहि धन नहि दीना। धनी होत सुधि विसर हरी ना।।२०।।
करत विचार निकट घर आवा। सूर्य चन्द्र इव सदन दिखावा।।२१।।
नाना उपवन खग कुल सोहे। कुमुद कमल फूले मन मोहे।।२२।।
सुभग अलंकृत नर अरु नारी। केंहि घर आयंउ करत विचारी।।२३।।

दोहा- येहि सब सोचत विप्रवर, नर नारी समुदाय।
गीत वाद्य मंगल करत, अगवानी कर आय।।२४।।

आवत पतिंहि सुना जब काना। पत्नी निकसीं लच्छि समाना।।२५।।
प्रेम पूर्ण नयनहिं जल छाये। मूंदि नयन मन कण्ठ लगाये।।२६।।
दासन्हि मध्य विराजत भामिनी। स्वर्ण लसित अप्सरा कामिनी।।
दासीन्ह सब कीन्हे श्रृंगारा। विस्मित लोचन विप्र निहारा।।२७।।
अति प्रसन्न गवने घर माँही। शत मणि खंभ महेन्द्र सिंहाहीं।।२८।।
दूध फेन सम शय्या सोहा। नागदन्त मणि जटित अछोहा।।
स्वर्ण दण्ड पर्यंक सुहावा। चामर व्यजन सुजात डोलावा।।२९।।
स्वर्ण जड़े आसन सब सोहे। कोमल विस्तर बिछे विमोहे।।
मोतिन्ह चँदवे लगे अनोखे। पुष्प गुच्छ सब लगे झरोखे।।३०।।
मरकत मणि की चित्र विराजे। शुभ्र स्फटिक दीवारहि साजे।।
रत्न दीप माला कर लीन्हे। चित्रित नारि सजीवहि चीन्हे।।३१।।
देखि विभव सोचत द्विज राजा। कहाँ ते आय बनाये राजा।।३२।।

दोहा- मनंहि गुनत द्विजराज यह, सब समृद्धि हरि दीन।
कीन कृपा यदुनाथ प्रभु, मोंहि दरिद्र लखि हीन।।३३।।

सन्मुख कछु नहि कहत गोसाईं। देहि बहुत बादल की नाई।।
अति उदार यदुवंश विभूषण। सखा हमार करत जग पोषण।।३४।।
देंहि बहुत फिर मानहिं थोरा। तण्डुल थोरेंहि भरे कटोरा।।३५।।
जनम जनम सोइ सखा मिलाई। सोइ हरि चरण प्रीति अधिकाई।।३६।।
भक्तहिं कृपा करत यदुराई। धन दइ मद करि लेंहि चोराई।।
मागत भक्तहिं धन हरि लेहीं। बिनु मागे वैभव सब देहीं।।३७।।
अस निश्चय हरि पद अनुरागा। त्याग पूर्ण, निस्पृह मन लागा।।३८।।
हरि निज भजत विप्र मनलाई। विप्रन्ह ते बढ़ि कहु नहि भाई।।३९।।

सोरठा-एहि विधि विप्र सुजान, जाना हरि अजितहिं जित।
किये ईश का ध्यान, पाये श्री हरि धाम शुभ ।।४०।।
दोहा- ब्रह्मभक्त द्विज चरित यह, जो गावहिं मन लाइ।
कर्मबन्ध को काटि वह, लहे परम पद पाइ।।४१।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे एकाशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

*

।। अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- एक बार बलराम हरि, बसत द्वारका लाग ।
सूर्य ग्रहण कल्पान्त इव, पूर्णग्रास उपराग ।।१।।
जाने प्रथमहिं योग-सुयोगा। कुरुक्षेत्र आये सब लोगा ।।२।।
नाम समन्तक पंचक जाना। परशुराम क्षत्रिन व्रण माना।।३।।
परशुराम मख जँह पर कीन्हा। कर्म अलिप्त लोकहित चीन्हा ।।४।।
तीरथ तहाँ बहुत जन आये। वृष्णि आदि अक्रूर सुहाये ।।५।।
गद प्रद्युम्न साम्ब तँह आये। अघनाशन सब ग्रहण नहाये।।६।।
कृतवर्मा अनिरुद्ध सुवीरा। नगर रखावत शुक रणधीरा।।७।।
मण्डित स्वर्ण गजहिं चढ़ि आये। विद्याधर इव कान्ति लुभाये।।८।।
दिव्य वसन माला उर धारे। शोभित होंहि देव सम न्यारे ।।९।।
परशुकुण्ड कीन्हे अस्नाना। विप्रन्ह दिये विविध विध दाना।।१०।।
विप्रन्ह मधुमय भोग जिमाये। कृष्ण चरणरति मांगन पाये।।११।।
भोजन करि तरु छायासीना। मित्रन खोजत मिलत प्रवीना।।१२।।
मत्स्य उशीनर कोशलराजा। कुरु सृंजय कैकय काम्बोजा ।।
मद्र कुन्ति आनर्त नरेशा। आये सब कृत निज वेषा।।१३।।

दोहा- आये नृप पर पक्षके, अपने आये भूप ।
नन्द आदि सब गोपियाँ, भरि उत्साह अनूप ।।१४।।

मिले परस्पर लोग लुगाई। करि आलिंगन प्रीति बढ़ाई ।।
नयन वारि पुलकावलि अंगा। रुद्ध कण्ठ आवेग अभंगा ।।१५।।
नारिन्ह भेंटति सखी सयानी । भरि अँकवार चुवत दृग पानी।।
कुंकुम पंक उरोज मिलाहीं। करि मृदुहास देत गलबाहीं ।।१६।।
बड़न प्रणाम लघुहिं आशीषा। स्वागत माधव कथा वरीसा ।।१७।।
भाइ देखि कुन्ती दुख भूली । भौजाईन मिलि सुख से फूली।।१८।।

कुन्ती उवाच–

भैया मैं हूँ बड़ी अभागी । मम दुख लागि सुधी नहि जागी।।१९।।
जाकर वाम विधाता होहीं। भाइ बाप सुत सुधि नहि लेहीं ।।२०।।

वसुदेव उवाच–

बहिन! सकल जग दैव खिलौना। होत उहइ जो चाहत होना ।।
सकल लोक वस ईश्वर माया। कर्म करत मानहु निरुपाया।।२१।।

दोहा- कंस त्रास वश हे भगिनि, हम न रहे एक गाँव।
इंश कृपा अब हम मिले, इहाँ एक ही ठाँव ।।२२।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- उग्रसेन वसुदेव से, मानित राजा लोग ।
कृष्ण दरस तँह पाइके, मानत शुभ संयोग।।२३।।

भीष्म द्रोण धृतराष्ट्र गँधारी। कुन्ती सृंजय पाण्डव नारी।।२४।।
भीष्मक कुन्ति भोज पुरुजेता। धृष्ट केतु सब शल्य समेता।।२५।।
विशालाक्ष दमघोष पधारे। मैथिल मद्र नृपति पगु धारे।।२६।।
विस्मित सकल भये हरि देखे। नारिन्ह कर शृंगार विशेषे ।।२७।।
राम कृष्ण कीन्हे सब माना। देखि परिग्रह अति सुख जाना ।।२८।।

धन्य भोजपति जन्म तुम्हारे। रात दिवस श्रीकृष्ण निहारे ।।२९।।
सकल वेद जेंहि कीरति गावा। जेंहि पग धोइ गंग यशु पावा ।।
काल भूंजि भुंइ कीन कठोरा। जीवन दीन आइ प्रभु कोरा।।३०।।
दरस परस सम्बन्ध बनाये। एक शयन आसन बैठाये।।
निरय पन्थ जे सदा रहा हीं। श्री हरि बसत उनहि ढिंग जाही।।३१।।

श्रीशुक उवाच–

नन्द जबहिं जाना हरि आये। देखन सब छकड़न भरि लाये ।।३२।।
नन्द देखि सब गोप जुड़ाने। आलिंगन करि सब हरषाने।।३३।।
श्री वसुदेव भेटि हरषाहीं। कंस त्रास कछु विसरत नाहीं।।३४।।
नन्द यशोदहि लखि हरि रामा। बोले कछु नहिं अश्रु विताना।।३५।।
कृष्ण और बलराम निहारी। गोद बिठाई दूनु महतारी।।३६।।
देवकि रोहिणि कण्ठ लगावा। व्रजरानिन्ह नयनन जल पावा।।३७।।
व्रजरानी जो कीन मिताई। इन्द्रहु पद न ताहि बिसराई ।।३८।।

दोहा– देखे नहि मां बाप को, छोड़ तिहारे पास।
कृष्ण और बलराम दोउ, राखे पुतरी आँख।।
लालन पालन कीन जो, कीन्हे उत्सव नित्य।
निर्भय हो दोउ बढ़े, ऐसा नेह अचिन्त।।३९।।

श्रीशुक उवाच–

माधव गोपिन्ह प्राण अधारा। कोसत पलक बनावनि हारा।।
मन हीं मन आलिंगन कीना। कृष्ण भाव तन्मय आसीना।।
योगिन्ह दुर्लभ योग दुरापू। कृष्ण वश्य करि राखे आपू।।४०।।
गोपिन्ह तन्मय देखि कन्हाई। लहि एकान्त पूंछि कुशलाई ।।४१।।
कबहुँ करहु सुधि मोहि भामिनी। शत्रु विनाशत विती यामिनी।।४२।।
मोंहि अकृतज्ञ न मानहु लोगू। हरिंहि विछोहत करत सँयोगू ।।४३।।

यथा वायु तृण तूल मिलावा। समय पाइ तिन पुनि विखरावा।।४४।।
भगति कीन मम अमृत समाना। जेंहि पाये कछु चाह न आना।।४५।।
सकल पदारथ भीतर बाहर। ओत-प्रोत मैं ज्यों सरि सागर।।४६।।
पंच भूत रचि प्राणि शरीरा। कारण करण अचिन्त्य गभीरा।।४७।।

दोहा- उभय विलक्षण रूप मै, सत्य सदा चिद्रूप।
आत्मा भोक्ता जीव कह, अनुभव करहु अरूप।।४७।।

गोपिन्ह श्री हरि किय उपदेशा। जीव कोश नाशे सब क्लेशा।
लहि गोपी अध्यात्मिक ज्ञाना। कृष्ण भाव तन्मय मन प्राना।।४८।।

दोहा- कही गोपिका नाथ तव, चरण युगल धरि धीर।
योगी जन धारत हिये, तबहुँ रहत मन पीर।।
भव सागर को तारने, तब पद करि अवलम्ब।
सुधि विसरे नहि हे प्रभो, घर बन रहौ कुटुम्ब।।४९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

*

।। अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- गोपिन ऊपर करि कृपा, श्रीहरि कृपा निधान।
धर्मराज से कुशल तब, पूंछे मिलि भगवान।।१।।

लोकनाथ पूंछी कुशलाई। जेंहि पद निरखत पाप नसाई।।२।।
बोले अशिव कहाँ भगवाना। चरण सरोज करत रस पाना।।
श्रवण युगल जे कथा सुनाहीं। जनन-मरण विस्मृति सब नाहीं।।३।।

ज्ञान रूप आनन्द निधाना। स्वयं प्रकाश विष्णु भगवाना।।
वेद त्राण हित धरे स्वरूपा। प्रभो ! नमामः हंस अनूपा।।४।।

ऋषि रूवाच–

स्तुति करत लोग जब देखीं। कुरु कुल रमणी प्रीति विशेषी।।
मिलि हरि कथा कहहिं मनलाई। राजन् ! सुनहु तुमहि बतलाई।।५।।

द्रौपदी उवाच–

दोहा– रक्मिणि, भद्रे, जाम्वबति, भामे शैव्ये आदि।
रोहिणि, कौशल लक्ष्मणे, कहु कालिन्दि अनादि।।६।।

कृष्ण पत्नियाँ कहहु बुझाई। कीन वियाह हरी तुम्ह पाई।।७।।

रुक्मिणी उवाच–

शिशु पालहिं सँग मोर बियाहू। रचे तहाँ कँह मोर निवाहू।।
शस्त्र सम्हारि रहे नृप नाना। हरे सिंह इव मोहि भगवाना।।
चरण कमल नित पूजन चहहूँ। श्रीनिकेत मम उर मंह रहहूँ।।८।।

सत्य भामा उवाच–

भाइ हते मम पिता दुखारी। हरिहिं कलंक लगाये भारी।।
जीति ऋक्ष मणि पितहिं थमाई। पिता मणी संग किये जवाँई।।
डरपत पिता हरिहिं मोहि दीना। पहिले दूसर वर मन कीना।।९।।

जाम्ववती उवाच–

सीतापतिहि पिता पहिचाने। लड़त सताइस दिनहि विताने।।
लाइ स्यमन्तक करि उपहारा। मोहि समर्पे हरी सहारा।।
चरण कमल रत रहउ उपासी। युग–युग मोहि बनावे दासी।।१०।।

कालिन्दी उवाच–

करत तपस्या जानि मुरारी। पाणिग्रहण कीन भयहारी।
चरण कमल रज निशि चाहूँ। स्वामि सदन बरु नित्य बुहारुँ।।११।।

मित्रविन्दा उवाच–

दोहा– आइ स्वयम्बर जीति नृप, भाइन्ह मोंहि छुड़ाय।
सिंह यथा श्वानहि डपटि, हरी हरे हरषाय।।१२।।

सत्या उवाच–

सात बैल अतिशय बलवाना। तीक्ष्ण सींग छोड़े मैदाना।।
पिता चहत राजहि बलदेखा। खेलत हरि नाथे वृष शेषा।।
बालक अज शिशु यथा धराहीं। तथा धरे हरि बिना थकाहीं।।१३।।
निज बल हरे मोहि असुरारी। सदा दास्य मम रहे अघारी।।१४।।

भद्रा उवाच–

मातुल सुत पर रति मम जाना। कृष्णहिं दीन वियाह सुजाना।।१५।।

लक्ष्मणा उवाच–

सुनत रहौं नारद बहुबारा। कृष्ण चरण लक्ष्मी आधारा।।
लोकपाल तजि हरि अनुरागी। पद्मा सम जग को बड़भागी।।१६।।
मम उर बसे कृष्ण भगवाना। पद सरोज तिन्ह बस मो प्राना।।१७।।
वृहत्सेन मम पिता सयाने। कीन उपाय मोर मन जाने।।१८।।
यथा पिता तव रचे विधाना। मत्स्य बेध जो करि बलवाना।।
तथा जनक मम मत्स्य बनावा। परछाहीं जलमांहि दिखावा।।१९।।
मम पुर आये भूप अनेका। संग लिये गुरु रचे सुरूपा।।२०।।
यथा बुद्धि बल कृत सन्माना। बेधि सके नहि मत्स्य सुजाना।।२१।।
धनुष उठाइ चढ़ायेउ केही। कोउ नृप नाहि चढ़ाये ते ही।।२२।।
जरासन्ध शिशुपाल प्रवीरा। भीम कर्ण दुर्योधन धीरा।।
लीने केंहि विधि धनुष चढ़ाई। मत्स्य नाहि तिन्ह पड़ा दिखाई।।२३।।

सोरठा–अर्जुन छोड़े बाण, वेधा नहि वह मत्स्य तनु।
परसि सका वह लक्ष्य, यद्यपि थे धन्वी कुशल।।२४।।

मानिन्ह मान भंग भा जाना। बेधे तबहिं मत्स्य भगवाना।।२५।।
एक बार जल देखे मीना। मध्य दिवस हरि बीध प्रवीना।।२६।।
देवेन्ह कीन तुमुल जय घोषा। पुष्प वृष्टि कीने परितोषा।।२७।।
तबहि गई मैं रंग विशाला। लीने हाथ स्वर्ण शुचि माला।।
नूपुर कलधुनि करत सुहावा। नूतन वस्त्र सुहास लजावा।।२८।।
कुन्तल लटक रहे मुख मांही। कुण्डल लोक कपोल सिरांही।।
शीतल हिमकर दृष्टि उठावा। नृपहिं निरखिं हरि माल पिन्हावा।।२९।।
शंख पखावज बजे मृदंगा। नट नर्तक नाचहिं बहुरंगा।।३०।।
बरेंउ कृष्ण, नृप नांहि सुहावा। द्रौपदि! नृपन्ह डाह बहु आवा।।३१।।
रथ चढ़ाइ मोंहि धनुष उठाये। रूप चतुर्भुज परम सुहाये।।३२।।
स्वर्ण-भरा रथ दारुक हाँके। सिंह स्वभाव मृगन्ह मंह छाँटे।।३३।।
कछु-नृप पीछा कीन अभागे। यथा श्वान सिंह के आगे।।३४।।
शार्ङ्ग धनुष कर काहू काटे। बाहु कन्ध काहू के छाँटे।।
कछुक नृपति तँह चले पराई। काहू आपन प्राण गँवाई।।३५।।

दोहा- तब यदुवंश शिरोमणि, पहुँचे नगरी आय।
तोरण केतु सुशोभित, सूर्य सरिस हरषाय।।३६।।

हुये मनोरथ पूर्ण हमारे। बन्धु बान्धवन्ह पिता दुलारे।।३७।।
यद्यपि पूर्ण काम यदुनाथा। तदपि सम्पदा-दीन्ही साथा।।३८।।
पूर्व जन्म के सुकृत सुहाये। दासी बनि हम सब हरि पाये।।३९।।

महिष्यः ऊचुः-

विजय कीन भौमासुर जबहीं। राजकुमारिन्ह लायेउ तबहीं।।
मारि असुर हम सबहि छुड़ाये। पूर्णकाम हरि कँह हम पावे।।४०।।
राजु इन्द्रपद कहु नहिं चाहों। ब्रह्म लोक अरु मोक्ष उताहो।।
चाहहूँ श्री रज सिर पर धारौं। कुच कुंकुम सुरभित अति प्यारों।।४१।।

दोहा- गाय चरावत कृष्ण के, चरण युगल जलजात।
परसत गोपी तृण लता, कबहूँ नाहि अघात।।४२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्दे त्र्यशीतितमोऽध्यायः।।८३।।

*

।। अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- पृथा सौबली द्रौपदी, और नृपन्ह की नारि।
गोपिन्ह देखी कृष्ण की नारि प्रीति बलिहारि।।१।।
एहि विधि करते बात सब, नर नारी समुदाय।
रामकृष्ण दर्शन करन, ऋषि गण पहुँचे आय।।२।।

नारद व्यास च्यवन तँह आये। गौतम देवल असित सुहाये।।
विश्वामित्र शतानंद ज्ञानी। भरद्वाज गौतम सन्मानी।।३।।
परशुराम गालव भृगु ताता। कश्यप अत्रि पुलस्त्य विख्याता।।
गुरु मार्कण्डे सनकादि कुमारा। द्वित त्रित याज्ञवल्क्य ऋषिवारा।।४।।
वामदेव ऋषिवर घटयोनी। अन्य महामुनि जानत होनी।।५।।
विश्वबन्द्य ऋषि आवत देखे। नृपन्ह संग हरि उठे विशेषे।।
कीन प्रणाम जोरि जुग पानी। देखि महामुनि सब विज्ञानी।।६।।
आसन दीन कृष्ण बलरामा। पाद्य आचमन पूजन नाना।।७।।
सुख आसीन दीख मुनि वृन्दा। बोले श्री हरि वचन अमन्दा।।८।।

श्रीभगवान् उवाच–

दोहा- जन्म सुफल हम सबहिं का, दर्शन पाये आजु।
देवहुं दुर्लभ दरस जो, दीने ऋषी समाजु।।९।।

इष्टदेव मूरति मँह देखी। स्वल्प तपस्या मानु विशेषी।।
सर्व प्राणिगत ईश न जाना। तेंहि कर दुर्लभ दरस सुजाना।।१०।।
नहि जल तीरथ शिला न देवा। बहुत काल करबावहिं सेवा।।
तीरथ सन्त पुरुष सुखदायी। दर्शन ते अघ ओघ नसाई।।११।।
सूर्य चन्द्र अग्नी अरु तारा। पृथ्वी जल आकाश उदारा।।
प्राण वाक मन किये उपसाना। जात नहीं पुनि पाप वासना।।
भेद बुद्धि ये हरहिं न देवा। हरहिं सन्त क्षणमाहि पखेवा।।१२।।
तीन धातु से रचित शरीरा। मानहिं आत्मा पुत्र गभीरा।।
मानहि पाथर काठहि ईशा। जलहिं तीर्थ, नारी हृदयेशा।।
मानहिं नाहि ज्ञानि जे भाई। ते खर शूकर श्वान की नाई।।१३।।

श्रीशुक उवाच–

कृष्ण अगाध ज्ञान के खानी। ऋषिहुं न बूझे हरि की बानी।।१४।।
चिन्तन बहुत कीन मुनिनाथा। लोक सिखावन कह यदुनाथा।।१५।।

मुनय ऊचुः–

तब माया मोहित भगवाना। प्रजापतिन्ह के ईश सुजाना।।
लीला तब अद्भुत भगवन्ता। मनुष चरित तुम करहु अनन्ता।।१६।।
धरा धरइ जिमि नाम अनेका। घटमठ आदि एक तें एका।।
तथा अनीह लिप्त नहि होऊ। सृष्टि प्रलय पालक प्रभु सोऊ।।१७।।
स्वजन त्राण दुष्ट कर नाशा। परम सत्त्वमय वेद प्रकाशा।।
आश्रम वर्ण चारि प्रभुसोई। परम पुरुष परमात्मा होई।।१८।।
वेद हृदय तब परम उदारा। तप संयम स्वाध्याय प्रचारा।।
निर्गुण सगुण उभय तब रूपा। ध्यान लभ्यतव दरस अनूपा।।१९।।
ब्राह्मण वेद पढ़हि मन लाई। तबहि करहु सन्मान बड़ाई।।
ब्रह्मज्ञान ब्राह्मण जो बरई। ताकर भगति ईश तुम करई।।२०।।

सफल जनम अरु ज्ञान हमारे। आप मिले सब श्रेयस पारे ।।२१।।

दोहा- चिदानन्दमय हे प्रभो ! माय पिहित स्वरूप।
हे अनन्त ज्ञानावधि ! नमो नमः चिद्‌रूप ।।२२।।

तुमहि न जानहि नृप अभिमानी। यदुवंशीहु तब रूप न जानी।।
काल ईश तुम जान न कोई। माया कृत परदा जो होई ।।२३।।
सोवत यथा स्वप्न कोउ देखे। नाम रूप सब माया लेखे ।।
स्वप्न शरीर पृथक कोइ होई। जाग्रत देह न जानइ कोई।।२४।।
एहि विधि जाग्रत देह अनेका। इन्द्रिय लोलुप भटकत छेका ।।
माया भ्रमित जीव नहि जाना। परम पुरुष हरि कृपा निधाना ।।२५।।
ऋषि मुनि ध्यान धरहि मन जाके। दर्शन लहेउं आजु प्रभु ताके।।
हम सब भगत आप प्रभु स्वामी। नाशहु जीवनकोश निकामी ।।२६।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- ऋषिन्ह पूंछि धृतराष्ट्र से, तथा युधिष्ठिर मांगि ।
विदा गवन चाहा करन, निज आश्रमन्ह सुभागि ।।२७।।
ऋषिन्ह जात जानेउ जब, तब वसुदेव सुप्रीत।
करि प्रणाम बोले वचन, नम्र भाव सुविनीत ।।२८।।

वसुदेव उवाच–

नमो नमो मुनिवर ऋषिनाथा। कर्म मोक्ष कहि करहु सनाथा ।।२९।।

नारद उवाच–

मुनिवर तर्क करहु जनि काहू। पुत्र भाव हरि किये निबाहू ।।
पूंछत श्रेयस् जेहि विधि होई। करु उपदेश ज्ञान जिहिं होई ।।३०।।
बहुत निकट ते होइ अवज्ञा । गंगा तट वसि शुद्धि-प्रवज्या।।३१।।
मिटइ न अनुभव कृष्ण प्रसंगा। क्षीण होइ नहि माघे गंगा।।३२।।
क्लेश कर्म परिपाक न होई। प्रभु अखण्ड अद्वय चित सोई ।।

होहिं गूढ़ निज शक्ति सहाई । मूढ़ यथा रवि ग्रहण दिखाई ।।३३।।
मुनि बोले वसुदेव सुनाई । राम कृष्ण नृप सुनि हरषाई।।३४।।
कर्म नाश कर एक उपाऊ। यज्ञेश्वर मख विष्णु रिझाऊ ।।३५।।
शास्त्र शोधि बुध कहहिं विचारी। आत्म शान्ति सुख साधनकारी।।३६।।
न्यायागत धन देहि लगाई । हरि आराधन, बिनु कदराई ।।
यही एक कल्याण बतावा । ब्राह्मण क्षत्रिय हरि गुन गावा ।।३७।।
धन गृह दार पुत्र की इच्छा। स्वर्ग आदि सुख लोक परिच्छा ।।

दोहा- सकल एषणा त्यागि के, जाइ तपोवन मांहि ।
करत आत्म चिन्तन वहाँ, हरि पद मनहि समांहि।।३८।।

देव पितर ऋषि ऋण जन्मे साथे। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के माथे ।।
यज्ञ, पुत्र, अरु बिना पढ़ाये । उऋण होइ नहि कोई उपाये।।३९।।
ऋषि ऋण पितृ ऋण दीन चुकाई। देव हेतु मख करहु तुम जाई ।।
उऋण होइ घर त्यागहु आई। भगवत शरण परम सुखदाई।।४०।।
सुकृत किये वसुदेव विनीता। पाये सुत भगवान् पुनीता।।४१।।

श्रीशुक उवाच–

ऋषि गण–वचन सुने जब काना। श्री वसुदेव यज्ञ मन ठाना।।
वरण कीन ऋत्विज यदु नाथा। मुनिन्ह चरण झुकि नायंउ माथा।।४२।।
धरम धुरन्धर वरन कराई। यज्ञ करन लागे मन लाई ।।४३।।
दीक्षित वसुदेवहिं करि टीका। धारेउ वृष्णि नृपति शुभ छीका ।।४४।।
सभी अलंकृत आई रानी। मंगल वस्तु लिये निज पानी।।४५।।
बाजत ढोल मृदंग नगारे । नर्तक नाचत दे दे तारे ।।४६।।
सभी अठारह रानि समेता। वसुदेवहिं कीने अभिषेका ।।४७।।
धरि मृगचर्म सोह वसुदेवा। कीन अलंकृति नारिन्ह सेवा।।४८।।

दोहा- रत्न जटित वर भूषण, सोहत ऋत्विज लाग ।
रेशम वस्त्र अलंकृत, यथा इन्द्र के याग ।।४९।।
पुत्र नारि संग श्री घनश्यामा । शोभित नील वसन बलरामा।।५०।।
प्राकृत वैकृत यज्ञ विधाना । अग्नि होत्र पूजे भगवाना ।।५१।।
यज्ञ समापन करि यदुराई । दीन दक्षिणा भूरि बड़ाई ।।
प्रचुर अलंकृत कन्या कीन्हीं । सींग मढ़ाइ धेनु बहु दीन्ही ।।५२।।
नारि संग अवभृथ अस्नाना । कीन रामह्रद लइ यजमाना ।।५३।।
हुये अलंकृत भूषण धारे । याचक बन्दिन दिये उतारे ।।
द्विजन्ह विविध भोजन करवाये। ग्राम सिंह को बोलि जिंवाये ।।५४।।
कोशल कुरु विदर्भ नरेशा । काशिकेय सृंजय अवनीशा ।।
भेंट दिये सुत दारहिं नाना । नृपन्ह कीन आदर सन्माना।।५५।।
देव पितर चारण बहु पाये । करत प्रशंसा भवन सिधाये।।५६।।
दोहा- महाराज धृतराष्ट्र अरु, भीष्म द्रोण सब पार्थ ।
नारद अरु श्री व्यास मुनि, गवने भवन यथार्थ ।।५७।।
विरह व्यथित गये सब लोगू । निज निज देश, कहाँ अस योगू।।५८।।
नन्द कछुक दिन रुके पुजाये। कृष्ण राम उगसेनहिं पाये ।।५९।।
उतरि महोदधि इच्छा केरी । कह वसुदेव नन्द प्रिय हेरी।।६०।।

वसुदेव उवाच-

बन्धन बहुत लोक मँह भाई । प्रेम पाश सबसे बरियाई ।।६१।।
अनुपम मैत्री तुम हीं जाना। हम अकृतज्ञ न करुं बखाना ।।
कबहु न टूटे साधु मिताई । इहै मोर याचन बड़ भाई।।६२।।
कारागृह कछु काल बिताये। या तें हित नाहीं करि पाये।।
धन मदान्ध अब हौं मै भाई । सज्जन अबहुँ देखि ना पाई ।।६३।।
लक्ष्मी मद ऐसो है मन्दा । स्वजन नाहि देखत जस अन्धा ।।

श्रेयस् जाके होत पुनीता । लक्ष्मी ताहि न मिलत अकूता ।।६४।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा- प्रेम विभोरे शौरि तब, गद् गद गिरा गभीर ।
नन्दहि मैत्री सुधि करी, नयनन निकसे नीर ।।६५।।

नन्द प्रेम वश तँह रहि गयऊ । कृष्ण राम देखत सुन लहेऊ ।।
आजु काल्हि जाइह व्रजराजा। कहत मास तँह तीन विराजा ।।६६।।
सकल मनोरथ पूरन भयऊ। भूषन वसन शौरि सब दयऊ ।।६७।।
उग्रसेन उद्धव बलरामा । दिये अनेक भेंट श्री धामा।।६८।।
नन्द गोप गोपिन्ह मन दीना । कृष्ण चरण पंकज उर लीना ।।६९।।

दोहा- मित्रन्ह देखे जात सब, वर्षा आयी जान ।
कृष्ण सहारे वृष्णि किये, द्वार वती प्रस्थान ।।७०।।
तहाँ जाइ वसुदेव के, कीने यज्ञ बखान।
मित्र भेंट आनन्द की, कथा कही सन्मान।।७१।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे चतुरशीतितमोऽध्यायः।।८४।।

*

।। अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।।

श्री बादरायणिः उवाच–

दोहा- एक वार वसुदेव कंह, पद बन्दे दोउ भाइ।
प्रेम सति अभिनन्दन, करि बोले यदुराइ ।।१।।

सुनि मुनि वचन भई परतीती । वसुदेवहिं मन उपजी प्रीती ।।
मानुष नहिं दोउ है भगवाना । अस निश्चय कह वचन प्रमाना।।२।।
योगिराज श्री कृष्ण सनातन। अगुण अगोचर पुरुष पुरातन ।।

संकर्षण भगवान् अनन्ता। जानेउं युगल रूप भगवन्ता।।३।।
जँह जँह जो कुछ दीख मुरारी। सबहि तुम्हार रूप असुरारी।।४।।
नाना रूप विश्व दिखलाई। प्राण जीव पालहु अज जाई।।५।।
जग परतन्त्र अचेतन प्राणा। शक्ति तुम्हार स्वतन्त्र अमाना।।६।।
चन्द्र कान्ति, रवि प्रभा, प्रकाशा। अग्नि, नखत विद्युत नभ आसा।।
भूमि गन्ध पर्वत थिति कर्ता। तुमहि जगत पालक संहर्त्ता।।७।।

दोहा- तृप्ति करन की शक्ति जल, तुम रस रूप सुजान।
ओज प्राण बल घूमना, वायु तुमहि भगवान।।८।।

तुमहि दिशा-अवकाश मुरारी। नभ आश्रय अस्फोट प्रचारी।।
नाद, वर्ण तुमही ओंकारा। वर्ण वाक्य पद रूप तुम्हारा।।९।।
इन्द्रिय शक्ति विधाता देवा। बुद्धि विनिश्चय ज्ञान अहेवा।।१०।।
पंचभूत तामस अहंकारा। इन्द्रिय तैजस सत्य प्रचारा।।११।।
नश्वर मंह अविनश्वर तुमही। कुण्डल नश्वर सत्य स्वर्ण हीं।।१२।।
सत्व रजस्तम कल्पित रूपा। माया प्रबल शक्ति अभिरूपा।।१३।।
जन्म आदि षड् भाव विकारा। तुमहि नांहि अनुगत संसारा।।१४।।
गुण प्रवाह सत्वादि तुम्हारे। बूढ़हिं अबुध कर्मफल मारे।।१५।।
सुकृत जन्य मानुष तनु पाये। मायावश परमार्थ गँवाये।।१६।।
मम शरीर सम्बन्धी मेरे। नेह पाश बाँधहु सब केरे।।१७।।
युगल रूप सुत नहि, भगवाना। भूमि भार हित रूप विधाना।।१८।।
शरणागत वत्सल हितकारी। इन्द्रिय लोलुप मैं संसारी।।
आत्मबुद्धि देह मंह कीना। जाने तुमहि पुत्र आधीना।।१९।।

दोहा- सूतीगृह में प्रभु कहे, अज अनादि मोहि जान।
नभ इव धरत अनेक तन, निज माया भगवान।।२०।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- सुनत कथन वसुदेव के, कृष्ण हँसे यदुनाथ।
बोले मधुर वचन प्रभु, विनय झुकाये माथ।।२१।।

श्रीभगवान् उवाच–

पुत्र जानि उपदेश पुनीता। युक्ति युक्त मानउं सुविनीता।।२२।।
हम सब आर्य द्वारकावासी। सकल चराचर ब्रह्म उपासी।।२३।।
आत्मा एक सदा स्व प्रकाशा। द्रष्टा दृश्य चराचर आसा।।
निर्गुण सगुण अनेक स्वरूपा। नित्य अनित्य अचिन्त्य अनूपा।।२४।।
छिति जल वह्नि वायु आकाशा। होहिं प्रकट कत करहिं निराशा।।
एक अनेक दिखावहिं रूपा। स्वर्ण कटक मुकुटादि स्वरूपा।।२५।।

श्रीशुक उवाच–

शौरि सुनेउ भगवत उपदेशा। विगत मोह बीते सब क्लेशा।।२६।।
देवकि विस्मय मन अति माना। गुरु सुत यमहिं छुड़ाय भगवाना।।२७।।
सुधिकरि सुतन कंस जिन्ह मारे। देवकि बोली वचन विचारे।।२८।।

देवकी उवाच–

राम अनन्त कृष्ण भगवाना। दूनउं नारायण मैं जाना।।२९।।
भूमि भार-क्षिति पाल सुरारी। दलन हेतु अवतरेउ मुरारी।।३०।।
जाके अंश लेश जग होई। उदय प्रकाश विलय प्रभु सोई।।
आद्य पुरुष करुणा मय देवा। शरण गहौं युगपत सब सेवा।।३१।।
गुरु ऋण उऋण भये तुम लाये। मृत पुत्रहिं गुरु मातु दिखाये।।३२।।
कंस हते मम सुतगण जेते। देखन चहौ ईश हम तेते।।३३।।

ऋषिरुवाच-

दोहा- मातु वचन सुनि प्रमुदित, कृष्ण और बलराम।
किये योग माया प्रबल, सुतल लोक प्रस्थान।।३४।।

दैत्यराज देखे भगवाना। अति आनन्द न जाइ बखाना।।

हरिहिं प्रणाम कीन सुविनीता। कुल समेत सादर सुपुनीता ।।३५।।
दीन वरासन युगल बिठाये । पद पखारि जल सिरहिं लगाये।।३६।।
पूजा कीन अधिक अनुरागा। वसन विभूषन करि अंगरागा ।।
धूप दीप ताम्बूल दिखाये । घर परिवार सबहिं शिर नाये ।।३७।।
बार बार प्रभु चरण निहारी । असुर राज बलि होंहि सुखारी ।।
प्रेम पुलक नयनन जल छाये । गद् गद गिरा कहत हरषाये।।३८।।

बलिः उवाच–

जय अनन्त जय कृष्ण मुरारी। परब्रह्म परमात्म विहारी।।३९।।
दुर्लभ दर्शन जग मँह जाके। तमोगुणी मैं पायउं ताके।।४०।।
दानव राक्षस भूत पिशाचा। बैर करहिं साधे नाराचा ।।४१।।
सत्त्व धाम प्रभु वेद शरीरा। तामस करहिं सत्व जन पीरा ।।४२।।

दोहा– बैर भाव रखि दुर्जन, सुजन कामना लागि।
पाये तब चरणन रति, अगम अबोध अनादि ।।४३।।

इदमित्त्थं नहि जानहिं कोई । योग परायण भलु कोउ होई।।४४।।
कृपा करहु मो पर हे स्वामी। अन्धकूप में पतित सुकामी।।
चरण शरण राखहु प्रभु नीके। विचरंउ सन्त संग सब ही के।।४५।।
पाप हरहु सब जीव निकाया। विधि निषेध ऊपर तब दाया।।४६।।

श्रीभगवान् उवाच–

रहे मरीचि प्रजापति देवा। ऊर्णा पत्नी छः सुत सेवा ।।
सुता समागम निरत विधाता। हँसे देखि सुत छहों निपाता।।४७।।
ब्रह्म शाप आसुर तनु पाये । हिरण कशिपु के तनय कहाये ।।४८।।
देवकि उदर प्रकट छः भाई। हतेउ कंस जन्मत निरुपाई।।
देवकि उरहिं शोक अति भारी। सो तुम सब राखेहू सम्हारी ।।४९।।
मातृ शोक लगि ताहि दिखाऊँ। येहि विधि विधि कर शाप मिटाऊँ।।५०।।

स्मर उद्गीथा घृणी पतंगा। क्षुद्र भृत अरु देव परिषंगा।।
शाप मुक्त जैहें सुर लोकू। देखि देवकी मिटिहैं शोकू।।५१।।
अस कहि बलि पूजित दोउ भाई। आइ द्वारका सौपेउ माई।।५२।।
सुतन निरखि उपजी उर प्रीती। देवकि वक्ष लगाय सुप्रीती।।५३।।
माया वश सुत प्रेम निहारी। चुवत दूध पोषत महतारी।।५४।।
अमृत तुल्य हरि पूर्व जुठारी। पिवत भये सुर सकल सुखारी।।५५।।
कीन प्रणाम मातु हरि रामा। देखत चले गये सुर धामा।।५६।।
मरे सुतन देवकी देखा। माया विष्णु रची हिय लेखा।।५७।।

दोहा- एहि प्रकार अद्भुत चरित, कीन्ह कृष्ण बलराम।
प्रभु अनन्त अगणित गुण, को कहि सके प्रमान।।५८।।

सूत उवाच–

जो यह कथा कहइ मनलाई। सुनत हृदय जाके हरषाई।।
व्यास सूनु शुकदेव सुनावा। परम धाम प्रभु पद सो पावा।।५९।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।।८५।।

*

।। अथ षडशीतितमोऽध्यायः ।।

राजोवाच–

दोहा– भगवन् ! मैं जानन चहूँ, अर्जुन व्याहे जाइ।
बहिन कृष्ण बलराम की, कथा कहहु समुझाइ ।।१।।

श्रीशुक उवाच–

तीरथ करत जिष्णु तँह आये। नाम प्रभास क्षेत्र कहलाये।।
तहाँ सुना मातुल कुल चर्चा। सुता विवाह हेतु परिचर्चा।।२।।
दुर्योधनहिं दीन चह रामा। सहमत नाहि कृष्ण श्रीधामा।।
अर्जुन मन इच्छा बड़ लागी। भयेउ सुभद्रा के अनुरागी।।३।।
धरे त्रिदण्डी रूप अनूपा। द्वारवती पहुँचे नर भूपा।।
वर्षा ऋतु तँह जिष्णु बिताये। बलरामहु पहिचानि न पाये।।४।।
अतिथि मानि बलराम बुलाये। नाना व्यंजन जिष्णु जिवाँये।।५।।

दोहा– अर्जुन देखी नारि तँह, मधुर मनोहर रूप।
बीर योग्य हर्षित नयन, मनहि बरे नर भूप ।।६।।

अर्जुन देखि रही हरषाई। हँसत नयन वंकिम अलसाई ।।
निरखि प्रेम मन अर्पित कीन्हा। बाला लज्जित अर्जुन चीन्हा।।७।।
देखि सुभद्रा रूप मनोहर। अर्जुन शान्ति लहे ना भू पर।।८।।
देव दरस निकली जब बाला। हरन कीन अर्जुन महिपाला ।।
मातु पिता अनुमति तब पाये। श्री हरि सम्मति लिये पराये ।।९।।
सैनिक जो मारग मँह आये। अर्जुन धनुष देखि बरियाये ।।
कोसत रहे खड़े सब बीरा। सिंह समान चले रणधीरा ।।१०।।
सुनत कोप बलभद्रहिं जागा। चरण गहे हरि, कीन प्रसादा।।११।।
तब बलराम मुदित मन भेजे। दइ दहेज रथ वाजि सहेजे।।१२।।

श्रीशुक उवाच–

कृष्ण भगत श्रुतदेव कहावा। परम शान्त नहि किये बनावा।।१३।।
मिथिला नगर विछोह सुहावा। तहाँ बसत-निर्लोभ बितावा।।१४।।
यथालाभ सन्तुष्ट द्विजेशा। धर्म परायण रहेउ प्रजेशा।।१५।।
मिथिला पति बहुलाश्व बखाना। नारायण प्रिय गत अभिमाना।।१६।।
एक बार मुनि संग मुरारी। गये विदेह नगर असुरारी।।१७।।
नारद वामदेव शुक व्यासा। असित अरुणि गुरु मित्र प्रकाशा।।
च्यवन कण्व आदिक ऋषि साथा। मुनिन्ह संग पहुँचे यदुनाथा।।१८।।
पुरवासी आदर बहु दीन्हे। सूर्य अरघ जनु जन जन कीन्हे।।१९।।
धन्व, आनर्त्त कुरु जांगल वासी। कंक, मत्स्य, पांचाल निवासी।।
केकय कोशल, मधु के लोगा। मुख सरोज हरि लखे सुयोगा।।२०।।

दोहा– दर्शन पाये कृष्ण के, मिटे अशुभ सब योग।
देव मनुज अस्तुति करत, हरि विदेह संयोग।।२१।।

कृष्ण आगमन सुने सब काना। धाये लै पूजन विधि नाना।।२२।।
विकसे हृदय-कमल हरषाने। कर शिर राखि प्रभुहि सन्माने।।२३।।
मिथिलापति श्रुतदेव समेता। कीन प्रणाम अनुग्रह चेता।।२४।।
हाथ जोड़ि आमन्त्रण दीन्हा। द्विजन्ह संग हरि आगे कीन्हा।।२५।।
राखा मान दुहूँ घर आये। एक समय नहिं जान पराये।।२६।।
आये कृष्ण आजु घर मेरे। दुर्जन जाके नाम न प्रेरे।।
दीन वरासन मुनिगण साथा। सुखासीन देखत यदुनाथा।।२७।।
नयनन नीर भरे हरषाये। चरण धोइ शिर नीर लगाये।।२८।।
मिथिला पति पूजत श्रीधामा। गन्ध माल्य दीपक अभिरामा।।२९।।
हरि चरणनन निज गोद सम्हारी। बोले वचन हरिहिं प्रियकारी।।३०।।

राजोवाच–

कीन कृतारथ श्री यदुनाथा। दर्शन दीन अनाथ सनाथा।।
सर्व प्राणि आत्मा तुम स्वामी। अलख अगोचर जीव निकामी।।३१।।
सत्य कीन निज कथन मुरारे। भक्त मोंहि स्वजनन ते प्यारे।।३२।।
पाइ चरण को छोड़नि हारा। शान्त अकिञ्चन मुनी सहारा।।३३।।
लै अवतार यदुकूल देवा। कीर्ति कौमुदी पाप नसेवा।।३४।।
प्रभु अनन्त तब ज्ञान अनन्ता। नमो नारायण ऋषि श्री कन्ता।।३५।।
निमि कुल धन्य करहु करि वासा। कछुक दिनन मुनि संग निवासा।।३६।।

दोहा– मैथिल की सुनि प्रार्थना, लोक ईश भगवान।
कछुक दिनन तँह रमि रहे, करत लोक कल्यान।।३७।।

श्रुतदेवहु देखा हरि आये। मुनिन्ह संग नहि प्रीति थमाये।।३८।।
दीन्ह कुशासन अरु मृगचर्मा। बैठारे हरि सुविहित धर्मा।।३९।।
पत्नी सहित हरिहिं पग धोये। तेहिं जल सकल कुटुममल गोये।।४०।।
फल उसीर तुलसी दल वारी। सत्त्व प्रधान पूज बनवारी।।४१।।
अन्धकूप इव गृह रत मोंही। कृपा कीन प्रभु परम सनेही।।४२।।
करइ पवित्र चरण रज जाके। तीर्थ अनेक, ऋषी गृह ताके।।४३।।
करि पूजा हरि चरणन लीना। बोले श्री श्रुतदेव सुदीना।।४४।।

श्रुतदेव उवाच–

नहि दर्शन यह प्रथम गोसाई। सकल सृष्टि प्रभु आत्म समाई।।४५।।
सोवत यथा स्वप्न कोउ देखा। करइ सृष्टि स्वप्निल जग रेखा।।४६।।
कहत सुनत हरि अर्चन कर हीं। भासहु प्रभु सबके अन्तर ही।।४७।।
जो जानहिं तेहिं आत्म स्वरूपा। ग्रसे अविद्या कालहिं रूपा।।४८।।
कहहु नाथ का करहुं उपाया। तब दर्शन नासत अघ माया।।४९।।

श्रीशुक उवाच–

शरणागत रक्षक भगवाना । कर लैं हाथ कहत मुस्काना।।५०।।

श्रीभगवान् उवाच–

कीन कृपा तब सदन पधारे। मुनिगण पूत करहिं जग सारे ।।५१।।
देव, तीर्थ, अरु क्षेत्र बहोरी। धीरे पूत, ऋषी बरजोरी।।५२।।
जन्मत ब्राह्मण श्रेष्ठ पुनीता । तप, विद्या मम रति सुपुनीता।।५३।।
मोहि चतुर्भुज रूप पियारा। तेहिं ते अधिक विप्र मोहि प्यारा।।
सकल वेद मय विप्र बखाना। सर्व देव मय श्री भगवाना।।५४।।
केउ कुबुद्धि अस जानत नाहीं। पूजहिं मूरति द्विज गरियांही।।५५।।
सकल चराचर मँह मोंहि देखा। विप्र समान अन्य नहि लेखा ।।५६।।
ऋषिन्ह सकल जानहु भगवाना। पूजहु मम सम करि सन्माना।।५७।।

श्रीशुक उवाच–

सोरठा-एंहि विधि हरि उपदेश,सुने भक्त श्रुतदेव जब।
पूजन कीन द्विजेश, पाई अन्तहु सद्गती।।५८।।
दोहा- यथा भक्त भगवद् भजन तथा भजहिं यदुनाथ।
निजभक्तन कल्याण करि, गयेउ द्वारका नाथ।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे षडशीतितमोऽध्यायः।।८६।।

*

।। अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।।

परीक्षित उवाच–

दोहा– भगवन् ! निर्गुण ब्रह्म का, श्रुतियाँ करें बखान।
मन वाणी से जो परे, उसका कैसे भान ।।१।।

श्रीशुक उवाच–

सर्वशक्ति प्रभु गुणहिं निधाना । रचे मनस् बुधि इन्द्रिय प्राणा ।।
सगुण निरुपक श्रुतियाँ सारी । निर्गुण कहहिं स्वमति अनुसारी ।।२।।
करहिं उपनिषद ब्रह्म बखाना। श्रद्धा सहित ऋषीगण जाना ।।३।।
गाथा एक कहउं सुविचारी। नारद हरि संवाद प्रचारी।।४।।
एक बार नारद ऋषि आये। नारायण आश्रम बरियाये।।५।।
लोक क्षेम हित सदा मुरारी । करहिं तपस्या तप तनु धारी।।६।।
रहे तहाँ कलाप के वासी। नारद पूंछेउ प्रश्न सुवासी।।७।।
ऋषिन्ह सुनाइ कहेउ भगवाना । वेद तत्त्व कर कीन बखाना।।
जन लोकन्ह जन पूर्व सुनावा। सोइ मत नारायण समुझावा ।।८।।

श्रीभगवान् उवाच–

पुरा काल जनलोक सुहाये। ब्रह्म विचार कीन मनुसाये।।
अज–मानस–सुत पूछेंउ आई। कहेंउ विचार ब्रह्म मन लाई ।।९।।
श्वेतदीप तुम नारद गयऊ । प्रभु दर्शन तोरे मन रहऊ।।
ब्रह्म वाद चर्चा तब भारी । श्रुतिंहु लेइ जँह मौन सम्हारी ।।
इहै प्रश्न उहाँ तब भयऊ । आज देव ऋषि पूंछत रहऊ ।।१०।।
यद्यपि चारिउ भाइ समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना ।।
वक्ता एक ताहि मँह भयऊ। अपर तीन श्रोता बनि गयऊ ।।११।।

सनन्दन उवाच–

दोहा- प्रलय काल सोवत हरी, किये जगत को लीन।
अन्त प्रलय का जानकर, श्रुति जगाव हरि पीन।।१२।।
यथा प्रभात जगावहिं राजा। बन्दीजन गुण गाइ समाजा।।१३।।

श्रुतयः ऊचुः–

जय जय अजित सकल गुणशाली। नासहु माया अति बलशाली।।
सकल चराचर मायाधीना। दोष हेतु गुण रचे प्रवीना।।
बिनु तव कृपा मिटइ नहि माया। श्रुतियाँ तब कछु रूप बताया।।१४।।
वेदहिं देव नाम जो आवा। ब्रह्म रूप सो ऋषिन्ह बतावा।।
धरहिं मनुज पद काठ कोठारे। अन्त हु पृथ्वी रहत सहारे।।१५।।
प्रभु माया नर्तकी नचावा। भगत कथा मँह अमरित पावा।।
ज्ञानिंहु मिटइ कालकृत दोषा। मगन रहत तब चरित प्रदोषा।।१६।।
बिनु हरिभजन प्राण किमि लेखा। भाथी सांस सरिस सो देखा।।
अहंकार महतत्त्व निकाया। पंच कोष रचि ब्रह्म समाया।।१७।।
प्रभु प्रापक बहु मार्ग बखाना। पूजहिं अग्नि, दहर केउ माना।।
ज्योतिर्मय पथ जो कोउ पावा। बहुरि लोक मंह सो नहि आवा।।१८।।
दोहा- रची विविध योनी प्रभु, मानहु प्रविशे जाइ।
काठ अनल व्यापत जिमि, उत्तम अधम कहाइ।।१९।।
करम अधारित मिलइ शरीरा। अंश जगत अंशी यदुवीरा।।
करहिं साधना मन चित लाई। ज्ञान ते अपर भक्ति अधिकाई।।२०।।
परम तत्त्व अति गूढहिं जाना। भगति हेतु अनतरहिं सुजाना।।
लीला मधुर मनोहर कर हीं। छाँड़ि जगत तब पद अनुसर हीं।।२१।।
जो हरि सेवइ सोइ शरीरा। आत्मा मित्र हरइ सब पीरा।।
जो शरीर कँह सेइ अभागा। अधोगती ते भटकन लागा।।२२।।
योगी यती पाव जो लोका। शत्रु भाव अरि लहहिं अशोका।।

गोपिन्ह काम भाव उर धरहीं। श्रुतिन्ह सार रस तब पद लहहीं।।२३।।
जीव सान्त प्रभु तुमहि अनन्ता। देव कालवश स्ववश श्री कन्ता।।
प्रलय काल सब सोउ मुरारी। जागत तुमहि भक्त भयहारी ।।२४।।
सकल ज्ञान के पार गोसाईं। ज्ञान रूप नहि भेद सोहाई।।
कोउ कह असत् सत्य कह कोऊ। भ्रम मूलक संशय मय दोऊ।।२५।।

दोहा- मानहिं जगत स्व आत्ममय, तत्त्वज्ञानी लोग।
कटक मुकुट सब स्वर्ण है, मानि करत उपयोग ।।२६।।
जानहि विश्वाधार प्रभु, अधिष्ठान हरि रूप।
मृत्यु शीर्ष ते पाँव धरि, अमर होंहि चिद्रूप ।।२७।।
हरी विमुख विद्वान भी, पशु इव बाँधे जांइ।
प्रभु सेवा रत पामर, तरहि सिन्धु बिनु नांइ ।।२७।।

स्वयं प्रकाश सदा भगवाना। इन्द्रिय रहित करहि रस पाना।।
राजा यथा सेव्य कर लेहीं। ब्रह्मादिक सुर पूजा देंही।।२८।।
प्रभु संकल्प रचइ जग सारा। सूर्य यथा तम कंह उजियारा।।
परम सत्य तुम गिरा अगोचर। नहि कोउ स्वजन नाहि काहू पर।।२९।।
नहि अस कोउ तनु धर जग मांही। तब समान जेंहि वेद कहाहीं।।
बुद्धि अगोचर शासक स्वामी। जगत नियामक अन्तर्यामी।।३०।।
प्रकृति-पुरुष दोउ जन्म विहीना। जल बुद बुद इव भिन्नाऽभिन्ना।।
होइ परस्पर जब अध्यासा। नाम अनेक गुणन कर वासा ।।
अन्त सिन्धु मँह सरिता जाई। मधु मँह पुष्प पराग समाई ।।
तथा विविध गुण रूप निकाया। एक मात्र प्रभु मांहि समाया ।।३१।।

सोरठा-भटकत मायाधीन, जीव विपुल कर्महिं फँसा।
शरणागत जो होय, भगत तरे भव सिन्धु शुचि ।।३२।।

इन्द्रिय स्ववश कीन मुनि जोई। विनु गुरु पार न पावें सोई।।

कर्ण धार इव गुरु पद सेई । अनायास भव पारहिं होई ।।३३।।
प्रभु आनन्द सिन्धु सुख राशी । इनहि छाँड़ि गृहदार पियासी ।।
नश्वर जगत ईश अविनाशी । माया रहित अचिन्त्य उदासी ।।३४।।
विमद पुरुष सब तीर्थ समाना । सन्त करहिं पावन विधि नाना ।।
सत्य चिदानन्द सुखधामा । सन्त समर्पिहिं मन निष्कामा ।।३५।।
ब्रह्म सत्य जग सत्य न होई । कारण कार्य भेद सुठि सोई ।।
कारण रस्सी कारज सरपा । सत्य असत्य भेद बहु दरपा ।।
भ्रमित बुद्धि कछु थाह न पावा । कतहुँ कर्म कहुँ फलहिं बताया ।।३६।।

दोहा- मानहि मूरख सत्य जग, मिथ्या देंहि बखान ।
आयस, कंचन, मृत्तिका, शस्त्र कटक घट जान ।।३७।।
माया प्रेरित जीव जब, गहत अविद्या रूप ।
गुणाधीन वृत्तिक तदा, बँधत स्वयं तद्रूप ।।३८।।

काम अनल यति नाहिं बुझावा । हृदय अछत तोहिं तेन हि पावा ।।
यथा कण्ठ मणि, गये भुलाई । खोजत फिरहिं जगत अभुवाई ।।३९।।
जो जानहिं तब रूप अनूपा । विधि निषेध से परे स्वरूपा ।।
वाणी करइ चरित गुण गाना । ते नर तीरथ राज समाना ।।४०।।
इन्द्रादिक जेंहि थाह न पावा । तुमहुं न जानहु आपु स्वभावा ।।
प्रभु अनादि ब्रह्माण्ड अनन्ता । नेति नेति श्रुति कह विश्रन्ता ।।
लीन होत सब वेद अनादी । करत निषेध न पावत आदी ।।४१।।

श्री भगवान् उवाच–

दोहा- ब्रह्मा के मानस तनय, सुनि के वेद बखान ।
यद्यपि थे वे सिद्ध सब, दिये सनन्दन मान ।।४२।।

सनकादिक ऋषि रहे पुराने । गगनचारि निगमादि बखाने ।।४३।।
नारद तुमहु ब्रह्म सुत होहू । करहु प्रचार काम क्षति छोहू ।।४४।।

श्रीशुक उवाच–

ईश वचन सुनि नारद काना । बोले श्रुतधर वचन सुजाना ।।४५।।

नारद उवाच–

नमो नमः श्री हरि अवतारा । नाना रूप भक्तहित धारा न्यारा ।।४६।।
अस कहि नाइ सबन कर माथा । चलेउ व्यास आश्रम मुनि नाथा ।।४७।।
स्वागत कीन व्यास मुनि ज्ञानी । नारद सब कुछ कहेउ बखानी ।।४८।।
राजन ! जो कछु पूछन चाहा । कहेउं सकल जानिय नर नाहा ।।४९।।

दोहा– करहिं सत्य संकल्प प्रभु, प्रकृति पुरुष के स्वामि ।
ईश्वर केवल चिन्मय, माया सगुणहि जानि ।।५०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे सप्तशीतितमोऽध्यायः ।।८७।।

*

।। अथ अष्टाशीतितमोऽध्यायः ।।

राजोवाच–

दोहा– देव असुर मनुजादि सब, अशिव भजहिं शिव मानि।
पावत अतुलित बैभव, विष्णु भजे धन हानि ।।१।।

यह संदेह मोर मन स्वामी । शिव अरु विष्णु बजे फलु आनी ।।२।।

श्रीशुक उवाच–

सदा शक्ति संयुत त्रिपुरारी । वैकारिक तम तेज प्रचारी ।।३।।
इनसे सोलह होंहि विकारा । एकउ भजे भोग लह सारा ।।४।।
हरि निर्गुण प्रकृति के पारा । भजत ताहि निर्गुण भव तारा ।।५।।
धर्मराज यह पूंछेउ जाई । करि अश्वमेध यज्ञ मनु लाई ।।६।।
हरि जो कहे सो कहिहो तोंही । यदुकुल जनम लीन निर्मोही ।।७।।

श्रीभगवान् उवाच–

जेहिं पर कृपा करों मैं भाई। हरहुं ताहि धन मद अधिकाई।।
निर्धन जानि स्वजन तजि ताहीं। दुखित होइ सब तजह निवाही।।८।।
होइ विरक्त स्वमति अनुसारी। मम भक्तन कँह राह पसारी।।९।।
तब मम कृपा होइ तेहिं ऊपर। अन्य छाँड़ि, मम भक्त सहोदर।।१०।।
आशुतोष होइहि त्रिपुरारी। लक्ष्मी पाइ भगत मद भारी।।११।।

श्रीशुक उवाच–

शिव विरंचि विष्णु जगदीशा। शाप अनुग्रह करहि महीशा।।
ब्रह्मा शिव जलदी पुजियाये। पुरवहि काम विष्णु बरियाये।।१२।।
अब कहिहौं इतिहास पुराना। जेंहि विधि शिव संकट भे नाना।।
नाम वृकासुर भया सुरारी। तेहिं वर दीन शम्भु त्रिपुरारी।।१३।।
शकुनि तनय वृक रहा सुरारी। देखेउ नारद जात हँकारी।।
तीन देव मँह को वरदानी। पुरवइ शीघ्र मनोरथ स्वामी।।१४।।
नारद कहेउ शम्भु अविनाशी। आशुतोष संतत गुण राशी।।१५।।
रावण बाण कछुक तप कीना। संकट शम्भु लहे बर दीना।।१६।।
गयेउ केदार क्षेत्र वृक जबहीं। काटि अंग शिव तोषेउ तबहीं।।१७।।
सतवें दिन शिर काटन चाहा। भीगें बाल कुठार उछाहा।।१८।।

दोहा– करुणामय प्रकटे शिव, लीन भुजा दोउ रोक।
परस पाइ प्रमुदित वृक, पुलकित गात अशोक।।१९।।

'बस करु' बोले तब जगदीशा। करउं मनोरथ पूर्ण वृकेशा।।
मैं प्रसन्न जल मात्र चढ़ाये। काहे तुम निजशीष गिराये।।२०।।
पापी वृक मांगेउ वरदाना। जेहि शिर धरउं हाथ मरिजाना।।२१।।
हँसत रूद्र 'ओम्' कहि दीना। यथा अमृत लह असुर प्रवीना।।२२।।
गौरी हरण पापि मन आवा। कीन परीक्षा चाह जो पावा।।
शिव शिर हाथ धरन मन चाहा। निज वर डरेउ शम्भु नरनाहा।।२३।।

भागेउ शिव वृक पीछा कीन्हा। जाइ सकल दिशि, उत्तर चीन्हा ।।२४।।
देवन्ह डरे देखि वृक लीला। शिव पहुँचे वैकुण्ठ सुशीला ।।२५।।
जहाँ वसत श्री विष्णु सदारा। तहाँ जाइ दुर्लभ संसारा ।।२६।।
देखेउ विष्णु शंकरहि जबही। बटुक वेश धरि आयेउ तबहीं।।२७।।
हाथ कुशा कटि मेखल धारी। कीन प्रणाम वृकहिं असुरारी।।२८।।

श्री भगवान् उवाच–

दोहा– शकुनि तनय लागहु थकित, चले दूर तें आय।
तनिक करहु विश्राम तुम, यह शरीर फलु दाय।।२९।।

सब प्रकार समरथ तुम ताता। तदपि कहहु का करहूं नाता ।।३०।।

श्रीशुक उवाच–

कहेउ सकल सुनि अमरित वचना। जेंहि विधि कीन सुफल सब रचना।।३१।।
नहिं मानउं शिव वचन वृकेशा। भये पिशाच अभिशाप प्रजेशा ।।३२।।
यदि फुरि मानहु शिव की बाता। निजकर शिर धारहु वृक ताता ।।३३।।
झूंठ कहेउ यदि शम्भु सुरारी। मारहु जाइ न करहु विचारी ।।३४।।
विष्णु वचन कोमल सुनि काना। कुमति कीन कर शिर अज्ञाना ।।३५।।
फूट कपार गिरा भुंइ मांही। वज्राहत इव जय देव कहाहीं ।।३६।।
देव पितर ऋषि गण गन्धर्वा। बरसहिं फूल, सुखी भे शर्वा।।३७।।

दोहा– शिव सन बोले विष्णु तब, देव देव हे देव।
मरा वृकासुर पाप निज, हर्षित सब भूदेव।।३८।।

करि अपराध महाजन प्राणी। कैसे गति पावइ कल्याणी।।
आप जगद्गुरु श्री विश्वेशा। तव अपराध न क्षेम महेशा।।३९।।
विष्णु महार्णव शक्ति तरंगा। प्रकटत एक एक ते अंगा।।
शिव संकट हर कथा सुनाहीं। शत्रु नाश तिन्ह के होइ जाँही।।४०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे अष्टाशीतितमोऽध्यायः।।८८।।

।। अथ एकोन नवतितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– एक बार सरसुति तट, बैठे ऋषि मख ठान ।
भा विवाद तिरदेव मँह, कौन श्रेष्ठ भगवान् ।।१।।

ब्रह्मपुत्र भृगु भेजे सबहीं। लेन परीक्षा गवने तब हीं।।
प्रथमहि ब्रह्म सबा भृगु गयऊ। नहि अस्तुति नहि प्रणतहि भयऊ।।२।।
सत्त्व परीक्षा भृगु मन चाहा। क्रोध कीन ब्रह्मा नरनाहा।।३।।
पुत्र जानि निज कोप संहारी। यथा बुझावत आगिहिं वारी।।४।।
भृगु कैलास शिवहिं पहिं गयऊ। भाइ जानि हर भेंटन चहेऊ।।५।।
उत्पथ चलहु न भेंटउ तोही । सुनत त्रिशूल लीन शिव कोही।।६।।
पैर पकड़ि रोकी जब गिरिजा । शम्भु क्रोध तब आपन सिरजा।।
अब बैकुण्ठ चले ऋषि धाये। लेन परीक्षा हरि पँह आये।।७।।
लक्ष्मी अंक शयन हरि कीन्हा। मारी लात वक्ष हरि चीन्हा ।।
लक्ष्मी सहित उठे भगवाना । देखि भृगुहु हरि कीन प्रणामा ।।८।।

दोहा– बोले स्वागत विप्रवर, बैठउ आसन माँहि ।
क्षमा करहु मुनिवर्य तुम, आवत जानेंउ नाहि ।।९।।

अति कोमल तब चरण मुनीशा । कहि परसे द्विज पग जगदीशा ।।१०।।
निज चरणोदक पावन करहू। तीर्थहु पूत करहिं जल तबहू।।११।।
चरण चिह्न उर धारहुं नीके। रमा निवास करें जँह जीके।।१२।।

श्रीशुक उवाच–

एतना सुनत भृगू हरषाये । शान्त भये नयनहिं जल छाये।।१३।।
मुनिन्ह पाइ भृगु जाइ सुनाये। अनुभव तीन देव जो पाये।।१४।।
सुनि विस्मय मुनिगण मन माना। सत्व पुरुष श्री विष्णु सयाना ।।१५।।
धर्म ज्ञान ऐश्वर्य विरागा । आठों निधि श्री विष्णु परागा।।१६।।

शान्त अकिंचन मुनिन्ह पियारे । श्री हरि कहहि शास्त्र सब न्यारे ।।१७।।
मूर्ति सत्व द्विज वर तिन्ह प्यारे। करहिं विवेकी भजन मुरारे ।।१८।।
निज माया बहु रूप संवारी । सुर अरु असुर नमत असुरारी ।।१९।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– संशय नाशन कारणे, मुनिन्ह रची यह युक्ति ।
सेवत जाके पद कमल, जीव लहै भव मुक्ति ।।२०।।

सूत उवाच–

दोहा– कथा कृष्ण भगवान की, श्री शुक मुख से आइ ।
कहहिं सुनहि सादर सदा, ते जग नाहिं थकाइ।।२१।।

श्रीशुक उवाच–

एक बार हरि नगरी मांही । जन्मत विप्र पुत्र मरि जाहीं ।।
राज द्वार मृत बालक लावा । करि विलाप द्विज वचन सुनावा।।२२।।
विप्र दोह अरु विषयी राजा । तेहि कर पाप तनय मम छाजा ।।२३।।
अजितेन्द्रिय हिंसा जो करई । तेंहि नृप राज प्रजा दुख सहई ।।२४।।
एहि विधि दूसर तीसर जाये । मरे सुतन्ह नृप द्वारहिं लाये।।
बहुरि कीन द्विज आपन बाता । दुखी हृदय नहि शोक समाता।।२५।।
नौवां सुत जब मरा विचारा । विलपत द्विज फिरु वचन उचारा।।
अर्जुन कृष्ण निकट आसीना। जानि कहेउ तब वचन प्रवीना ।।२६।।
विप्रदेव तव नगर मझारी । लागत नाहि काहु धनुधारी ।।
यदुवंसिहु सब द्विज इव भयऊ। मानहुं यज्ञ करत सब रहऊ ।।२७।।
जासु देश द्विज होहि दुखारी । सो नृप नाहि, ते मानु मदारी।।२८।।

दोहा– रक्षा करिहों विप्रवर, तव संतति मैं मानु।
यदि ऐसा ना करि सकूं, प्रविशौ जाइ कृशानु ।।२९।।

ब्राह्मण उवाच–

वासुदेव संकर्षण योधा। धन्वी प्रद्युमन अनिरुद्धा ।।३०।।
जगदीशहु जेहि नाहि बचावा। तेंहि आगे को करइ उपावा ।।३१।।

अर्जुन उवाच–

मैं अर्जुन गाण्डीवहि धारी। नहि बल भद्र न कृष्ण मुरारी ।।३२।।
मम बल कमतर नहिं आंके। शिवहिं प्रसन्न कीन भुज जाके ।।
कालहुं जीति पुत्र लै आऊँ। नाहि त अर्जुन नाहि कहाऊँ ।।३३।।
अर्जुन जब द्विज कंह समुझावा। करत बखान विप्र घर आवा ।।३४।।
प्रसव जानि द्विज अर्जुन धावा। आतुर रक्षा बचन सुनावा ।।३५।।
करि आचमन किये शिव ध्याना। अर्जुन सज्जित लै धनुवाना ।।३६।।
सूतीगृह तब रुन्हेउ जाई। शर कंह पिंजरा दीन बनाई ।।३७।।
जातहिं शिशु चलि गयेउ अकाशा। ब्राह्मण मन तब भयउ निराशा ।।३८।।
हरि सन्मुख अर्जुनहिं विनिन्दे। क्लीव वचन सुनि व्यर्थ अनन्दे ।।३९।।
केशव राम न सके बचाई। प्रद्युम्नहु अनिरुद्ध सहाई ।।४०।।
धिक् अर्जुन धिक् धनु गाण्डीवा। दुर्मति मूढ़ कीन किमि सेवा ।।४१।।
इतना सुनत जिष्णु तब धाये। यम की पुरी योगबल आये ।।४२।।
नहि पाये तँह विप्र तनूजा। इन्द्रलोक पहुँचे करि पूजा ।।
अग्नि वायु वरुणादि अनेका। देखे लोक एक ते एका ।।
लै गाण्डीव रसातल गयऊ। स्वर्गहु ऊपर फाल्गुन भयऊ ।।४३।।

दोहा– नहि पाये जब विप्रसुत, तुरत चिता सन्धान।
अग्नि माहिं चाहे घुसत, रोकेउ तब भगवान ।।४४।।

मत निन्दहु आपहिं तुम अर्जुन। देइहं लाइ विप्र के पुत्रन ।।४५।।
अस कहि अर्जुन स्व रथ बिठाये। पश्चिम दिशा ताहि दौड़ाये ।।४६।।
सात द्वीप अरु सातहिं लोका। सात समुद्र गिरि पार अशोका ।।४७।।

पहुँचे जाइ घोर तम देशा । शैव्यादिक सब अश्व अदेखा।।४८।।
देखि महातम आगे कीन्हा। सूर्य सहस सम चक्रहिं चीन्हा।।४९।।
यथा राम शर लक्ष्यहिं भेदा । तमस घोर सुदर्शन छेदा।।५०।।
आगे आगे चक्रहि धावा। तमस पार प्रकाश अति पावा।।५१।।
तेहिं आगे जलराशि अपारा । तेहिं मंह भवन रहा अति प्यारा।।५२।।
तहाँ शेष फण सहस विराजा। जगमग मणि शिति कण्ठन राजा।।५३।।

दोहा- शेष शयन लेटे प्रभू, महाभाव सुखराशि ।
पीत वसन नव मेघ तनु,नयन कमल मृदु हासि ।।५४।।

मणिमय मुकुट लोल घुघंराले। अलक जाल भुज अष्ट विशाले ।।
वत्स चिह्न वक्षस्थल सोहा। बनमाला सुरभित मन मोहा ।।५५।।
नन्द सुनन्द पार्षद बहु राजे। मूर्ति मन्त आयुध सब साजे।।
लक्ष्मी पाँव पलोटति देखा। ऋद्धि सिद्धि शरणागत लेखा ।।५६।।
स्वयं रूप हरि वन्देहु जाई। अर्जुन भीत न कछु मति आई ।।
हाथ जोड़ि दोउ खड़े सम्हारी। बोले प्रभु सुर गिरा उचारी।।५७।।
तुम दोउ देखन सुतन मंगाये। जाहि हेतु दूनउ तुम आये ।।५८।।
नर नारायणहो तुम दोऊ । पूर्णकाम शुचि धर्महिं सेऊ।।५९।।

दोहा- परम पुरुष के वचन सुनि। 'ओम्' कहे भगवान ।
विप्र सुतन्ह को संग ले, आये दोउ महान।।६०।।
आये अपने धाम हरि, मन प्रसन्न दोउ केर।
विप्रहिं सुत जस रूप वय,जिष्णु दीन तिन्ह फेर।।६१।।

परम धाम लखि विस्मित भयऊ। अर्जुन कृष्ण कृपा उर लयऊ।।६२।।
लीला विविध किये यदुनाथा। किये श्रेष्ठ मख बहु श्रीनाथा।।६३।।
ब्राह्मण सहित प्रजा जन सारे। सुफल मनोरथ भये सुखारे।।६४।।
धर्म स्थापन हरि भुवि कीन्हा। त्रास दुर्जनहि अर्जुन दीन्हा।।६५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे एकोन नवतितमोऽध्यायः।।८९।।

।। अथ नवतितमोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

दोहा– पुरी द्वारका प्रमुदित, जहाँ बसत श्रीधाम।
सदा सर्व सम्पन्न यह, यदुकुल ललित ललाम ।।१।।

उत्तम वेष धरी जँह नारी। पुलकत यौवन कान्ति सँवारी।।
कन्दुक क्रीडा करती जबहीं। विद्युत छटा सोह तब तब हीं ।।२।।
मद वर्षावहिं उन्नत हाथी। सजे बीर लागहि सब साथी ।।३।।
फूले तरु उद्यान सुहाये। फूल देखि भँवरे मँडराये ।।४।।
सोलह सहस नारि पति एका। रमेउ भवन मँह रूप अनेका।।५।।
भाँति-भाँति तँह कमल तड़ागा। सुरभित जल सेवत खग नागा ।।६।।
करत विहार नदी मँह जाई। कुंकुम नारि वक्ष यदुराई।।७।।
गावत यश गन्धर्व बरुथा। बीन बजावत मागध यूथा ।।८।।
जल उलीचि सींचत बनवारी। मनहु कुबेरहि यक्षिणि सारी ।।९।।
भींगे वसन वक्ष उरु सोहे। केश पाश सुम झरत अछोहे।।
कृष्ण हाथ सोहत पिचकारी। लेत, देत आलिंगन नारी ।।१०।।
नारि वक्ष केसर बहु सोहा। बनमाली निज मालहि पोहा।।
फहरत केश लसत सब रानी। संग करेणु गजहि हरि मानी ।।११।।
भूषन बसन देहिं पहिराये। नट नर्तक जे वाद्य बजाये ।।१२।।
करत विहार कृष्ण संग नाना। नारिन्ह मन कछु आव न आना।।१३।।
प्रेम मगन भई सब नारी। कृष्ण प्राणधन रहहिं निहारी।।
कबहुँक संग, विरह मन आवा। प्रेम विरह कछु जड इव गावा ।।१४।।

महिष्यः ऊचुः–

दोहा– कुररी ! तुम सोवत नहीं, निशि भर करहु विलाप।
सोइ गये अब प्रभु सखी, हम इव तब तनु ताप।।१५।।

चक्रवी! कत मूंदहु तुम नैना। चकवा गये विदेशहिं है ना ।।
तब उर विरह ताप अति भारी। खोजहि हमहूँ स्त्रज बनवारी ।।१६।।
कहहु समुद्र! रात भरि जागे । सोवहु नाहीं तुमहु अभागे ।।
तव गुण लीने कृष्ण चुराई । याही ते तब नींद न आई ।।१७।।
राजरोग तब चन्द्र ! कि लागा । क्षीण भये भरि रातहिं जागा ।।
हम इव कृष्ण बात तुम भूले। व्योम मध्य तुम काहें झूले ।।१८।।
मलय पवन! तब काह विगारा। कृष्ण विरह तुम काम सँचारा ।।१९।।
मेघ! तुमहु हम इव हरि प्यारे । ध्यान धरहु श्रीवत्स निहारे ।।
तुमहु निरन्तर जल बरसाई । कृष्ण सोचि हम अश्रु गिराई।।२०।।
कहहु काह प्रिय कोकिल! करुऊँ। हरि इव सुधा कण्ठ तव झरऊँ ।।
मरेहुं जियावइ बानी तोरा । तुमहू चहहु नन्द के छोरा ।।२१।।

दोहा- पर्वत तुम डोलहु नहीं, चिन्ता लीने माथ।
हमहीं इव तव उर व्यथा, चरण धरहु यदुनाथ।।२२।।

नदियाँ सूख गया तव पानी । कमलहुं शोभा गई हेरानी ।।
दुबली भईं कृष्ण बिनु देखे । मेघ न वर्षहि सिन्धु न पेखे ।।२३।।
स्वागत हंस! बैठु इत आई । दूध पियहु प्रिय कथा सुनाई ।।
कुशली कृष्ण, दूत तुम जाके । थिर नहिं प्रीति रही उर ताके।।
हम कत भजहिं कृष्ण केंहि हेतू। लक्ष्मी छाँड़ि छोह नहिं प्रीतू ।।२४।।
ऐसेइ भाव रखत सब रानी । पाई परमगती सन्मानी ।।२५।।
सुनत गीत खींचत बनवारी । उनहि कहे का जो थी सहचारी ।।२६।।
पाँव पलोटत पति जेहिं माना । तिन्ह कर तप को बरन सुजाना।।२७।।
धर्म अरथ अरु काम दिखाई। वेद आचरण कह यदुराई।।२८।।
सोलह सहस एकशत आठा। रानिन्ह संग रहे हरि ठाटा ।।२९।।
इनमें आठ रहीं पटरानी । जिनके सुत हम दिये बखानी ।।३०।।

दस-दस पुत्र रानि सब जाये। प्रभु अमोघ बल कीर्ति सुहाये ।।३१।।
पुत्र अठारह अति बलशाली। यश उदार जैसे बनमाली ।।३२।।
सुत प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धा। दीप्तिमान भानू अति शुद्धा ।।
साम्ब, मधू, बृहभानु कहावा। चित्र भानु, वृक, अरुण जनावा ।।३३।।
पुष्कर, वेद वाहु, श्रुतदेवा। नाम सुनन्दन, चितवाहु सहेवा ।।
कवि, विरूप, न्यग्रोध उदारा। रहे अठारह सुत सुविचारा।।३४।।
रुक्मिणि सुत प्रद्युम्न सुहावा। जेठ पुत्र हरि गुण सब पावा ।।३५।।
मातुल कन्या कीन विवाहा। सुत अनिरुद्ध भये नर नाहा ।।३६।।
रुक्मिहिं पौत्री कीन वियाहा। वज्र बचे मूसल-संवाहा।।३७।।
वज्र पुत्र उपजे प्रतिबाहू। तिनके सुत कंह नाम सुबाहू।।
शान्तसेन सुबाहु के जाये। तेंहि सुत शत सेना कहलाये।।३८।।

दोहा- कृष्ण वंश में कोउ नहीं, निर्धन सन्ततिहीन ।
अल्प आयु अरु शक्ति में, रहा न कोऊ छीन ।।३९।।

यदुवंशन्हि संख्या कह कोऊ। बरस हजारहु सो कम होऊ।।४०।।
तीन करोड़ लाख अट्ठासी। संख्या रही गुरुन कर खाशी।।४१।।
यादव गणना को करि पाही। उग्रसेन शत कोटि सिपाही।।४२।।
देव असुर-संग्रामहि मारे। असुर, मनुज होइ धरनि पधारे।।४३।।
कीन शमन हरि धरि नर रूपा। जेहि कुल भये अनेक स्वरूपा।।४४।।
यदुवंशिन जे हरि गुण गाये। स्वयं बढ़े अरु अन्य बढ़ाये ।।४५।।
कृष्ण चरित मन दीन विसारी। कबहि नहान कि सोवन बारी।।४६।।

दोहा- तीर्थहु महिमा कम हुई, लिये कृष्ण अवतार ।
शत्रु-मित्र एक भाव ही, प्रभु ने दीने तार ।।

नाम जपत हरि पापहु नाशा। लक्ष्मी रहत सदा तिन्ह पासा ।।
धर्म सकल श्री कृष्णहि थापा। काल चक्र हरि जग अग व्यापा।।४७।।

जय जय जय देवकि के जाये। जीव निखिल निज हृदय बसाये।।
जगत चराचर दुःख मिटाये। धर्म थापि अधरम बिनसाये।।
व्रज बनितहि मन काम जगावा। काम जीति प्रभु ताहि दुरावा।।४८।।

दोहा- धर्म स्थापन के लिये, विष्णु धरे नर रूप।
चरण कमल मन लाइके, लीला सुनइ अनूप।।४९।।
कथा श्रवण चिन्तन रत, कीर्तन करत सुजान।
राजपाट तजि नृपति नर, पाइ गयेउं भगवान्।।५०।।

।। इति श्रीमद् भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे नवतितमोऽध्यायः।।९०।।

*

।।इति दशम स्कन्धः सम्पूर्णः।।

श्री हरिः शरणम्
इति श्री पण्डित भानुदत्तपाण्डेय सूनुना
कूराडीह, प्रतापगढ़ लब्धजन्मना
डॉ.गायत्री प्रसाद पाण्डेयेन
काशीवारत्तव्येन कृते श्रीमद् भागवत महापुराणस्य
हिन्दी दोहा चौपाई
रूपान्तरणे दशमस्कन्धः सम्पूर्णः।।
।।श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

।।श्रीगणेशाय नमः।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरण

एकादशस्कन्धे

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीबादरायणिः उवाच

दोहा- दैत्यों का संहार कर, कृष्ण संग बलराम।
भूमि भार हरने निमित, किये कलह सन्धान ।।१।।

कपट द्यूत नारी अपमाना। पाण्डव मन अति कोप समाना ।।
कौरव पाण्डव समर रचाई। उभय पक्ष नृप कीन लड़ाई।।
मरे सैन्य भू भार उतारा। कृष्ण चरित को जाननि हारा ।।२।।
निज भुज रक्षित यदुकुल द्वारा। नृपति संहारि हरेउ भू भारा।।
करत विचार रहे यदुनाथा। यदुकुल भार अबहिं भुंइ साथा ।।३।।
नहि समर्थ अस कोउ जगमाहीं। यदुकुल भार हरन जेहि पाँही।।
करहिं परस्पर मिलि संघर्षा। वेणु रगड़ वन जलत अमर्षा।।
धरनि भार हरि धाम प्रयाना। जन्म प्रयोजन मम नहि आना ।।
कीन विनिश्चय हरि मन माही। विप्रशाप यदुवंश नशाहीं।।५।।

दोहा- सत्य संकलप कृष्ण की, शोभा जग अभिराम।
वाणी लोचन पद कमल, सब कुछ ललित ललाम।।६।।

सुन्दर कीरति जग मँह छायी। सुकवि यथामति गुण गन गाई।।
करि विस्तार सुयश जग माँही। हरि गवने निज धाम निषाहीं।।७।।

राजोवाच

गुरु सेवक द्विजंकह उपकारी। यदुवंसिन्ह कत शाप पचारी।।८।।
केंहि कारण द्विज दीन्हे शापा। कहहु यथाविधि भा परितापा।।९।।

श्रीशुक उवाच-

आप्तकाम सुन्दर तनु धारी। निज कुल नाशन सोचु मुरारी।।१०।।
चरित कीन अस कलिमल हारी। गावत सकल सुमंगल कारी।।
काल रूप अब बसत कन्हाई। पिण्डारक सब ऋषिन्ह पठाई।।११।।
विश्वामित्र असित दुर्वासा। कश्यप कर्ण ऋषी अंगिरा।।
अत्रि वशिष्ठ नारदहिं पठावा। बामदेव आदिक बहिरावा।।१२।।
खेलत यदुकुमार तँह गयऊ। जहाँ ऋषीगण बैठे रहऊ।।
करि प्रणाम अविनीत कुमारा। पूंछेउ प्रश्न विनीत विचारा।।१३।।
साम्बहि नारी भाँति सजावा। गर्भवती जिमि कीन दिखावा।।१४।।
असित नयन कछु पूंछत चहहीं। मन मन्ह लाज लगत बहु अहही।।
आप सकल ज्ञाता मुनि ज्ञानी। देहु बताइ सुता-सुत आनी।।१५।।

दोहा- दिव्य दृष्टि से जानि सब, कुपित ऋषी तब बोल।
कुलनाशन मूसल येहि, जनिहै मूरख, डोल।।१६।।

डरत साम्ब कँह उदर उघारा। निकला मूसललौह पचारा।।१७।।
अहह अनर्थ किये हम काहा। विह्वल मुसल लिये नरनाहा।।१८।।
लाइ मुसल राजहिं दिखलावा। दुःखी हृदय सब तासु बतावा।।१९।।
विप्रशाप नहि मेटन हारा। सकल द्वारका मची खभारा।।२०।।
यदुपति चूरन मूसल कीन्हा। सिन्धु मध्य डारि सब दीन्हा।।२१।।
लोह खण्ड निगली इक मीना। चूर्ण एरका घास उगीना।।२२।।

मछुवा मत्स्य पकरि लै आवा। लौह खण्ड–तेहि मंह सो पावा ।।
व्याघ बाण के अग्र लगावा। सोइ लोहा जो सिन्धु बहावा।।२३।।
यद्यपि सब जानत भगवाना। चाह न मेटइ शाप सुजाना।
कालरूपधारी प्रभु होऊ। अनुमोदत द्विज शापहिं सोऊ ।।२४।।

।। इति श्रीमद्‌भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

*

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच–

जानि सुरक्षित द्वारका, भक्त देवऋषि वास।
कीन निरन्तर साधना, मनसा कृष्ण सुपास।।१।।

देहवान अस को जगमांही। काल ग्रस्त जेंहि हरि न सोहाहीं।।२।।
एक वार नारद पँह आये। वसूदेव मृदु वचन सुनाये।।३।।

वसुदेव उवाच–

भगवन् ! भ्रमण करहु अविकारी। प्राणिमात्र कल्याण सँवारी ।।
पिता देखि सुत होहिं सुखारी। तिमि विचरहु महि मंगलकारी ।।४।।
देवचरित कंहु सुख दुख करहीं। आप सदा सुख साधन कर हीं।।५।।
देव भजहिं जे चित जो लाई। देव देहि सो फल निरुपाई ।।६।।
साधु देहिं सत्फल बिनु मांगे। कर्म सचिव देवन्ह ते आगे।।
पूंछउ भगवत् धर्म पुनीता। जेहिं सुनि जीवन होइ अभीता ।।७।।
पूरब जनम भजौं हरि लीना। मोक्ष काम नहि, सुत मन कीना।।८।।
अब मोहि ज्ञान देहु मुनिराऊ। जन्म मरण बन्धन जरि जाऊ ।।९।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- बुद्धिमान वसुदेव के, प्रश्न सुने देवर्षि।
हरि के गुण को सुधिकरि, बोले वचन सहर्षि।।१०।।

नारद उवाच-

निक पूँछेउ यदुवंश विभूषन। भगवत धर्म विश्व कँह पोषन ।।११।।
सुनत गुनत यह धर्म पुराना। करत पूत जग द्रोहिहुं नाना ।।१२।।
नाम परम मंगलमय जासू। पूंछि करायेहु मोहिं सुपासू।।१३।।
अब कहिहों इतिहास पुराना । ऋषभ सूनु निमि तनय बखाना ।।१४।।
मनुसुत प्रियव्रत भयेउ युगादी । तेहि कुल आग्नीध नाभि ऋषभा दी।।१५।।
हरि के अंश ऋषभ कहलाये। वेद पढ़े सौ सुत जन्मायें ।।१६।।
तेंहि मँह भरत ज्येष्ठ सुत नीके। भारत नाम देश तबहीं ते।।१७।।
राज करत हरि तोषे जाई । तीन जनम लगि, प्रभु पद पाई ।।१८।।
नव सुत द्वीप पती तब भयऊ। कर्मकाण्ड इक्यासी रचयू।।१९।।
नव सुत शेष भये संन्यासी । रहे दिगम्बर अरु वातासी ।।२०।।
कवि, हरि, अन्तरिक्ष तेंहि नामू । प्रबुध पिपलायन चमस बखानू ।।
आविर्होत्र द्रुमिल कर भाजन। भिक्षाटन से करते भोजन ।।२१।।
भगवत रूप जगत कँह देखइं। विचरत अवनी आत्म सरेखइं ।।२२।।
बिना रोक सब लोक सनाथा। देव पितर किन्नर जग नाथा।।२३।।
एकँ बार निमि मख सब आये। देखन मख जो नृपति रचाये।।२४।।
सूर्य सरिस तिन्ह देखे आये। विप्र नृपति सब उठे उठाये ।।२५।।
भगवत भगत जानि तिन्ह राजा। पूजे सादर सहित समाजा ।।२६।।
तेजवन्त मनु ब्रह्मकुमारा। प्रश्न कीन निमि विनु उपचारा ।।२७।।

विदेह उवाच-

मानउं हरि पार्षद सब स्वामी। विचरहु जग पावनहि निकामी ।।२८।।
क्षण भंगुर मानुष कर देहा। विष्णुभगत कँह दुर्लभ नेहा ।।२९।।

यह पूंछउ मै अनघ गोसाई। लव सत्संग परम निधि पाई।।३०।।
भगवत धर्म सुनावहु नीके। यदि मानहु हम पात्र अभी के।।३१।।
जेहि लगि रीझत है यदुनाथा। करहि भक्ति कर दान सनाथा।।३२।।

श्री नारद उवाच-

दोहा- एहि विधि पूंछे प्रश्न निमि, सन्त चरण मन लाय।
कीन हृदय से मान सब, ऋत्विज कहे बुझाय।।३३।।

विष्णु चरण नित सेवा करई। देह गेह ममता परि हरई।।३३।।
जो कछु कहे कृष्ण निज मुखहीं। सो भागवत धर्म मन रखहीं।।३४।।
आँखि मूंदि तेहि मानत प्राणी। नाहि पतित तेहि मति कल्याणी।।३५।।
कायवचन मन करहि जो कर्मा। प्रभुहिं समर्पे भगवत् धर्मा।।३६।।
गुरुहि अराधे ईश्वर मानी। शोक मोह भय सकल नसानी।।३७।।
यथा स्वप्न फुरि जानहिं प्रानी। करत मनोरथ बुद्धि हेरानी।।
मन संकल्प विकल्पहिं रोके। अभय लोक सो पाव विशोके।।३८।।
हरि के जनम करम सब गावहिं। लाज छाँड़ि आसक्ति मिटावहिं।।३९।।
एहि विधि सेवत कबहुँ हँसाहीं। कबहुंक गावत कबहुं रोवाहीं।।४०।।
वायु अग्नि आकाश नदीशा। सबहि समुझि हरि नावत शीशा।।४१।।
भक्ति प्रेम वैराग्य लहाहीं। कौर-कौर जिमि क्षुधा नसाहीं।।४२।।
निशि दिन भगति करै मनलाई। भक्ति ज्ञान प्रभुबोधहिं पाई।।
भगति लहत भागवत कहावा। परम शक्ति जीवन मँह पावा।।४३।।

राजोवाच-

भगवद् भक्त कहहु को होई। कस आचरन करत जग सोई।।४४।।

हरिः उवाच-

परम भागवत सोइ जन होई। सर्व-प्राणि हरि देखइ जोई।।४५।।
मध्यम भगत उहै जगमाहीं। ईश्वर प्रेम सख्य समुहाहीं।।

अज्ञहिं कृपा, उपेक्षा द्वेषी। कोटि द्वितीय भगत तेहि लेखी ।।४६।।
हरि पूजन रत, भक्त न माना। सो प्राकृत हरि भगत बखाना ।।४७।।
उत्तम भगत हरष नहि द्वेषा । हरि माया मानंहि जो देखा ।।४८।।
इन्द्रिय मन अरु प्राण शरीरा । जनम मरण भय मोहन धीरा ।।
जो मोहित नहि होइ गोसाई। उत्तम भगत ताहि कहि जाई ।।४९।।
मन मँह विषय वासना नांही। वासुदेव रत श्रेष्ठ कहाँही ।।५०।।
आश्रम वर्ण जाति अभिमाना। जेहि नाहीं ते भगत सुजाना ।।५१।।
आपन-आन वित्त अरु दारा । समदर्शी ते भक्त उदारा ।।५२।।

दोहा- त्रिभुवन वैभव पाइ के, जो न लखहिं, हरि त्याग।
पल भर भी हरि बिना, रहहिं न उत्तम लाग।।५३।।

शशी उगे जिमि घाम न तापा । तिमि हरि गहे जगत नहि व्यापा।।५४।।
प्रेम रज्जु जो हरि सन बाँधा। अनखहुँ भजे हरत भव-बाधा ।।
नाम जासु अथ ओघ नसाहीं । हरिहिं भजहिं सो श्रेष्ठ कहा हीं ।।५५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

*

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

राजोवाच-

प्रभु माया मोहित जग, मायिहुं मोहित कीन।
सो माया जानन चहूँ, कहहु मोहिं आधीन ।।१।।

विविध ताप मोंहि बहुत तपावा। कथा सुधा मम ताप नसावा।।२।।

अन्तरिक्ष उवाच-

जेंहि लगि ब्रह्म सृजइ जग सारा। उच्चावच माया व्यापारा।।३।।
पंच भूत से रचित शरीरा। ज्ञान कर्म इन्द्रिय मन धीरा।।४।।

आत्म प्रकाशित भोग करा हीं। देह मात्र आसक्ति बढ़ा हीं।।५।।
शुभ अरु अशुभ करम कर लागा। प्रभु माया भटकत तनु त्यागा।।६।।
जन्म मृत्यु पुनि जन्म गहाई। प्रलयकाल तक जीव नसाई।।७।।
प्रलय काल जब आवत राजा। व्यक्त अनादि सृष्टि सब छाजा।।८।।
रहइ अवर्षण शत सम झारी। सूर्य तेज सब सूख कियारी।।९।।
अहि मुख अनल पतालहुं जारा। वायु बहत चहुं दिशा उजारा।।१०।।
सांवर्तक शत बरस गिराये। हस्ति शुण्ड जिमि धार बनाये।।११।।
आगि बुझइ बिनु ईधन पाये। ब्रह्माऽव्यक्तहि लीन समाये।।१२।।
खीचइ वायु गन्ध महि केरा। वायु अनल बनि माया प्रेरा।।१३।।
अन्धकार जब अग्नि ग्रसावा। अग्नि वायु तब व्योम समावा।।१४।।
व्योमहि गुण काल हरि लेई। तामस गुण अहंकार विलेई।।
अहं तत्व तब महतहि लीना। उलटे क्रम सृष्टि कर दीना।।१५।।
त्रिगुणमयी माया मै गाई। हरिमाया केहु जानि न पाई।।१६।।

राजोवाच

दोहा- ईश्वर माया गूढ़ अति, पार न कोऊ पाव।
स्थूल बुद्धि कैसे तरें, ऋषिवर मोहिं बताव।।१७।।

प्रबुद्ध उवाच-

दुख निवृत्ति सुख चाहहिं प्रानी। कर्म करहि विनु फल अनुमानी।।
होत विपर्यय फल मँह भारी। सुख चाहत दुख होत खभारी।।१८।।
बड़े कष्ट धन अर्जन कर हीं। स्वजन पुत्र दारा वैपरहीं।।
मिलइ न शान्ति बहु वित्त कमाये। नश्वर सकल शान्ति कँह पाये।।१९।।
एहि विधि स्वर्ग आदि सब लोका। क्षीण पुण्य पर देहहिं शोका।।२०।।
जो चाहसि आपन कल्याना। गुरु आश्रय सो करइ सुजाना।।
शब्द ब्रह्म जो जानत होई। ता कर गुरु मानहु शुभ सोई।।२१।।

भगवत धर्म गुरु से जानइ। माया भेदि ब्रह्म पद पावइ।।२२।।
साधु-संग मन होइ असंगा। भगवत् भक्त करत सत्संगा।।
मैत्री दया विनय मन लाई। भगवत्प्रीति पाव अधिकाई।।२३।।
शौच तितिक्षा तप अरु मौना। ब्रह्मचर्य समता मन सोना।।२४।।
सब मँह आत्मा देखइ जोई। चीर वसन सन्तोषी होई।।२५।।
भगवत् शास्त्र करहिं अति प्रीति। नाहिं विनिन्दहिपर परतीती ।।
मन वचती कर्म दण्ड अनुमानी। शम दम सत्य रहत अनुगामी।।२६।।
हरि गुण श्रवण ध्यान नित कर हीं। कीर्तन करत ईश उर धर हीं।।२७।।
कर्म करहिं नहि फल की आशा। कर्म निवृत्ति, ज्ञान तेंहि पासा।।
स्वर्ग आदि जो वेद बखाना। कर्म प्रवृत्ति हेतु नहिं आना।।४६।।
वैदिक तान्त्रिक उभय समाना। विधि विधान हरि पूजहि माना।।४७।।
गुरु अनुशासन दीक्षा पाई। मूरति पूजै जो मन भाई।।४८।।
होइ पवित्र प्रभु सम्मुख जाई। प्राणायाम करहिं मनलाई।।
अंग न्यास करि पिण्डहि शोधा। पूजहि हरि उर अगणित शोभा।।४९।।
यथा लब्ध साधन अनुकूला। आसन पोंछि विछावहिं फूला।।५०।।
अर्घ्य पाद्य आसन अरु बन्दन। ध्यान मगन अक्षत शुभ चन्दन।।५१।।
पार्षद सहित पूजि हरि विग्रह। वास विभूषण धरि मन निग्रह।।५२।।
गन्ध माल्य अरु धूप प्रदीपा। स्तुति कर सेइहिं सुर-भूपा।।५३।।
भगवत् मय होइ पूजन कीना। सब निर्माल्य शिरहिं कर लीना।।५४।।
एहिं विधि सूर्य अनल जल केरा। पूजि मनुज नाशत जग फेरा।।५५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः।।३।।

*

।।अथ चतुर्थोऽध्यायः।।

राजोवाच

दोहा- भक्तवश्य भगवन्त के, अब तक के अवतार ।
सब बरनहु करि के कृपा, औरु जो होवन हार।।१।।

द्रुमिल उवाच-

प्रभु अनन्त प्रभु रूप अनन्ता । गिनत मनुज सो मूढ़ कहन्ता ।।
भलु धरती रज कोउ गिन लेई । अखिल शक्ति को गिनत अहेई ।।२।।
पंच भूत रचि प्रविशे जाई । आदि रूप सो पुरुष कहाई ।।३।।
तीन लोक ब्रह्माण्ड निकाया । ज्ञान कर्म इन्द्रिय समुदाया।।
ज्ञान श्वास बल ओज बनावा। सर्ग प्रलय स्थिति जिन्ह पावा ।।
आदि पुरुष नारायण सोई। जगत् शरीर शरीरी होई ।।४।।
रजो रूप ब्रह्मा बनि आये। सत्त्व प्रमुख विष्णु कहलाये।।
तमो गुणी सोइ रुद्र कहावा । जगत् प्रलय जो अन्त करावा।।५।।
धर्म पत्नि मूरति कहलाई। नर नारायण जो सुत पाई ।।
कीन अकाम तपस्या जाई । ऋषिगण सेवित चरण सुहाई ।।६।।

सोरठा-देखि तपस्या घोर, इन्द्र भेज दीना तबहिं ।
कामदेव अरु नारि, संग वसन्त वरु अप्सरा ।।७।।

इन्द्र मनहि मन कीन दुरावा। जानत नहि भगवन्त प्रभावा ।।
हरि जानत मघवा करतूती। बोले वचन विना अहमीती ।।८।।
डरहु नाहि तुम मदन सहाया। स्वागत लेहु न जाहु विहाया।।
करउं प्रणाम चरण मँह तोरे। क्षमहु नाथ अपराध घनेरे ।।९।।
देव विघ्न तोंहि सेवत करहीं। तुमहि सेइ साधक भव तरहीं।।
देवन्ह देइ भाग तिन्ह केरे। विघ्न शीर्ष पर रखहिं अनेरे ।।१०।।
भूख प्यास अरु इन्द्रिय वेगा। तरहि अपार जलधि बिनु खेदा ।।

तदपि क्रोध वश कोउ चलि जाँही। बूड़हि सिन्धु बीच,भलु नाहीं ।।११।।
दोहा- मदन कीन बहु अस्तुति, नारिन्ह प्रगटे जाइ।
सुन्दर औरु सुसज्जित, पूजत दूनउ भाइ ।।१२।।
श्री समान तिन्ह रूप निहारी। गन्ध रूप मोहित सब नारी।।१३।।
बहुरि विहसि बोले भगवाना। इन मँह एक बरहु मन आना।।
नारि एक सुरनाथहि देऊ। मोर भेंट जो चाहहु लेऊ।।१४।।
प्रभु आदेश धारि शिर पाँही। उर्वसि लै सब स्वर्ग सिधाहीं।।१५।।
इन्द्रहि देइ प्रभु शौर्य बखाने। विस्मित इन्द्र भये भय माने ।।१६।।
सदा एक रस अच्युत रहहीं। दत्त, कुमार, ऋषभ तनु गहहीं।।
लोक हेतु हयग्रीव कहाये। मधु कैटभ जिन मारि गिरावे ।।१७।।
मत्स्य रूप धरि धरनि उबारे। कूर्म रूप धरि मन्दर धारे ।।
शरणागत जो गजहिं निकारे। ग्राह मारि प्रभु कीन सुखारे।।१८।।
दोहा- वालखिल्य शरणागत, हरी उबारे आय।
वृत्र हते सुरराज जब, विष्णु बचाये धाय।।
असुर संहारि बचाये नारी। सुरन केरि बन्दी दुखियारी।।
बनि नृसिंह हिरण्कशिपु संहारे। प्रहलादहिं प्रभु आइ उबारे।।१९।।
देव असुर जब कीन लड़ाई। देव पक्ष हरि किये सहाई।।
वामन बनि बलि छले मुरारी। अदिति सुतन्ह दीन्हीं भुंइ सारी।।२०।।
बार इकीस क्षत्रिन को मारे। परशुराम हैहय सँहारे ।।
सीता पति श्रीराम कहाये। बाँधि सिन्धु दशवदन दहाये ।।२१।।
यदुकुल विष्णु लीन अवतारा। भूमिभार नृपतिन्ह को मारा।।
शूद्र नृपन्ह कलि अन्त संहारे। जइहैं सकल, विष्णु से मारे ।।२२।।
एहिं विधि विविध कर्म भगवाना। जन्म कर्म कछु कीन बखाना।।२३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

।।अथ पञ्चमोऽध्यायः।।

राजोवाच-

जिनकी मिटी कामना नाहीं। रहत सदा इन्द्रियवश मांही ।।
भगवत, भजन करहिं नहि कबहूँ । लहहिं कवन गति पाइ अन्त हूँ।।१।।

चमस उवाच-

परम पुरुष के सब उपजाये। ब्रह्म, क्षत्र, विश शूद्र कहाये ।।
मुख ब्राह्मण भुज क्षत्रिय जाये । ऊरु वैश्य पग शूद्र बताये ।।
चारि वर्ण विप्रादिक जाना । गुण अरु कर्म अनेक बखाना।।२।।
पाइ मनुज तनु भजन न भावा । होंइ अधम नर जाति नसावा ।।३।।
नारि शूद्र जो वेद न जाना। दूर रहहिं हरि कथा पुराना।।
भगवत् भगत कृपा तिन्ह करहीं। कथा सुनाइ ताहि उद्धर हीं ।।४।।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य समाजा । वेद विहित कर्म जिन्ह छाजा ।।
समुझि सकहिं नहि वेद सुगूढ़ा। अर्थवाद लगि ते जन मूढ़ा ।।५।।
कर्म कुशल नहि पण्डितमानी। चाटुवचन बोलहिं मृदु वानी ।।६।।
रजोगुणी ते सर्प समाना। डँसहि भगत जन दम्भ अमाना ।।७।।
सेवहिं नारि, न वृद्ध सुजाना। करहिं यज्ञ, देहिं नहि दाना ।।
कर्म रहस्य न जानहिं सोई। पशु हिंसहि जिह्वा सुख जोई।।८।।

दोहा- श्री, विभूति, विद्या कुल, त्याग रूप अवलेप।
बल मदान्ध खल संतत, निन्दहिं ईश अचेत ।।९।।

वेदहुं यह बहु बार बखाना। ईश व्योम इव जीव समाना ।।
अबुध सुनहिं नहि प्रभु उपदेशा। आत्म परम प्रिय और भदेसा।।१०।।
नारि संग, आमिष मद पाना । जीवहिं यह सब प्रियकर माना।।
करि विवाह अरु यज्ञ प्रसंगा। चाहत वेद निषेध असंगा।।११।।
धनहिं एक फल धर्म कराई। धर्म तें ज्ञान मोक्ष लहि जाई ।।

मूरख धन से भोग करा हीं। मृत्यु निकट देखा तिन्ह नाहीं।।१२।।
यज्ञ कर्म मद सूंघन रही। हिंसा नहि पशु छुवन श्रुति कही।।
नारि संग सन्तति के कामा। मूढ़ न जानहिं सेवहिं वामा।।१३।।
मूढ़ करहिं हिंसा मख माहीं। दूसर जनम पशू तिन्ह खांही।।१४।।
स्वजन प्रेम अरु आत्मा द्रोहा। पावहिं पतन करहिं जे मोहा।।१५।।
अर्थ काम अरु धरमहिं साधा। मोक्ष बिना ते मूढ़ असाधा।।१६।।
रहहिं अशान्त आत्म के घाती। ज्ञान मानि ते रहहि अज्ञाती।।१७।।
वासुदेव रति जिन्ह मन नाही। अन्त, छाँड़ि सब नरकहिं जांही।।१८।।

राजोवाच-

कौन समय केहिं वर्ण प्रभु, कौन लेहि आकार।
कौन नाम से पूजियत, वर्णन करहु विचार।।१९।।

करभाजन उवाच-

सत्य त्रेत द्वापर कलिकाला। नाना वर्ण पूज्य नन्दलाला।।२०।।
सतयुग श्वेत चारि भुज धारी। वल्कल वसन धरत अघहारी।।
कृष्ण वरण मृग चर्म धराहीं। यज्ञसूत्र माला उर मांही।।२१।।
सतयुग मनुज शान्त समदर्शी। शम दम साधि पूजि हरि हरषी।।२२।।
हंस सुपर्ण धरम बैकुण्ठा। ईश्वर पुरुष भजहिं बिनु कुण्ठा।।२३।।
त्रेता युग हरि लाल बखाना। स्वर्णकेश स्रुवा लइ नाना।।२४।।
मनुज वेद रति प्रभुहिं मनावा। सकल लोक ब्रह्मवादि कहावा।।२५।।
विष्णु यज्ञ पृश्नि गर्भ कहाये। सर्व्वदेव उरुगाय सुहाये।।२६।।

द्वापर युग में श्याम रुचि, पीतवसन वनमाल।
श्रीवत्सादिक चिह्न से, लक्षित वर्ण तमाल।।२७।।

द्वापर युग हरि पूजन करहीं। वैदिक तांत्रिक विधि अनुसरहीं।।२८।।
वासुदेव संकर्षण रूपा। नमः प्रद्युम्न अनिरुद्ध स्वरूपा।।२९।।

ऋषि नारायण पुरुष महात्मा। नमः विश्व विश्वेश्वर आत्मा ।।३०।।
एहि विधि द्वापर ईश मनावहिं। नाना विधि कृष्ण गुण गांवहि।।३१।।
कलिमंह कृष्ण वर्ण कहलाये। कीर्तन मख बुध करत सुहाये ।।३२।।
ध्यान योग्य तब चरण मुरारी । शिव विरंचि नुत भव भय हारी ।।
प्रणत पाल भव पोत समाना। वन्दउ चरण कमल भगवाना ।।३३।।
राम रूप दशरथ के जाये। राज छाँड़ि प्रभु वन मँह आये ।।
प्रिया प्रेम माया मृग धाये। वन्दउ रामचन्द्र मन लाये।।३४।।
युग नेता हरि मनुज बखाने। पुरुषारथ स्वामी प्रभु माने।।३५।।
सब गुणज्ञ कलियुग मँह आई। कीर्तन करि मनाव यदुराई।।३६।।
येंहि ते बड़ा धरम नहि भाई। कृष्ण सेइ भव रोग नसाई।।३७।।
तीनहु युग के मनुज मनावहिं। कलि जन्महि प्रभु पद ते पावहिं।।३८।।
ताम्रपर्णि, कृतमाल, पयस्विनी। द्रविण देश सरिता यशस्विनी ।।३९।।
महानदी, कावेरी, कृष्णा । सरित सलिल पीवत मरि तृष्णा।।४०।।

दोहा- कर्म छांड़ि हरि पद गहहिं, शुद्ध भाव मन लागि।
देव पितृ ऋषि ऋण छुटे, बन्धन छूटत जागि।।४१।।

दोहा- अन्य आश को छोड़ि के, हरि पद भजत सुप्रीति ।
सकल अशुभ मेटत हरी, भक्तहि देत अभीति ।।४२।।

नारद उवाच

मिथिलापति सुनि शुभ उपदेशा। अति प्रसन्न पूजे योगीशा।।४३।।
सिद्ध सकल भे अन्तरधाना। करि आचरण निमी लह ज्ञाना।।४४।।
तुमहुं सुने भगवत सन्देशा। श्रद्धायुत पइहौ गति ईशा।।४५।।
तुम दम्पति यश के बड़भागी। सुत लह विष्णु परम अनुरागी ।।४६।।
सह आसन भोजन जलपाना। आलिंगन आलाप समाना ।।
कीन कृष्ण संग स्नेह जताये। आत्मपूत नाना सुख पाये ।।४७।।

शाल्व, पौण्ड्र, शिशुपाल सुरारी। वैरभाव जे सुमिर मुरारी।।
तेउ लहे सारुप्य अनन्ता। प्रेम भाव किम् गति भगवन्ता।।४८।।
मत सुत भाव रखहु, हरि पांही। माया मनुज गूढ़ प्रभु आहीं।।४९।।
भार भूत सब नृपन्ह संहारे। सन्त शरण प्रभु धरनि पधारे।।५०।।

श्रीशुक उवाच-

नारद वचन सुनत वसुदेवा। मोह तजे देवकी सहेवा।।५१।।
यह इतिहास सुनत मनलाई। शोक मोह तजि हरि पद पाई।।५२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः।।

*

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- ब्रह्मा निजसुत गण सहित, आये साथ प्रजेश।
भूत भव्य के ईश शिव, लाये संग गणेश।।१।।

इन्द्र मरुत, वसु अश्विकुमारा। ऋभु अंगिरस आदित्य प्रकारा।।२।।
नाग सिद्ध चारण गन्धर्वा। ऋषी पितर किन्नर मिलि सर्वा।।३।।
देखन कृष्ण द्वारका आये। जो निज वपु कीरति फैलाये।।४।।
तहाँ पहुँचि देखे भगवाना। ऋद्धि सिद्धि जँह किये विताना।।५।।
नन्दन कुसुम हाथ सब लीन्हे। गूढ़ भाव पद बन्धन कीन्हे।।६।।

देवा ऊचुः-

नमन करौं तब चरण मुरारे। बुद्धि प्राण मन वचन सहारे।।
करहिं मुमुक्षु याहि पद ध्याना। करम बन्ध काटत भगवाना।।७।।
निज माया जग रचहु गोसाई। पालहु नाशहु गुण प्रभुताई।।
अजित लिप्त नहि होहु स्वकर्मा। राग द्वेष नहि होइ अकर्मा।।८।।

राग द्वेष कलुषित जे लोगा। शुद्ध न होहिं ध्यान तप योगा।।
शुद्ध भाव जे कथा सुनाहीं। श्रद्धा अनुदिन ताहि बढ़ाहीं।।९।।
अशुभ कर्म नाशन श्रुति सेतू। भगवत चरण धरहि धुमकेतू।।
चतुर्व्यूह जे पूजि निकामा। स्वर्ग अतिक्रम चाह ललामा।।१०।।
वेद विहित विधि संयत हाथा। करत हवन सेवहिं यदुनाथा।।
योगी करहिं योग जेंहि लागी। भगत भजहिं तेहि प्रभु अनुरागी।।११।।

दोहा- लक्ष्मी मानत सौत सी, बनमाला बसियान।
भगत समर्पित माल्य को, स्वीकारत भगवान।।१२।।

ऐसे भगत बछल यदुराई। धूमकेतु इव पाप नसाई।।
जबहिं लीन वामन कर रूपा। एक चरण सतलोक अनूपा।।
जासु चरण विजय ध्वज लागा। देव अभय असुरन भय जागा।।
साधुहिं स्वर्ग दुष्ट कंह त्रासा। चरण सोइ अघ नासहिं दासा।।१३।।
नाथा वृषभ स्वामिवश होई। ब्रह्मादिक सुर तनुभृत जोई।।
प्रकृति पार परमेश्वर स्वामी। करहिं कुशल हरिचरण नमामी।।१४।।
उत्तम पुरुष आप भगवन्ता। प्रकृति पुरुष महतत्त्व नियन्ता।।
जगत उदय थिति प्रलय के हेतू। तीन नाभि संवत्सर केतू।।१५।।
पुरुष आदि तुमसे बल पाये। रचहि प्रकृति संग जगत बनाये।।
स्वर्ण वर्ण ब्रह्माण्ड रचाहीं। पंच भूत अहमादि कहाहीं।।१६।।
जगत चराचर के तुम स्वामी। माया संग लिप्त नहि कामी।।
संसृति सब माया वश होई। भय मानत निर्भय प्रभु सोई।।१७।।
सोलह सहस जासु वर नारी। काम शस्त्र लगि वाण सँवारी।।
सकीं डिगाय न मन प्रभु तोरे। अच्युत चरण शरण रखु मोरे।।१८।।
द्विविध नदी प्रभु दीन प्रवाहा। पाप हारि जग तारन चाहा।।
गंगा एक अघौघ नसाती। अपर कथामृत लीला गाती।।१९।।

बादरायणिः उवाच-

दोहा- एहिं प्रकार अस्तुति करत, ब्रह्मा शेष महेश।
नभ चढ़ि बोले कृष्ण सन, करत प्रणाम ब्रजेश।।२०।।

ब्रह्मोवाच-

दोहा- भूमि भार के हरण हित, पुरा प्रार्थना कीन।
मानि सुरन्ह की याचना, प्रभो पूर्ण करि दीन।।२१।।

धर्म स्थापित कियो मुरारी। तीन लोक मंह कीर्ति पसारी।।२२।।
यदुकुल में अवतरे गोसाई। लीला कीन मनुज की नाई।।२३।।
कलि मंह लीला गाइ तुम्हारी। भव सागर सब तरहिं मुरारी।।२४।।
यदुकुल में आये प्रभु नीके। अधिक पचीस वरस शत बीते।।२५।।
सकल कार्य प्रभु पूर्ण संकारे। विप्र शाप निज कुल संहारे।।२६।।
मानहुं उचित चलहु निज धामा। सकल लोक पालक घन श्यामा।।२७।।

श्रीभगवान् उवाच-

कीन विनिश्चय जो विधि कहे। पूर्ण कीन भू भार संहरे।।२८।।
यादव गण उच्छृंखल भारी। अबहिं न गये धरा पर मारी।।२९।।
विना विनासे यदि मैं जाऊँ। लोक विनाश यदूकुल पाऊँ।।३०।।
विप्रशाप कुलनाश अरम्भा। भये काज जइहौं मैं ब्रम्हा।।३१।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- अखिल लोकपालक प्रभू, कहीं विधी से बात।
सकल देव गण साथ ले, चले धाम हरषात।।३२।।

असगुन देखि कृष्ण गृह आये। यदुवंसिन्ह कंह दिये बताये।।३३।।

श्रीभगवान् उवाच-

विप्रशाप ते यदुकुल नाशा। असगुन होहिं बतावहिं त्रासा।।३४।।
इहाँ बसत अब संशय भारी। चलहुं प्रभास क्षेत्र सब झारी।।३५।।
एक प्रभास क्षेत्र सुख मूला। जहाँ चन्द्र भे गत दुख शूला।।३६।।

तहाँ जाइ करि मज्जन पाना। तर्पण करि द्विज देइहिं दाना ।।३७।।
यथा नाव लगि सागर पारा । देइ सुपात्र धन पाप निवारा ।।३८।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- माधव के आदेश सुनि, यदुपुंगव सब वीर।
तब प्रभास प्रस्थान हित, रथ साजे यदु धीर।।३९।।

उद्धव सुनेउ कृष्ण सन्देशा। असगुन देखि भयउ मन क्लेशा।।४०।।
देखि एकान्त कृष्ण पँह आये। हाथ जोड़ि यह बचन सुनाये ।।४१।।

उद्धव उवाच-

यद्यपि समरथ सकल गोसाई। विप्रशाप नहि मेटिहु जाई ।।
कुल संहारि जैहो निजधामा। लगत कृष्ण अब पूरण कामा।।४२।।
एकउ पल बिन तुम नहि रहऊँ। संग मोहि निज धामहि लयऊ ।।४३।।
मंगल मय लीला तनु धारी। बिनु तुम्हरे नहि रहऊँ मुरारी ।।४४।।
शयन असन क्रीडा सब तोरे। कीन संग तव, तजहुं न मोरे।।४५।।
उतरन स्त्रक चन्दन हम धारे। जूठन खाय, तजहु जनि प्यारे।।४६।।
जानहुं जे माया के पारा। ऋषी मुनी तव धाम सिधारा।।४७।।
हम सब कर्म बन्ध के मारे। लीला गाइ जाहुं भव पारे ।।४८।।
हास लास अरु रास सहारे। सुमिरत तव पद चहहुं मुरारे।।४९।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- एंहि विधि उद्धव ने कहे, जबहिं कृष्ण से बात ।
लखि विवित्त प्रिय सन हरी, बोले हर्षित गात।।५०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

*

।।अथ सप्तमोऽध्यायः।।

श्रीभगवान् उवाच-

दोहा- प्रिय उद्धव! जो तुम कहे, सो करना मैं चाहुँ।
शिव विरंचि लोकाधिप, चाहत लोचन लाहु।।१।।

ब्रह्मदेव सुरकार्य बताये। अंश सहित मैने निबटाये।।२।।
ब्रह्म शाप कुल नाशन होई। सप्तम दिवस सिन्धु पुर गोई।।३।।
जैसे मै त्यागहुं भू लोका। कलि प्रभाव सब करहि सशोका।।४।।
मेरे बिना तुमहुं नहि रहहूं। धर्म हीन सब अधरम कर हूं।।५।।
सब कुछ त्यागि स्वजन ममताई। मम हिय लागि चरहु महि जाई।।६।।
इन्द्रिय लगि जो कछू दिखाया। सो सब नश्वर जानंहु माया।।७।।
मन अशान्त गुण-दोष दिखावा। कर्म अकर्म विकर्म बतावा।।८।।
वश करि इन्द्रिय देखहु ताता। आत्मा एक ब्रह्म से नाता।।९।।
आत्म भूत विज्ञान शरीरा। सदा तुष्ट नहि पाइय पीरा।।१०।।
दोष बुद्धि गुण मति नहि ताके। बालक इव समदृक मति जाके।।११।।
लखहिं विश्व मम रूप सुजाना। सर्व भूत हित ज्ञान-निधाना।।१२।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- उद्धव से श्री हरि कहे, जब अपने सन्देश।
करि प्रणाम उद्धव तबहि, चाहे शुभ उपदेश।।१३।।

उद्धव उवाच-

योग रूप योगेश्वर स्वामी। कहे लेन संन्यास निकामी।।१४।।
दुष्कर त्याग विषय रति जासू। कहुँ अभक्त संन्यास सुपासू।।१५।।
हमहुँ मूढ़ मति रहे भुलाने। माया रचित प्रपञ्च लुभाने।।
जो उपदेशे संन्यास स्वरूपा। कहहु बुझाइ भृत्य अनुरूपा।।१६।।
सदा एक रस रहहु मुरारी। तब समान वक्ता असुरारी।।

नहि कोउ देव मध्य मोहिं लागा। ब्रह्मादिक तनुधारि न जागा ।।१७।।
आयउं चरण शरण यदुराई। दुःख दवानल देह जलाई।।
प्रभु अनवद्य अनन्त अपारा। सखा भाव हरि करिहें पारा।।१८।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- लोक तत्त्व जे जान नर, लेंइ बचाय विवेक।
परिहरि अशुभ विचार उर, गहहिं सदा शुभ चेत ।।१९।।

आत्मा सकल परम गुरु स्वामी। करि प्रत्यच्छ अनुमान निकामी ।।२०।।
सांख्य तत्व जे जानहिं नीके। जानहिं आत्म आधार सभी के।।२१।।
एक पाद दुइ पाद बनाये। त्रिपद चतुष्पद सृष्टि कहाये।।
बहुत पैर विनु पैर रचाये। तासु द्विपद मोंहि पुरुष सुहाये ।।२२।।
पुरुष द्विपाद करहिं अनुमाना। विज्ञ लहहिं तब आत्म प्रमाना ।।२३।।
अब इतिहास कहौं समुझाई। यदु-अवधूत प्रश्न जिमि आई ।।२४।।
देखेउ यदू नृपति बन माहीं। कवि अवधूत पूंछ तिन्ह पांही ।।२५।।

यदुः उवाच-

दोहा- कर्महीन हे विप्रवर! पाई बुद्धि अमन्द ।
जेहिं अधीन बालक सम विचरहु जग स्वच्छन्द।।२६।।

आयु कीर्ति सौन्दर्य बड़ाई। प्रायः चाहत जन समुदाई ।।
एहिं लगि करहिं धरम से प्रीती। अर्थ काम चाहत जग रीती।।२७।।
कर्म समर्थ आप मृदुभाषी। बिना कर्म जड फिरत उदासी ।।२८।।
जगत जरत जब काम के आगी। सुखी रहहु जिमि द्विप जल साधी।।२९।।
कहहु कवन तव सुख कँह हेतू। जग संस्पर्श रहित श्रुति सेतू।।३०।।

श्री भगवान् उवाच-

ब्राह्मण भक्त यदू नृप ज्ञानी। पूंछेउ, विप्र कहेउ सन्मानी ।।३१।।

ब्राह्मण उवाच-

मेरे बहुत गुरु है, भाई। जिनसे बुद्धि पाइ विचराई ।।३२।।

दोहा- क्षिति, जल, पावक, व्योम, रवि, अजगर, सिन्धु पतंग।
मधुजीवी, गज, कपोत, अरु, हरिणी, मत्स्य, मतंग।।३३।।
कुरर, पिंगला, बालक, अहि, कन्या, शर भंग।
मकड़ी, भृंगी कीट बरु, गुरु कीजे सत्संग।।३४।।

राजन्! चौबीस गुरु हमारे। इनसे शिक्षा लीन्ही प्यारे ।।३५।।
जिनसे जो कछु सीखे जाई। पुरुष श्रेष्ठ मैं देहुं सुनाई ।।३६।।
धैर्य सिखावत धरती माता। त्यजहिं न पथ पाये उत्पाता ।।३७।।
भौम विकार गिरी तरु सारे। परमारथ सब कीन सुखारे ।।३८।।
मन वाणी नहि विगरहि जोई। वायु सिखावत मितभुक होई ।।३९।।
बाहर वायु बहै सुखदाई। गुण अरु दोष न लख समुदाई ।।४०।।
पार्थिव गन्ध गहे बह पवनू। आत्मा तथा असँग वपु सदनू।।४१।।
यथा अनन्त एक आकाशा। आत्मा तथा एक स्वप्रकाशा।।४२।।
वायु प्रेरि नभ मेघ दिखावा। नाम रूप गुण काहु न पावा।।४३।।
सलिल यथा मृदु मधुर बहावा। तथा सन्त सद्गुणहिं बसावा।।४४।।
अग्नि तेज मंह सब कुछ जरई। तथा सन्त नहि संग्रह करई।।४५।।
कतहुं प्रकट कहुं गुप्त स्वरूपा। अग्नि सदृश विचरहु महि भूपा ।।४६।।
ईंधन अनल भेद नहि दींखा। आत्मा तथा न भेद सरीखा।।४७।।
जीवन मृत्यु देह के धर्मा। काल प्रभाव लखु क्षीण चन्द्रमा।।४८।।

दोहा-दीप शिखा अरु अग्नि लौ, क्षण क्षण भिन्न अभिन्न।
काल व्याल तिमि देह को, पल-पल ग्रसत अखिन्न।।४९।।

सूर्य रश्मि जल सोखत जैसे। योगी रस सब भोगत वैसे।।
समय पाइ रस देइ अनन्ता। भोग तजहिं तिमि सद्गुण सन्ता।।५०।।
पात्र भेद रवि भिन्न दिखावा। आत्म भेद तिमि कहूं न पावा ।।५१।।

नहि अति प्रेम रखहु जग मांही। यथा कबूतर किये पछितांही ।।५२।।
रहा कपोत एक बन मांही। पत्नी संग वृक्ष की छांही ।।५३।।
अनुदिन प्रीति बढ़ी दोउ केरी। अंग संग नहि दृष्टी फेरी ।।५४।।
एक साथ विचरत दोउ प्राणी। किलकत खेलत प्रेम बढ़ानी।।५५।।
कीन कपोती जो मन मांही। पत्नी वश कपोत तिन्ह लांही ।।५६।।
समय पाइ धरे गर्भ कपोती। निजहिं नीड दिये अण्ड प्रसूती।।५७।।
हरि की कृपा अण्ड से जाये। रुचिर अंग शावक बहिराये ।।५८।।
सुत वत्सल देखत निज जाये। दम्पति हृदय प्रेम उपजाये ।।५९।।
पंख परसि निरखत सुत क्रीडा। युगल मनहि उपजी अति पीडा ।।६०।।

दोहा- हरि माया निज सुतन्ह पँह, उपजा प्रेम अछोर।
मुग्ध हृदय पालन करत, हुये अधीर विभोर।।६१।।

एक बार दम्पति बन मांही। शिशुन चुगावन अन्न जुटाहीं ।।६२।।
युगल कपोत खाद्य लै आये। नीड निकट आये हुलसाये ।।
तबहि बधिक जंगल में आवा। जाल फेंकि सब शिशुन वँधावा ।।६३।।
चारा लिये कपोत कपोती। नीड पाइ मन हरष सपूती ।।६४।।
देखा शिशुन जाल मंह बांधे। दम्पत्ति उर भा शोक अगाधे ।।६५।।
हरि माया, नहि कीन दुरावा। स्वयं कपोती जाल बँधावा ।।६६।।
देखि कपोत दुखी मन मांही। भार्या शिशुन जाल फंसि जाहीं।।६७।।
करत विलाप कपोत कहावा। मोर पाप परिवार नसावा ।।६८।।
मम अनुकूल सदा मम नारी। हमहि त्याग शिशु संग सिधारी।।६९।।
अब यह नीड शून्य मोंहि लागा। केहि लगि जीवों विधुर अभागा ।।७०।।

दोहा- भार्या पुत्रन देखिके, स्वयं जाल में आय।
फँसा कबूतर धाय के, मूर्ख रहा निरुपाय ।।७१।।

तबहि बधिक अति क्रूर स्वभावा। लै कपोत कुल भवन सिधावा ।।७२।।

एंहि विधि पोषत कुटुम नसाहीं। घर परिवार न कामे जाहीं।।७३।।
पाइ मनुज कर पुण्य शरीरा। च्युत आरूढ़ सहत बहु पीरा।।७३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

*

।। अथाष्टमोऽध्यायः।।

ब्राह्मण उवाच-

दोहा- स्वर्ग नरक कतहूँ रहै, बिनु प्रयत्न मिलि जाय।
इन्द्रिय सुख दुख भी तथा, बुध रहिये निरुपाय।।१।।
भोजन थोर ढेर रस सूखा। अजगर निष्क्रिय रहत न भूखा।।२।।
बिनु प्रयास अजगर बिनु भोजन। सर्प समान रहहु तुष्ट मन।।३।।
ओज तेज बल रहत अकर्मा। निद्रा रहित अचेष्ट स्वधर्मा।।४।।
सदा शान्त गम्भीर स्वभावा। मुनिहि सिन्धु इव क्षोभ न आवा।।५।।
बढ़हि घटहि नहि सागर जैसे। ईश परायण मुनि रह तैसे।।६।।
माया नारि रूप मँह गिरई। यथा अगिनि पतंगा जरई।।७।।
कनक कामिनी भूषण वसना। माया रहित, मूढ वंचना।।
भोग, चाह लोभित नर लोका। मरत पतंग समान सशोका।।८।।
थोरइ थोर मांगि मुनि खावा। भौंरा नहि गृह फूल नसावा।।९।।
मधुप समान सार गह जोई। लघु महान शास्त्र नहि कोई।।१०।।
दोहा- सुबह शाम के कारने, संग्रह करिये नाहि।
पाणि-पात्र अरु उदर में, रखिये साखी मांहि।।११।।
भिक्षुक-धरम न संग्रह काहू। मधुमाखी संचय मरि जाहू।।१२।।
काठ नारि पद करइ न संगा। करी फंसत जिमि करिणि प्रसंगा।।१३।।

तजहि नारि मुनि मीचहिं मानी। करिणि लोभ जिमि करि अभिमानी।।१४।।
संचय करिह, न भोगहिं जोई। मधुहा इव हरहिं धन कोई।।
दानकरहिं नहि, भोग न भावा। मधु माखी-मधु मधुहर पावा।।१५।।
भोग हेतु संचय मत करहू। यतिहिं भोगि प्रथम सँग्रहू।।१६।।
गँवई गीत साधु नहि भावा। सीखहु हरिण जो गान बँधावा।।१७।।
नारी गीत बँधे मुनि जोई। शृंगी ऋषि, जानहिं सब कोई।।१८।।
जीभ स्वाद लगि प्राण गंवावा। मीन सिखावत जाल बँधावा।।१९।।
निराहार रहि इन्द्रिय जीते। रसना इन्द्रिय रह विपरीते।।२०।।
नहीं जितेन्द्रिय तब तक कोई। रसना जब तक वश नहि होई।।२१।।

दोहा- रही पिंगला नाम की, वेश्या मिथिला मांहि।
राजन! उससे सीख जो, मिली बताऊँ ताहि।।२२।।

एक रात्रि बहु कीन बनावा। रही अगोर कान्त घर आवा।।२३।।
आवत लखेउ पुरुष जो कोऊ। रमणहि मानत वेश्या सोऊ।।२४।।
जात पुरुष लखि करे विचारा। अब आइहि कोऊ धनिहारा।।२५।।
एहि विधि कीन दुराशा भारी। निकसत पैठत रात गुजारी।।२६।।
धन लगि जोहत ओठ सुखाना। भा वैराग्य परम सुखमाना।।२७।।
आशा पाश काट वैरागा। गीत एक वेश्या मन जागा।।२८।।
बिनु वैराग्य न मोह नसाहीं। ज्ञान हीन ममता न तजाहीं।।२९।।

पिंगलोवाच

मै मूरख सुख चाहहुँ कामा। इन्द्रिय वश, नहि पुरुष निकामा।।३०।।
आत्मा एक रमण उर बसहीं। ताहि छाँड़ि पर पुरुष निरखहीं।।
दुःख शोक भय देत अकामा। मोह अन्य काहे कर वामा।।३१।।
अहह कीन मैं पाप अभागी। वेश्या वृत्ति अर्थ प्रिय लागी।।
विषयी पुरुष क्रीत मम देहा। चाहहुं मै रति औरु सनेहा।।३२।।

अहइ शरीर एक घर खाली। अस्थि चर्म बहु रोम नखाली।।
विष्ठा-मूत्र पूर्ण यह साजे। मल निकसत नौ नौ दरवाजे।।३३।।

दोहा- यह विदेहनगरी अहे, यामें मैं मतिमन्द।
चाहहुं मै पर पुरुष को, छाँड़ि आत्म सुखकन्द ।।३४।।

मम उर वसत सदा वनवारी। सुहृद परमप्रिय है गिरिधारी।।
तिनहिं संग मै रमिहौ जाई। यथा रमा रमि अति सुख पाई।।३५।।
सोचहु मन पायहु सुख थोरा। देवन्ह वसे काल के कोरा।।३६।।
अब प्रसन्न मोंहि लगत मुरारी। भयउ विराग शोक भयहारी।।३७।।
मन्द भाग्य नहि लहहि कलेशू। बिनु कलेश नहि तजहि नरेशू।।३८।।
प्रभु उपकार सोचि मन मांही। शरण जाँउ मै अब हरि पांही।।३९।।
यथा लाभ कीने परितोषा। आत्मा राम हरे सब दोषा।।४०।।
यह संसार कूप सम भाई। विषय अन्ध यहि गिरा पराई।।
काल सर्प तेहि ग्रासन आया। कौन बचावे विनु यदुराया।।४१।।
विषय विरक्त जो कोऊ होवे। समुझे जगत् कालवश सोवे।।४२।।

ब्राह्मण उवाच-

अस निश्चय मन ही मन जागा। गई सेज जार मन त्यागा।।४३।।
सुखी निराश आश दुख मूला। सोई सुख सब त्यागि पिंगला।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे अष्टमोऽध्यायः।।

*

।। अथ नवमोऽध्यायः ।।

ब्राह्मण उवाच–

संग्रह सकल दुःख कर मूला। लहै अकिंचन सुखहि समूला ।।१।।
कुरर चोंच लखि आमिष खण्डा। मारहिं चोंच चाह वरिवण्डा ।।
फेंका जबहि कुरर तह जाई। त्याग से परम शान्ति सो पाई ।।२।।
बालक इव मै रहउ अचिन्ता। मान-विमान छोड़ दुश्चिन्ता ।।३।।
गुणातीत नर, बालक दोऊ। परमानन्द मगन सुठि होऊ ।।४।।
एक समय इक रही कुमारी। देखन आये अतिथि उदारी ।।५।।
भोजन हेतु धान सो कूटा। तबहि शंख रव कंगन फूटा ।।६।।
अनुचित मानि सब दीन उतारी। दुइ दुइ कंकण केवल धारी ।।७।।
दूनउ करत शब्द पुनि तंहवा। एक उतारि दीन सोइ तहवां ।।८।।
विचरत हमहुं पहुँचि तँह गयऊ। शिक्षा एक तहाँ मै लयऊं ।।९।।

दोहा– जहाँ बहुत जन कलह तँह, बात दोउ के बीच।
अतः रहन भलु एक ही, विचरण करे अभीत ।।१०।।

मन साधइ निज लक्ष्य विचारी। साधक पाइ विराग निहारी ।।११।।
विनु ईधन बुझइ जिमि आगी। कर्मबन्ध छूटत मन लागी ।।
सत्व बढ़े रज तम गुण हानी। शान्त सदा आत्म गुण खानी ।।१२।।
बाण बनावत तन्मय भयऊ। जात नृपति सेना नहि लखयेऊ ।।
सदा एकाग्र लक्ष्य पर होई। योगिन्ह परम साधना सोई ।।१३।।
रहत एकाकी चलत असंगा। सर्प समान गुफा रह चंगा ।।१४।।
गृहारम्भ अति दारुण माना। पर गृह करत निवास सुजाना ।।१५।।
हरी एक समरथ जग जाना। कल्प अन्त तेहिं उदर समाना ।।१६।।
अद्वितीय प्रभु जग के स्वामी। कारण कार्य नियम्य नियामी ।।१७।।
प्रभु कैवल्य रूप सुख कन्दा। निरुपाधिक आनन्द अमन्दा ।।१८।।

माया संग रचत संसारा। क्रिया शक्ति जो जगदाधारा ।।१९।।
त्रिगुण सृष्टि सब माया केरी। जन्म मृत्यु वश जीव घनेरी।।२०।।

दोहा- मकड़ी प्रकटत जाल ज्यों, करि विहार लव लीन।
तथा ईश निर्मित जग, जीव रूप लय कीन।।२१।।

प्रेम द्वेष भय मनहिं लगावा। जीव एकाग्र रुप सोइ पावा।।२२।।
भृंगी कीट छिद्र लइ जावा। चिन्तन करत कीट तनु पावा ।।२३।।
एतने गुरू सीख जो पाई। निज तनु शिक्षा कहहुं बुझाई।।२४।।
यह शरीर मोहि ज्ञान सिखावा। जीवन मरण सदा एहिं पावा।।
तत्त्व विचार कीन मन मांही। सदा असंग रहहु जग पांही।।२५।।
नारि पुत्र गृह भृत्य सहेजे। पोषत जीवन जीवहि छीजे ।।
धन संचय सहि बहुत कलेशा। बीज बपत दुख वृक्ष सरीखा।।२६।।
जिह्वा खींचत रस की ओरा। उदर त्वचा कँह औरउ ठौरा ।।
घ्राण चक्षु चह स्ववश कराहीं। सौत बहुत पति एक मनाहीं।।२७।।
सृष्टि बहुत विधि रचे विधाता। वृक्ष सरीसृप खग विख्याता ।।
नहि सन्तोष भये मन जबहीं। मनुष रचे विधि हर्षित तबहीं ।।२८।।
दुर्लभ मनुष योनि जग मांही। येहि पाये कछु दुर्लभ नाहीं।।
मोक्ष लाभ मानुष तनु पाये। भोग हेतु नहि जन्म गंवाये ।।२९।।

दोहा- एहि प्रकार जब ज्ञान भा, मन उपजा वैराग।
ज्ञान जोति को संग ले, विचरौ विनु अनुराग।।३०।।

एक गुरु से पूरा ज्ञाना। सम्भव नाहि, करौ गुरु नाना ।।३१।।

श्रीभगवान् उवाच-

यंहि प्रकार यदु को समुझाये। अवधूतहुं इच्छित दिशि जाये ।।३२।।
सुनि अवधूत वचन उर लाये। संग छाँड़ि समदरसि कहाये ।।३३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे नवमोऽध्यायः।।९।।

।। अथ दशमोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- आवत मेरी शरण में, मानत मेरी बात ।
कुलाचार पालन रत, धर्म धुरीण सुजात ।।१।।

शुद्ध स्वभाव देखियत लोगू। चाहत सुख, दुखपावत भोगू ।।२।।
स्वप्न यथा कछु सत्य न होई। इन्द्रिय जन्य भासु जग सोई ।।३।।
मोंहि शरण मंह आने जोई। करे अकाम कर्म नर सोई।।
आत्म ज्ञान रति उर मंह जाके। कर्म विधान उचित नहि ताके।।४।।
यमहि सेव पूरण मन लाई। नियमन्ह सेवत कतहुं ढिलाई।।
ब्रह्म सरिस गुरु मानत प्राणी। ईश समान शान्त निष्कामी ।।५।।
मत्सर हीन, दक्ष, दृढ़ प्रीती। सावधान अर्थज्ञ सुनीती ।।६।।
पुत्र कलत्र स्वजन धन आदी। उदासीन लख आत्म अनादी।।७।।
देह भिन्न आत्मा स्वप्रकाशा। दाह्य दारु दाहक चहुँ आशा ।।८।।
लकड़ी गुण धारत जिमि आगी। तथा देह गुण धरै अनादी ।।९।।
गुण विरचित यह द्विविध शरीरा। जीव भास तेहि लागत पीरा ।।१०।।

दोहा- वस्तु बुद्धि निरसन करत, क्रमशः ध्यावइ जोइ ।
आत्म तत्त्व जिज्ञासु नर, पावत अनुपम सोइ।।११।।

गुरु अरु शिष्य अरणि सम सोई। विद्या अग्नि मथे तो होई।।१२।।
सम्यक् ज्ञान गुरू से पावा। शिष्य सकल अज्ञान नसावा।।
माया गुण सब जात नसाये। बुझइ आगि विनु समिधा पाये ।।१३।।
कर्म करइ भोगइ सुखनाना। जीव अनेक नित्य कँह जाना ।।१४।।
सकल पदार्थ नित्य इव मानहुं। नित्य प्रवाह कहि ताहि बखानहु।।
आकृति भेद ज्ञान मँह भेदा। ज्ञान भेद नहि मानत वेदा ।।१५।।
जन्म आदि सब भाव विकारा। काल खण्ड कह नित्य पुकारा ।।१६।।

जीव स्वतन्त्र नाहि परतन्त्रा। नहि स्वतन्त्र दुख भोगइ कर्ता ।।१७।।
लहइ न पण्डित सुख लव लेशा। मूढ न पावइ कबहुं कलेशा ।।१८।।
दुख नाशन यदि होत उपाया। मृत्यु नाश हित काहे दाया।।१९।।

दोहा- मृत्यु निकट में पाइ के, भोग न दे आनन्द।
यथा बध-स्थल पहुँचि के, मन न होत सानन्द ।।२०।।

लोक तुल्य परलोक सुखादी। मत्सर निन्दा नाश विषादी।।
बहुविध होत विघ्न सुर लोका। यथा कृषी मंह क्लेश अनेका।।२१।।
बिना विघ्न ये यजन कराहीं। सुनहु यथा ते स्वर्गे जांही।।२२।।
यज्ञ किये अरु सुर आराधे। देव समान स्वर्ग सुख साधे ।।२३।।
पुण्य लाभ एक यान जुटावा। सुर सुन्दरी संग सुख पावा ।।२४।।
क्षुद्र घण्टिका यान सुहावा। जाना नाहि, अन्त कब आवा ।।२५।।
जब तक पुण्य स्वर्ग रह प्राणी। क्षीण पुण्य पुनि धरा सो आनी ।।२६।।
यदि अधर्म रत पाप कराहीं। कामुक, कृपन लुब्ध कहलाहीं ।।२७।।
पशुहिंसारत प्रेतन्ह पूजे। अन्ध नरक मँह जाइंह भूंजे ।।२८।।
कर्म करहि दुःख बहु पाये। बार-बार जनि-मृत्यु गँवाये।।२९।।
कल्प प्रजन्त आयु है जाके। लोक पाल सब डरपत याते।।
द्विपरार्ध ब्रह्म तनु धरहीं। सदा भीत यातें सब रहहीं।।३०।।

दोहा- गुण प्रेरित हैं इन्द्रियाँ, करती कर्म अनेक।
जीव गुणहिं निज रूप गुनि, भोगत फल अविवेक।।३१।।

जब तक गुणहि विषमता जाना। तब लगि आत्महि मानत नाना।।३२।।
जब लगि नाहि स्वतन्त्रता व्यापी। तबहि ईश भीति से कांपी ।।३३।।
माया क्षुभित होहिं जग मांही। काल, जीव, गुण धर्म कहाहीं ।।३४।।

उद्धव उवाच-

देहज गुणन्ह बीच रह जीवा। बन्ध-मुक्त कहु रहत असीवा ।।३५।।

बन्ध मुक्त कैसे रह प्राणी। खात-पियत बोलत कल्याणी।।३६।।
नित्यबद्ध उत मुक्त कहावा। आत्मा अच्युत! भ्रमहिं नसावा।।३७।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

*

।। अथैकादशोऽध्यायः ।।

श्रीभगवान् उवाच-

दोहा- बन्ध-मुक्त इस कथन का, गुण ही है आधार।
माया मूलक गुण सभी, नहि बन्धन उद्धार।।१।।
शोक मोह सुख दुख सब माया। स्वप्न सरिस नहि सत्य कहाया।।२।।
उद्धव! जानहु मोर शरीरा। विद्या औरु अविद्या वीरा।।
विद्या मोक्ष अविद्या बांधे। माया निर्मित दूनउ कांधे।।३।।
जीव एक मम अंश स्वरूपा। बन्ध अनादि अविद्या रूपा।।
आत्म ज्ञान युत मुक्त कहावा। विना ज्ञान सोइ बद्ध जनावा।।४।।
बन्ध मुक्त देइहुं समुझाई। धर्मी एक विलक्षण भाई।।५।।
यह शरीर एक वृक्ष स्वरूपा। हृदय नीड दो खग अपरूपा।।
दोउ समान चेतन है भाई। एक खात फल, एक अघाई।।
बिनु खाये सो रहत असंगा। ज्ञान आदि बल अधिक प्रसंगा।।६।।
दोहा- एक अभोक्ता ईश जो, जानत सकल जहान।
नित्यमुक्त विद्यामय, नित्यबद्ध है आन।।७।।
ज्ञानी पुरुष मुक्त है कैसे। स्वप्न शरीर संग नहि जैसे।।
अज्ञानी उलटी मति पावा। देह पुरुष मनु सपने पावा।।८।।
इन्द्रिय विषय गहै मन लाई। गुण गुणहीं में जात समाई।।
आत्मज्ञान जिनके होइ जाई। अहंकार नहि तिनहि जनाई।।९।।

यह तनु सकल दैव आधीना। गुण प्रेरित सब कर्म प्रवीना।।
मूरख हृदय होइ नहि ज्ञाना। याही ते वह कर्ता माना।।१०।।
सोवत बैठत चलत नहाना। दर्शन परस असन अरु घ्राणा।।११।।
नहि विरक्त तँह बँधत असंगा। यथा अनिल आकाश प्रसंगा।।१२।।
बुद्धि खड्ग संशय सन्दोहा। स्वप्न-बुद्ध इव नाशत मोहा।।१३।।
बिनु संकल्प प्राण मन काजा। रहहिं देह गुण मुक्त समाजा।।१४।।

दोहा- सन्त न छाँड़हि सन्तई, मारहिं पूजहिं कोइ।
पूजा से नाहीं सुखी, दुखी न पीडा होइ।।१५।।

समदर्शी सो मुनी कहावा। स्तुति निन्दा नाहि सुहावा।।१६।।
आत्माराम मुक्त सो ज्ञानी। साधु असाधु न लावे वानी।।
नहि कछु बोलत कहत न कोई। जड इव विचरे सो मुनि होई।।१७।।
शब्द ब्रह्म पण्डित सोइ ज्ञानी। परब्रह्म जो ज्ञान अमानी।।
बिना ज्ञान सोहहि नहि कैसे। विना दूध धेनु पालक जैसे।।१८।।
ठांठ धेनु अरु कुलटा नारी। पराधीन तनु सुत अविचारी।।
पाइ सुपात्र न कीने दाना। हरी छाँड़ि प्राकृत गुण गाना।।
होंहि सदा ये दुख के भागी। सुखी जो मम चरण अनुरागी।।१९।।
जेहि वाणी नहि मम गुण गाना। नहि मम लीला कीन बखाना।।
सो सब बन्ध्या मानहु भाई। धीर पुरुष तेहि कबहुं न गाई।।२०।।
आत्म तत्त्व जानहु मन लाई। तजि नानात्व भेद निपुनाई।।
छाँड़ि लोक व्यवहार सयाना। सर्वव्यापि प्रभु मन मँह आना।।२१।।
यदि न सकहु थिर ब्रह्म अपारा। सकल कर्म त्यागहु संसारा।।२२।।
सुनहिं कथा श्रद्धा मन लाई। लीला चरित बखानहि जाई।।२३।।
मोहि लगि उद्धव सेवत धर्मा। पाइय निश्चल भक्ति सुकर्मा।।२४।।
सत्संगति उपजहिं पद प्रीती। धरि उपदेश सहज लह भक्ती।।२५।।

उद्धव उवाच-

दोहा- सन्त करत गुणगान तव, कहहु सन्त केंहि जान।
भक्ति कवन कीने सुफल, जेहिं आदरहिं सुजान।।२६।।

पूछेंउ सकल चराचर स्वामी। मोहि शरणागत कहहु निकामी।।२७।।
प्रकृति पार पुरुषोत्तम रूपा। निज इच्छा वपु धर सुरभूपा।।२८।।

श्रीभगवान् उवाच-

रहत कृपालु न काहू द्रोहा। सत्य मूर्ति उपकारि अमोहा।।२९।।
काम रहित शुचि मृदुल स्वभावा। शान्त सदा थिर शरण गहावा।।३०।।
नहि प्रमाद बस उर मंह ताके। मानरहित करुणा रह ताके।।३१।।
वेद शास्त्र मानत उपदेशा। स्वर्ग नरक सुखभोग कलेशा।।
सकल छाँड़ि मम भगति धुरीणा। उत्तम सन्त कहाव प्रवीणा।।३२।।
जानि अजानि मोर प्रभुताई। करत अनन्य भगति मोहि पाई।।३३।।
दरस परस मम मूरति पूजा। कीर्तन स्तुति सम नहि दूजा।।३४।।
कथा सुनहि सादर मनलाई। ध्यान धरहिं उर प्रीति दृढ़ाई।।
सकल वस्तु मोहि अर्पण करहीं। दास्य भाव सन्तन अनुसरहीं।।३५।।
जन्म कर्म गावत दिन राती। पर्व गीत उत्सव जिन्ह थाती।।३६।।
वर्ष पर्व शुचि यान विधाना। लौकिक वैदिक मन्त्र बखाना।।३७।।
मन्दिर मूरति करहिं थापना। उपवन क्रीडा विविध कल्पना।।३८।।
धोइ पोंछि मम सदन सम्हारे। दास भाव मन सदा विचारे।।३९।।
नहि अभिमान दम्भ मन लावा। निज शुभ कर्म कतहुं नहि गावा।।
दीप प्रकाश समर्पे जोई। अपने हित लावहु नहि सोई।।४०।।

दोहा- जो कछु आपहिं प्रिय लगे, अति अभीष्ट जो मान।
सकल समर्पे मोंहि को, फल अनन्त तेंहि जान।।४१।।

सूर्य अग्नि जल विप्र अकाशा। धरा वायु जग पूज प्रकाशा।।४२।।

ऋग् यजु साम मन्त्र मन लाई। पूजिय सूर्य मोंहि सो पाई।।
हवन अग्नि, द्विज अतिथि जिंवाये। हरी घास गो पूजि खिलाये।।४३।।
वैष्णव पूजिय बान्धव जानी। ध्यान नभस मोंहि पूजत प्रानी।।४४।।
मृण्मय मूरति मोर बनाये। भोग लगाइ पूजि मोहि पाये।।
सकल प्राणि उर पुर हरि बसहीं। समता बुद्धि सेइ जन लसहीं।।४५।।
इन्ह मँह बसत चारि भुजधारी। गदा चक्रधर कमल मुरारी।।
ध्यान धरत पूजत हरि पावा। शान्त चतुर्भुज छवि उर लावा।।४६।।
सेवत साधु करत मख यागा। पावत भगति सुरति मन लागा।।४७।।
उद्धव कहौं विनिश्चय अपना। बिनु सत्संग भगति सुख सपना।।४८।।
उद्धव कहउ गुप्त एक बाता। भृत्य सुहृद कँह मानउ नाता।।४९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे एकादशोऽध्यायः ।।११।।

*

।। अथ द्वादशोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- सांख्य योग अरु धर्म सब, वेद पाठ तप त्याग।
यज्ञ दान वरु दक्षिणा, मोंहि प्रेय नहि लाग।।१।।

व्रत मख वेद नियम नहि भावा। सत्संगति सम नाहि उपावा।।२।।
सत्संगति वश खग मृग नाना। नाग सिद्ध चारण यतुधाना।।३।।
वैश्य शूद्र विद्याधर जेऊ। रज तम प्रकृति तरे सब केऊ।।४।।
वृत्रासुर, बलि, वृष, प्रह्लादा। जाम्बवन्त, कपि, मय दायादा।।५।।
गजपति, गीध, वैश्य, अरु गोपी। सत्संगति पाये पद रोपी।।६।।
वेद पढ़े नहि, बिना उपाया। विना घोर तप मोको पाया।।७।।
गोपी, गाय, वृक्ष, मृग नाना। कालिय मूढ़ लहे मम धामा।।८।।

दान, याग, व्रत तप नहि कीन्हे। विनु संन्यास परम पद चीन्हे ।।९।।

दोहा- श्वफलक सुत बलराम संग, मथुरा मोंहि लिवाय।
मम वियोग वस गोपिजन, तीव्र ताप निरुपाय ।।१०।।

वृन्दावन मोहि रहत सुखारी। रात्रि अनेक वितायेंउ नारी।
क्षण इव क्षणदा दीन बिताई। बिना मोहि क्षण कलप लगाई ।।११।।
यथा नदी सागर मँह जाई। नाम रूप सब देंहि गँवाई।।
तथा गोपिका तन्मय भयऊ। सुत पति गेह सुरति चलि गयऊ।।१२।।
जार भाव मोहि चाहत नारी। संग प्रभाव ब्रह्म पद धारी ।।१३।।
विधि निषेध श्रुति निगम विहाई। उद्धव करहु भगति मन लाई।।१४।।
सब मँह करहु ईश कर भावा। शरणागत जन सो मोंहि पावा।।१५।।

उद्धव उवाच-

दोहा- सुनत नाथ योगेश्वर, मिटत न मन सन्देह।
भ्रम वश भटकत यह सदा, करहु भगत पर नेह ।।१६।।

श्रीभगवान् उवाच-

देह विवर मँह जीव विराजा। प्राण घोष ताहीं पर छाजा।।
सूक्ष्म रूप मन मांहि दिखावा। वर्ण आदि स्फुट कण्ठे आवा।।१७।।
यथा अगिनि अम्बर मँह होई। दारु मथे ते प्रकटत सोई।।
आहुति पाय प्रबल तो होई। तथा प्रगट वाणी मुख जोई ।।१८।।
एहि विधि इन्द्रिय कर्म अनेका। कर्म ज्ञान करि कार्य विवेका ।।
सत रज तम के कार्य विधाना। करत अनेक संकल्प प्रमाना।।१९।।
आदि पुरुष परमेश्वर सोई। त्रिगुण विश्व कँह कारण होई।।
यथा बीज फल पुष्प दिखावा। ब्रह्म तथा माया गुण पावा ।।२०।।
वस्त्र यथा धागा से बनई। बिना ताहि सो पुनि पुनि रहई।।
तथा ब्रह्म से रचित अपारा। जगत बिना रह ब्रह्म उदारा ।।

यह संसार वृक्ष अनुकूला। भोग मोक्ष याके फल फूला।।२१।।
संसृति वृक्ष बीज दुइ जाना। पाप पुण्य श्रुति तत्व बखाना।।
तीन तना गुण तीनउ होई। पंच भूत शाखा तंह जोई।।
विषय पाँच रस किये बखाना। ग्यारह इन्द्रिय शाखी जाना।।
ईश जीव दुइ खग कर वासा। बल्कल तीन दुःख सुख आशा।।२२।।
विषय विकार कामना भोगी। गीध समान खाय फल रोगी।।
विषय विरक्त हंस सम एका। फल भोगहि सुख रूप अनेका।।
एक तत्व मैं रूप अनन्ता। मायावश, गावहि श्रुति सन्ता।।२३।।
करहु उपासन गुरु कर भाई। ज्ञान असी जिव भेट मिटाई।।
वृत्ति अस्त्र त्यागहु तुम जाई। एक अखण्ड रूप थिर पाई।।२४।।

।। इति श्रीमद्‌भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

*

।। अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच-

सोरठा-सत्व रजस तम तीन, बुद्धि केर, नहिं आत्म गुण।
रजस, तमस को जीत, सत्त्व सत्त्व पुनि जीतिय।।१।।

जबहिं सत्त्वगुण बढइ अनूपा। जीव लहइं मम भगति स्वरूपा।।
सात्त्विक सेइ सत्त्व गुण बढ़ही। भक्तिभाव उर बाढइ तबहीं।।२।।
सत्व बढ़इ, रज तम के मारे। श्रेष्ठ धरम सोइ जानु पियारे।।३।।
आगम, जल, जन, देश सुकाला। मन्त्र, ध्यान, जनि, कर्म भुवाला।।
शुभ संस्कार दशहुं गुण खानी। एहि विपरीत अगुण शुभहानी।।४।।
बड़े विज्ञ जेंहि करहिं बड़ाई। सो सब सात्त्विक जानहु भाई।।
तामस निन्दा होइ अमन्दा। राजस सदा उपेक्षित मन्दा।।५।।
केवल सात्त्विक सेवइ जेई। बढ़त सत्त्व पुनि ज्ञानहु होई।।६।।

बाँस रगड़ ते पावक होई। तातें जलत सकल बन सोई।।
तथा विचार करत दिन राती। उपजति अगिनि जलावत थाती।।७।।

उद्धव उवाच-

दोहा- प्रायः जानत नर सभी, विषय दुःख के मूल।
श्वान गधा बकरे सरिस, भोगत सुख को भूल।।८।।

श्री भगवान् उवाच-

जीव अजान स्वरूप भुलाई। करत अहं रज घोर ढिठाई।।९।।
रजो युक्त मन कर संकल्पा। गुण कँह ध्यान दुसह दुख दर्पा।।१०।।
करइ काम वश कर्म अनेका। रज मोहित फल पावइ शोका।।११।।
रज तम यदपि विवेकिंहु आवा। दोष देखि मन नाहिं लगावा।।१२।।
आसन प्राण जीति मन लाई। सावधान मन हरिहिं लगाई।।१३।।
मम प्रिय शिष्य ऋषी सनकादी। कहेउ, दिये मन मिटत विषादी।।१४।।

उद्धव उवाच-

सनकादिक जेहि विधि उपदेशा। जानन चहहुं योग आदेशा।।१५।।

श्रीभगवान उवाच-

ब्रह्म तनय मानस सनकादी। पूछेउ योग पितहिं मन लागीं।।१६।।

सनकादय ऊचुः-

चित्त विषय मँह निरत प्रजेशा। तरहिं मुमुक्षु कौन विधि क्लेशा।।१७।।

श्री भगवान् उवाच-

सुतन्ह प्रश्न ब्रह्मा सुनि काना। किये ध्यान उत्तर नहि आना।।१८।।
बहुरि ध्यान कीने चतुरानन। हंस रूप प्रकटे गरुडासन।।१९।।
देखि ससुत पद वन्दन कीन्हा। कौन आप पूंछेउ नहि चीन्हा।।२०।।

दोहा- जो कछु उद्धव! कहेउ तँह, तत्त्व ज्ञानि के बीच।
सो सब कहि हों तुमहिं सो, सुनहु भक्ति मन सींच।।२१।।

परमारथ नाना नहिं भाई। कहहुं कवन विधि आत्म बड़ाई।।२२।।

पंच तत्व निर्मित यह देहा। 'कौन आप' यह कत सन्देहा।।२३।।
मन, वाणी इन्द्रिय जँह जाई। सो सब मै यह जानहु भाई।।२४।।
गुण मँह विषय, विषय गुण मांही। दूनउं जीव-उपाधि कहाँही।।२५।।
बार बार मन विषय लगाना। ध्यान धरत पावत भगवाना।।२६।।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति वखाना। साक्षी जीव विलक्षण जाना।।२७।।
बुद्धि वृत्ति सब बन्धन रूपा। त्यागहिं अनुगत तत्त्व स्वरूपा।।२८।।
अहंकार आनन्द छिपावा। सोइ तुरीय पद मो कँह पावा।।२९।।

दोहा- जानत जागत स्वप्न मँह, अज्ञ अचेत सचेत।
जब तक होत निवृत्ति नहि, पुरुष बुद्धि सविवेक।।३०।।

आत्म भिन्न कछु भाव न भेदा। यथा स्वप्न मँह नाना खेदा।।३१।।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति त्रिकाला। एक आत्म जागत सब काला।।३२।।
तीन अवस्था जीवहिं जाना। ज्ञान खड्ग भेदन कर माना।।३३।।
जगत विलास मनहिं कर होई। ज्ञाता ज्ञेय रहित प्रभु सोई।।३४।।
दृष्टि हटाइ दृश्य ते लोका। आत्मानन्द मगन हत शोका।।
देह पात लगि जग ते प्रीती। मिथ्या वस्तु न होत प्रतीती।।३५।।
यथा मत्त वसनहिं नहि ढाका। तथा सिद्ध निज तनु नहि आका।।३६।।
स्वप्न शरीर जागे नहि भाना। कर्म शरीर ज्ञानि नहि माना।।
योगारूढ़ कुटुम्ब न सोहा। धन सुत नारि कतहुं नहि मोहा।।३७।।
सांख्य योग मै दिये सुनाई। विप्र जान भगवत करुणाई।।३८।।
योग सांख्य सत ऋत अरु तेजा। दम, श्री, कीर्ति परम गति पूजा।।३९।।
निर्गुण मोहि भजहि गुण नीके। सुहृद जानि हित लागि सभी के।।४०।।
येंहि विधि सब सन्देह मिटावा। सनकादिक पूजत सुख पावा।।४१।।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। धाम चले हरि, संशय भागा।।४२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

।। अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।।

उद्धव उवाच-

दोहा- ब्रह्मवादि जन कहहिं पुनि, श्रेयस मार्ग अनेक ।
स्वरुचि श्रेष्ठ है मत सभी, अथवा मुख्य है एक ।।१।।
भक्तियोग को आपने, अभी कहा निरपेक्ष ।
त्यागि सकल आसक्ति प्रभु, तन्मय होय यथेच्छ ।।२।।

श्रीभगवान् उवाच-

समय प्रभाव प्रलय जब आवा। लुप्त वेद सद्ग्रन्थ दुरावा।।
पुनः सृष्टि क्षण आयउ जबहीं। निज संकल्प विधिहिं दिय तबहीं।।३।।
ब्रह्मा मनुहिं दिये उपदेशा। तेंहि ते ऋषिन्ह लहे सन्देशा।।४।।
ऋषिन्ह सुतहिं पुनि वेद सुनाये। देव मनुज किन्नर सब पाये ।।५।।
किन्नर नाग रक्ष पुनि जाने। सत रज तम सब हीं अनुमाने ।।६।।
निज-निज वृत्ति गहे पुनि तासू। वेद अर्थ प्रतिपादन जासू।।७।।
माया मोहित जीव अनेका। वेद विरुद्ध लही मति छेका।।८।।
मम माया लगि मोह समाना। करहि अनेक अर्थ मति नाना।।९।।
धरम कोउ यश काहु बखाना। सत्य, काम शम, भोग अमाना ।।१०।।
यज्ञ दान तप नियम बताये। इन्हते नश्वर लोकन्ह पाये ।।
क्षीण पुण्य दुख भोगहि प्राणी। स्वल्प क्षेम दुख अकथ कहानी।।११।।

दोहा- फ़ल की चिन्ता त्याग करि, स्वप्न लोक का भोग ।
करहु समाहित चित्त से, मम चरणन में योग ।।१२।।

रहहिं अकिंचन शान्त सुखारी। देखहिं सब दिशि मात्र मुरारी ।।१३।।
ब्रह्म इन्द्र पद नृपति न चाहा। योग सिद्धि पुनि मोक्ष न थाहा ।।१४।।
तुम समान प्रिय विधि शिव नाहीं। संकर्षण अरु लच्छि कहाहीं।।१५।।
समदर्शी मुनि पाछे धाऊँ। पद रज पाइ पवित्र कहाऊँ।।१६।।

मोंहि अकिंचन प्रिय अति भाई। शान्त सकल जीवन्ह सुखदाई ।।
काम परस जाकी मति नाहीं। तेइ परम सुख पाइ अघाहीं।।१७।।
अजितहिं काम बहुरि लेंइ खीचा। पाइ भगति विषयन्ह दृग मीचा।।१८।।
भभकत आगि काठ जरि छारा। तथा भगति मम पापहिं मारा ।।१९।।
योग ध्यान तप पाठ न पावा। यथा भगति मोंहि अनसंहु भावा।।२०।।

दोहा- केवल भक्ती से मिलूं, श्रद्धा मात्र उपाय।
श्वपच किरातहुं पूत करि, आत्मा एक लखाय।।२१।।

सत्य दया विद्या तप योगा। बिनु हरि भगति न नाशइ भोगा।।२२।।
पुलक शरीर न गदगद वानी। अश्रु नयन बिनु भगति न आनी।।२३।।
गदगद वचन हँसा कहुँ रोवा। गावत नाचत लज्जा खोवा ।।
भगति युक्त मम भगत सखाया। करत पवित्र जगत जो जाया।।२४।।
सोना यथा आग महिं जारा। चमकत निर्मल जग उजियारा।।
तथा भगति मम कलुष नसावा। भगति युक्त नर मोंही पावा।।२५।।
लीला कहत सुनत मल जाई। अंजन भगति सूक्ष्म फरियाई।।२६।।
सोचत विषय ताहि मन व्यापा। मोंहि सोचत मेटत सब आपा ।।२७।।
असत छाँड़ि मन मोंहि लगावा। स्वप्न मनोरथ कहु केहि पावा।।२८।।
परिहरि नारि विषय कर संगा। सेइ विजन ध्यावइ मन चंगा।।२९।।
नारि संग जस बन्धन होई। तस पुनि कतहुं न पावइ कोई ।।३०।।

उद्धव उवाच -

दोहा- पंकज लोचन करि कृपा, देहु इहै बतलाय।
मुक्ति काम केंहि रूप का, ध्यान करे निरुपाय।।३१।।

श्री भगवान् उवाच-

सम काया आसन आसीना। नासा दृष्टि हाथ उर कीना।।३२।।
रेचक पूरक कुंभक प्राना। शोधिय नाडी इन्द्रिय नाना।।३३।।

करि ओंकार कण्ठ मंह रोका। घण्टानाद समान विशोका।।३४।।
तीनेउ काल जपत दस बारा। मास अवधि वश प्राण उदारा।।३५।।
ऊपर नाल कमल खिल जाई। आठहुं दल कर्णिक इव छाई।।३६।।
तापर रवि शशि अनल बुझावा। अग्नि मध्य मम रूप लखावा।।३७।।
चारि भुजा मम सुमुख स्वरूपा। सुन्दर ग्रीव कपोल अनूपा।।३८।।
मकराकृति कुण्डल घनश्यामा। पीतवसन श्रीवत्स ललामा।।३९।।
गदा चक्र दर पद्म विराजा। वनमाली पग नूपुर छाजा।।४०।।
कटक मुकुट करि सूत्र अनूपा। सुन्दर सुमुख हृद्य अभिरूपा।।
सब अंगन शोभा अति न्यारी। मन लगाइ ध्यावहु गिरिधारी।।४१।।
बुद्धि सहाय मनहिं भलु खींचा। करु मम ध्यान न पावहु नीचा।।४२।।

दोहा- अपने चित को खींचकर, मम पूरण करु ध्यान।
धीरे-धीरे मम मुखहिं, सुस्मित ध्यान प्रमान।।४३।।

क्रमशः ध्यान व्योम कर धरई। मम आरुढ़ असत मति जरई।।४४।।
एहि विधि ध्यावत मम अनुरागी। मिलत प्रकाश प्रकाश सुभागी।।४५।।
तीव्र योग योगी मोहि पावा। द्रव्य ज्ञान कर भेद नसावा।।४६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादशस्कन्धेचतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

*

।। अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- इन्द्रिय जित जित श्वांस के, ध्यान धरत मन लाय।
भक्त वश्य सब सिद्धियाँ, आवत ताहीं धाय।।१।।

उद्धव उवाच-

कौन धारणा ध्यावत ध्यानी। कौन सिद्धि जग पावत प्रानी।।२।।

श्रीभगवान् उवाच-

सिद्धि अठारह योगि जनावा। आठ प्रधान शेष गुण पावा।।३।।
अणिमा, महिमा, लघिमा जानी। प्राप्ति, प्रकाम, ईशिता मानी।।४।।
गुणन असक्ति कहाई वशिता। अठई सिद्धि कामावसायिता।।
आठौ सिद्धि सदा मम केरी। चाहत देंउ सिद्धि सम चेरी।।५।।
गौड़ सिद्धि अब देउ बताई। क्षुधा त्रास नहिं, दूर-सुनाई।।
मनोवेग, बहुरूप बनावा। पर काया मँह प्राण रमावा।।६।।
इच्छा मरण, देव सँग वासा। सत्य सन्ध पूरित सब आशा।।७।।
ज्ञान त्रिकाल द्वन्द्व कर नाशा। पर चित वृत्ति, न काहू त्रासा।।
अग्नि सूर्य जल विषहिं निरोधा। अपराजित योगी समयोधा।।८।।

दोहा- एतनी सिद्धी नाम से, दिया तुम्हें बतलाय।
कौन सिद्धि कैसे मिले, सकल कहौं समुझाय।।९।।

सूक्ष्म भूत तनु ध्यावत प्रानी। अणिमा सिद्धि लहे शुचि ज्ञानी।।१०।।
महत्तत्व मम रूप निरूपा। महिमा सिद्धि पाव नर भूपा।।११।।
परमाणुन मँह मोंहि निहारा। लघिमा सिद्धि योगि जन प्यारा।।१२।।
अहंकार सत् मनहि बसावा। प्राप्ति सिद्धि सो दुर्लभ पावा।।१३।।
इच्छा भोग लहै जिमि प्रानी। सिद्धि प्रकाम्य सूत्र कर ध्यानी।।१४।।
काल रूप करि विष्णुहिं ध्याना। पाव इशित्व योग वरदाना।।१५।।

जो तुरीय भगवत कर ध्याना। वशिता सिद्धि पाव सन्माना।।१६।।
निर्गुण ब्रह्म धरै मन माँही। परमानन्द तें काम नसाही।।१७।।

दोहा- श्वेत द्वीप पति धर्म मय, मुझमें प्रीति लगाय।
छहो ऊर्मियाँ नष्ट हों, जन्म मृत्यु विनसाय।।१८।।

व्योम रूप मम ध्यान धरावा। दूर सुनत सब जीव बोलावा।।१९।।
सूर्य ध्यान करि ध्यावत मोंही। दूर दृष्टि सो विश्व लखोहीं।।२०।।
मन लगाइ जो धरइ धारणा। होइ मनोजव सिद्धि पारणा।।२१।।
मन अरु चित्त रूप रचि कोई। रूप अनेक योगि धर सोई।।२२।।
वायु शरीर की करत भावना। परकाया परवेश साधना।।२३।।
ब्रह्म रन्ध्र तनु त्यागत जोई। गुदा पाद उर वायु संजोई।।२४।।
शुद्ध सत्त्व उर राखत प्रानी। सुर नारी क्रीडा सन्धानी।।२५।।
थिर करि चित्त सत्य संकल्पा। होइ सिद्ध संकल्प प्रकल्पा।।२६।।
मैं ईशित्व वशित्वहिं स्वामी। मन चित लाइ लहै निकामी।।२७।।
भक्ति भाव चित शुद्ध अनूपा। जन्म मृत्यु जानत नर भूपा।।२८।।
यथा जलहि जल जीव न नाशा। योग शरीर अनल नहि पासा।।२९।।
ध्वजा अस्त्र कर कीने ध्याना। नहीं पराजय योगि सुजाना।।३०।।

दोहा- एहिं विधि कीन उपासना, किये योग अभ्यास।
मिलती सारी सिद्धियों, पूर्व कथित अनयास।।३१।।

सचमुच योग निरत जो प्रानी। मानत सिद्धि विघ्न सन्धानी।।३२।।
लौकिक सिद्धि मंत्र ते होई। विना भगति मोहि पाव न कोई।।३३।।
योग सांख्य अरु धर्म बखाना। सब कर ईश भगत मोहि माना।।३४।।
अद्वितीय परमातम एका। बाहर भीतर भेद न छेका।।३५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

*

।। अथ षोडशोऽध्यायः ।।

उद्धव उवाच-

निरावरण प्रभु आदि न अन्ता। ब्रह्म अनन्त सर्ग थिति हन्ता।।१।।
जानत तुमहि ब्रह्मविद स्वामी। ऊँच नीच तुम व्याप निकामी।।२।।
जेंहि जेहि भाव भगति हिय लाये। पूजि ऋषीगण सिद्धी पाये।।३।।
सब के उर पुर रहहु मुरारी। तुमहि न देखहिं कोउ तनु धारी।।४।।
वन्दंउ चरण कमल असुरारी। कहहु विभूति धरा नभ झारी।।५।।

श्रीभगवान उवाच-

कुरुक्षेत्र रण मध्य विचारी। पूंछा इहै जिष्णु धनुधारी।।६।।
अर्जुन जानि न पाये धरमा। बन्धुहनन तब मानि अधरमा।।७।।
बहुत युक्ति समुझायेंउ ताही। पुरुष सिंह तब माने जाही।।८।।

दोहा- सर्व प्राणि हित मैं सखा, आत्मा ईश्वर एक।
सकल भूत सचराचर, उर राखौ सविवेक।।९।।

गतिमानहुं में गति मैं भाई। कालहुं काल होंउ बरियाई।।
साम्यरूप गुण मांहि विराजा। गुणी स्वरूप प्रकृत्या छाजा।।१०।।
सूत्र गुणिन मँह महत् महान। सूक्ष्म जीव, मन दुर्जय मान।।११।।
हिरण्यगर्भ मैं वेद बखाना। मंत्र प्रणव ओंकार सुजाना।।
गायत्री मैं छन्द अनूपा। अक्षर आदि अकार स्वरूपा।।१२।।
अग्नि बसुन मँह इन्द्र सुरेशा। विष्णु विराट रुद्र त्रिपुरेशा।।१३।।
ब्रह्मर्षी मँह भृगू बखाना। राज ऋषिन्ह मँह मनु मै माना।।
कामधेनु सब धेनु विराजा। देव ऋषिन्ह कँह नारद छाजा।।१४।।
कपिल सिद्धमुनि गरुड द्विजाती। दक्ष प्रजापति अर्यम पाती।।१५।।
मैं प्रहलाद दैत्यकुल जाया। सोम धनेश रूप उपजाया।।१६।।
ऐरावत मैं वरुण जलेशा। नर मँह नृपति सूर्य नभ ईशा।।१७।।

दोहा- घोड़ो में उच्चै श्रवा, स्वर्ण धातुमँह मान।
दण्ड हेतु यमराज मैं, सर्प वासुकी जान ।।१८।।
शेषनाग मोंहि नागन जाना। सिंह सकल काननपति माना ।।
सब आश्रम संन्यास कहाऊँ। वर्णवीच ब्राह्मण मम नाऊँ ।।१९।।
गंगा सरित समुद्र जलाधी। आयुध धनुष शम्भु अविषादी।।२०।।
नग सुमेरु दुर्गम हिमवन्ता। पीपल तरु ओषधि यव कन्ता ।।२१।।
गुरु वेदज्ञ वशिष्ठ पुरोधा। ब्रह्मा अज, कार्तिक मैं योधा ।।२२।।
ब्रह्म यज्ञ सब यज्ञन भाई। ब्रतन अहिंसा व्रती सुहाई ।।
रवि जल पावक वायु समाना। परम पवित्र मोंहि जग जाना।।२३।।
आत्म निरोध योग मम रूपा। विजयैषी कँह नीति अनूपा ।।
ख्यातिवाद सविकल्प बखाना। कौशल आत्मा मोंही माना ।।२४।।
शत रूपा नारिन्ह मँह जानहु। स्वायंभुव मनु पुरुषहि मानहु ।।
सनत्कुमार व्रती मोंहि जाना । नारायण मैं मुनी बखाना ।।२५।।
दोहा- धर्मो में संन्यास मैं, आत्मरूप मैं ज्ञान ।
गोपनीय में मौन हूँ, युगल प्रजापति जान।।२६।।
काल रूप मैं जागन हारा। ऋतु मँह मोहि वसन्त विचारा ।।
अभिजित नखत मास मँह भाई। अगहन मास जान समुझाई।।२७।।
सतयुग युगन माहि मोंहि बूझा। देवल असित विवेकी सूझा।।
शुक्राचार्य कवीं मोहि जाना। कृष्ण द्वैपायन व्यास बखाना।।२८।।
वासुदेव भगवान स्वरूपा। भक्तन उद्धव तुम मम रूपा ।।
हनुमान किं पुरुष कहावा। विद्याधर शुभ दर्शन पावा ।।२९।।
पद्म राग मणि मोर निरूपा। कमल पराग सुकोमल रूपा।।
तृण मँह कुश तुम मुझको जाना । गो घृत सुन्दर हविष बखाना ।।३०।।

दोहा- लक्ष्मी हूँ व्यापार में, द्यूत कपट मम रूप ।
सज्जन में मैं सत्य हूँ, कष्ट भोग अभिरूप।।३१।।

मैं उत्साह बली मँह जाना। सकल कर्म निष्काम बखाना।।
वैष्णव जन नव मूर्ति बखाना। तेहि मँह वासुदेव मैं जाना।।३२।।
विश्वावसु गन्धर्व कहावा। पूर्वचिती अप्सरा गावा।।
धैर्य पहाड़हि है मम रूपा। गन्ध ग्राह्य पृथ्वी अनुरूपा।।३३।।
जल कर रस तेजस है दहनू। प्रभा सूर्य शशि शब्दहि व्योमू।।३४।।
विप्रभक्त मैं बलि जगजाना। अर्जुन वीरवर्य बलवाना।।
जन्म स्थिति लय मोर स्वरूपा। इनसे बचे न कोउ अनुरूपा ।।३५।।
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा। इन्द्रिय के हम विषय अचंभा।।३६।।
क्षिति जल पावक व्योम अनादी। पुरुष विकार सत्व अहमादी।।३७।।
मैं ही ज्ञान तत्त्व मैं ज्ञानी। मुझ से रहित न कोई प्राणी।।३८।।

दोहा- धरती रज को गिन भले, मम ऐश्वर्य अगण्य।
कोटि कोटि ब्रह्माण्ड है, कोटि कोटि के पण्य।।३९।।

जँह कह तेज तितिक्षा भाई। श्री अरु रूप सो मोसो पाई ।।४०।।
अति संक्षेप विभूति बखानी। बानी में कत जाय समानी।।४१।।
मन वाणी कर निग्रह करहू। आत्म दमन करि संसृति तरहू।।४२।।
यथा काच घट जल नहि धारा। मन वच संयम बिनु उद्धारा ।।४३।।
मन वच प्राण सुसंयत जाके। कर्म न शेष रहइ पुनि तांके ।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

*

।। अथ सप्तदशोऽध्यायः ।।

उद्धव उवाच-

दोहा- पहले श्रीमन् ने दिये, परम धर्म उपदेश।
वर्णाश्रम पालन निरत, मनुज भक्ति सविशेष ।।१।।

अब कृपया प्रभु देहु बुझाई। जेहि विधि भगति नाथ तव पाई।।२।।
हंस रूप धरि दिये उपदेशा। लह विरञ्चि भे विगत कलेशा।।३।।
बीते बहुत कल्प प्रभु आजू। भूले सम्प्रति सकल समाजू।।४।।
प्रवचन करहु रखावहु स्वामी। तुम समान कोऊ नहि ज्ञानी।।५।।
धरा छोड़ि जब जइहो नाथा। कौन प्रवर्तक रक्षक साथा।।६।।
सर्व धर्म तुम जानहु देवा। वर्णन करहु भक्ति रस मेवा।।७।।

श्रीशुक उवाच-

हरि प्रिय उद्धव पूंछे जाई। अति प्रसन्न बोले यदुराई।।८।।

श्री भगवान् उवाच-

उद्धव! प्रश्न धर्ममय जानी। कहौं मुक्तिप्रद मानि अमानी।।९।।
सतयुग सब कृत कृत्य बखाना। याही ते कृत युग तेहि माना।।१०।।
तब ओंकार वेद कहलावा। धरम चार पद वृषभ बनावा।।११।।
नेता युग मँह त्रयी बनाये। ऋग् यजु साम, यज्ञ उपजाये।।१२।।
मुख ब्राह्मण भुज क्षत्रिय कीन्हे। उरु पग वैश्य शूद्र रुचि चीन्हे।।१३।।
मम विराट तनु आश्रम चारी। प्रकटे आश्रम लोक मझारी।।
उरु ते गृही, ब्रह्म हिय माना। वक्ष वनहि शिर न्यास बखाना।।१४।।

दोहा- उत्तम मध्यम अधम में, पुरुष स्वभाव न एक।
जो प्रकटे जेंहि भाग से, तेंहि ते गुण लें छेक।।१५।।

शम दम तप शुचि अरु सन्तोषा। दया सत्य ऋजुता अक्लेशा।।
भगति भाव विप्रन्ह के माना। सद्गुण ते द्विजवर्य बखाना।।१६।।

वपु बल तेज सहन की शक्ती। क्षत्रिय गुण द्विज देवन्ह भक्ती।।१७।।
आस्तिक भाव दान द्विज सेवा। धन संचय वैश्य गुण मेवा ।।१८।।
गो द्विज सेवा भाव अमाना । शूद्र स्वभाव तोष नहि आना।।१९।।
अशुचि अनृत नास्तिक्य स्वभावा। काम क्रोध अन्त्यजहि बनावा ।।२०।।
सत्य अहिंसा लोभ विहाई। सर्व वर्ण कँह धर्म कहाई ।।२१।।
करि उपनयन जनम नव पावा । गुरुकुल बसि द्विज वेद पढ़ावा।।२२।।
दण्ड मेखला अजिन वसाना। कुश आसन शिर जटा अमाना ।।२३।।
होम नहात खात रहे मौना। नख अरु रोम न काटे सवना।।२४।।
ब्रह्मचर्य नित पालन करई। भ्रष्ट भये गायत्री जपई।।२५।।
अग्नि सूर्य गुरु पूजिय नेमा। सन्ध्या मौन जपत लह छेमा ।।२६।।

दोहा- ईश गुरू को मानिये, कबहुँ न कर अपमान।
गुरु में दोष न देखिये, गुरु सब देव समान।।२७।।

प्रात शाम जो भिक्षा पावा। गुरुहि समर्पि दिये पुनि खावा।।२८।।
गुरु सेवारत पीछे चलई। हाथ जोड़ि अति दूर न रहई।।२९।।
एहि विधि गुरु पँह रहे अखण्डा। करि अभ्यास वेद श्रुति खण्डा।।३०।।
यदि चाहत विधि लोक निवासा। गुरुहि समर्पि देह श्रुति आशा।।३१।।
अग्नि आप गुरु भेद न जाना। ब्रह्मचारि व्रत कठिन बखाना ।।३२।।
नारि न देखइ बात न करई। छाँड़ि गृहस्थ तीन तप रहई।।३३।।
सन्ध्या जप तप शुचि आचमनू। भोजन भाषण अति संयमनू ।।३४।।
सर्व वर्ण के नियम बताये। सब मँह मोंहि को देखि देखाये।।३५।।
व्रतधर ब्राह्मण अग्नि समाना। भूंजि कर्म लह भक्ति अमाना ।।३६।।
नैष्टिक व्रत उर नाहीं जाके। गुरु दक्षिणा देइ गृह ताके।।३७।।
धरै गृहाश्रम वन मँह जाई। आश्रम ते आश्रम पुनि पाई।।३८।।
करि विवाह सुकुलीन कुमारी। यथाकाम लघु वयस विचारी।।३९।।

दोहा- यज्ञ-याग स्वाध्याय पुनि, दान आदि अधिकार।
है त्रिवर्ण को सम, सदा ब्राह्मण ग्रहण विचार।।४०।।
दान तपस्या तेज हरि, करइ यज्ञ स्वाध्याय।
दोष इनहि में यदि लखै, अन्न बीन कर खाय।।४१।।

विप्र देह नहि भोग प्रधाना। तप तनु कसि हरि माँहि समाना।।४२।।
करि निष्काम कर्म सुनु भ्राता। बिने-चुने कण भोग लगाता।।
हमहिं समर्पे मन अरु प्राणा। बिनु संन्यास परम पद पाना।।४३।।
विपद ग्रस्त ब्राह्मण हित करई। डूबत इव, हरि सो कँह तरई।।४४।।
यथा गजहिं गजराज उबारा। नृपति तथा सब परजा तारा।।४५।।
एहि विधि नृप जो शासन कीन्हा। अशुभ छाँड़ि इन्द्रासन चीन्हा।।४६।।
क्षत्र वृत्ति वरु किये व्यवसाया। विप्र कबहुं नहि नीच सहाया।।४७।।
आपत्काल वैश्य पुनि जोई। शूद्र कर्म करु कछु दिन कोई।।
सुसमय पाइ गहे निज वृत्ती। निम्न कर्म ते लोभ विपत्ती।।४८।।
देव, भूत ऋषि पूजा कीना। रहे गृहस्थी सदा अदीना।।४९।।

दोहा- शुद्ध उपार्जित वित्त से, आश्रित पालत जोइ।
बिना कष्ट दीने कछू, सद् गृहस्थ है सोइ।।५०।।

सुखी गृहस्थ प्रमाद न कर हीं। वैभव नश्वर मन मँह धरहीं।।५२।।
भाइ बन्धु सुत नारि प्रसंगा। जब लौं देह तबहिं तक संगा।।
जब लौं निद्रा तब लौं सपना। यथा बटोही कौन है अपना।।५३।।
एहि विधि सोचत घर मँह रहई। यथा अतिथि निर्मम कहुँ बसई।।५४।।
भक्तिभाव मोहि पूजहिं प्रानी। घर मँह रहहि, बनहि वन गामी।।५५।।
एहि विपरीत दार सुत रागी। मूढ़ कृपण बन्धन के भागी।।५६।।
बूढ़ पाप शिशु छोट लुभाने। बिना हमहि सेइय, को माने।।५७।।
ऐसन मति जाके उर होई। मूढ़ परहिं तम घोर अछोई।।५८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

।। अथाष्टादशोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- गृही चाह वन जाइ तब, भार्या पुत्रहिं देइ ।
अथवा साथ लिवाइ के, शान्त भाव वन सेइ ।।१।।
कून्द मूल फल करइ निवाला। वल्कल वसन धरे मृगछाला ।।२।।
पंच केश धरि जटा बनाये। भूमि शयन तिंहु काल नहाये।।३।।
पंच अग्नि गर्मी भरि तापा। वर्षा ऋतु बाहर जल नापा।।
जाड़ा माहि शीतजल पइठा। एहि विधि तप जीवन अँइठा ।।४।।
कन्दमूल फल भूंजि के खाये। मसूर कूटि या दाँत चबाये ।।५।।
मूल फलादि बीन के पाये। कबहुँ न लेइ अन्य के लाये।।६।।
तिन्नी चाउर भोग बनावा। वान प्रथी पशु बलि न हि भावा।।७।।
अग्नि होत्र अरु चातुर्मासा। गृही वनी सब एक समासा ।।८।।
एहि विधि तपत मेद जरि जाई। ऋषी लोक ते मोके पाई ।।९।।
अति कठोर तप स्वर्ग न राँचा। मोक्ष लाभ निष्कामहिं बाँचा।।१०।।
वानप्रथी असमर्थ शरीरा। अग्नि सेइ नासइ सब पीरा।।११।।
स्वर्ग नरक सब भोग नसाने। मानि मनुज संन्यास लुभाने ।।१२।।
करि घट श्राद्ध विप्र देइ दाना। लेइ संन्यास यथोक्त विधाना।।१३।।
जब संन्यास लेइ नर कोऊ। देव, नारि सब बाधक होऊ ।।१४।।
दोहा- संन्यासी कौपीन धरि, दण्ड लिये पुनि साथ।
आपत्काल को छाँड़ि के, लेइ कमण्डलु हाथ।।१५।।
देखि देखि भुंइ चल संन्यासी। वस्त्र छानि जल पिये न वासी।।
सोचि विचारि करे निज कर्मा। सत्य वचन संन्यासी धरमा।।१६।।
मौन अनिच्छा प्राणायामा। वाणी तन मन दण्ड निकामा ।।
एहि के सधे ते दण्डी होई। बाँस दण्ड ते दण्डि न सोई।।१७।।

सात घरन ते भिक्षा लेई। चारिउ वरन, पतित नहि सेई ।।१८।।
जाइ जलाशय मौन धराई। पानी छिड़कि भाग देइ खाई।।१९।।
विनु आसक्ति विचर संन्यासी। सदा मस्त सब में प्रभुदर्शी।।२०।।
निर्जन भलु एकान्त सुहावा। गुनत अभेद मुनी सुख पावा।।२१।।
बन्धन मोक्ष विचारे योगी। संयम मोक्ष, त चंचल भोगी।।२२।।
जीते मन अरु इन्द्रिय पाँचा। रहे विरक्त सुखी मन साँचा।।२३।।
भिक्षा हेतु गाँव मँह जाई। बिनु ममता चल शैल तराई ।।२४।।

दोहा- भिक्षा तासों लीजिए, वान प्रथी जो कोय।
बिने अन्न के भोग से, चित्त शुद्ध तो होय।।२५।।

नश्वर जगत सत्य नहि माना। संन्यासी ते परम सुजाना।।
दृश्यमान नश्वर जग माँही। होइ विरक्त कुशल भलु चाहीं ।।२६।।
मन, वाणी प्राणन ते काया। संन्यासी जाने सब माया।।२७।।
विरत ज्ञानमय मोक्ष निकामी। विचर अकाम निरीह अमानी।।२८।।
बालक इव नर खेल सुजाना। जडवत् कुशल कर्म कर नाना।।
पागल सरिस न पण्डित मानी। विधि निषेध ऊपर मति मानी।।२९।।
नहि पाखण्ड न तर्क वितर्का। शुष्कवाद नहि करइ कुतर्का।।३०।।
नहि उद्वेग लोक कँह देई। लोकहुँ ते उद्विग्न न होई ।।
निन्दा मान तुल्य करि जाना। करत देहि लगि वैर न माना।।३१।।
आत्मा एक अनेक शरीरा। शशी एक भास बहु नीरा ।।३२।।
भोजन पाइ मगन मन नाहीं। बिनु पाये कछु क्षोभ न आहीं।।
हानि लाभ प्रारब्ध अधीना। यती सुखी जैसे जलुमीना ।।३३।।
कलिमंह भोजन प्राण अधारा। तत्त्व विचार लहै भवपारा।।३४।।
जस तस भोजन खाट विछावा। यथा लाभ सन्तोष बनावा।।३५।।
शौच स्नान यथा रूचि कीन्हा। मम समान लीला सो चीन्हा ।।३६।।

दोहा- आत्म तत्त्व के ज्ञान से, मिटी भेद परतीति ।
जब तक प्राण शरीर में, मानत लौकिक रीति ।।३७।।

यह संसार दुःख कर मूला। सेइय गुरु जो नासइ शूला ।।३८।।
तब तक गुरु की शरन गहाये। जब लगि ब्रह्म ज्ञान न पाये ।।३९।।
जब लगि छः रिपु नाहि नसाये। इन्द्रिय सारथि देंहि गिराये ।।
केवल दण्ड गहे कछु नाहीं। बिनु वैराग्य न ज्ञान सोहाहीं ।।४०।।
नहि वैराग्य पका जिन्ह केरे। देव संग मोहि ठगत अनेरे।।४१।।
शान्ति अहिंसा यती के धरमा। वनवासिन्ह तप भगवत् परमा ।।
यज्ञ याग गृहस्थ कर शोभा। ब्रह्मचारि गुरुसेवा बोधा ।।४२।।
ब्रह्मचर्य तप शौच साधना। सद् गृहस्थ सन्तोष भावना ।।४३।।
सर्व भूत मँह देखइ मोंही। अविचल भगति पाव अक्रोंही ।।४४।।
सदा अखण्ड भगति कर जोई। सर्व लोक पति पावइ सोई ।।४५।।
स्वधरम निरत ध्वस्त अज्ञाना। लहइ मोंहि अति शीघ्र सुजाना ।।४६।।
आश्रम धरम बताये जो ही। भक्ति भाव सँग भजिये मोंही ।।४७।।
उद्धव ! जो पूंछेउ मनलाई। सब कुछ कहेंउ तुमहि समुझाई ।।
वर्णधर्मरत नर मोंहि पावा। अन्य नाहि कोउ सरल उपावा ।।४८।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

*

।। अथ एकोनविंशोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- शास्त्र ज्ञान सम्पन्न जे, आत्मवान् विद्वान।
सब कुछ माया जानिके, छोड़हि ज्ञाता ज्ञान ।।१।।

ज्ञानिहिं हमहिं परम प्रिय माना। स्वर्ग मोक्ष सब मोंही जाना।।२।।
ज्ञान सिद्ध नर मोंही पावा। अतिप्रिय मोर त ज्ञानि कहावा।।३।।
ज्ञान लेश जो सिद्धी पावा। तीर्थ दान तप जप नहि भावा।।४।।
उद्धव जानहु मोर स्वरूपा। ज्ञान सहित भजु मोहि अनूपा ।।५।।
ज्ञान यज्ञ विधि करि हरि ध्याना। सर्व यज्ञ पति मोहि बखाना ।।६।।
त्रिविध विकारी मनुज शरीरा। सब माया जानहु तुम वीरा।।
जन्म आदि छः भाव विकारा। आदि अन्त नहि बीचहु वारा ।।७।।

उद्धव उवाच-

ज्ञान विशुद्ध देहु समुझाई। ज्ञान विराग भक्ति निपुनाई।।८।।
त्रिविध ताप नर बहुत सतावा। तव पद छत्र न आन उपावा।।९।।
लव सुख चाह कूप मँह लोका। काल सर्प ग्रस होइ विशोका।।
तारहु मोहि सकल गुण खानी। वचन सुधा तव देह जुड़ानी ।।१०।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- यही प्रश्न श्री भीष्म से, किये युधिष्ठिर राज।
थे अजात रिपु विह्वल, मैं तँह रहा विराज।।११।।

जबहिं समाप्त महा रण भयऊ। बन्धु निधन विह्वल नृप रहेऊ।।
कहे पितामह धर्म अनेका। पूंछे मोक्ष धर्म नृप एका।।१२।।
ज्ञान विराग भक्ति रस सानी। कहउँ पितामह की मैं बानी।।१३।।
तीन पाँच नव और इग्यारा। तत्त्व अट्ठाइस मँह जग सारा ।।१४।।
इन मँह एक तत्त्व विख्याता। जन्म स्थिति लय हेतु विधाता ।।१५।।

आदि मध्य अरु अन्त में पावा। शेष बचे सो तत्त्व कहावा ।।१६।।
शब्द प्रत्यक्ष ऐतिह्य अनुमाना। इनसे सिद्ध न होइ पुराना ।।१७।।
यज्ञ स्वर्ग सब नश्वर जानी। इनहि न सेइय बुध विज्ञानी।।१८।।
पहिले भगति बतायेंउ तोही। जानि परम प्रिय कहंउ सनेही।।१९।।
श्रद्धा कथा नाम गुण गहना। पूजा रति स्तुति बहु करना ।।२०।।
सादर पूजा लोटि प्रणामा। भगत सुसेवन हरि जप नामा ।।२१।।

दोहा- मन वाणी अरु कर्म से, भगति चित्त उर लाय।
गान करत मम गुण सदा, छोड़ि काम निरुपाय।।२२।।

मोंहि लगि त्याग वित्त अरु भोगा। दान पुण्य जप तप मख योगा ।।२३।।
एहि विधि आत्म निवेदन कीन्हे। भाव भगति लह काह अचीन्हे ।।२४।।
सत्व शान्त चित मों कह देई। धर्म ज्ञान ऐश्वर्य अहेई ।।२५।।
विषयी नर इन्द्रिय का चेरा। रजोरूप चित अज्ञहि घेरा ।।२६।।
सोइ भगति जँह धर्म निवासा। ज्ञान सोइ जब माया नाशा ।।
विषय असंग विराग कहावा। अणिमादिक ऐश्वर्य जनावा ।।२७।।

उद्धव उवाच-

यम अरु नियम तितिक्षा धीरा। शम, दम मोंहि कहहु रनधीरा ।।२८।।
दान शौर्य तप सत्त्व व त्यागा। यज्ञ दक्षिणा धन ऋत भागा ।।२९।।
पुरुषहि को बल, विद्या, लज्जा। सुख दुख, लाभ, श्री भग इज्या।।३०।।
केहि पण्डित को मूर्ख कहावा। मार्ग कुमार्ग को भेद जनावा।।
स्वर्ग नरक को बन्धु विशेषा। कहहु कौन घर वस सविशेषा ।।३१।।
धनी कौन, को दीन बखाना। कृपण कौन, ईश्वर को जाना।।३२।।

श्री भगवान् उवाच-

सत्य, अहिंसा अस्तेय, असंगा। लज्जा, संचय, मौन, के संगा।।
क्षमा, अभय, ब्रह्मचर्य, थिर भावा। आस्तिकता द्वादश यम गावा।।३३।।

शुचिता, जप तप, होम बखाना। श्रद्धा, तोष, ईश कर ध्याना।।
पर उपकार, गुरू की सेवा। तीर्थाटन द्वादश नियमेवा।।३४।।
यम अरु नियम दिये बतलाई। भोग मोक्ष इनसे नर पाई।।३५।।
इन्द्रिय संयम दम कहलावा। ईश बुद्धि यम मोंहि सुहावा।।
दुःख सहन तितिक्षा जाना। रसना–भोग विजय धृति माना।।३६।।
अभय दान सम दान न दूजा। काम त्याग तप ईश की पूजा।।
इच्छा त्याग शूरता जाना। समता दृष्टि सत्य कँह माना।।३७।।

दोहा- ऋत कहते सूनृत वचन, शौच असक्ती जान।
काम त्याग-संन्यास है, कविगण किये बखान।।३८।।

धर्म परम धन जानेहु भाई। मोंहि यज्ञ भलु वेद बताई।
ज्ञान दान शुभ दक्षिणा जाना। प्राणायाम श्रेष्ठ बल माना।।३९।।
लाभ भगति भग तेज कहावा। विद्या जीव ब्रह्म सम भावा।।
कुकरम घृणा लाज कर रूपा। इनहिं बचाय राज नर भूपा।।४०।।
लक्ष्मी गुण सुख, दुःख नसाने। काम तजिय सो पण्डित माने।।४१।।
मूर्ख सोइ जे तन अभिमानी। मारग सोइ ईश्वर अनुगामी।।
चंचल मनस कुमारग मूला। सत्त्व स्वर्ग सब मन अनुकूला।।४२।।
तमस नरक तुम उद्धव मानहु। गुरुहि सखा मोहि कँह जानहु।।
मानुष देह सत्य घर माना। धनी सोइ जो सदगुण जाना।।४३।।
सोइ दरिद्र जो नहि सन्तोषी। कृपण वही जो इन्द्रिय तोषी।।
गुण से मुक्त त ईश कहावा। एहि ते युक्त सर्वदुख पावा।।४४।।
सकल प्रश्न मैं दिये बताई। जो कछु जानन चाहेउ भाई।।
गुणहिं विचारत दोष दिखावा। निर्गुण चित्त मोहि अति भावा।।४५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे एकोन विंशोऽध्यायः।।१९।।

*

।। अथ विंशोऽध्यायः ।।

उद्धव उवाच

दोहा- कमलनयन श्रीकृष्ण हे! वेद आपके श्वास।
विधि निषेध गुण कर्म के, कैसे हो विश्वास ।।१।।

आश्रम वर्ण लोम प्रतिलोमा। द्रव्य देश गुण स्वर्ग विलोमा ।।२।।
विधि निषेध बहु वेदहिं भाखा। भेद न होइ त फल कस चाखा।।३।।
पितर देव मानुष अनुकूला। साधन-साध्य वेद तरु फूला।।४।।
भेद निषेध बहुरि श्रुति गाई। यातें मम मति गइ भरमाई ।।५।।

श्रीभगवान् उवाच-

ज्ञान कर्म अरु भक्ति उपाया। तीनंउ योग वेद मँह गाया।।६।।
त्यागि कर्म फल विरज विकारा। ज्ञान योग संन्यास प्रचारा।।
जिनके मन विराग नहि होई। करहि सकाम कर्म लह सोई।।७।।
लीला कथा श्रवण मन होई। भक्तियोग तिन्ह साधन सोई ।।८।।
तब तक कर्म करे मनु लाई। जब लौं कथा प्रीति होइ जाई।।९।।
आश्रम वर्ण विहित विधि करई। सो नर नरक स्वर्ग नहि परई ।।१०।।
धरि शरीर शुभ कर्म कराहीं। भक्ति भाव उर स्वतः बसाहीं।।११।।
स्वर्ग नरक दूनउ के वासी। चाहहिं नर शरीर अभिलाषी।।
ज्ञान भक्ति दोउ मनुज शरीरा। अन्य योनि नहि पाव अधीरा ।।१२।।

दोहा- स्वर्ग नरक चाहे नहीं, कबहुं विवेकी जीव।
नहि चाहत नर देह को, होइ कबहुं मद सीव ।।१३।।

नश्वर देह जानि मनं लाई। करि साधन मुक्त ह्वै जाई ।।१४।।
यह शरीर तरु जीव बसेरा। पल-पल काटत यम नहि वेरा ।।
अनासक्त उड़ि चलै पराई। विषयि जीव यमलेत धराई ।।१५।।
निशि दिन छीजत आयुष प्रानी। देखत मुक्तसंग होइ ज्ञानी ।।१६।।
दुर्लभ-सुलभ मनुज कर देहा। पार करत भव सागर एहा।।
एहि नौका गुरु पार लगावा। सुमिरत मैं शुभ वायु चलावा।।

तबहु न मानुष जो तरिजाई। आत्मघात सो करत ढिठाई।।१७।।
कर्म ते दुखी विरक्त कहाये। इन्द्रियजित मन मोंहि लगाये।।१८।।
चंचल मन भटकत चहुँ ओरा। ध्यान यतन तेहि बरवस मोरा ।।१९।।
मन स्वतन्त्र कबहुं नहि कीना। राखइ सदा स्ववश आधीना ।।२०।।
मन निग्रह सब योग कहावा। घुड़सवार जिमि अश्व चलावा।।२१।।

दोहा- सांख्य शास्त्र में जो कहा, भाव लोम प्रतिलोम ।
तेहीं भाति मन लीन करि, शान्त योग मन होम ।।२२।।

यह संसार दुःख कर मूला। जानि तजत मन सब भव शूला।।२३।।
यम आसन अरु प्राणायामा। आत्मज्ञान, मम मूर्ति प्रणामा ।।
मन निग्रह कर अन्य उपाया। आत्ममनन चिन्तन नहि माया ।।२४।।
यदि प्रमाद वश निन्दित कीन्हा। योग मार्ग तेहि दहइ सुचीन्हा ।।२५।।
निज अधिकार भाव गुण माना। कर्मदोष निर्मूल बखाना ।।२६।।
सर्व कर्म दुख मूल कहावा। कथा लागि मम श्रद्धा पावा ।।
सब कुछ जानि भोग नहि त्यागा। भोगत भोग चित्त हरि लागा ।।२७।।
भोगहिं निन्दत अति अनुरागा। दृढ़ निश्चय चरणन मति लागा ।।२८।।
भक्ति भाव मम चिन्तन करई। काम सकल सद्यः सो जरई।।२९।।
हृदय गाँठ सब छूटत नीके। मिटत सकल संशय सबही के ।।
कर्म क्षीण सब ताकर होई। मोंहि देखे निज हिरदय जोई।।३०।।
ज्ञान विराग श्रेय नहि होई। भगति योग शुभ साधन सोई ।।३१।।
दान धर्म तप योग विरागा। श्रेय कर्म मख होम विभागा।।३२।।
स्वर्ग मोक्ष जो चाहे प्रानी। भक्तियोग तें पाइ निकामी ।।३३।।
मोर भगत कछु चाहत नाहीं। परम मोक्ष नहिं ताहि सुहाहीं ।।३४।।
परम निकाम भक्त जो होई। उत्तम भगति पाव नर सोई ।।३५।।
गुणातीत मम भगत कहावा। पाप पुण्य कछु ताहि न आवा ।।३६।।
ज्ञान कर्म मम भगति सुजाना। परम धाम मम लहहिं न आना।।३७।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे विंशोऽध्यायः ।।२०।।

।। अथ एकविंशोऽध्यायः ।।

श्री भगवन् उवाच-

दोहा- भक्ति ज्ञान अरु कर्म के, छाँड़ि त्रिविध जे योग।
क्षुद्र काम भोगत नर, जन्म-मृत्यु दुख भोग।।१।।

निज अधिकार धर्म मँह निष्ठा। शास्त्र देइ सो गुणहिं प्रतिष्ठा।।
एहि विपरीत दोष लखि भाई। विनु अधिकार न धर्म सुहाई ।।२।।
शुद्धि अशुद्धि समानेंहि जना। शुभ अरु अशुभ दोष गुण माना।।३।।
यह आचार कहें श्रुति सेतू। धर्म प्रचार सिखावन हेतू।।४।।
क्षिति जल पावक वायु अकाशा। पञ्च तत्व मिलि देह प्रकाशा।।
ब्रह्म कीट लगि विविध शरीरा। आत्म तत्त्व तनु एक प्रवीरा ।।५।।
नाम रूप सब विषम बखाना। अर्थ चारि कल्पित करि जाना ।।६।।
कर्म नियत करि राखेहु जाई। वस्तु काल दिक् देश बनाई ।।७।।

दोहा- कृष्णसार मृग हों जहाँ, सो कह देश पवित्र।
ब्राह्मण भक्त न हों जहाँ, ऊसर भू अपवित्र।।८।।

कर्मयोग्य सोइ समय बखाना। वस्तु मिलइ जाही में नाना ।।९।।
शुद्धि अशुद्धि वचन ते जाना। अधिक थोड़ जस द्रव्य अमाना।।१०।।
शक्ति अशक्ति बुद्धि समझावा। देश काल जस वयस् बनावा ।।११।।
अन्न काठ गजदाँत सुचर्मा। वायु अग्नि जल सीचि सुकर्मा।।१२।।
अशुचि वस्तु संसर्ग न दोषा। लेप, मिट्टिका करहिं अदोषा।।१३।।
स्नान दान तप वय संस्कारा। शुद्ध कर्म द्विज करहि उदारा।।१४।।
कर्म शुद्धि कर लच्छन एहू। मंत्र ज्ञान, हरि कर्म समर्पेहू ।।
देशकाल छः शुद्धि ते धर्मा। रहहिं अशुद्ध त होइ अधर्मा ।।१५।।
कतहुँ दोष कहुँ गुण है जाई । शास्त्र प्रमाण दोष गुण गाई ।।१६।।
पतितहुँ पाप न होत किये ते। सोवत भूमि न भीति गिरे ते ।।१७।।

जेंहि जेहि ते मन उचटत जाए। सोइ निवृत्ति भय मोह मिटाये।।१८।।
विषय माँहि गुण देखे जब हीं। भइ आसक्ति मनुज की तबहीं।।
विषयासक्ति काम उपजाये। झगड़ा होत ताहि बिनु पाये।।१९।।
कलह ते क्रोध, बुद्धि कर नाशा। हित अनहित नहि ज्ञान प्रकाशा।।२०।।
ज्ञान हीन नर पशुहिं समाना। स्वार्थ नष्ट मृत तुल्य बखाना।।२१।।

दोहा- विषयों का चिन्तन करे, होइ विषय के रूप।
व्यर्थ श्वांस धारण किये, यथा लोहारहिं यूप।।२२।।

स्वर्ग प्राप्ति श्रुति कंहहि विचारी। कर्म प्रेरणा हेतु न वारी।।
परम धाम फल देंहि बताये। शिशुहिं दवा जिमि मातु पियाये।।२३।।
पुत्र स्वजन आसक्ति बनावा। मोक्ष मार्ग बाधक बतलावा।।२४।।
विविध योनि भटकत सो रहई। ऐसन अर्थ वेद किमि कहई।।२५।।
कुछ कुबुद्धि स्वर्गादि बखाने। वेद विचारि कहहिं फलु आने।।२६।।
कामी किरपन स्वर्ग जुड़ा ने। अग्नि होम जिमि फूल लुभाने।।२७।।
हृदय रहत मोंहि जानत नाहीं। इन्द्रिय सेंकि नयन धुंधलाहीं।।२८।।
बिनु जाने विषयी करि यागा। हिंसा निरत कर्म रत रागा।।२९।।
निज सुख लागि पशुन जे मारा। देव पितर हित ढोंग पसारा।।३०।।
यज्ञ सकाम किये धन नाशा। मूल गवायें वणिक दुराशा।।
सुनत नीक लागहिं सब स्वर्गा। स्वप्न समान, न लह अपवर्गा।।३१।।
त्रिगुण सुरेन्द्र भजहि मन लाये। त्रिगुण मनुज मोंहि नहि पाये।।३२।।
यज्ञ किये स्वर्ग मंह जाई। तहाँ विविध सुख पइहों भाई।।
पुण्य क्षीण पुनि जन्म कुलीना। लहै अटारि भोग आधीना।।३३।।
येंहि विधि सोच रखत जे प्रानी। बात हमार न भावत मानी।।३४।।
वेदहि तीनउ काण्ड बखाना। ज्ञान, कर्म उपासना जाना।।
आत्म ब्रह्म सब ऋषी बतावा। गुप्त रूप मोरे मन भावा।।३५।।

शब्द ब्रह्म सब वेद कहाये। अति दुर्बोध समझ न आये।।
इन्द्रिय प्राण मनोमय रूपा। अगम अगाध समुद्र स्वरूपा।।३६।।

दोहा- मैं अनन्त बल ब्रह्म हूँ, वेद किये विस्तार।
कमल नाल में सूत्र सम, अनहद नाद उदार।।३७।।
मकड़ी जैसे जाल को, सिरजत लीलत जाय।।
तथा ब्रह्म के प्राण से, शब्द अनाहत आय।।३८।।

छन्दोमय बैखरी सुहाई। सहस रूप वाणी बिखराई।।
प्रथमहि तँह ओंकार कहाये। स्वर ऊष्मा व्यंजन बहिराये।।३९।।
अक्षर चारि ते छन्द रचाये। अति विचित्र भाषा बनि जाये।।४०।।
गायत्री उष्णिक अरु वृहती। त्रिष्टुप पंक्ति जगती अति जगती।।४१।।
ज्ञान कर्म जो वेद बखाना। जानउं मैं रहस्य नहि आना।।४२।।
कर्म उपासन ज्ञान प्रभेदा। सब मँह मोहि बखानत वेदा।।
करि आरोप भेद उपजावा। माया कहि सो मोंहि दुरावा।।
सब निषेध कर जो श्रुति गावा। अधिष्ठान मैं शेष कहावा।।४३।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

*

।। अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।।

उद्धव उवाच-

दोहा- ऋषियों ने कितने कहे, सकल तत्त्व जगदीश।
तीन, पाँच नौ, ग्यारह, तत्त्व कहे अठाईस।।१।।

कोउ छब्बिस कोउ कहे पचीसा। सात, चार, नव, ग्यारह ईसा ।।२।।
सत्रह, सोलह केहु बखाने। पृथक पृथक करते अनुमाने।।३।।

श्रीभगवान् उवाच-

ऋषिगण सत्य कहे सुविचारी। मम माया को दुर्वच भारी।।४।।
जो तुम कहहु उचित सो नाही। जो मैं कहउं सो सत्य कहाहीं ।।
एहि विवाद कर कारण एहा। दुर्गम शक्ति मोर कह नेहा ।।५।।
गुण कर क्षोभ वाद कँह मूला। शम दम साधि हरहि सब शूला।।६।।
मेलि परस्पर संख्या सारी। कहहिं विज्ञ निज मति अनुसारी।।७।।
एक तत्त्व मँह अन्तर्भावा। अन्य तत्त्व कर कहहिं स्वभावा।।८।।
कारण करण मेलि बहुरूपा। संख्या तत्त्व अनेक स्वरूपा ।।९।।
माया ग्रस्त जीव नहि जाना। आत्मज्ञान कोउ देइ सयाना।।१०।।
ईश्वर जीव रंच नहि भेदा। ज्ञान प्रकृति गुण कहहिं अभेदा ।।११।।
गुण समता सोइ प्रकृति कहावा। सत रज तम आत्म नहि पावा ।।
गुण सब अहहिं प्रकृति के चेरे। जन्म प्रलय थिति हेतु घनेरे ।।१२।।
सत्व ज्ञान रज कर्म कहावा। तम अज्ञान वेद बतलावा।।
क्षोभ करन गुण काल कहाये। महतत्त्व कँह सूत्र बताये ।।१३।।
पुरुष प्रकृति महतत्त्व अहन्ता। क्षिति जल पावक वायु नभोऽन्ता ।।
ये मिलि नव तत्त्व कहाये। सांख्य शास्त्र ने दिये बताये ।।१४।।
श्रवण त्वचा रसना दृक् घ्राणा। ज्ञानेन्द्रिय सब शास्त्र बखाना।।
वाक पाणि पद वायु उपस्था। कर्मेन्द्रिय की कही व्यवस्था।।

इनमें मन को देहु मिलाई। संख्या ग्यारह शास्त्र बताई ।।१५।।
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा। पाँच विषय कर मानुष अन्धा।।
गति उत्सर्ग आदि जो करमा। जीव धरत मानुष के धरमा ।।१६।।

दोहा- कारण कार्य स्वरूपिणी, प्रकृति सृष्टि कर मूल।
सत्त्व रजस तम गुण सहि, करत सृष्टि आमूल ।।१७।।

महत्तत्त्व गुण धातु विकारा। पुरुष दृष्टि रच सृष्टि अपारा।।१८।।
सप्त तत्व जो मानहिं नीके। जीव, ईश मिलि भूत सभी के।।१९।।
छः तत्त्व जे मानि अघाने। पाँच भूत अरु पुरुषहिं माने ।।२०।।
आत्म तेज जल पृथ्वी जाने। चारि तत्त्व ते कहहिं पुराने ।।२१।।
सत्रह तत्त्व कहहिं जे ज्ञानी। आत्मा मन लइ ते गिनते प्रानी ।।
पंच भूत अरु इन्द्रिय पाँचा। ज्ञान कर्म मिलि सत्रह खांचा।।२२।।
सोलह तत्त्व जे कहहिं सयाने। आत्मा मन ते एकहिं माने ।।
पंच भूत सह इन्द्रिय पाँचा। आत्मा एक एकादश सांचा।।२३।।
पंच भूत मन बुद्धि अहन्ता। पुरुष मेलि नव तत्त्व कहन्ता।।२४।।

दोहा- एहि विधि नाना मत कहें, सभी स्वमति अनुरूप ।
सभी तर्क संगत मत, नहि ज्ञानी प्रतिरूप।।२५।।

उद्धव उवाच-

दोहा- प्रकृति पुरुष दोउ भिन्न है, भेद लखात न कोय।
केहिं विधि जानंउ भिन्नता, कहिय कृपा कर सोय।।२६।।

प्रकृति पुरुष दोउ भिन्न अभिन्ना। पंकज लोचन मम मन खिन्ना।।
करहु विभंजन संशय स्वामी। नीति निपुण सर्वज्ञ नमामी।।२७।।
ज्ञान तुमहिं सब जीवहिं दीन्हा। माया आपनि तुमही चीन्हा।।२८।।

श्री भगवान् उवाच-

प्रकृति पुरुष दोउ भिन्न स्वरूपा। गुण ते क्षोभ विकारि अनूपा।।२९।।

मम माया त्रिगुणा तुम जानी । भेद वृत्ति गुण दोष बखानी ।।
आत्म, दैव, अधिभूत बखाना । वैकारिक सब सर्ग समाना ।।३०।।
यथा नेत्र अध्यात्म कहावा । विषय रूप अधिभूत सुहावा ।।
गोलक भानु अंश अधिदेवा । मिलहिं परस्पर करते सेवा ।।
गगन माँहि रवि सिद्ध स्वरूपा । आत्मा तथा अनन्त अरूपा ।।
त्वचा श्रवण रसना गुण खानी । तीन तीन सब भेद बखानी ।।३१।।
अहंकार गुण क्षोभहिं जाया । प्रकृति जन्य महतत्त्व कहाया ।।
सात्त्विक राजस तामस रूपा । अहंकार के त्रिविध स्वरूपा ।।३२।।

दोहा- आत्म तत्व है ज्ञानमय, अस्ति नास्ति के भेद ।
व्यर्थ बाद उलझे नहीं, मोंहि ते विमुख सखेद ।।३३।।

उद्धव उवाच-

दोहा- ईश विमुख जो जीव यह, पाप-पुण्य अनुरूप ।
ऊँच नीच सब योनि मँह, जन्मत मरत अरूप ।।३४।।
जन्म मृत्यु के सत्य को, देहु हमहिं समुझाय ।
तव माया दुर्गम प्रभो, पण्डित जन निरूपाय ।।३५।।

श्रीभगवान् उवाच-

इन्द्रिय पाँच मनहि के संगा । कर्म भोग लह आत्म असंगा ।।३६।।
सुनहु मनुज मन कर्म अधीना । देखे सुने विषय मँह लीना ।।३७।।
विषय निवेश न सुधि कछु रहई । विस्मृति देह मृत्यु जग कहई ।।३८।।
जीव गहइ जब देह अभेदा । जन्म कहाइ स्वप्न मँह खेदा ।।३९।।
पूरब स्वप्न मनोरथ झूले । पूर्व देह की सुधि तहि भूले ।।४०।।
उत्तम मध्यम अधम समाना । इन्द्रिय अयन भेद लह नाना ।।४१।।
काल गती कोउ जानि न पावा । क्षण-क्षण उत्पति देह नसावा ।।४२।।
नदी प्रवाह वृक्ष वय नाना । तथा देह परिवर्तन जाना ।।४३।।

सोइ प्रवाह सो दीप जनावा। तथा पुरुष सोइ कहे बनावा।।४४।।
यथा दारु मँह अनल दिखाई। कर्म बीज-फल देह बनाई।।४५।।
गर्भ, जन्म, अरु बाल्य कुमारा। तरुण प्रौढ़ जर मृत्यु उदारा।।४६।।
सकल भाव तुम देहहिं जानी। आत्मा अजर अमर शुचि मानी।।४७।।

दोहा- पुत्र जन्म को देख पितु, आत्म जन्म अनुमान।
पिता निधन से पुत्र भी, मृत्यु सनातन मान।।४८।।
बीज बये जिमि उपज कृषि, पाकत काटी जाँहि।
द्रष्टा कृषि से है अलग, तथा जीव विलगांहि।।४९।।

अज्ञानी पुनि पृथक न जाने। विषय भोग माया लपटाने।।५०।।
कर्म विचारि जीव तनु पावा। सत्व प्रधान ऋषी बनि आवा।।
राजस मनुज दनुज तन पाये। तामस भूत पशू कहलाये।।५१।।
नाचत गावत नकल कराहीं। निष्क्रिय जीव गुणी बनि जाहीं।।५२।।
जल चंचल जिमि वृक्ष चलाहीं। दृष्टि घुमाये भूमि नचाहीं।।५३।।
मन चिन्तित तिमि लोक देखाने। स्वप्न लोक माया मय जाने।।५४।।
स्वप्न देखि जिमि रंकहु राजा। जागे पुनि नहि शेष समाजा।।५५।।
उद्धव! विषय न भोगहु ताता। यह अज्ञान विषम दुख दाता।।५६।।
करहिं असज्जन बहु अपमाना। मारहिं निन्दहिं वृत्ति पराना।।५७।।
थूकहिं मल फेंकहिं अज्ञानी। तबहुं न डिंगहि जे श्रेयस्कामी।।
आत्मदृष्टि जे रखहिं सयाने। करहिं विवेक न होंहि पराने।।५८।।

उद्धव उवाच-

अति असह्य दुर्जन अपमाना। केहि विधि सह्य होइ भगवाना।।५९।।
तब चरणन रति उर मँह जाके। शान्त भागवत सब सह ताके।।
अति बलशालि प्रकृति जग जाना। सहि न जाइ दुर्जन अपमाना।।६०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

।। अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।।

बादरायणिः उवाच-

उद्धव जी के प्रश्न सुनि, प्रमुदित श्री भगवान् ।
श्रवण योग्य गुण गण हरी, कीने प्रश्न-बखान ।।१।।

शिष्य वृहस्पति के तुम ज्ञानी। जानहु दुर्लभ ऐसे प्रानी।।
दुष्ट वचन सुनि कष्ट न जाके। रहहिं सहेज हृदय निज बाँके ।।२।।
मर्म बेध तिमि बाण न कीना। परुष वचन बेध जिमि सीना।।३।।
कहउं एक इतिहास पुराना। सुनहु समाहित दै तुम काना ।।४।।
भिक्षुक की यह कथा पुरानी। दुर्जन त्रस्त कीन खल वानी।।
मानि कर्मफल पुर्बुज केरा। कहेउ स्वयं निज मर्म घनेरा।।५।।

दोहा- उज्जयिनी में बस रहा, विप्र एक धनवान ।
कामी क्रोधी कृपण बहु, वणिक वृत्ति अज्ञान।।६।।

भाइ बन्धु अरु अतिथि न माने। प्रेम वचन काहू सन्माने।।
भोग हेतु धन खर्च न करई। धर्मशून्य घर एकक रहई ।।७।।
पुत्री पुत्र भृत्य अरु दारा। देखि दुखी किरपन व्यवहारा ।।८।।
किरपिनता दोउ लोक नसाये। यक्ष सदृश धन रखा गड़ाये।।
धन ते धरम न भोग सँवारी। पंच यज्ञ सुर कोपे भारी।।९।।
बड़े परिश्रम संचित कोषा। रुष्ट देव किये नष्ट सदोषा ।।१०।।
कछुक दयाद दस्यु कछु छीने। अग्नि कोप कछु शासक लीने।।११।।
नष्ट हुये धन स्वजन रिसाने। भई उपेक्षा आह समाने ।।१२।।
धनहिं सोच नयनन जल छाये। तब वैराग्य मनहि उपजाये ।।१३।।
ब्राह्मण कहेउ व्यर्थ दुख पावा। धन ते धर्म न भोग बनावा ।।१४।।
किरपिन धन बहुत दुख मूला। व्यर्थ रखाय, नरक मँह शूला।।१५।।
नासइ लोभ सकल यश राशी। कोढ़ तनिक सब रूप उदासी ।।१६।।

दोहा- धन अर्जन दुगुना करन, रक्षण व्यय अरु नाश ।
करहिं सतत श्रम, भय तबहुं, चिन्ता भ्रम सायास।।१७।।
चोरी हिंसा झूठ अरु, दम्भ काम अवलेप ।
वैर, अहं, मद, द्यूत, छल, भेद, मद्य, संलेप ।।१८।।

सकल अनर्थ धनहिं के नाते। श्रेयस्काम तजहिं इन तातें।।१९।।
माता पिता भाइ हित नारी। धनहिं लागि सब तजहि दुखारी।।
धन कौड़ी सम, शत्रु कराहीं। तजहिं प्रेम नहि भाव रखाहीं ।।२०।।
क्षुद्र अर्थ लगि क्रोध बढ़ावा। त्यागि मित्रता शत्रु बनावा ।।२१।।
सुर दुर्लभ नर ब्राह्मण देहा। स्वारथ हेतु अशुभ गति एहा ।।२२।।
मानुष देह स्वर्ग कर द्वारा। धन कारण अपवर्ग विगारा।।२३।।
देव पितर ऋषि नहि सन्तोषा। यक्ष वित्त यम लोकहि पोषा।।२४।।
धन संचय मँह आयु नसानी। देखि बुढ़ापा मति विलखानी।।२५।।
धन तृष्णा रत पंडित ज्ञानी। अवसि कोउ माया लपटानी ।।२६।।
सकल लोग जग कालहिं ग्रासा। धनद देव का पूरहिं आसा ।।२७।।

दोहा- निश्चय मो पँह हैं हरी, पूर्ण तुष्ट अनुकूल।
तातें मोहि निर्धन किये, देइ विराग सुख मूल ।।२८।।

अब जो काल शेष मिलि जाई। सावधान तप करिहो भाई ।।२९।।
मम संकल्प त्रिदेवन्ह साजा। पलहिं मुक्त खट्वांग सुराजा।।३०।।

श्रीभगवान् उवाच-

अस अवन्ति द्विज कीन विचारा। भये यती तजि गृह परिवारा ।।३१।।
संयत मन इन्द्रिय अरु भाषा। भिक्षा हेतु अटत घर शाखा।।३२।।
भिक्षुक वृद्ध देखि पुर वासी। गारी देंहि दुष्ट उपहासी ।।३३।।
लेंहि कमण्डलु चीर चोराई। दण्ड, पात्र, माला छितराई ।।३४।।
सरिता तीर भिक्षु कुछ खाये। दुर्जन दीनहिं देहि मनाये।।३५।।

विवश करहि बोलन अवधूता। मारहिं ताडहिं मूतहि थूका ।।३६।।
चोर चोर कहि तर्जन करहीं। बांधहु कहि कहि बांधन चहहीं ।।३७।।
शठ कहि पुरजन देंहि पचारी । निर्धन करि गृह लोग निकारी ।।३८।।
बक इव ढोंग रचे यह भाई । गिरि समान यह मौन रचाई ।।३९।।
देखि हंसहि कोउ, बांधहि कोऊ । क्रीडा पंछी की गति सोऊ ।।४०।।
दैहिक, दैविक, भौतिक आधी । मानत पूर्वजन्म कृत व्याधी।।४१।।
यद्यपि लोग सताये तेंही । पालत धर्म कही निज सेंही।।४२।।

द्विज उवाच-

दोहा- मम दुख कारण देह नहिं, देव, मनुज अरु काल ।
मन ही सब का हेतु है, मन ही सकल भुवाल ।।४३।।
बहुत बली है मन यही, कीन्हीं गुण ही सृष्टि ।
सात्त्विक, राजस, तामस, गुण आधारित वृष्टि ।।४४।।

आत्मा सखा अनीह अकामी। मन संग लागत भोगत मानी।।४५।।
दान धरम यम नियम व्रतादी। सब कर फल मन लेइ समाधी ।।४६।।
शान्त भये मन दान सुदाना। चंचल मन फल मिलइ न दाना।।४७।।
इन्द्रिय सब मन के बस आंही । मन अति बली न बाँधा जाहीं ।।
सोइ महान सोई बड़देवा । इन्द्रिय जयी मनहि जे हेवा ।।४८।।
बाहिर झगड़ा करिहीं जाई । शत्रु तटस्थ मित्र बरियाई ।।
दुर्जय शत्रु एक मन जाने । तापर विजय चहत सन्माने ।
दुर्जय रिपु मन जीति न पावा । बाहिर शत्रु अनेक बनावा ।।४९।।
देह मनोमय मेरा भाई। अस कहि मानत बुद्धि पराई ।
मैं मेरा अरु अन्य जनाई। भटकहिं अन्ध दुरन्त दुराई ।।५०।।
सुख-दुख कारण अधम शरीरा । आत्मा कबहुं लहै नहि पीरा।
भोजन करत जीभ कटि जाता । केहिं पर कोप करहु तुम ताता।।५१।।

दुख कारन यदि देवन्ह माना। तदपि न आत्म हानि कछु जाना।।
एक अंग यदि अन्य दुखावा। केहिं पर क्रोध तुम्हारे आवा।।५२।।

सुख-दुख कारण आत्म यदि, मानहु आपहि आप।
आत्म भिन्न कहु है नहीं, केहिं पर करिहो ताप।।५३।।
सुख-दुख हेतू ग्रह यदि, अजहिं आत्म का हानि।
ग्रह कृत पीडा देह की, केहिं पर होत गलानि।।५४।।

सुख-दुख हेतु कर्म वदि माना। आत्मा साक्षी मात्र बखाना।।
देह अचेतन जानहु भाई। पुरुष सुपर्ण तहाँ रह जाई।।५५।।
सुख-दुख कारण काल न होई। आत्मा काल एक ही जोई।।
आगि अगिन दाहइ नहि काहू। हिम नहि उपल गलावइ ताहू।।
आत्मा काल एक जब होई। केहिं पर क्रोध करहु तुम सोई।।५६।।
पंच भूत कँह परस न पावा। आत्मा अजर अमर श्रुति गावा।।५७।।
ऋषि महर्षि सब आत्म बखाना। हरि पद सेइ तरब अज्ञाना।।५८।।

श्री भगवान उवाच-

विप्रहिं नष्ट भयऊ धन जबहीं। सकल कलेश दूर भा तबहीं।।
यद्यपि दुष्टन बहुत खिलावा। विप्र देव पुनि पुनि अस गावा।।५९।।
सुख दुख चित्त भरम न आना। शत्रु मित्र केवल अज्ञाना।।६०।।
मन कर निग्रह कर तुम ताता। मम पद रति शाश्वत सुख दाता।।६१।।

भिक्षुक द्विज का गान यह, सत्य सनातन जान।
पढ़त सुनत फिरि फिर गुनत, पार करत अज्ञान।।६२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धेत्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

*

।। अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- अब मैं तुमसे कह रहा, सांख्य शास्त्र का सार।
जिसे जानकर पुरुष सब, त्यागहि भ्रम निःसार ।।१।।

आदि काल सतयुग मँह ताता। पुरुष विवेकी ब्रह्महिं ध्याता ।।२।।
मन वाणी से जानि न जाई। ब्रह्म सत्य माया वश भाई ।।
द्रष्टा दृश्य भेद दुइ रूपा । किया विभाग अनादि अनूपा।।३।।
एक भाग सोइ प्रकृति कहावा। अपर भाग कँह पुरुष जनावा।।४।।
सत रज तम गुण तीन बनाये । शुभ अरु अशुभ कर्म फल पाये।।५।।
ज्ञान-क्रिया दुइ महत् प्रकारा । अहंकार तिन्ह मोह विकारा ।।६।।
सात्त्विक राजस तामस भेदा। जड़ चेतन मन इन्द्रिय खेदा ।।
अहंकार के त्रिविध स्वरूपा । मन इन्द्रिय तन्मात्र अनूपा।।७।।
पंच भूत अरु पंच तन्मात्राएं। तामस अहंकार के जाये ।।
राजस अहं इन्द्रियाँ कीन्हे। सात्त्विक देव एकादश चीन्हे।।८।।

दोहा- प्रेरित मम सब तत्त्व ये, सिरजे अण्ड बहोरि।
सोइ अण्ड ब्रह्माण्ड भा, मम आवास अछोरि।।९।।

जल ऊपर सोइ अण्ड विराजा। नारायण मैं प्रकट तहाँ जा ।।
मम नाभी ते कमल निकासा। जा तें ब्रह्मा हुये प्रकाशा ।।१०।।
कीन तपस्या ब्रह्मा भारी। भूः भुवः स्वः लोक सँवारी ।।११।।
स्वर्ग लोक देवन्ह कर वासा। भूत प्रेत अन्तरिक्ष प्रकाशा ।।
पृथ्वी लोक मनुज अपनाये। सिद्धलोक ऊपर कहलाये ।।१२।।
अतल वितल पाताल सुताला। नाग लोक जंह नाग कराला ।।१३।।
महर्जनः तप आदिक लोका। योग तपस्या निरत विशोका ।।
भक्तियोग मम धाम दिलाये। बड़े भाग्य मानुस सो पाये ।।१४।।

काल रूप मैं करहुं विधाना। कर्म प्रभाव लहै फल नाना।।१५।।
बड़ा-छोट लघु कृश सब भाई। प्रकृति पुरुष संयोग बनाई।।१६।।
आदि अन्त मँह जो कछु होई। बीचहु पाइ तत्त्व सब सोई।।
कटक मुकुट सब स्वर्ण विकारा। घट पुरवा रच मृदा कुम्हारा।।१७।।
आदि अन्त मँह जो कछु रहई। सत्य सोइ सब बुध जन कहई।।१८।।
संसृति कारण प्रकृति कहावा। अधिष्ठान परमात्मा गावा।।
प्रकटइ काल करण सो जाना। त्रिविध ब्रह्म मैं स्वयं न आना।।१९।।
ईक्षण शक्ति रहे जब लागी। सृष्टि प्रक्रिया चले अनादी।।२०।।
सृष्टि प्रलय पालन मैं करहूँ। काल रूप सब जग संहरहूँ।।२१।।

दोहा- मनुज अन्न में लीन हों, अन्न बीज में लीन।
बीज भूमि में लय करे, भूमि गन्ध में क्षीन।।२२।।

गन्ध जलहिं जल रस में लीना। रस लय तेज रूप सो छीना।।२३।।
रूप वायु सो परस नसावा। परस व्योम मँह होत दुरावा।।
व्योम शब्द तन्मात्रा लीना। इन्द्रिय राजस अहं विलीना।।२४।।
राजस अहं मन मांहि समाना। त्रिविध अहं महतत्त्व अमाना।।२५।।
महत्तत्व गुण मांहि समाये। गुणन प्रकृति सो कालहि खाये।।२६।।

दोहा- काल होत लय जीव मँह, जीव ब्रह्म में लीन।
आत्मा ब्रह्म अभिन्न है, कहत जो वेद प्रवीन।।२७।।

उदय रवी जिमि तम कर नाशा। करत विवेक न भ्रम कर आशा।।२८।।
सांख्य दृष्टि से कीन बखाना। पर अरु अवर दोउ मैं जाना।।२९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

*

।। अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच–

दोहा– पुरुषवर्य उद्धव सुनहु, कहंउ गुणन कर रूप ।
होय सुभावहिं भेद ज्यों, गुण स्वभाव अनुरूप ।।१।।

शम दम सत्य विवेक विचारा। दया त्याग सन्तोष उदारा ।।
श्रद्धा दान सरलता आदी । सत्त्व प्रधान होंहि अविवादी ।।२।।
तृष्णा मद इच्छा सुख लोभा। प्रीति हास्य बल रजस् प्रलोभा।।३।।
क्रोध लोभ पाखण्ड विमोहा। शोक कलह निद्रा तम छोहा ।।४।।
सत्व रजस् तम दिये बताई। इनके मेल कहौ अब भाई ।।५।।
मम अरु मोर होइ जिमि छोहा। मन इन्द्रिय वरु प्राण विमोहा ।।६।।

दोहा– धर्म अर्थ अरु काम रत, जो मनुष्य जब होइ ।
श्रद्धा, रति, बहु धन तब, गुण मिश्रण क्रम सोइ ।।७।।

करत सकाम कर्म गृहलागी। धर्माचरण प्रीति अनुरागी ।।
तब तीनेउ गुण मेल बखाना। गुण विहीन कत रहे सुजाना ।।८।।
सत्त्व गुणी कीजे अनुमाना। देखि शान्ति सद्गुण शुभ नाना ।।
काम ते जानहु रज गुण धारी। तमस प्रधान क्रोध अतिचारी ।।९।।
करइ भगति निष्काम हमारी। सत्त्व प्रधान पुरुष या नारी ।।१०।।
करत सकाम भजन जे मेरा। रजोगुणी सो जानहु चेरा।।
शत्रु नाश मति करहि जे ध्याना। तमः प्रधान होहि अज्ञाना ।।११।।
सत रज तम गुण जीवहिं जाना। या तें बन्धन लहहिं अमाना ।।१२।।
रज तम जीति सत्व मँह, प्रीती। निर्मल सुख मति रहत सुनीती।।१३।।
सत तम बाँधि–रजोगुण बाढ़ा। दुःख कर्म यश लक्ष्मी गाढ़ा।।१४।।
रज सत जीति तमोगुण छेंका। शोक मोह निद्रादि अनेका।।१५।।

दोहा- मन प्रशान्त इन्द्रिय विमल, निर्भय देह उदार।
निर्विकार चित होंहि जब, जानहु सत्त्व अपार।।१६।।
चंचल मन इन्द्रिय विकल, भ्रमित बुद्धि बीमार।
इन लक्षण ते जानिये, रजो गुणी संसार।।१७।।
इन्द्रिय ठीक गहे नहीं, शब्द आदि व्यापार।
ग्लानि बहुत, मन नष्ट भा, जानहु तमस प्रचार।।१८।।
सत्त्व बढ़े देवन्ह बल बाढ़े। रज तम असुर रक्ष बल काढ़े ।।१९।।
सतगुण जाग्रत स्वप्न रजोगुण। होत सुषुप्ति तमोगुण लक्षण।।२०।।
सत्त्व प्रधान ऊर्ध्वगति पावा। तम ते जड रज मनुष बनावा ।।२१।।
मरत सतोगुण स्वर्ग सिधारी। रजोगुणी होइ नरहिं पधारी ।।
तमस गुणी ते नरकहिं पावा। निर्गुण जीवन्मुक्त कहावा।।२२।।
करि निष्काम समर्पइ मोंही। सात्त्विक कर्म सो मानहु तेंही।।
फल इच्छा राजस कहलावा। तामस् हिंसाभार बतावा।।२३।।
आत्म ज्ञान सात्त्विक तुम जानहु। राजस ते कर्ता निज मानहु ।।
प्राकृत देह तमस तेहि माना। निर्गुण प्रीति मोरि शुभ जाना।।२४।।
वन मँह वास सत्त्व कहलाये। राजस ग्राम वास उपजाये ।।
द्यूत सदन तामस कर रूपा। निर्गुण मन्दिर वसहिं अनूपा ।।२५।।
बिनु आसक्ति सत्त्व गुण होई। राग अन्ध राजस पुनि गोई ।।
तामस सुधि नहि राखहि प्रीती। मम शरणागत निर्गुण रीती ।।२६।।
दोहा- सात्त्विक श्रद्धा आत्म की, राजस कर्महिं जान।
अधरम तामस है रती, निर्गुण सेवा मान।।२७।।
विना परिश्रम जो मिले, भोजन पथ्य प्रमान।
रसना रुचिकर राजस, अशुचि तामसहिं जान।।२८।।
आत्म ज्ञान सत्त्व सुख होई। विषय जन्य राजस कह कोई।

तामस मोह दीनता लागी। गुणातीत मम सेवा भागी।।२९।।
द्रव्य देश फल कालहुं ज्ञाना। कर्ता कर्म त्रिगुण सब माना।।३०।।
देखहु सुनहु पढहु मति ध्याना। गुण मय सब कुछ करहि बखाना।।३१।।
जीव लहै गति कर्मंहि लागी। सब गुण चित्त होइ अनुरागी।।
भक्तिभाव तेहि जीतइ जोई। मोक्ष अनुग्रह पावइ सोई।।३२।।
बहुत भाग्य यह नर तनु पाई। छाँड़ि गुणहिं मम प्रीति लगाई।।३३।।
रज तम छाँड़ि जितेन्द्रिय होई। होइ असंग मम भगति करेई।।३४।।
होइ निरपेक्ष सत्व गुण प्रीती। जीव ब्रह्म एक होत प्रतीती।।३५।।

सकल वृत्ति से मुक्त हो, जीव लहै मम रूप।
पूर्ण पूर्ण में जा मिले, ऐसी भगति अनूप।।३६।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

*

।। अथ षड्विंशोऽध्यायः।।

श्री भगवान् उवाच-

मानुष देह को पाइके, रहे धरम आसीन ।
परमानन्द स्वरूप मोंहि, लहे भगति लवलीन।।१।।

सत्व आदि गुन तीन दिखावा। सत्य नाहि मायामय पावा।।
ज्ञानी पुरुष न बन्धन पाये। यद्यपि गुण मँह रहत बँधाये।।२।।
विषय परायण असत समाना। करइ न संग बौरि तिन्ह जाना।।
अन्ध संग जिमि अन्ध गिराहीं। अज्ञ संग तिमि सेवइ नाहीं।।३।।
उर्वशि बिरह पुरूरव गावा। शोक छाँड़ि वैराग्य सुहावा।।४।।
पीछा करत नगन नृप जाहीं। ठहर उर्वसी कहत पराहीं।।५।।
उर्वशि मोह नृपति मन हारे। आवत जात न रात निहारे।।६।।

ऐल उवाच-

अहह काम मन विह्वल कीन्हा। बाहु पाश वय जात न चीन्हा।।७।।
कातर काम रहेंउ दिन राती। बीते कितने बरस न ज्ञाती।।८।।
क्रीडा मृग नरदेव भुलाने। नारि प्रेम वश रहे लुभाने।।९।।
छाँड़ि राजसुख चली परायी। देखहु नग्न मोरि तनु धायी।।१०।।
खर समान पद ताडित धावा। कहहु कौन ईश पद पावा।।११।।
विद्या तप श्रुत मौन विरागा। छाँड़ि नारि के पीछे भागा।।१२।।
हानि लाभ कछु जानि न पावा। पण्डित ह्वै मैं मूर्ख कहावा।।
गर्दभ साँड़ समानहि धाये। नरपति स्त्रीवश्य कहाये।।१३।।
बहुत बरस अधरामृत चाखे। रहेंउ अतृप्त त धायंउ पाछे।।
सेवत काम बढ़ा दिन-राती। आहुति तें किमि आगि बुझाती।।१४।।

दोहा- कुलटा ने है हर लिया मेरा चित्त अधीर।
कौन फाँस से छोड़ि है, मोहि, सिवाय यदुबीर।।१५।।

दोहा- यद्यपि देवी ने दिये, सूक्त वचन उपदेश।
महामोह जाता नहीं, इन्द्रिय भोग कलेश।।१६।।
नहि कछु दोष उर्वशी केरा। रज्जु सर्प भ्रम मोह घनेरा।।१७।।
यह शरीर अति अशुचि कुगन्धी। शुचि सुगन्ध आरोप अमन्दी।।१८।।
तनु यह मातु-पिता उपजाये। येंहि कँह पत्नी रह लिपटाये।।
गीध श्वान कँह भोजन एऊ। ईधन अगिनि, बन्धु हित सेऊ।।१९।।
यह शरीर अपवित्र नसावन। कहत नाक मुख हास्य जुड़ावन।।२०।।
मज्जा मांस रुधिर मय देहा। मूत्र मलादि खानि कृमि नेहा।।२१।।
करहिं न साधु नारि कँह संगा। इन्द्रिय विषय योग मन भंगा।।२२।।
देखे बिनु न होइ मन प्रीती। तातें दूर रहहु विष-बीछी।।२३।।
दोहा- मन वाणी अरु कान लगि, तजिय नारि कर संग।
बहुत कठिन मन निग्रह, विज्ञहु होत उछंग।।२४।।

श्री भगवान् उवाच-

एहिं विधि गावत नृपति वर, तजेउ उर्वशी मोह।
काम मोह का नाश कर, आत्माराम अछोह।।२५।।
तजि कुसंग सज्जन संग बासू। मनोमोह भंजक मति जासू।।२६।।
समदर्शी शुचि शान्त स्वभावा। निर्मम द्वन्द्वातीत कहावा।।२७।।
गांवहि लीला कथा हमारी। सन्त सदा पावन अघहारी।।२८।।
सादर लीला करहिं जे गाना। श्रद्धा भगति लहैं कल्याना।।२९।।
कछु पुनि शेष रहइ नहि ताके। मम अनन्त गुण भक्ती जाके।।३०।।
सेवत आगि न शीत सतावा। संत शरण दुख कैसे पावा।।३१।।
डूबत, नौका होत सहारा। तथा संत भवसागर तारा।।३२।।
अन्न यथा जन प्राण अधारा। दुखी तथा मम शरण उबारा।।
धर्म एक धन मग परलोका। संत करहिं भवभीत अशोका।।३३।।

उदित सूर्य जिमि पंथ दिखावा। बिना नयन तम नाहि दुरावा ।।
देहि नयन संत हितकारी। देव समान सदा भयहारी ।।
संत रूप मैं स्वयं विराजा। आत्मा संत सुधार समाजा ।।३४।।
आत्माराम परम निष्कामा । इलातनय जग विचर अकामा ।।
मिटी उर्वशी प्रीति घनेरी । निस्पृह कबहुं ताहि नहि हेरी ।।३५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे-एकादश स्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

*

।। अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।।

उद्धव उवाच-

दोहा- क्रिया योग वर्णन करहु, तब आराधन रूप।
जेंहि विधि पूजन करत नर, साधन-साध्य स्वरूप।।१।।

नारद व्यास देवगुरु भाषे । क्रिया योग साधन फल चाखे ।।२।।
तव मुख कमल प्रकाश सो पावा । पाछे ब्रह्मा सुतहिं जनावा ।।
शंभु उमहि कीने उपदेशा । क्रिया योग विधि हरत कलेशा।।३।।
सकल वर्ण साधन अधिकारी। साधन सुलभ शूद्र अरु नारी।।४।।
प्रिय अनुरक्त भक्त मोंहि जानी । कहहु कृपा निधि कर्म कहानी।।५।।

श्रीभगवान् उवाच-

कर्मकाण्ड अति विस्तृत जानी । उद्धव! मैं संक्षेप बखानी ।।६।।
वैदिक तांत्रिक मिश्र स्वरूपा। जेहि जो रुचइ सो सेइय रूपा ।।७।।

निज अधिकार विप्र कहलाये। श्रद्धा भक्ति पूजि मन लाये।।८।।
सूर्य अग्नि जल गुरु क्षिति मानी। पूजिय विप्र मोहि हरि जानी।।९।।
शोधि दन्त करिये अस्नाना। वैदिक लौकिक मंत्र समाना।।१०।।

दोहा- सन्ध्योपासन कर्म शुभ नित्य कर्म जिय जान।
वैदिक तांत्रिक रीति से, करि संकल्प सुजान।।११।।

प्रतिमा आठ प्रकार बखानी। शिला,काठ,लिपि, लोह समानी।।
मनोमयी, मणि, बालुका, रूपा। चन्दन, धातु अनेक स्वरूपा।।१२।।
दुइ प्रकार मम मूरति जानी। चल अरु अचल त वेद बखानी।।
अचल मूर्ति नित नाहि विधाना। आवाहन अरु सर्जन जाना।।१३।।
चल विग्रह सुविकल्प कहावा। नित्य विसर्जन नित्य बुलावा।।
मृण्मय मँह यह सदा विधाना। चित्रहिं मार्जन देव नहाना।।१४।।
विविध वस्तु मम पूजन होई। करइ अकाम मिलइ जो कोई।।१५।।
भूषण वस्त्र नहान सुहाये। पत्थर प्रतिमा हेतु बनाये।।
सिकता मूर्ति अंग कँह न्यासा। अगिन आहुती वेद प्रकाशा।।१६।।
उपस्थान प्रिय सूर्यहिं देवा। श्रद्धा सहित सलिल मम सेवा।।१७।।
विना भगति बहु वस्तु चढ़ावा। धूप दीप कछु मोहि न भावा।।१८।।
कुशा विछाइ धारि पद्मासन। पूरब उत्तर मुख करि पूजन।।१९।।
अंग न्यास कर न्यास विधाना। मार्जन पूजन करइ सुजाना।।२०।।
जल से सींचि त देह समाना। अर्घ्य पाद्य आचमन विधाना।।२१।।
तीन पात्र जल छोड़इ जाई। हृदय शीष छुइ शिखा बँधाई।।२२।।
प्राण अग्नि मन शोधन कीन्हा। हृदय मांहि प्रभु आपन चीन्हा।।२३।।

दोहा- ध्यान धरै मम मूर्ति की, कला अंश उर माँहि।
तन्मय होइ अर्चन करइ, अंगन्यास विधि ताहि।।२४।।

नवधा आसन करइ विधाना। शक्ति स्वरूप नवहि नव जाना।।२५।।

करइ अष्टदल कमल सु आसन। भोग मोक्ष हित उभय सुशासन ।।२६।।
शंख चक्र असि गदा प्रमाना। धनुष बाण हल मूसल नाना।।
आयुध आठ, वत्स श्री माला। कौस्तुभ मणि पूजिय सुविशाला।।२७।।
नन्द सुनन्द महाबल चण्डा। कुमुद गरुड कुमदेक्ष प्रचण्डा।।
पार्षद आठ मोर मन भाये। पूजिय भगति मोर शुभ पाये।।२८।।
व्यास गणेश देव गुरु पूजन। दुर्गा देवि करिय नित अर्चन ।।२९।।
चन्दन खश कर्पूर सुबाशा। विभव होइ नित पूजिय आशा ।।३०।।
महापुरुष विद्या विधि नाना। पुरुष सूक्त कर पाठ सुजाना।।३१।।
वस्त्राभरण जनेउ सुहाये। भक्तिभाव शुचि लेप लगाये ।।३२।।
अक्षत पुष्प धूप अरु दीपा। पाद्य आचमन देइ समीपा ।।३३।।
गुड़ पायस मोदक बहु दीन्हे। दही सजाव पूप वरु चीन्हे ।।३४।।
दतुअन उबटन नित्य विधाना। गन्ध आदि शुभ पर्व निधाना।।३५।।
विधि अनुरूप त कुण्ड बनाये। अग्नि थापि प्रज्ज्वलन कराये।।३६।।
कुश फैलाइ यथा विधि नाना। अग्नि माँहि कीजे मम ध्याना।।३७।।

दोहा- तप्त हेम सी कान्ति मम, धरे चतुर्भुज रूप।
पीत वसन दर पदम कर, शंख चक्र सुर भूप।।३८।।

कटक मुकुट कटि सूत्र विराजा। वन माला कौस्तुभ उर छाजा।।३९।।
करइ ध्यान आहुति बहु दीन्हा। जले अगिनि घृत समिधा चीन्हा।।४०।।
पुरुष सूक्त पढ़ि आहुति करहीं। मूल मंत्र अठ आखर कहहीं ।।४१।।
देइ पार्षदहिं बली विधाना। मूल मंत्र जप करहिं सुजाना ।।४२।।
हरि अँचवाइ देइ मुख वासा। पान सुपारी मधुर विलासा ।।४३।।
नाचत गावत कथा सुनाहीं। क्षण भरि तन्मय तन सुधिनाहीं ।।४४।।
गावत स्तुति प्राकृत भाषा। होउ प्रसन्न कहिय धरि आशा।।४५।।
मम चरणन शिर देहि लगाई। शरणागत यम भीति छुड़ाई।।४६।।

मम प्रसाद उर माथ लगावा। ज्योति परम उर माँहि समावा ।।४७।।
श्रद्धा से पूजन मम कीना। हरि सर्वत्र भाव शुभ चीन्हा ।।४८।।
एहि विधि पूजन करइ हमारा। लोक औरु परलोक सुधारा।।४९।।
मन्दिर सुन्दर रचइ हमारा। थापै मूर्ति विभव अनुसारा।।
पुष्प वाटिका रुचिर बनाई। यात्रा उत्सव करे भलाई।।५०।।
पूजा चलइ निरन्तर याते। देइ ग्राम पुर नगर बसा के ।।
प्रतिदिन पूजत जो नर मोहीं। देउं सलोक मुक्ति मैं तेंही ।।५१।।
करइ प्रतिष्ठा होइ सुखारी। सार्वभौम नृप करहिं मुरारी।।
ब्रह्मलोक पुनि पावइ तेंही। त्रिविध सरूप करंउ एसे हीं ।।५२।।
करत अकाम भगति जे मोरा। भक्ति योग वश बस मम कोरा ।।५३।।
देव विप्र कँह रोजी हरई। कोटि वर्ष विष्ठा मँह रहई ।।५४।।
होत सहाय करहिं अनुमोदन। लहहिं अनेक पुण्य भवमोचन।।५५।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

*

।। अथाष्टाविंशोऽध्यायः ।।

श्री भगवान् उवाच-

कबहुँ न निन्दइ काहु के, लखि स्वभाव प्रतिकूल।
करइ प्रशंसा नाहि पुनि, प्रकृति पुरुष अनुकूल ।।१।।

कीने निन्दा अरु गुण गाना। द्वैत बुद्धि उपजइ विधि नाना।।२।।
राजस इन्द्रिय निद्रित होई। देह जीव लागत तब सोई ।।
देखत नाना विध संसारा। मृत्यु तुल्य अज्ञान प्रचारा ।।३।।
अच्छा बुरा द्वैत मँह होई । जगत अनित्य ब्रह्म सत सोई।।
मन वाणी कर विषय बहूता । सत्य नांहि सब जानिय झूठा।।४।।
छाया देखि त जात डेराई। एहिं विधि देह आदि सब भाई।।
असत् पदार्थ मोह कर मूला। ज्ञान होत सब नासइ शूला।।५।।
सब कुछ आत्मा जानहु भाई। सिरजन हार सृजन सोइ गाई ।।
रक्षक रक्ष्य एक सोइ जाना। उपादान सोइ निमित बखाना।।६।।
आत्मा एक अकाम अमानी । त्रिविध सृष्टि सब माया जानी ।।७।।
आत्मा एक देखइ चहुँ ओरा। का अस्तुति का वचन कठोरा ।।८।।
होइ असंग जग विचरहु जाई । श्रुति अनुमान प्रत्यच्छ कहाई।।
जगत सृष्टि अरु नास स्वभावा । सिद्ध प्रमाण न सत्य बतावा।।९।।

उद्धव उवाच-

यह संसार दृश्य मैं माना। आत्मा द्रष्टा एक बखाना ।।
उभय रूप संसार कहावा। जन्म मृत्यु तब कैसे पावा ।।१०।।
आत्मा अव्यय निर्गुण शुद्धा। अग्नि काठ इव मिलत विरुद्धा ।।
एक सचेत अचेतन एका। संसृति कइसे चलत अछेका।।११।।

श्री भगवान् उवाच-

दोहा- यह संसार असत्य पुनि, जब लौ तन मन भान ।
सत्य लागि है तब तलक, अज्ञहि यह अनुमान ।।१२।।

यथा स्वप्न बहु वित्त कमावा। जागत पुनः न एकउ पावा ।।
विषय परायण जो नर मोंही । तेंहि संसार निवृत्ति न होंही ।।१३।।
सोवत सपन विपत्ति अनेका । जागत उपजत ज्ञान विवेका ।।१४।।
हर्ष शोक भय क्रोध विमोहा। जन्म देह, नहि आत्म अछोहा ।।१५।।
इन्द्रिय प्राण देह अभिमाना। जीव योनिमँह भटकत नाना ।।
महत्तत्व सोइ सूत्र कहावा । लिंग शरीर कर्म फल पावा।।१६।।
मन वाणी अरु प्राण शरीरा । देव मनुज सब अहं अधीरा।।
ज्ञान खड्ग लै शान चढ़ाये । काटि अहं विचरत महि जाये।।१७।।

दोहा- चित शोधि वेदादि से, करत विवेकी ज्ञान ।
आदि अन्त में जो रहे, सोइ आत्म भगवान ।।१८।।

कटक मुकुट कुण्डल बहु रूपा। स्वर्ण एक लह विविध स्वरूपा।।
एक तत्त्व मैं ब्रह्म कहावा । नाना रूप अनन्त बनावा ।।१९।।
सत्व आदि गुण तीन बखाने । जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति समाने ।।
अन्वय अरु व्यतिरेक विधाना। सत्य तुरीय ब्रह्म जग जाना ।।२०।।
सृष्टि पूर्व यह जग नहि राचा । प्रलय बाद नहि रहि हैं साँचा।।
आदि अन्त में जो जग नाहीं। मध्य्य काल कत सत्य कहांही ।।
कहउं विनिश्चय आपन ज्ञाना। सत्य ब्रह्म जग मिथ्या जाना ।।२१।।
राजस सृष्टि विकार स्वरूपा। भासइ विभ्रम रूप अनूपा ।।
स्वयं प्रकाश ब्रह्म को जाना । तेहिं ते भास करण सब माना ।।२२।।
ब्रह्म विचार करइ दिन राती। श्रवण मनन गुरुकृपा सुजाती ।।
आत्मानन्द मगन सुखमूला । विषय भोग दारुण दुख शूला ।।२३।।
मौन विकार देह मन वानी। पोषत अन्न न आत्म अजानी।।२४।।

दोहा- यथा मेघ के घेरते, रवि पुनि अस्त न होय।
तथा गुणों के फेर से, आत्मा गुणी न सोय ।।२५।।

वायु अनल जल भू गुण सारा। दूषित करहिं न व्योम अपारा।
अक्षर तत्त्व व्याप नहि सोऊ। गुण कृत त्रिविध रूप तँह जेऊ ।।२६।।
तजहुँ तथापि गुणन कर संगा। माया विरचित त्रिविध प्रसंगा ।।
भक्ति भाव मन निर्मल पावा। मन से कश्मल सकल बहावा।।२७।।
जब तक रोग समूल न जारा। समय पाइ फिरि लेत उभारा।।
एहि विधि कर्म कषाय न त्यागा। योग-कुयोग विषम शर लागा।।२८।।
योगहिं योग कबहु विनसावा। सुर प्रेरित तिय पुत्र दुरावा।।
दृढ़ अभ्यास योग पुनि जाये। योग युक्त योगी कहलाये।।२९।।
आत्म ज्ञानिन्ह कर्म न बाधा। सुख दुख हानि लाभ सम साधा।।३०।।
करइ कर्म पुनि मान न होई। बैठत उठत खात चल सोई।।
निज स्वरूप स्थित जो होई। तिन्ह के कर्म प्रभाव न जोई।।३१।।

दोहा- यथा स्वप्न देखा जगत, बाहर नाहीं होय।
योगी तिमि संसार को, देखि भ्रमैं नहि कोय।।३२।।
जब विवेक नाहीं जगा, आत्मा इन्द्रिय मान।
होत निवृत अज्ञान के, आत्मा ब्रह्म समान।।३३।।
इदमित्त्थं कहि जाय नहि, नासइ तम अज्ञान।
उदित रवी के होत ही, मति अंधियार पयान।।३४।।
स्वयं प्रकाश अमेय यह, केवल अनुभव गम्य।
मन वाणी का विषय नहि, आत्मा ब्रह्म प्रणम्य।।३५।।

सकल मोह मन आश्रित जाना। अधिष्ठान कह आत्म सुजाना।।३६।।
कछु विद्वान द्वैत सत माना। अर्थवाद यह व्यर्थ बखाना।।३७।।
यदि अपक्व योगी कोइ होई। रोग निवारण विधि यह गोई।।३८।।
तपो मन्त्र ओषध के द्वारा। आसनादि हैं रुज उपचारा।।३९।।
करइ ध्यान अरु गावइ नामा। करि सत्संग नसावइ कामा।।४०।।

कतिपय योगी ध्यान लगावा। अणिमादिक बहु सिद्धी पावा।।
कीन सुदृढ तनु योग रमाये। अन्तकाल यह देह गँवाये।।४१।।
यह मारग नहि उचित कहावा। वृक्ष लदा फल काल गिरावा।।४२।।
योग ते पुष्ट होइ तनु जेते। योग न छाड़िय ब्रह्म चहेते।।४३।।
मम आश्रय लइ योगहिं साधा। निस्पृह नष्ट होत सब बाधा।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

*

।। अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।

उद्धव उवाच-

दोहा- योग साधना अति कठिन, जानौ मैं भगवान।
सरल मार्ग बतलाइये, जासे तरहिं सुजान।।१।।

प्रायः योगिहु मन नहि साधा। दुखी होंहि देखि बहु बाधा।।२।।
तव माया दुर्गम यदुराया। शरण गहे बिनु साध न जाया।।
योगिन्ह होइ सिद्धि अभिमाना। तातें पतन होइ मै जाना।।३।।
नहि आचरज दास हित स्वामी। होउ अधीन भक्त वश जानी।।
सकल ईश जेंहि पूजत हारे। सोइ वन विचरे कपिन्ह सहारे।।४।।
सबके ईश परम प्रिय नाथा। देहु भगत सब करहु सनाथा।।
छाँड़ि चरण रज विषय पियारा। चाहत भोग तुच्छ जग सारा।।५।।
तव उपकार न सकंहि भुलाई। चतुरानन समान वय पाई।।
सब के मध्य रहहु तुम स्वामी। मेटहु अशुभ अनीह अकामी।।६।।

श्री शुक उवाच-

दोहा- एहिं विधि पूंछे प्रश्न जब, उद्धव भगत विशेष।
धारित रूप त्रिदेव हरि, बोले सस्मित शेष।।७।।

श्रीभगवान् उवाच-

भगवत धर्म कहउं समुझाई। जीतइ मृत्यु सुनत मन लाई।।८।।
प्रभुहिं समर्पि करे सब कर्मा। मम पद रति राखे शुभ धर्मा।।९।।
करइ निवास पुण्य अस्थाना। देव असुर नर चरित प्रमाना।।१०।।
उत्सव यात्रा पर्व मनावा। गीत वाद्य शुभ नृत्य रचावा।।११।।
बाहर भीतर एक समाना। देखइ मोंहि व्योम इव माना।।१२।।
सकल प्राणि मँह देखइ मोंही। ज्ञानवान मम आश्रय छोंही।।१३।।
सोइ पण्डित सोइ ज्ञानि कहावा। बाभन अन्त्यज नाहि दुरावा।।
चोर चमार क्रूर अक्रूरा। समदर्शी चिनगारी सूरा।।१४।।
नर नारिन्ह मँह प्रभु को देखी। मेटत ईर्ष्या अहं विशेषी।।१५।।

दोहा- बिना लोक चिन्ता किए, देह लाद तजि भान।
गधा श्वान चाण्डाल को, गो समान सम मान।।१६।।
जब लौं भगवद् भाव नहि, उपजत भाव समान।
मन वाणी अरु कर्म से, तब लौं भजु भगवान।।१७।।

ब्रहम भाव जागइ कछु काला। नासत सकल अविद्या जाला।।
तब उपराम जगत से होई। सकल ब्रह्म मय देखइ जोई।।१८।।
निश्चय आपन कहौं बखानी। साधन श्रेष्ठ सकल शुभ खानी।।
मन वाणी अरु वृत्ति निकाया। देखत ब्रह्म जात सब माया।।१९।।
यह अकाम अगुण मैं भाखा। लेश मात्र नहि होइहिं ह्रासा।।२०।।
परम धर्म यह, काहु न दोषा। करइ निरर्थक कर्म अदोषा।।२१।।
सोइ विवेकी परम सयाना। देह असत अविनासिंहि जाना।।२२।।

देवन्ह दुर्लभ तुमहि बतावा । करि संक्षेप ब्रह्म निधि गावा ।।२३।।
ज्ञान तत्त्व कँह कीन बखाना । जानत मुक्त होंहि नर जाना ।।२४।।
यह संवाद सुनै मन लाई । पावत ब्रह्म सनातन भाई ।।२५।।

दोहा- जो नर मेरे ज्ञान को, कहहिं सुनहि मन लाय।
तेंहि कर आपन रूप मैं, देंउ बिना अलसाय ।।२६।।

यह संवाद परम शुचि जानी । ज्ञान दीप सम मानइ ज्ञानी ।।२७।।
श्रद्धा करि जे नित्य पढ़ाहीं। लहै भक्ति सब कर्म नसाहीं ।।२८।।
कहहु मित्र उद्धव तुम ज्ञानी। मिटेउ तोर संशय की नाहीं ।।२९।।
यह उपदेश शठहिं नहि देहू। नास्तिक दम्भी होइ न छोहू ।।३०।।
साधु विप्र शुचि ज्ञान परोसा । अन्त्यज नारिन्ह भगति भरोसा।।३१।।
अमृत पिये कछु पेय न भावा। तथा ज्ञान उपदेश कहावा।।३२।।
चारि पदारथ लोक बखाना । तुम्हरे तो केवल भगवाना ।।३३।।
सकल कार्य नर त्यागइ जब हीं। अमृत तत्व मोंहि पावइ तबहीं ।।३४।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- कमल नयन श्री कृष्ण के, सुनि सुन्दर उपदेश ।
हाथ जोड़ि भींगे नयन, उद्धव मौन विशेष।।३५।।
प्रेम विकल विह्वल हृदय, मानत आपन नाथ ।
हाथ बाँधि यदुवीर सों, बोले पद धरि माथ।।३६।।

उद्धव उवाच-

तुम्हरी कृपा मोहमति भागी। कहाँ सीत भय, रह जँह आगी।।३७।।
ज्ञान-दीप मोंहि दीन मुरारी । चरण शरण तजि कौन सुखारी ।।३८।।
अन्धक वृष्णि आदि यदुवंशी । मोहपाश मोहि बाँध अशंसी ।।
आत्म ज्ञान मय खड्ग प्रचण्डा । काटे सकल पाश बरवण्डा।।३९।।
योगिराज तब चरण नमामी । भगति देहु मोंहि सदानपायिनी ।।४०।।

श्रीभगवान् उवाच-

दोहा- उद्धव मम आशीष ले, जाहु बद्रिका धाम।
जहाँ गंग जल पान करि, होइहो शुचि निष्काम।।४१।।
जहाँ अलकनन्दा नदी, देखत मेटइ ताप।
तहाँ वसत फल मूल तें, सुखी होहु निष्पाप।।४२।।

तहाँ वसत नहि शीत न घामा। शान्त समाहित रह उपरामा।।४३।।
चिन्तन करि उपदेश बहोरी। त्रिगुण लाँघि आयहु मम ओरी।।४४।।

श्रीशुक उवाच-

हरि प्रेरित उद्धव उठि धाये। कीन प्रदक्षिण पद शिर नाये।।४५।।
कातर विरह नयन जल छाये। लीन पादुका शीष झुकाये।।४६।।
हरि उपदेश धारि उर आये। परम भागवत हरिहिं समाये।।४७।।

दोहा- हरि भाषित उपदेश जे, पढ़हिं सुनहिं चित लाय।
होत जगत से मुक्त वे, जगत न ताहि समाय।।४८।।
सकल ज्ञान का सार यह, वेद सार श्रुति मूल।
दिये कृष्ण ने जगत् को, नमन ताहि अनुकूल।।४९।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धे एकोन त्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।

*

।। अथ त्रिंशोऽध्यायः ।।

राजोवाच-

दोहा- परम भागवत् उद्धव, गवने वदरी धाम।
वसत द्वारका में हरी, काह किये कहु काम।।१।।

विप्र शाप कुल आपन जानी। तजे कौन विधि देह सुमानी ।।२।।
जेंहि तनु देखि नारि अकुलाहीं। सन्त सुनत गुण नाहि अघाहीं।।
शोभा बरनत कविजन थाके। समर शूर गति लह लखि जाके।।
केंहि विधि लीला तनु सो त्यागा। निरखत जाहि सर्व दुख भागा।।३।।

ऋषि रुवाच-

रहे सुधर्मा बैठे जाई। यदुवंसिन के संग कन्हाई ।।
धरती नभ देखे उत्पाता। पुरवासिन से कह हरि बाता।।४।।
बहु उत्पात त मोंहि देखाहीं। कुशल रहब इहाँ अब नाहीं ।।५।।
बालक वृद्ध नारि सब जाहीं। शंख उधार क्षेत्र शुचि पांही।।
हम सब चलें प्रभाष बहोरी। जहाँ प्रकट सरसुति वरजोरी।।६।।
तँह आसान तीर्थ उपवासा। देवन्ह पूजि करें हम वासा ।।७।।
मंगल पाठ विप्रगण कीने। भूमि धेनु सोना तिन्ह दीने।।८।।
होइहिं नाश अमंगल केरा। देव विप्र गो कँह सब चेरा ।।९।।

दोहा- मधुसूदन की बात सुनि, यदुकुल के सब लोग।
सिन्धु-लांघि बड़ि नाव से, प्रस्थित भे रथ योग ।।१०।।

पहुँचि प्रभास कृष्ण उपदेशा। कीन्हे मंगल कार्य विशेषा ।।११।।
बहुरि मद्य कँह कीन्हे पाना। हुये भ्रष्ट मति यदू सुजाना ।।१२।।
हरि माया प्रेरित चहुँ ओरा। छिड़ा समर अतिघोर कठोरा ।।१३।।
करहिं प्रहार परस्पर जाई। धनुष बाण असि गदा उठाई ।।१४।।
चढ़े वाजि रथ गज नर घोरे। करहिं युद्ध मानंहु गज भोरे।।१५।।
साम्ब संग प्रद्युम्न लड़ाही। भोज अक्रूर सात्यकी पांही ।।

लड़हि सुभद्र समरजित क्रोधा। सुरथ सुमित्र भिरे बहु योधा ।।१६।।
उल्मुख निशठ शताजित भानू। हरिमाया वश क्रोध कृशानू ।।१७।।
अन्धक भोज वृष्णि शुर सेना। लड़हि परस्पर कुक्कुर सेना।।
मारहिं काटहिं करहिं लटाई। बन्धु प्रेम दीन्हीं बिसराई ।।१८।।
पुत्र पिता सन भाइ भतीजा। नाना नाती खून पसीजा।।
मित्र सुहृद कँह मारन लागे। ज्ञाति बन्धु बढ़ि मारहिं आगे ।।१९।।

दोहा- अस्त्र शस्त्र जब चुक गये, टूटे धनुषहिं बान।
लिये एरका घास को, मारहिं मुट्ठी तान ।।२०।।
बज्र तुल्य वह हो गयी, लोहमयी थी घास ।२१।
कृष्ण राम को शत्रु सम, मारन चहहिं सुपास ।।२२।।

राम कृष्ण तब दूनउ भाई। मारहिं एरका घास उठाई।।२३।।
हरिमाया द्विज शाप सहाया। दावानल यादवन्ह जलाया।।२४।।
धरणी भार हरेउ हरि जाना। निज अवतार कृत्य प्रभु माना ।।२५।।
सिन्धु कूल बलराम सिराने। योग धारि नर रूप हेराने ।।२६।।
विदा शेष देखे भगवाना। पीपल तरु तर मौन विहाना ।।२७।।
धरे चतुर्भुज रूप मुरारी। करत प्रकाश अग्नि इव भारी।।२८।।
पीत वसन श्रीवत्स विराजे। मेघश्याम मंगलमय साजे ।।२९।।
नील अलक मुख हास सलोना। मकराकृति कुण्डल सुठि सोना ।।३०।।
माथे मुकुट कमर करधनी। कन्ध जनेऊ शोभ नरमनी।।
वक्ष हार पग नुपूर साजा। कौस्तुभ मणि शुचि कण्ठ विराजा।।३१।।
मूर्तिमान निज आयुध चारी। जानु परस वनमाला धारी।।
अरुण चरण रख दाहिन बायें। लाल कमल इव भ्रम उपजायें ।।३२।।
मूसल शेष बाण करि लीना। जरा व्याध मृग शंका कीना।।
मृग मुख समुझि बाण सो मारा। लागे हरि पद रक्त फुहारा ।।३३।।

दोहा- निकट आइ के कृष्ण के, देख चतुर्भुज रूप।
अति सभीत धरनी गिरा, चरण देखि सुरभूप ।।३४।।

क्षमा करहु अपराध मुरारी। मैं अज्ञान पाप कर भारी।।३५।।
जेंहि के सुमिरि होत भय हानी। तेंहि सन कीन्हा पाप अयानी ।।३६।।
मारहु मोंहि माथ निज पानी। कुमति करौं नहि अघ शुभहानी।।३७।।
शिव विरंचि जेंहि जाइ न जाना। तब माया कृत बल बलवाना।।
नहि जानइ तब भृकुटि विलासा। दुर्मति कहत कवन शुभ आशा।।३८।।

श्रीभगवान् उवाच-

जरा कीन सोइ जो मैं चाहा। डरहु नाहि लहु स्वर्ग उछाहा ।।३९।।
कीन प्रदक्षिण भा दिव चारी। लही शान्ति इच्छा तनु धारी ।।४०।।
तुलसी गन्ध सूंघि तँह आवा। दारुक सारथि सम्मुख पावा।।४१।।
कूदि पड़ा तब प्रभुहिं विलोकी। पीपल तरु तर पतिहि त्रिलोकी ।।
मूर्ति मन्त सब आयुध ठाढे। दारुक देखि वाष्प जल बाढे।।४२।।
अथवत चन्द्र तमस जिमि गाढ़ा। पद सरोज मम प्रीति प्रगाढ़ा।।
विनु दर्शन मम दृष्टि नसानी। शान्ति मिली नहि कतहुं हेरानी ।।४३।।
एतना कहत सूत तब देखा। नभ मँह स्यन्दन गये विशेषा ।।४४।।
पाछे लगि आयुध सब गयऊ। विस्मित सूत देखि हरि कहयेऊ।।४५।।

दोहा- जाहु सूत तुम द्वारका, कहहु वंश संहार।
धाम गमन वलभद्र कँह, मम लीला संवार ।।४६।।
जलदी त्यागहु द्वारका, भाइ बन्धु के साथ।
मेरे छोड़त ही उदधि, देइ डुबोइ अनाथ ।।४७।।

लइ परिवार मातु पितु मोरे। अर्जुन रक्षित जाहु अछोरे ।।४८।।
दारुक तुमहु शान्त है जाहू। मानि धरम मम नाहि उछाहू ।।४९।।
दारुक बहुरि प्रदक्षिण कीन्हा। हरि आयसु निज माथे लीन्हा।।५०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादश स्कन्धेत्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।

।। अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ।।

श्रीशुक उवाच-

दोहा- आये तब विरंचि तँह, शर्व भवानीनाथ।
इन्द्र आदि सब देवगण, मुनी प्रजापति साथ।।१।।

आये सिद्ध पितर गन्धर्वा। चारण यक्ष अप्सरा सर्वा।।२।।
गावत कृष्ण कर्म गुण नाना। देखन चहत हरिहिं प्रस्थाना।।३।।
बरसहिं सुमन विमान विराजे। कृष्ण भक्ति सब के उर छाजे।।४।।
देखि पितामह मूदे नयना। स्वयं स्वरूप समाहित वयना।।५।।
मंगल मय तनु मनहि निहारे। योगमार्ग प्रभु धाम सिधारे।।६।।
दुंदुभि बजी सुमन बहु छाये। सत्य धर्म धृति हरि पछियाये।।७।।
अविगत हरि देखे नहि जाता। रहे चकित सुर मुनी विधाता।।८।।
विद्युत कौंधि मेघ मँह जाये। तथा कृष्ण निज धाम सिधाये।।९।।

दोहा- करत प्रसंसा कृष्ण की, ब्रह्मा रुद्र सुरेश।
गवने अपने धाम सब, विस्मय केवल शेष।।१०।।

राजन् ! हरि बहुरूप धराई। नट इव लीला करत गुसाई।।
करहिं सृष्टि सोइ पालन कर्ता। अन्तकाल हर बनि संहर्त्ता।।११।।
यमहिं जीति गुरु पुत्र लियावा। ब्रह्म शस्त्र से तुमहि वचावा।।
कालहुं काल समर मे जीते। व्याधहुं स्वर्ग दिये सुपुनीते।।१२।।
वपु अनित्य यश नित्य बतावा। तेंहि ते धरा न देह रचावा।।१३।।
प्रातकाल यह कथा कहाहीं। परमधाम सो अवसि लहाहीं।।१४।।
दारुक दुखी द्वारका आया। शौरि, नृपति अश्रु नहलाया।।१५।।
वंश नाश सब दिये सुनाई। सुनत लोग सब मूर्च्छा पाई।।१६।।
कृष्ण वियोग विकल नर नारी। पहुँचे तँह जँह मृत्यु पचारी।।१७।।
देवकि रोहिणि अरु वसुदेवा। भये अचेत सकल एक खेवा।।१८।।

दोहा- कृष्ण विरह व्याकुल हुये, तजे देह ते प्रान।
नारिन्ह पति को अंक ले, चिता समर्पि कृशान।।१९।।

तनु बलराम संग लै नारी। कीन प्रवेश चिता मँह सारी।।
निज पति चीन्ह चिता लै आई। योग अग्नि तब दिये लगाई।।
कृष्ण रानि रुक्मिणी सब बामा। ध्यान कीन तव चिता पयाना।।२०।।
अर्जुन दुखी कृष्ण गुन गाये। कवनों विधि मन कँह समुझाये।।२१।।
दीन्ह तिलांजलि पिण्ड प्रदाना। अर्जुन कीन कर्म निज माना।।२२।।
सकल द्वारका सिन्धु बहावा। कृष्ण भवन कँह सिन्धु बचावा।।२३।।
हरि सन्निहित सदा तँह रहहीं। सुमिरत पाप ताप सब हरहीं।।२४।।
बालक वृद्ध बचे जे थोरे। इन्द्रप्रस्थ अर्जुन तेहि छोरे।।
सुत अनिरुद्ध वज्र अभिषेका। किये धनंजय निपुन विवेका।।२५।।

दोहा- अर्जुन से सब जानिके, नृपति पितामह तोर।
तुम को राज समर्पि के, गये हिमालय ओर।।२६।।

जो यह कथा सुनै मनलाई। सकल पाप ता कह जरिजाई।।२७।।
हरि अवतार विचित्र बखाना। बाल चरित कीन्हे भगवाना।।
कहत सुनत हरि कथा अनन्ता। होत कृष्ण रति गावत सन्ता।।२८।।

।। इति श्रीमद्भागवत् महापुराणे एकादश स्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ।।

इत्येकादशस्कन्धः समाप्तः।

*

इति श्रीमदाचार्य भानुदत्त पाण्डेय सूनुना कूराडीह, प्रतापगढ़ लब्धजन्मना डॉ॰ गायत्रीप्रसादपाण्डेयेन काशी वास्तव्येन कृते श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरणे एकादश स्कन्धः सम्पूर्णः।।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

*

।।श्रीगणेशाय नमः।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

हिन्दी दोहा चौपाई रूपान्तरण

द्वादशः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच

दोहा- यदुकुल भूषण कृष्ण जब, चले गये निज धामु ।
कौन नृपति किस वंश के, शासन किये, बखानु ।।१।।

श्रीशुक उवाच

रहे वृहद्रथ वंश विभूषण। नाम पुरंजय अन्तिम पूषण।
तेंहि कर मंत्री शुनक बखाना। नृपहि मारि सुत दीन्हे माना ।।२।।
तब प्रद्योत लहेउ नृप आसन। तेंहि सुत पालक कीन सुशासन।।
विशाख यूप पालक सुत होई। राजक नाम पुत्र लह सोई ।।३।।
पाँच नृपति प्रद्योत कुलीना। नन्दि वर्धनहिं अन्तिम चीन्हा।।
एक सौ अड़तीस बरस सुशासन। करिहैं धरती पालन पावन ।।४।।
तब शिशु नाग नाम नृप होई। काकवर्ण सुत लहिहैं सोई।।
क्षेम धर्म सुत ताहि बखाना। तेंहिं कर सुत क्षेत्रज्ञ सुजाना ।।५।।

सोरठा-तेंहि का सुत विधिसार, तेंहि से होंहि अजात रिपु।
पुनि दर्मक नृप होहि, अजय होंहि जाके तनय ।।६।।

अजय तनय नँदिवर्धन होई । महानन्दि सुत पइहैं सोई ।।
दस पीढ़ी लगि करि हैं शासन । तीन सैकड़ा साठ नृपासन ।।७।।
यह शिशुनाग वंश विस्तारा । करिहें नृप पालन परिवारा ।।
महानन्दि सुत शूद्रा जाये । कलिमँह विपुल बली कहलाये ।।८।।
ताकर नाम नन्द शुभ होई । क्षत्रिय कुल घातक कह सोई ।।
तब लौं क्षत्रिय शासन हानी । शूद्र नृपति होइहैं अभिमानी ।।९।।
एक क्षत्र भूशासक सोहा । परशुराम इव क्षत्रिय द्रोहा ।।
महापद्म तेंहि होइहैं नामू । तेजपुंज मनु होई कृशानू ।।१०।।
नाम सुमाल्य आदि सुत जाके । आठ पुत्र शतवर्ष प्रजाके ।।
करिहैं शासन धरती मांही । नीति अनीति उभय युग नाहीं ।।११।।

सोरठा-विप्र एक कोउ आय, विश्व विदित नय नीति चण ।
मौर्यहिं आगे कीन, मरवाये सब नन्द कुल ।।१२।।

चन्द्र गुप्त नृप शासन पावा । वारिसार सुत ताहि सुहावा ।।
तेंहि कर तनय अशोक बखाना । विपुल शौर्य वल शील निधाना ।।१३।।
सुयश नाम ताकर सुत होई । संगत, शालिशूक क्रम सोई ।।
सोमशर्म सुत होइहै आगे । शतधन्वा, वृहरथ बड़ भागे।।१४।।
सैंतीस अरु सौ वर्ष नृपासन । मौर्य वंश विस्तार सुशासन।।१५।।
वृहरथ सेनाधीश कहावा । पुष्प मित्र तेहि नाम जनावा ।।
नृपहि मारि सो शासन कीना । तेंहि सुत अग्निमित्र अदीना ।।१६।।
नाम सुजेष्ठ पुत्र सो पावा । वसुमित्र भद्रक आदि बतावा ।।
नृपति पुलिन्द, घोष तिन्ह होई । वज्र मित्र सुत पावइ जोई ।।१७।।
वज्रमित्र सुत भगवत नामू । देवभूति तेंहि पुत्र सुजानू ।।
शुंग वंश दश पीढ़ी राजू । करिहैं वर्ष शताधिक छाजू ।।१८।।
देव .भूति अति कामी राजा । कण्व मारि तेंहि राज विराजा ।।१९।।

नृप वसुदेव राज पुनि कीना। सुत भूमित्र सबन नृप चीन्हा ।।
तेंहि ते नारायण सुत होई। पुत्र सुशर्मा लहिहें सोई ।।२०।।
कण्व वंश भूपति कहलाये। सार्ध शतक त्रय राज चलाये ।।२१।।
सेवक शूद्र सुशर्मा केरा। अन्ध्र जाति अति बली घनेरा ।।
मारि सुशर्मींहिं धरती छीना। कछुक काल नृप शासन कीना ।।२२।।
ताकर अनुज कृष्ण अस नामा। करिहे शासन ललित ललामा।।
शान्तकर्ण सुत होइहिं ताके। पौर्णमास सुत होइंहि जाके ।।२३।।
लम्बोदर ताके सुत जाये। तेहि सुत चिबिलक नाम कहाये।।
मेघस्वाति सुत चिविलक नामा। तेंहि कँह सुत अटमान सुनामा ।।२४।।

दोहा- अनिष्ट कर्म अटमानसुत, तत्सुत हालेय नाम।
पुरीष भीरु उनके तनय, उनहिं सुनन्दन जान ।।२५।।

पुत्र सुनन्दन होंहि चकोरा। आठ पुत्र बहु नाम न थोरा।।
शिवस्वाति लघु तनय कहावा। ताकर गोमति पुत्र बतावा।।
तेंहि कर पुत्र पुरीमन नामा। वीरवर्य शुभकर्म बखाना ।।२६।।
मेदशिरा तेहि सुत उपजाये। शिवस्कन्ध सो सन्तति पाये ।।
ताही तनय यज्ञश्री नामा। तेहि के पुत्र विजय असजाना।।
युगल तनय विजय ने पाये। चन्द्र विज्ञ, लोमधि कहलाये ।।
राजा तीस होंहि भू ईशा। शासन चारिशत छप्पन वर्षा।।२७।।
सात अभीर दस गर्दभिराजा। सोलह कंक नृपति पद छाजा ।।२९।।
आठ यवन चौदह तुरकाई। दस गोरे ग्यारह मौनाई।।३०।।
एकन्यून ग्यारह शत वर्षा। करहिं राज छिति पालन हर्षा ।।३१।।
ग्यारह पीढ़ी मौनहिं शासन। तीन शतक वर्ष अनुशासन ।।
किलकिल पुरी भूतनँद नामा। तेंहि कर सुत वंगीर बखाना ।।३२।।
शिशुनन्द, यशोनन्द, प्रबीरक भाई। एक सौ छः वर्ष राज निपुनाई ।।३३।।

तेरह पुत्र होंहि बलशाली। बाल्हिक नाम प्रसिद्ध सुशाली।।
पुष्पमित्र सुत दुरमित होऊ। राज कार्य करिहें पुनि सोऊ।।३४।।

दोहा- बाल्हिक वंशी भूप सब, एक साथ नृप होइ।
करिहें राज्य प्रदेश मँह, कछु विदूर मँह कोइ।।३५।।

मगध पाल विस्फूर्जित होऊ। अपर पुरंजय जानिय सोऊ।।
करिहें विप्रन्ह यदू पुलिन्दा। जाति नाश पाइय जग निन्दा।।३६।।
क्षत्रिय विप्र वैश्य कुल नाशा। शूद्रहि बहुत बढ़ायेंहि आशा।।
पद्मवती कीनी राजधानी। गंग प्रयाग मही भुज मानी।।३७।।
जस जस कलियुग बढ़त अमाना। शूद्र समान विप्रजन जाना।।३८।।
लै सागर कश्मीर प्रजन्ता। शुद्र म्लेच्छ सब नृपति भवन्ता।।३९।।
एक काल सब नृपति कहाये। अधरम झूठ, सत्य बहिराये।।४०।।
नारि बाल द्विज घात प्रवीना। अल्प आयु बल तेज बिहीना।।४१।।
तम प्रधान रज गुणी समाजा। राजवेष वृष लूट सुराजा।।
राजा यथा प्रजा तस होई। करहिं परस्पर पीड़ा सोई।।४२।।
करत अधर्म नाश तिन्ह पावा। कलह क्रोध सब राज नसावा।।४३।।

।। इति श्रीमद्भगवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः।।१।।

*

।।अथ द्वितीयोऽध्यायः।।

श्री शुक उवाच

दोहा- अति कराल कलिकाल में, अनुदिन होवे ह्रास।
धर्म, सत्य, शुचिता, क्षमा, आयुर्बल स्मृति नाश ।।१।।

सोइ कुलीन सो पण्डित ज्ञानी। जेंहि के पास लच्छि गुणखानी ।।
धरम न्याय सब शक्ति अधीना। बल से निर्बल कँह लेइ छीना ।।२।।
दम्पति प्रेम कपट मय जाना। धारि जनेऊ विप्र सुजाना ।।३।।
दण्ड चीर सोइ आश्रम वेषा। लेंहि बदलि पर देश प्रवेशा।।
धन ते दुर्बल न्याय बखाना। सोइ पण्डित जे गावइ जाना ।।४।।
जे गरीब ते होंइ असाधू। बड़ बड़ दंभ, होइ बड़ साधू।।
करि स्वीकार त होइ वियाहा। आनन धोइ नहान निवाहा।।५।।
दूरि क पोखर तीर्थ बतावा। केश सँवारि सुधर कहलावा।।
उदर भरे पुरूषारथ सोई। करे ढिठाई सच्चा होई।।६।।
निज कुल पोषण बड़ निपुनाई। यश हित लागि धर्म अपनाई ।।
एहि विधि होइ धर्म की हानी। तब कलिकाल प्रबल तुम जानी।।७।।

दोहा- ब्राह्मण क्षत्री वैश्य में, औरू शूद्र मँह कोय।
निर्दय लोभी अरूबली, डाकू सम नृप होय ।।८।।

लेहि छीनि सब धन अरुनारी। प्रजा दुखी गिरि खोंह सिधारी।।९।।
होहि अवर्षण बहु कर पीड़ा। शीत ताप झंझा झर नीडा ।।
शाकमूल कछु भोजन करहीं। कलि दुर्लभ सब काहू रहहीं ।।१०।।
क्षुधा प्यास बहु चिन्ता व्यापी। बीस तीस वय कलिमँह मापी ।।११।।
लघु तनु आमय धरहि अनेका। वर्ण धर्म आश्रम सब छेका ।।१२।।
होइ पाखण्ड धर्म पर भारी। नृप होइहिं सब चोर जुआरी।।
चोरी झूठ प्रबल बहु होई। हिंसा कर्म कुकर्म न गोई ।।१३।।

वर्ण सकल होइ शूद्र समाना। बकरी धेनु भेद नहि जाना।।
होइहिं गृही यती संन्यासी। सम्बन्धी ससुरारि प्रिया सी।।१४।।
पौध होंहि छोटे अरू नाटे। शमी समान वृक्ष भर काँटे।।
विजुली कौंधहि मेघ भझारी। वर्षा बिनु सब लोग दुखारी।।१५।।
भार वाह खर इव सब प्रानी। कलि प्रचण्ड कर होइनिसानी।।
धर्म हेतु हरि लिय अवतारा। सदगुण थापि हरिहि भवभारा।।१६।।
तबहिं चराचर रक्षक ईशा। साधु त्राण अइहें जगदीशा।।१७।।
सम्भल ग्राम विप्र के जेहा। पुत्र विष्णुयश कल्की देहा।।१८।।
धरि अवतार अश्व चढ़ि धाये। लै तलवार दुष्ट विनसाये।।
अष्ट सिद्धि नव निधि के स्वामी। देवदत्त चढ़ि मारि कुगामी।।१९।।
अतुलित छबि हय बेग प्रचण्डा। दस्यु नृपन्ह मरिहें शतखण्डा।।२०।।

छन्द-

सब दस्यु सँहारे, पाप निवारे, विशद चित्त मुनिराई।
जय जय भगवाना कल्कि सुजाना, सतयुग दिये लौटाई।।
शुभ देह विराजा अँग रज छाजा, अलिगन मन हरषाई।
पुरनगर विशोका हर्षित लोका, कल्किदेव सुख दाई।।२१।।
सब प्रजा सुखारी, मुनिमन हारी, सन्तति होहिं बलिष्ठा।
सत मूरति माना, हृदय समाना, माधव रूप प्रतिष्ठा।।२२।।
सब धरम स्वरूपा, हरि अभिरूपा, लेइहिं शुभ अवतारा।
कृत युग पुनि आवइ, श्रुतिअस गावइ, लोक सत्त्व गुणधारा।।२३।।
सूर्य चन्द्र गुरू एकइ राशी। तबहि होत सत युगहिं प्रकाशी।।१४।।
चन्द्र सूर्य कुल सिगरे राजा। भूत भविष्यत कहेंउ समाजा।।२५।।

दोहा- राजन! तुम्हरे जन्म से, नन्द नृपति अभिषेक।
एक सहस एक शत वरस, पन्द्रह कीन विवेक।।२६।।

जबहिं सप्त ऋषि उदय अकाशा। युगल तारका करहिं प्रकाशा।।
मध्य भाग एक नखत दिखावा। रात्रि काल सम भाग जनावा ।।२७।।
तेंहि सँग सप्तऋषी सौ वर्षा। गणना मनुज मघा रह हर्षा।।२८।।
जब श्री कृष्ण गये निज धामा। कलि प्रवेश, मति पाप समाना ।।२९।।
जब लगि कृष्ण रहे यहिं ठाऊँ। तब लौं कलियुग धरे न पाऊँ।।३०।।
जब सप्तर्षि मघा पर होई। दैव वर्ष बारह शत सोई।।३१।।
यह परिमाण देव कँह जाना। बत्तिस सहस चार लख माना ।।
जब सप्तर्षि अषाढ़े जाई। नन्द भूप तें कलि गहिराई।।३२।।
कहहिं पुरातन ऋषि यह वानी। कृष्ण गये कलि कीन ठिकानी ।।३३।।
बीते सहस देव के कालां। होइहिं कल्कि सत्त्व युग माला ।।३४।।
अति संक्षेप मनू के वंशा। कहहँउ विप्र क्षत्रिय कुल हंसा ।।३५।।
जिन्ह राजन के कथा सुनाये। कीर्ति शेष ते भूप सुहाये।।३६।।

दोहा- शन्तनु के देवापि अब, मरू इक्ष्वाकू नाम।
महायोग के बल सहित, रहत कलाप ग्राम ।।३७।।

दोनों पुरूष कली के अन्ता। धरिहें धर्म कृपा भगवनता ।।३८।।
सतयुग त्रेता द्वापर कली। क्रमशः चारि युगन्ह प्रतिफली ।।३९।।
प्रमुख नृपति हम दिये बताई। और नृपति होइहिं कलि भाई ।।४०।।
कीड़ा विष्ठा राख समाना। परद्रोही गति नरकहिं जाना।।४१।।
मम पुर्वज धरती करि शासन। मम सन्तति करिहें अनुशासन ।।४२।।
क्षिति जल पावक मानि शरीरा। अन्तकाल तनु तजे अधीरा।।४३।।
बड़-बड़ नृपति काल के ग्रासा। कथा शेष इतिहास दुराशा।।४४।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादश स्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

*

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

श्री शुक उवाच

दोहा- पृथ्वी-जीतन व्यग्र नृप, देखि हँसत भू देवि ।
अरे खिलौना काल के, चाहत मोंहि सहेजि ।।१।।

नृपन्ह व्यर्थ आशा गम्हिरानी। क्षण भंगुर तनु बुदबुद पानी ।।२।।
छहो शत्रु नृप जीतन चाहा। मंत्रि सचिव पुनि जीति न काहा।।३।।
सगरी पृथ्वी होइ अधीना । शिर पर काल न देख प्रवीना ।।४।।
उदधि प्रमान भूमि पर राजा । आत्म विजय कह कौन समाजा।।५।।
बड़े नृपति मनु सरिस विहाई । गये, भूमि केहु साथ न जाई ।।६।।
भाइ-भाइ सुत तात लड़ाही। भू ममता कहि जात सो नाहीं ।।७।।
भूमि हेतु नृप मरहिं मिटाहीं । भू पर प्रेम कहहु केहिं नाहीं ।।८।।

दोहा- पृथू पुरूरव, गाधि अरु, नहुष भरत बलवान ।
खट्व अंग, धाता रघु, सगर, धुन्धु, श्रीराम ।।९।।

शन्तनु, गय, शर्याति, ययाती। नृग, नैषध काकुस्थ सुजाती ।।१०।।
रावण, वृत्र, कशिपु सुरद्रोही। शम्बर नमुचि, तारका कोही।।११।।
अन्य बहुत से बीर भुलाने। भुंइ जीतत यमलोक पयाने ।।१२।।
कितने भूप किये मम प्रीती। कथा शेष, भुंइ गई न जीती ।।१३।।
राजन्! जो यह कथा सुनाई । ज्ञान हेतु, परमार्थ न भाई ।।
यश विस्तार कीन नृप नाना। अन्त, काल वश भये सुजाना ।।१४।।
कृष्णकथा कलि कल्मष हरनी । सन्त अनेक अनेकन्ह बरनी ।।
करइ श्रवण गावइ नित नाना । चाहत प्रेमा भक्ति सुजाना ।।१५।।

राजोवाच

दोहा- केंहि उपाय कलिदोष को, करिहें नाश सुजान ।
दोष बहुल इस काल में, मिलिहें श्री भगवान ।।१६।।

दोहा- युग स्वरूप, युग धर्म को, प्रलय कल्प के मान ।
काल रूप श्री विष्णु के, करु वर्णन श्रीमान ।।१७।।

श्री शुक उवाच

सत्य दया तप औरु सुदाना । सतयुग धर्म चारि पद माना ।।१८।।
होंहि जितंन्द्रिय सतयुग मांही । शान्त मित्र सम दर्शि कहांही ।।
सब सन्तुष्ट दयामय प्रानी । आत्माराम अकोह अकामी ।।१९।।
त्रेता युग एक चरण गँवाये । तीन पाद तप आदि बताये ।।
हिंसा, कलह, झूठ, अपतोषा । अधरम चारि चरण अति दोषा ।।२०।।
त्रेता विप्र होहिं तप शीला । प्रजा न लम्पट नाहि कुशीला ।।२१।।
द्वापर युगहिं होत तप ह्रासा । दया दान दुइ पाद विनाशा ।।
हिंसा, द्वेष असत्य बढ़ावा । धर्म चरण दुइ रहें बचावा ।।२२।।
पढ़हि वेद द्विज क्षत्रिय जाई । धनी कुटुम्बी सुखी कहाई ।।२३।।
बाढ़हि अधरम कलियुग मांही । चौथा चरण त जात नसाहीं ।।२४।।
दुराचार कलि बढ़हि अकारण । शत्रुभाव दुर्भग शुभवारण ।।२५।।
सत्त्व रजस तम बढ़हि प्रभावा । ह्रास विकास यथाक्रम पावा ।।२६।।
बढ़त सत्त्व तप योग सुकाला । सत युग प्रकट होइ कलिकाला ।।२७।।

दोहा- अर्थ काम रुचि बाढ़हिं, होत भक्ति उद्रेक ।
तब त्रेता युग जानउ, रजोवृत्ति अतिरेक ।।२८।।

बाढ़इ दम्भ मान अरुमत्सर । तब जानहु कलियुग मँह द्वापर ।।२९।।
निद्रा तन्द्रा माया झूठा । जानहु तब कलिकाल अनूठा ।।३०।।
क्षुद्र दृष्टि बहु भोजन कीना । विभव हीन कुलटा धन चीन्हा ।।३१।।
चोर लूटि जनपद लै जाहीं । करि पाखण्ड वेद विनसाहीं ।।
राजा चूसत प्रजा कमाई । शिश्नोदर पर विप्र दिखाई ।।३२।।
व्रत खण्डित वटु रहहिं अशौचा । गृही कमात मांगि कर भिच्छा ।।

वानप्रथी कर ग्राम निवासा। संन्यासिन सब धन की आशा ।।३३।।
लघु आकार असन बहु कीना। लाज छाँड़ि बहु सन्तति चीन्हा।।
साहस कपट चोर निपुनाई। कटुभाषण करि नारि जनाई ।।३४।।
क्षुद्र वणिक करि कपट कुचाली। निन्दित वस्तु बेंचि धनशाली।।३५।।
लखि गरीब पति त्यागहिं नारी। स्वामी त्यागहिं भृत्य दुखारी।।
दूध न देइ गाइ सो त्यागा। कलि कराल नहि करत अभागा।।३६।।

सोरठा–मातु पिता हित त्यागि, करहि प्रेम लम्पट नर।
मानहि केवल बात, कहत जो श्यालक, सालिजन।।३७।।

शूद्र धरहि तापस कर वेषा। लेंहि दान करि बहु उपदेशा।।
बैठि सिंहासन धर्म बखाना। यद्यपि स्वयं भूरि अज्ञाना ।।३८।।
दुखी प्रजा ता पर कर भारी। होत अकाल अवर्षण झारी ।।
उपजत अन्न कतहुं कछु नाहीं। संकट मय कंहु प्रान गवाही।।३९।।
वसन अशन भूषन अरुपाना। कलिदुर्लभ नर प्रेत समाना।।४०।।
कौड़िहु लगि सब करत लड़ाई। मरिहैं स्वजन व्याध की नाई ।।४१।।
मातु पिता जब जांहि बुढ़ाई। काम हेतु नहि पालहिं भाई।।४२।।
कलि पाखण्ड प्रचण्ड कराला। हरि नहि पूजि सुरेन्द्र भुवाला।।४३।।
मरत गिरत आतुर लेइ नामा। छूटत कर्म बन्ध विश्रामा ।।
ऐसेहु हरि पद भजहि न काहू। यह कलिकाल स्वभाव उछाहू ।।४४।।

दोहा- यद्यपि कलिमँह दोष बहु, द्रव्य देश गुण लागि।
सकल हरत पुरुषोत्तम, अन्तःकरण विराजि ।।४५।।
श्रवण मनन संकीर्तन, पूजन आदर भाव।
हृदय विराजत कृष्ण के, नाशत पाप- प्रभाव।।४६।।

परत आगि जिमि स्वर्ण निखारा। हिरदय कृष्ण, पाप जरि छारा ।।४७।।
विद्या तप व्रत दान किये ते। होइ शुद्धि यदुनाथ हिये ते।।४८।।

अन्तकाल तव आयउ राजन। हरिहिं विराजहु निज हृदयासन।।४९।।
मरण शील हित यह अनुशासन। सब तजि लीन हरिहिं मन भावन।।५०।।
दोष बहुत कलि, गुण पुनि एका। कीर्तन करत मिलत प्रभु छेका।।५१।।
सतयुग ध्यान, करत मरख त्रेता। सेवा द्वापर कलि हरि जेता।।५२।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

*

।।अथ चतुर्थोऽध्यायः।।

श्री शुक उवाच

दोहा- लै परमाणु परार्धतक, काल दिये बतलाय ।
कल्प काल प्रलयावधि, अब सुनिये मनलाय।।१।।

चारहुं युग दश शत बारा। विधिहिं दिवस एक होतउदारा।।
एक दिवस कँह कल्पकहाहीं। चौदह मनु होते यहिमांही।।२।।
कल्प प्रजन्त प्रलय तब होई। ब्रहम रात्रि कहते सब कोई।।
तीनहुं लोक लीन एहि काला। याही ते यह प्रलय भुवाला।।३।।
यह नैमित्तिक प्रलय कहावा। विश्व उदर हरिशयन बनावा।।४।।
ब्रह्मरात्रि बीते शत वर्षा। सप्त प्रकृति तब लीन सहर्षा।।५।।
प्राकृत प्रलय जान सब कोई। तब ब्रह्माण्ड विलय जब होई।।६।।
प्रलय काल नहि वारिद वारी। अन्न हीन सब क्षुधा दुखारी।।७।।
होइ उपद्रव चारिहुं ओरा। सूखत वारिधि बहत झकोरा।।८।।
सूर्य सँवर्तक सब रस सोखा। संकर्षण पावक कर रोषा।।९।।
वायु वेग बढ़ आगि प्रभावा। लोक तलातल देंहि सुखावा।।१०।।
गोबर पिण्ड आगि जनु लागी। वर्ष शताधिक भड़कत आगी।।११।।
धूम धूलि संकुल भुंइ सारी। उमगत मेघ विचित्र प्रकारी।।१२।।

दोहा- सौ वर्षो तक मेघ तब, बरसत मूसल धार।
सकल भुवन तब जलमय, दीखत अपरम्पार ।।१३।।
सलिल प्रलय के होत ही, जल ग्रस गन्ध अशेष।
गन्ध हीन धरणी तबहि, जल मिलि होत जलेश ।।१४।।
जल गुण रसहिं तेज हरिलीना। वायु तेज गुण रूपहि छीना ।।१५।।
वायु परस गुण व्योम समाना। शब्द गुणक नभ तमस हेराना ।।१६।।
तेजस इन्द्रिय तत्व नसाना। सात्विक अहं लीन सोइ जाना ।।१७।।
महत्तत्व अहमादिक छीना। सोऽपि होइ सत्वादि अधीना ।।१८।।
यह सब महिमा काल बखानी। अन्तहु शेष प्रकृति बच रानी ।।
कारण प्रकृति चराचर राशी। नित्य अनादि अगम्य अनाशी ।।१९।।
मन वाणी अरुसत्त्व तमादी। प्राण बुद्धि नहि रहत युगादी ।।२०।।
स्वप्न सुषुप्ति न जाग्रत भावा। वायु अग्नि नहि रविहिं प्रभावा।।२१।।
नहि अनुमान गम्य कछु बोधा। कह अव्यक्त जतन करि शोधा।।
प्राकृत प्रलय कहत सब लोगू। काल प्रभाव क्षीण सब योगू।।२२।।
दोहा- इन्द्रिय बुद्धि विषय मँह, भासत ज्ञान अनेक।
आदि अन्त कछु सत्य नहि, मिथ्या माया छेक।।२३।।
दीपक नयन रूप मिलि जाई। तीनउ तेजस जानहु भाई ।।
इन्द्रिय बुद्धि विषय तिमि जाना। भिन्न अभिन्न स्वरूप बखाना।।२४।।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था। तैजस विश्व अरु प्राज्ञ व्यवस्था ।।
बुद्धि अनेक सकल अज्ञाना। सत्य एक नहि आत्म समाना ।।२५।।
यथा जलद नभ कबहुं दिखाये। तथा जगत् कहुं ब्रह्म समाये।।
उतपति प्रलय जगत कंह होई। नभ इव ब्रह्म न व्यापे सोई।।२६।।
अवयव सत्य अवयवी मिथ्या। नश्वर वस्त्र, सूत पुनि सत्या।।
तथा जगत सब नश्वर होई। कारण ब्रह्म नित्य रह सोई ।।२७।।

कारण कार्य भेद भ्रम जाना। आदि अन्त सब स्वप्न समाना ।।२८।।
विश्व प्रपंच स्वप्न सम होई। आत्म भिन्न अणुमात्र न सोई ।।२९।।
ब्रह्म एक जग भासइ नाना । सूर्य, बिम्ब जल भास अमाना।।३०।।
कुण्डल नूपुर रूप विराजा। स्वर्ण एक सब जान समाजा ।।
लौकिक वैदिक विज्ञ बखाना। इन्द्रियातीत परमात्महि जाना।।३१।।

दोहा- रवि से बादल होत हैं, लेत रविहिं पुनि घेर।
अहं ब्रह्म से ऊपजत, बाधत ज्ञान अनेर ।।३२।।

चलत वायु घन गा छितराई। देखत नयन रविंहि बरियाई।।
मिटत अहं तिमि ब्रह्म दिखावा । आत्म ज्ञान जिज्ञासू पावा।।३३।।
काटत जीव विवेक कटारी। माया बन्धन होत सुखारी ।।
रहत एक रस जीव बखाना। आत्यन्तिक प्रलय सोइ जाना ।।३४।।
उतपति प्रलय निरन्तर होई । ब्रह्मा लगि तिनका गति सोई ।।३५।।
क्षण क्षन बदलत देह हमारी। दीप शिखा, सरिता इव प्यारी।।
काल वेग तिथि जग बदलाना। उत्पति प्रलय जानु तुम नाना ।।३६।।
उडुगन चलहिं न देहि दिखाई। काल-प्रलय तिमि देखि न जाई।।३७।।
नित्य निमित्तक प्राकृत जाना। प्रलय अत्यन्तिक चारि बखाना ।।३८।।
कुरु पुंगव तुम जानहु भाई । सब कछु ईश शक्ति निपुनाई ।।
करि समास मैं कीन बखाना । विधिंहु सकहिं नहिं पूरन गाना।।३९।।
भव सागर जो चाहहिं पारा। हरि गुन नौका एक सहारा ।।४०।।
यह पुराण नारदहिं बखाना। नर नारायण श्री भगवाना।।
व्यासहिं पुनि देवर्षि सुनावा। पात्र पाइ अतिशय सुख पावा।।४१।।
व्यास देव सोइ मोहिं पढ़ावा। वेद तुल्य यह मम मन भावा।।४२।।
शौनकादि नैमिष मँह जाये। करिहें मख बहु काल सुहाये ।।
वक्ता सूत ऋषिन्ह सनमानी। कहिहें यह संहिता पुरानी।।४३।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

।।अथ पञ्चमोऽध्यायः।।

श्री शुक उवाच

दोहा- यहिं पुराण में श्री हरी, वर्णित बारम्बार ।
जेंहि प्रसाद विधि सर्जक, रुद्र करहिं संहार ।।१।।
'मैं मरिहों' यह मूढ़ता, राजन्! त्यागहु आज ।
पहिले भी थे तुम नहीं, यह शरीर तो व्याज।।२।।

यथा बीज ते अंकुर होई। देह प्रगट पुनि देह विगेई।।
दारु से पृथक होइ जिमि आगी । आत्मा अज तिमि जान अनादी ।।३।।
स्वप्नहिं आपन मृत्यु दिखावा। द्रष्टा आत्मा अमर कहावा।।४।।
घट मँह व्यापत व्योम उदारा। फूटत ताहि, गगन एक सारा।।
मरत देह तिमि जीव निकाया । ब्रह्म तत्व, तेंहि मॉंहि समाया ।।५।।

दोहा- मन सिरजे गुण कर्म को, देह रूप अभिमान।
मन को माया सिरजती, माया संसृति जान ।।६।।

जब लौं तेल पात्र अरुबाती। अग्नि योग, दीपक जलु राती।।
सत्व रजस्तम तथा प्रचारा। जन्म प्रलय थिति होत विचारा।।७।।
दीप बुझे नहिं तेज नसावा। आत्मा अजर अमर श्रुति गावा ।।८।।
आत्म समान आत्म कँह जाना। अमित अनन्त व्योम इव माना।।
बुद्धि विवेक सोचु मन लाई। आत्महि आत्माराम दिखाई।।९।।
प्रेरित विप्र न तक्षक आवा। कालपाश नहि भीति दिखावा।।१०।।
अहं ब्रह्म यह करु तुम ध्याना। आत्मनिष्ठ आनन्द निधाना।।११।।
पन्नग दशत जीभ बहिराये। देखत ब्रह्म न देह पराये।।१२।।

सोरठा-तात! कहेंउ सब बात, जो कछु पूंछे तुम अबहिं।
हरि लीला बलवान, और चहहु तुम का सुनहिं।।१३।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

।।अथ षष्ठोऽध्यायः।।

सूत उवाचः

दोहा- सकल सुने राजर्षिने, शुकमुख निःसृत ज्ञान ।
चरण मूल में शिर झुका, बोले वचन सुजान ।।१।।

राजोवाच

दोहा- करुणा सिन्धु मुने हमहिं, कीने हरिगुण गान।
अब कृत कृत्य भयउं हम, श्रीमन् करउं प्रणाम ।।२।।

यह स्वभाव सब सन्तन केरा। दुःख दवानल देइहिं फेरा।।३।।
तव मुख सुनेउं पुराण नवीना । प्रति पद राजत कृष्ण प्रवीना ।।४।।
आत्म तत्त्व मुनि हमहिं दिखावा । तक्षक भय अब मोंहि न आवा ।।५।।
मौन होंउ अस आयसु पाऊँ। मुक्त काम मैं हरिहिं समाऊं ।।६।।
भयउ दूर अब मम अज्ञाना। हरि पद दरस दिखाय सुजाना ।।७।।

सूत उवाच

दोहा- नरपति पूजा कीन तब, बहुरि शुकहि मनलाय ।
सन्त सहित श्री शुकमुनि, प्रस्थित भे हरषाय ।।८।।

राजऋषी तब ध्यान लगावा। हरिमँह लीन ठूंठ इव भावा ।।९।।
गंगाकूल कुशासन लागा। उत्तर मुंह योगी भ्रम भागा।।१०।।
चलेउ शाप वश तक्षक देखा। आवत कश्यप विप्र विशेषा।।११।।
विषवारण पटु कश्यप जाना। तक्षक दीन द्विजहिं धन नाना ।।
विप्र रूप धरि तक्षक गयउ। ब्रह्म लीन राजहि सो दंशऊ ।।१२।।
विष की अगिन जलाये देहा। ब्रह्मभूत राजर्षि विदेहा ।।१३।।
हाहाकार भयउ चहुँ ओरा। सुर नर विस्मित भयेउ अछोरा ।।१४।।
बाजत देव दुन्दुभी नाना। करत अप्सरा सुन्दर गाना।।
बरषहि सुमन देव नभ छाये। साधु साधु कह शीष नवाये ।।१५।।

तक्षक डँसेउ पिता कँह मोरे। जनमेजय उर क्रोध न थोरे।।
सर्प यज्ञ सो कीन बहोरी। अग्नि कुण्ड आहुति द्विज प्रेरी।।१६।।
सर्पन्ह होत भस्म जब देखा। इन्द्र शरण गह तक्ष विशेषा।।१७।।
अब तक तक्षक गया न मारा। विप्रन्ह बोले नृपतिकुमारा।।१८।।

दोहा- इन्द्र बचावत सर्प को, शरणागत तेंहि जान।
येंहि कारण तक्षक अभी, नहीं हुआ आह्वान।।१९।।

जनमेजय उर क्रोध समावा। इन्द्र सहित तेंहि करउ बुलावा।।२०।।
विप्रन मंत्र उचारे तबही। इन्द्र सहित तक्षक गिरु अबही।।२१।।
विप्र घोष से मचा खभारी। तक्षक इन्द्र विमान प्रचारी।।२२।।
देव गुरू आगे उठि धाये। नृप से बोले बचन सुभाये।।२३।।
अजर-अमर यह तक्षक होई। सुनु नरेन्द्र यह बध्य न सोई।।२४।।
जीवन मरण कर्म-वश जानहु। सुख दुख दाता और न मानहु।।२५।।
भूख प्यास और रोग बहाना। सर्प चोर विद्युत कह नाना।।
निज कृत कर्म भोग फल दाता। कारण भिन्न मृत्यु कर नाता।।२६।।
सर्प सत्र कीजे अवसाना। बिनु अपराध सर्प जर नाना।।१७।।

सूत उवाच

दोहा- गुरु की वाणी श्रवण करि, राखा उनका मान।
पूजन करि गुरुदेव की, किया यज्ञ अवसान।।२८।।

अनिर्वाच्य विष्णू की माया। गुण मोहित सब जीव निकाया।।२९।।
दम्भ कपट सब माया रूपा। आत्मवाद भयभीत स्वरूपा।।
करि संकल्प विकल्प जनावा। लोक और परलोक नसावा।।३०।।
कर्म करण अरु साध्य स्वभावा। इनसे रहित सो आत्म कहावा।।
बाधक बाध्य विचारे जोई। आत्म तत्व लहि विहरे सोई।।३१।।
नेति नेति कह वेद बखाना। सोइ परमपद औरु न आना।।३२।।

विष्णु परम पद सोइ कहावा । देह गेह दुर्जन नहि पावा ।।३३।।
बैर न काहू सन कछु कीन्हा । ममता त्यागि हरी पद चीन्हा ।।३४।।

दोहा- परम तत्त्व श्री कृष्ण को, बारम्बार प्रणाम ।
जेहिं पद पंकज धारि उर, लही संहिता ज्ञान ।।३५।।

शौनक उवाच

पैल आदि वेदज्ञ जन, व्यास शिष्य मतिमान।
वेद विभाजन थे किये, कितने, कहहु सुजान ।।३६।।

सूत उवाच

अनहद नाद प्रगट उर माँही। रहे एकाग्र विरञ्चि कहां ही ।।३७।।
योगी जन जेंहि भावत नीके । लहत मोक्ष भव रोग अमी के ।।३८।।
ओम् प्रकट अनहद से जाना। परब्रह्म सोइ तत्त्व बखाना।।३९।।
इन्द्रिय शक्ति क्षीण होइ जबहीं । स्फोट सुनत आत्मा तबहीं ।।४०।।
हृदय व्योम तब प्रगटे जाई । वाणी वेद विराट कहाई ।।
यह ओंकार ब्रह्म कँह रूपा। सर्व मन्त्र सब वेद अनूपा।।४१।।
ओम् में अक्षर तीन बतावा । अ, उ, म, गुण तीन जनावा ।।४२।।
अज ब्रह्मा सब वर्ण बनाये । क से म तक दिये रचाये ।।४३।।
चारि वेद तब दिये बनाई । चारिंहु वदन श्रुती बहिराई।।४४।।

दोहा- निज पुत्रन्ह को तब विधी, दिये वेद का ज्ञान।
निज निज सन्तति को सभी, ज्ञान दिये पटु जान ।।४५।।

वैदिक ज्ञान सम्हारेहु जाई। चारहु युग ऋषि वटु समुदाई ।।
द्वापर अन्त विभाजन कीन्हा। एकइ ज्ञान चारि विधि चीन्हा।।४६।।
आयु शक्ति मति छीजत जाना । हरिप्रेरित ऋषि कीन्हे नाना।।४७।।
वैवस्वत मनु पुनि लागा जबहीं । लोक पाल याचित प्रभु तबहीं ।।४८।।
सत्यवती से लइ अवतारा । व्यास, वेद किये चारि उदारा ।।४९।।

ऋग् यजु साम अथर्व कहाये। मन्त्र महोदधि मणी सुहावे ।।५०।।
चारि शिष्य तब व्यास बुलाये। एक एक तिन्ह दिये पढ़ाये ।।५१।।
पैलहिं बह्वृच दीन्हे ज्ञाना। वैशम्पायन तें यजुष बखाना।।५२।।
जैमिनि सामवेद समझायें। अथर्व वेद सुमन्तु सुनाये।।५३।।
पैल ऋकहिं दुइ कीन विभागा। इन्द्र प्रमिति, वाष्कल मति जागा।।५४।।
चारि विभाग बाष्कल कीना। बोध, पराशर दिये प्रवीना ।।
याज्ञ वलिक, इन्द्रप्रमि पावा। चारि विभाग त वेद पढ़ावा।।५५।।

दोहा- इन्द्र प्रमिति के शिष्य भे, माण्डुकेय विद्वान्।
देवमित्र, सौभरिसहित, शिष्यन्ह दीने ज्ञान।।५६।।

माण्डुक सुत शाकल्य कहाये। मुद्गल, वात्स्य, शिशिरादि पढ़ाये।।५७।।
जातुकर्ण शिष शाकल केरा। पैज, वेताल, बलाकहि प्रेरा।।५८।।
बाष्कल पुत्र वाष्कली नामा। बालखिल्य सो रची ललामा।।
भज्य, कसारहि दिये पढ़ाई। शाखा ते शाखा होइ जाई ।।५९।।
यह ऋग्वेद प्रशस्त सुनावा। श्रवण करत सब पाप नसावा ।।६०।।
शिष्य वैशम्पायन चरक कहाये। गुरू दोष लगि व्रत अपनाये ।।६१।।
दूसर शिष्य याज्ञवलि जानी। कहेउ कठिन तप की अभिमानी।।६२।।
गुरु तब कहेउ मूढ़ मति तोरे। तजहु मंत्र जो लीनेहु मोरे ।।६३।।

दोहा- देवरात के पुत्र थे, याज्ञवल्कि मुनिराय।
त्यागि गुरू के मंत्र को, चले गये निरुपाय ।।६४।।
यजुर्वेद को वमन सा, देखे तब मुनिवृन्द।
तित्तिर बनि धारण किये, तैत्तिरीय सब छन्द ।।६५।।

याज्ञवल्क्य सोचेउ अति ज्ञानी। सूर्य मनाइ होंउ विज्ञानी ।।६६।।
नमो चराचर जग के स्वामी। हे आदित्य नमामि नमामी।।६७।।
त्रिविध त्रिदेवहि तुम्ही वरिष्ठा। पाप नाश करि देहु प्रतिष्ठा ।।६८।।

भव कारण जगतारण देवा। सृष्टि सकल करती तव सेवा ।।६९।।
परम कारुणिक भास्कर राजा। दुर्जन भीत सुजन तुम्ह भ्राजा।।७०।।
सब दिग्पाल करत तव पूजा। कष्ट हरन तुम और न दूजा।।७१।।
त्रिभुवन वन्दित चरणौ वन्दे। देहि यजुः मोहि ज्ञान अमन्दे ।।७२।।

सूत उवाच

अश्व रूप रवि प्रगटे जाई। यजुर्वेद तेंहि दिये पढ़ाई ।।७३।।
याज्ञवल्क्य रच पन्द्रह शाखा। वाजसनेय नाम जिन्ह राखा ।।
माध्यन्दिन अरु कण्व पढ़ावा। यजुवेद अतिमान बढ़ावा ।।७४।।
जैमिनि साम गान समुझाये। पुत्र-पौत्र दूनउ तिन्ह गाये ।।७५।।
नाम सुकर्मा जैमिनि शिष्या। एक हजार सो रची अभिख्या ।।७६।।
कोशल वास हिरण नभ नामा। श्रेष्ठ अवन्तीवास ललामा।।७७।।
पुनि पुषञ्जि कौशल्य सुहावा। पाँच पाँच सौ शिष्य बनावा ।।७८।।
कुक्षि कुसीद, लौगाक्षि, मांगली। कुल्य पाँच पौषंजि मण्डली ।।
शत शत संख्या लिये अपनाई। सकल संहिता भूरि सुहाई।।७९।।

दोहा- हिरणनाभ के शिष्यका, कृत था सुन्दर नाम।
चौबिस दीन पढ़ाय तब, शेष अवन्ती दाम ।।८०।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः।।६।।

*

।।अथ सप्तमोऽध्यायः।।

सूत उवाच

दोहा- वेद अथर्व सुमन्तु मुनि, शिष्यहि दीन पढ़ाय।
वेद दर्श अरु पथ्य थे, जिनके नाम कहाय।।१।।

दर्शहिं चारि शिष्य थे ज्ञानी। बलि,मोदोष, शुक्ल, पिप्पलानी।।२।।
कुमुद, शुनक, जाजलि नामा। पथ्य शिष्य भे तीन ललामा।।
वभ्रु, सैन्धवा शुनकहिं चेला। सैन्धव शिष्य सावर्ण्य अमेला।।३।।
कश्यप, शान्ति, अंगिरस आदी। अथर्व विद् अब सुनहु कथादी।।४।।
छः पौराणिक थे सुपुनीता। आरुणि, कश्यप, अरु हारीता।।५।।
वैशम्पायन अकृत ब्रण नामा। भे सावर्णि पुराण बखाना।।
व्यास शिष्य मम पिता सुहाये। एक-एक सब दिये पढ़ाये।।६।।
चारि संहिता औरु कहाये। कश्यप संग मोहि पिता बताये।।७।।

दोहा- अब पुराण लक्षण कहउं, ऋषिन्ह दिये बतलाय।
वेद शास्त्र सम्मत यह, शौनक सुनु मनलाय।।८।।

सर्ग विसर्ग वृति मन्वतर रक्षा। वंश, चरित, लय हेतु,अजस्रा।।९।।
दस लक्षण कह बड़े पुराना। छोटेहिं लक्षण पाँच बखाना।।१०।।
महत्तत्त्व गुण लेइहिं क्षोभा। मूल प्रकृति गुण प्रगटहिं शोभा।।
सात्विक राजस तामस भेदा। अहंकार के त्रिविध प्रभेदा।।
इन्द्रिय विषय सृष्टि जब होई। सर्ग कहत ताके सब कोई।।११।।
पुरुष अनुग्रह होत वासना। बीज-बीज से विसर्ग कल्पना।।१२।।
चर अरु अचर वृत्ति उपजाये। करत कामना भू पर आये।।१३।।
युग युग ईश लेहि अवतारा। रक्षा साधु हरन महि भारा।।१४।।
मनु, मनुपुत्र, सुरेश्वर सेवा। मन्वतर कह सत ऋषि हेवा।।१५।।
ब्रह्म सृष्टि नृप वंश कहावा। वंश चरित इति वृत्त बतावा।।१६।।

नित्य, निमित्तिक, प्राकृत चारी। आत्यन्तिक, लय भेद विचारी ।।१७।।
हेतु जीव सर्गादिक मूला। अव्याकृत प्राकृत अनुकूला।।१८।।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति बतावा। प्राकृत तैजस विश्व कहावा ।।१९।।
चौथा तत्व तुरीय बखाना। सोइ अपाश्रय जान सुजाना।।
यथा पदार्थहिं नाम अनेका। परब्रह्म सब व्यापत एका।।२०।।

दोहा- जबहिं चित्त सब वृत्ति को, योग कर्म से त्याग।
आत्म ज्ञान का उदय तब, ब्रह्म ज्ञान अनुराग।।२१।।

मुनी अठारह कहहिं पुराणा। लक्षण लक्षित छोट महाना ।।२२।।
ब्रह्म, पद्म, शिव, विष्णु पुराणा। लिंग, गरुण, नारद जग जाना ।।
अग्नि, भागवत, स्कन्द बखाना। देव नाम वर्णित ते माना ।।२३।।
ब्रह्म वैवर्त , भविष्य, वामना । मत्स्य, बराह, मार्कण्ड नामना ।।
कूर्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराणा। भये अट्ठारह लोक बखाना ।।२४।।

दोहा- कृष्ण द्वैपायन व्यास की, ब्रह्म तेज अभिधान।
शाखा भेद पुराण की, रचना दीन्ह बखान।।२५।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः।।७।।

*

।।अथाष्टमोऽध्यायः।।

शौनक उवाच

दोहा- चिर जीवहु हे सूत तुम , वक्ता बड़े महान।
भ्रमत जीव अति तमस मे, दूर करहू अज्ञान ।।१।।

सब मार्कण्डेय चिरायू जाना। कल्प प्रलय में बचे सुजाना ।।२।।
भृगुवंशी वे ऋषी पुराने। प्रलय कल्प येहि काहु न जाने ।।३।।
प्रलय डूबि क्षिति, रहे अकेले। देखे हरि वटपुटक नवेले।।४।।
यह सन्देह होत मन भारी। दूरि करहू तुम कथा विचारी।।५।।

सूत उवाच

शौनक! प्रश्न कीन मनलाई। मिटत मोह हरि कीरति गाई ।।६।।
सुत मृकण्ड पाये संस्कारा। पढ़े वेद लह ज्ञान उदारा ।।७।।
जटाजूट बल्कल तनु धारे। रुचिर मेखला दण्ड सँवारे।।८।।
कुश रुद्राक्ष मृगा कर चर्मा। पूजत सूर्य अग्नि शुभ धर्मा।।९।।
भिक्षा मांगि गुरुहिं सब देहीं। गुरु आदेश सकृत कछु लेंही ।।१०।।

दोहा- करत तपस्या घोरतर, बीते कोटि बरीस।
हृषीकेष पूजन निरत, जीते मृत्यु अनीस ।।११।।

शिव, विरंचि, भृगु विस्मित भयऊ। देव पितर किन्नर किंकहेऊ ।।१२।।
ब्रह्मचर्य व्रत किये प्रभावा। मिटे दोष, मन हरिहिं लगावा।।१३।।
महायोग हरि जपत त्रिकाला। बीते मन्वन्तर छः काला ।।१४।।
सप्तम मन्वतर जब लागा। इन्द्रहि मन दारुण भय जागा।।१५।।
भेजे इन्द्र ऋषी पँह तबहीं। काम वसन्त लोभमद सबहीं ।।१६।।
तप मे विघ्न हेतु तँह आये। मलय वायु गन्धर्व सुहाये ।।
हिम गिरि उत्तर रुचिर विराजा। भद्रातट आश्रम शुभ छाजा ।।१७।।
शोभित कानन लता विताना। सुभग जलाशय खग कुल नाना।।१८।।

कूजत कोकिल मत्त मयूरा। अलिगन गुंजत द्विज चहुँ ओरा ।।१९।।
हिम शीतल सुरभित बह बाऊ। मन महँ उपजत काम स्वभाऊ ।।२०।।
तब वसन्त निज जाल विछावा। उगत चन्द्र सुमगुच्छ समावा ।।२१।।
गावत नाचत यूथप नाना। लइ गान्धर्व नारि करि गाना ।।
रहेउ यूथपति धनुष उठाये। कामदेव शर पाँच चढ़ाये।।२२।।

दोहा- इन्द्रदूत तब देखेउ, नयन निमीलित गात।
दुराधरष ऋषि वर्य कँह, अग्नि पुंज, जलजात।।२३।।

नाचन लगीं अपसरा नाना। कर गन्धर्व मधुर स्वर गाना।।
वीणा ढोल मृदंग बजाये। विविध ताल सुमनोहर छाये।।२४।।
शोषन दीपन सायक साधे। चला काम कुसुमायुध काँधे ।।२५।।
खेलत कन्दुक पुंजिका कामिनी। शिर से पुष्प गिरत जनु दामिनी।।२६।।
पकड़त कन्दुक दाहिन बायें। वायु गिराये बस्त्र सुभाये ।।२७।।
काम देव तब बाण चलावा। भयेउ विफल, जिमि अधम उपावा।।२८।।
मुनिहि तेज लौटे सब हारे। यथा जगावहिं पन्नग बारे ।।२९।।

दोहा- येंहि विधि चाहे जीतना, इन्द्रदूत, मुनि राय।
अहंकार नहि लेश भर, ऋषिवर बड़ा सुभाय।।३०।।

लौटी चमू पराजित सारी। इन्द्रहि विस्मय भा तब भारी।।३१।।
तप संयम मुनि करत निहारे। नर नारायण आयेउ द्वारे ।।३२।।
एक गौर अरु दूजे श्यामा। भुजाचारि दृग कंज ललामा ।।
लिये कमण्डलु शुभ उपवीता। वेणु दण्ड धारी सुपुनीता ।।३३।।
मूर्तिमान तप धरे शरीरा। आभा पीत वेद कर धीरा ।।
कमल माल उर मांहि विराजा। लागत त्रिभुवन पति के राजा ।।३५।।
आदर दीन दण्डवत कीन्हा। नर नारायण कँह मुनि चीन्हा ।।३६।।
उत्सुक भेंट करत मुनिनाथा। नमो नमः कहि नाये माथा ।।३७।।

दै आसन प्रभु चरण परवारे। चन्दन पुष्प धूप दइ वारे ।।३८।।
देखि प्रसन्न प्रभू मुनिराई। अस्तुति कीन भक्ति मन लाई ।।३९।।

मार्कण्डेय उवाच

दोहा- कैसे वर्णन कर सकूँ, जीव बड़ा मतिमन्द ।
शिव विरंचि के देह में, करहु प्राण निःस्यन्द ।।
मन वाणी अरु करण में, करहु शक्ति संचार ।
भक्त भाव भावित प्रभू, महिमा अपरम्पार ।।४०।।

प्रभु तुम लेहु विविध अवतारा। लोक क्षेम हित पालन हारा ।।
मकड़ि जाल इव रच संसारा। लीन करहु जग उदर अपारा।।४१।।
करहु चराचर पालन स्वामी। चरण कमल तव सदा नमामी।।
कर्म काल कृत नाहिं प्रभावा। जे पद कंज तुम्हार मनावा।।
वेद हृदय मुनि मानहिं तोंही। वन्दन पूजन संतत जोंही ।।४२।।
चारिंउ ओर भीति पुनि छाई। चरण शरण राखहु सुख दाई ।।
कालहु काल ईश जग नाथा। भीत विरंचिहु करहु सनाथा ।।४३।।
देह–गेह सब नश्वर जानी। चरण कमल चाहत सब ज्ञानी।।४४।।
सत्वरजस्तम त्रिविध स्वरूपा। सृष्टि प्रलय थिति करहु अनूपा।।४५।।
मूर्ति सत्त्व तव शान्ति करावा। रज तम भय अरुशोक बढ़ावा।।
नर नारायण मूर्ति तुम्हारी। पूजहिं कुशल भक्तभय हारी।।
पावहिं श्री वैकुण्ठ ललामा। निर्भय आत्म परम सुख धामा।।४६।।
सर्व रूप गुरु अन्तर्यामी। नर नारायण युगल नमामी ।।४७।।
तव माया मोहित भगवाना। भ्रमित होत मति यदपि सुजाना।।
जब तुम कृपा करहु जग स्वामी। वेद पाइ तव दर्शन प्रानी ।।४८।।
वेद तुम्हार ज्ञान आगारा। मोहित सुधी लहैं नहि पारा।।
बन्दउं महापुरुष तव रूपा। सर्व वाद प्रतिरूप अनूपा।।४९।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः।।८।।

।।अथ नवमोऽध्यायः।।

सूत उवाच

दोहा-ज्ञानवान मार्कण्ड से, संस्तुत श्री भगवान् ।
नर के सहित प्रसन्न हो, बोले वचन सुजान।।१।।

श्री भगवान् उवाच

ब्रह्मचर्य संयम तप, तुम ऋषि कीन प्रचण्ड ।
भक्ति भाव स्वाध्याय से, सिद्ध हुये मार्कण्ड।।२।।
हम अतीव सन्तुष्ट हैं, देखि तुम्हारे भाव ।
वर माँगहु जो चाहिए, वर दायक मम नाव।।३।।

ऋषिः उवाच

कृपा कीन मोंहि दरस दिखावा। अब वर नाहि कोउ मन भावा।।४।।
शिव विरंचि जेहि देखि सुखारी। सोइ भगवान् प्रगट भय हारी।।५।।
नलिन विलोचन मांगहु तोंही। निज माया दिखलावहु मोंही।।६।।

सूत उवाच

एवमस्तु कहि दे वरदाना। बदरी वन गे कृपानिधाना।।७।।
दर्शन माया कँह कब होई। सूर्य अग्नि जल पूजत सोई।।८।।
हरि देखत सर्वत्र समाना। भाव द्रव्य पूजहिं विधिनाना।।९।।
एक बार भद्रा तट आये। सन्ध्या काल बवण्डर छाये।।१०।।
भयउ प्रचण्ड शब्द नभ मांही। उठे कराल मेघ समुहाही।।
विद्युत चमक उठी चहुं ओरा। बरसे मेघ रोर कर घोरा।।११।।
पृथ्वी ग्रसन सिन्धु उठि धाये। वायु वेग बड़ नक्र उड़ाये।।१२।।
अन्दर बाहर सलिल दिखावा। जल प्लावन लखि मुनी डेरावा।।१३।।
उठत भयंकर लहर हिंडोरा। उमगत सिन्धु नगन्ह सब बोरा।।१४।।
धरती गगन डूब जल मांही। जटा फेकार ऋषी घवराही।।१५।।

भूख-प्यास व्याकूल मुनिराया। मकर तिमिंगिल देख डेराया।।
अन्धकार उर छायेउ भारी। लहर चपेटत होत दुखारी ।।१६।।
भँवर उठावत पटकत नीके। होत त्रास जल जन्तु अभी के ।।१७।।
शोक दुःख सुख भय अरु मोहा। रोग त्रास यम पाव अछोहा।।१८।।

सोरठा-बीते वर्ष करोड़, भटकत अटकत सिन्धु मँह।
हरि माया कर क्रोड, देखत तनय मृकण्ड कँह।।१९।।

प्रलय काल भटकत मुनिराई। देखे वरगद तरु हरियाई।।
लघु वट वृक्ष सुपल्लव छाये। फल अरुणाभ देखि मन भाये ।।२०।।
उत्तर शाखा एक निहारा। पर्ण पुटक सोवत शिशु प्यारा।।२१।।
मरकत श्याम कमल मुख सोहा। कम्बुकण्ठ नासा मन मोहा ।।२२।।
सुधर कपोल अलक कछु छाये। श्वास लेत उड़ि परत लुभाये।।२३।।
दाडिम फूल कर्ण युग सोहे। विद्रुम अधर सुधासम छोहे ।।२४।।
अरुण नयन, मुख हास सुहावा। नाभि निम्न तँह त्रिबलि बनावा ।।
चरण कमल निज हाथ उठाये। देखि चुसत मुनि विस्मय पाये ।।२५।।

दोहा- बालक देखि विगतश्रम, हरषे राजिव नैन।
पुलक भाव शंकित मन, पूंछन चाहत बैन।।२६।।

बालक-श्वांस उदर मँह गयऊ। मशक समान ऋषि तब भयऊ।।
देखा सृष्टि उदर में सारी। प्रलय पूर्व जैसी थी वारी।।२७।।
सागर सरिता द्वीप अकाशा। सुर अरु असुर देश बन आशा ।।२८।।
पञ्च भूत युग कल्पन नाना। सकल विश्व तेहि उदर समाना ।।२९।।
सोइ हिमालय भद्रा सोई। निज आश्रम मुनिगन सोइ होई ।।
देखत, उदर तें बहिर आवा। प्रलय सिन्धु पुनि गिरा दिखावा ।।३०।।
देखा पुनि वट पुटक शयाना। देखत ऋषिहिं प्रेम दृक जाना।।३१।।
निरखि शिशुहिं मन विस्मितभयऊ। आलिंगन मन आगे गयऊ ।।३२।।

दोहा- जब तक मुनि आगे बढ़े, शिशु भा अन्तर्धान।
यथा अभागे पुरुष का, होत विफल सन्धान।।३३।।
शिशु के अन्तर्धान से, वट पुट हुआ अदृश्य।
मुनि बैठे निज आश्रमहि, सोचत सारे दृश्य।।३४।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः।।९।।

*

।।अथ दशमोऽयायः।।

सूत उवाच

दोहा- हरि निर्मित माया माया, अनुभव किये मुनिनाथ।
करि विचार मार्कण्ड ने, शरण गहे यदुनाथ।।१।।

मार्कंण्डेय उवाच

तव माया निर्मित जग सारा। शरण गहौं मैं नाथ तुम्हारा।।२।।

सूत उवाच

शरणागत मार्कण्डहि देखा। वृषभ ध्वज गण सहित विशेषा।।३।।
उमा देखि विप्रहिं मृदुवानी। बोली, नाथ देखु द्विज ज्ञानी।।४।।
यथा शान्त सागर झख होंही। तथा शान्त द्विज तप फल सोही।।५।।

श्री भगवान् उवाच

द्विज सन्तुष्ट न मोक्षहु चाहा। भगवद् भक्ति सहाइ उछाहा।।६।।
तबहु बात कछु करिहों जाई। साधु-समागम लाभु सुहाई।।७।।

सूत उवाच

अस कहि पास गये भवनाथा। सकल प्राणिहित सदा सनाथा।।८।।
रुद्ध वृत्ति तँह रहे मुनिनायक। जाने नाहिं उमा सह पायक।।९।।
जानि गिरीश योग धरि माया। प्रविशे हृदयाकाश निकाया।।१०।।

जाना मुनि शिव हृदय समाये। जटाजूट पीली लहराये।।
दशभुज तीन नयन उरु बाहू। उदय सूर्य जिमि तेज उछाहू।।११।।

दोहा- बाघचर्म पहने शिव, लिये खड्ग अरु शूल।
माला डमरू धनुष, होहिं जगत् के मूल।।१२।।

विस्मित शिव के देखि स्वरूपा। कौन, कहाँ, मुनि सोच अनूपा।।१३।।
खोले नयन सती शिव देखा। कीन प्रणाम प्रणत सविशेषा।।१४।।
उमा सहित पूजे त्रिपुरारी। स्वागत आसन अर्घ्य उतारी।।१५।।
पूर्णकाम ईशान तुम्हारी। सेवा केहिं विधि करो पुरारी।।१६।।
सदा शान्त शिव सत्त्व महेशा। नमो नमः रज तमो गुणेशा।।१७।।

सूत उवाच

अस्तुति कीन मुनीश महेशा। विहँसि वचन बोले जगदीशा।।१८।।

श्री भगवान् उवाच

व्यर्थ न दर्शन होइ हमारा। मांगहु वर, त्रिदेव अधिकारा।।१९।।
ब्राह्मण साधु प्राणिहित कारी। होत अनन्य भक्त अविकारी।।२०।।
वन्दहिं लोक पाल द्विज जानी। ब्रह्मा, विष्णु महेश भवानी।।२१।।

दोहा- भेद न मानहि लेश भरि, शिव, अज, विष्णू मांहि।
आपहु आत्म समान रति, हम सब सेवहुं ताहि।।२२।।

जल कँह तीरथ नाहि बखाना। मूर्ति होहिं जड़ देव न जाना।।
सत्य सन्त जे तीर्थ पुनीता। दर्शन मात्र करहिं सुपुनीता।।२३।।
तप संयम जे ध्यान लगावा। तिन्ह विप्रन्ह हम शीश झुकावा।।२४।।
सुनत चरित सब पाप नसाही। काह कहों जे द्विज बति याहीं ।।२५।।

सूत उवाच

दोहा- चन्द्रमौलि के वचन सुनि, धर्म तत्व लवलीन।
अमृत तुल्य श्रवणन पियत, तृप्त न होत प्रवीन।।२६।।

हरिमाया भ्रामित तनु, कृषित थके मुनिराय।
क्लेश सकल तव नष्ट भा, शिव के वचन अघाय।।२७।।

ऋषि: उवाच

हरि लीला कोउ सके न जाना। ईश करहिं मानुष गुण गाना ।।२८।।
धर्म धुरीण बखानहि धरमा। करहिं प्रशंसा देखि सुकर्मा ।।२९।।
निज माया जग देहि लुभाई। स्तुति से लघुता किमि आई ।।३०।।
मन से सृष्टि करहि भगवाना। होहिं अकर्ता स्वप्न समाना ।।३१।।
गुणातीत प्रभु आत्म स्वरूपा। नौमि निरन्तर गुरू अनूपा ।।३२।।
तव दर्शन बड़ वर नहि भावा। देखि तुमहि सब काम नसावा ।।३३।।
तदपि एक वर मांगउ तोही। अविचल भगति देहु प्रभु मोंही ।।३४।।

सूत उवाच

दोहा- एहि विधि मुनि से पूजित, मधुर वचन जगदीश।
उमा सराहत भाववश, बोले शम्भु मुनीश ।।३५।।

कल्प प्रजन्त अमर तुम होहू। करउ बहुत जगनायक छोहू ।।३६।।
ज्ञान त्रिकाल विरति तव होई। सकल पुराण हस्तगत सोई।।३७।।

सूत उवाच

अस कहि गये त्रिलोचन धामा। उमहि सुनावत ऋषि गुन ग्रामा ।।३८।।
भृगु कुल भूषण मुनी विराजा। विचरत धरा भगति गुन राजा।।३९।।
मुनि मार्कण्डेय कथा मैं गाई। शौनक! माया हरिहिं बड़ाई ।।४०।।
कछु अजान यह भेद न जाना। मुनिहिं दीर्घ जीवन कत माना ।।४१।।

दोहा- यह चरित्र भृगुवर्य का, हरिमाया सम्मान।
कहहिं सुनहि दूनउ जन, मोक्ष देंहि भगवान् ।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्याय:।।१०।।

*

।।अथ एकादशोऽध्यायः।।

शौनक उवाच

दोहा- अखिल तन्त्र सिद्धान्त के, तुम बहुज्ञ मतिमान।
पूंछन कछु चाहूं तुमहि, भगवत तत्त्व महान् ।।१।।

श्रीपति-सेवा तांत्रिक रीती। आयुध, अंग सुनावहु नीती ।।२।।
क्रिया योग जो अमर बनाई। हमहि सुनावहु तुम मन लाई ।।३।।

सूत उवाच

गुरु पद वन्दि बतावउं तोहीं। विष्णु विभूति कहे अज मोंही।।४।।
मायादिक नव तत्त्व विकारा। निर्मित जगत दिखावत सारा।।५।।
पृथ्वी चरण स्वर्ग शिर ताके। सूर्य नयन दिक कान हैं जाके ।।६।।
जनन प्रजापति मृत्यु अपाना। लोकप भुज मन चन्द्रहि जाना ।।७।।
लज्जा लोभ अधर दुइ माना। वृक्ष रोम अरु भ्रम मुस्काना।।
मेघ शिरोरुह दिये बताई। दन्त कान्ति चाँदनी सुहाई ।।८।।
वित्ता सातहि व्यष्टि कहावा। तथा समष्टी रूप बतावा ।।९।।
आत्म ज्योति मणि कौस्तुभ राजे। प्रभा ताहि श्रीवत्स विराजे।।१०।।
माया त्रिगुण सोह वनमाला। पीत वसन उपवीत निराला ।।११।।
सांख्य योग कुण्डल दुइ सोहा। अभय मुकुट शीश मन मोहा।।१२।।
शय्या शेष प्रकृति सोइ जाना। धर्म ज्ञान कज नाभि बखाना ।।१३।।
मनस्तत्त्व प्रभु गदा जनावा। शंख सलिल, दर तेज कहावा ।।१४।।
व्योम तत्त्व हरि खड्ग अनूपा। ढाल तमोमय लिए स्वरूपा ।।
शार्ङ्ग धनुष काल सम माना। इषुधि कर्ममय वेद बखाना ।।१५।।
इन्द्रिय बाण मनोरथ ताके। वर अरु अभय क्रिया विधि वाके।।१६।।
रवि शशि मण्डल पूजा स्थाना। सेवा प्रभुहि पाप विनसाना ।।१७।।
लीला कमल विभूति बतावा। यश अरु धर्म चँवर दुई गावा।।१८।।

आत्म शक्ति श्री हरिहिं बतावा। पार्षद विष्वक्सेन कहावा ।।
अष्ट द्वारपति सिद्धि गिनाईं। अणिमा महिमा आदि कहाई ।।२०।।

दोहा- चतुर्व्यूह के रुप में वासुदेव बलराम।
अनिरुध अरु प्रद्युम्न को, पूजत विश्व ललाम ।।२१।।

विश्व सुतेजस प्राज्ञ तुरीया। अखिल ज्ञान साखी कमनीया ।।२२।।
अंग, उपांग, सुआयुध भूषण। चतुर्व्यूह भगवान विभूषण।।२३।।
वेदभूक्त सोइ ईश कहाये। स्व प्रकाश महिमा सब गाये ।।
करत सृष्टि पालन संहारा। आत्म रूप निज भक्त पुकारा ।।२४।।
अर्जुन सखे कृष्ण अवतारी। यदुकुल तिलक भूमि भय हारी।।१५।।
व्रज वनिता गोविन्द बुलाये। तीर्थ सुमंगल सेवक गाये ।।
प्रातकाल जे पढ़हि सुनाई। तेंहि के हृदय ज्ञान होइ जाई ।।२६।।

शौनक उवाच

दोहा- कही कथा शुक देव ने, विष्णुरात समुझाय।
सौर मास गण सप्तक, मास-मास बदलाय ।।२७।।
दोहा- द्वादश गण आदित्य सँग, करहिं कौन से काम।
श्रद्धा सहित सुनत हम, कहहु व्यूह के नाम ।।२८।।

सूत उवाच

सब जग आत्मा विष्णु कहाये। मण्डल सौर अविद्या जाये ।।२९।।
एक सूर्य हरि आत्म स्वरूपा। वैदिक क्रिया रूप बहुरूपा ।।३०।।
हरी एक नव रूप विराजा। कर्ता क्रिया द्रव्य फल साजा ।।३१।।
द्वादश मास लिये गण साथा। सूर्य भ्रमण जग करत सनाथा ।।३२।।
चैत्र मास निज कर्म कराहीं। धाता हेति वासुकी आंही ।।
कृतस्थली तुम्बुर मधुमासा। रथकृत यक्ष सदा रह पासा।।३३।।
सूर्य, पुलह, ऋषि, अर्यम यक्षा। नारद, कच्छ, वैशाख सुरक्षा।।३४।।

अत्रि, मित्र, मेनका, हाहा। तक्षक, जेठमास निर्वाहा ।।३५।।
वरुण सूर्य ऋषि वशिष्ठ, सुरभ्भा। कर आषाढ़ हुहू आरम्भा।।३६।।
इन्द्र, विसावसु, श्रोता, एला। सावन अंगिरा वर्य सुहेला।।३७।।
भादों विवस्वान, रवि होई। उग्रसेन अनुलोचा सोई।।३८।।
पूषा भानु माघ मँह आये। वात सुषेण धनंजय जाये।।३९।।
कह परजन्य सूर्य के नामा। फागुन क्रतु भरद्वाज बखाना।।४०।।
मार्गशीर्ष रवि अंशु कहावा। उर्वसि कश्यप साथ बतावा।।४१।।
पूस मास भग सूर्य अनूपा। ऊर्ण आयु कर्कोटक रूपा।।४२।।
क्वार मास त्वष्टा रवि नामा। कम्बल, शतजित साथ ललामा।।४३।।
विष्णु स्वयं रवि कार्तिक माहीं। रम्भा मित्र आदि सब आंही।।४४।।

दोहा- विष्णु रूप श्री सूर्य की, दीन विभूति बखान।
दूनउ सन्ध्या सुधि करे, होत सदा कल्यान।।४५।।

बारह मास लिये गण साथा। विचरत रहत सदा दिननाथा।।४६।।
अस्तुति करहिं ऋषी कह वेदा। नृत्य करहि अपसरा अखेदा।।४७।।
कसहिं नाग रथ यक्ष सजावा। बल लगाइ तिन्ह रक्ष बढ़ावा।।४८।।
बाल खिल्य ऋषि साठि हजारा। अस्तुति करहि देहि जल धारा।।४९।।
कल्प कल्प हरि विविध स्वरूपा। पालत सर्जत व्यूह अनेका।।५०।।

।। इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः।।११।।

*

।।अथ द्वादशोऽध्यायः।।

सूत उवाच

दोहा- करि प्रणाम श्री कृष्ण को, नमन करू मैं धर्म।
विप्र वर्य को प्रणति कर, कहों सनातन मर्म ।।१।।

जो कछु पूंछेउ दीन सुनाई। विष्णु चरित द्विज दियो बताई।।२।।
येहिं पुराण हरि कीर्तन भाई। पाप हारि इन्द्रिय पति गाई।।३।।
ब्रह्म तत्त्व अति गुप्त प्रकाशा। थिति लय उत्पति जासु सुपासा।।४।।
भक्ति योग वैराग्य बतावा। देवरात नारद मुनि गावा।।५।।
ब्रह्म शाप राजर्षि सुनावा। शुक संवाद परीक्षित आवा।।६।।
विधि नारद संवाद बखाना। प्राकृत सृष्टि निरूपण नाना।।७।।
उद्धव विदुर मधुर संवादा। पुनि मैत्रेय बिदुर शुचि वादा।।
प्रश्न पुराण संहिता जाना। प्रलय काल किमि ब्रह्म समाना।।८।।
प्राकृत वैकृत सर्ग बताये। किमि ब्रह्माण्ड पुरुष उपजाये।।९।।
स्थूल सूक्ष्म दोउ काल बखाने। भू उद्धार हिरणाक्ष नसाने।।१०।।
पशु पक्षी कौने विधि जाये। अर्धनारि स्वायंभू मनु आये।।११।।
प्रथम नारि शतरूपा जाई। कर्दम चरित दिये पुनि गाई।।१२।।
तब भगवान् कपिल अवतारा। देवहूति संवाद प्रचारा।।१३।।
प्रजापती नव दिये गिनाई। दक्ष यज्ञ किमि भंग कराई।।
ध्रुव कँह चरित पृथू जस राजा। वर्हि प्राचीन आदि सुविराजा।।१४।।
तेहि सँग नारद कह संवादा। नाभि ऋषभ जडभरत विषादा।।१५।।
द्वीप वर्ष गिरि सरित गिनावा। ज्योति नरक पाताल बतावा।।१६।।
दक्ष-प्रचेता जन्म सुनावा। देव मनुज वृत्रासुर गावा।।१७।।
त्वष्टा सूत की कथा सुनाये। श्री प्रह्लाद चरित शुभ गाये।।१८।।
तव मन्वन्तर चरित बखाने। गज को आये हरी बचाने।।१९।।

कूर्म मत्स्य वामन अवतारा। हथग्रीव, तारन भू भारा।।
मन्थन उदधि कथा विस्तारा। दानव देव समर किमि झारा।।२०।।
इक्ष्वाकुन्ह कँह कथा बखानी। नृप सुद्युम्न सुयश की खानी।।२१।।
तारा इला बताये तोंही। रवि कुल शशाद नृप होंही।।२२।।
कही कथा शर्याति सुकन्या। नृप खट्वांग सगर की धन्या।।२३।।
राम चरित्र संक्षेप बखानी। जनक आदि नृप वरने ज्ञानी।।२४।।
परशु राम क्षत्रिय कुल घालक। नहुष ययाति हुये प्रतिपालक।।२५।।

दोहा- कही कथा दुष्यन्त की, जाके भरत सपूत।
शन्तनु की गाथा कही, यदुकुल कीर्ति प्रभूत।।२६।।

जेंहि कुल जन्मे कृष्ण कन्हाई। गृह वसुदेव गोपकुल जाई।।२७।।
उनकी कीर्ति अनन्त बखानी। शकट पूतना मोक्ष कहानी।।२८।।
तृणावर्त वक वत्स नसाये। धेनुक लम्ब प्रलम्ब पठाये।।२९।।
दावानल से गोप बचाये। कालि दमन, नँद जाइ छुड़ाये।।३०।।
कन्या व्रत, पति कृष्णस्वरूपा। अच्युत वर दीन्हे अनुरूपा।।
द्विज पत्नी पर कीन प्रसादा। तातें द्विजगण कीन विषादा।।३१।।
लिये गोवर्धन हाथ उठाई। सुरभि इन्द्र अभिषेक कराई।।३२।।
शरद पूर्णिमा रात बनावा। गोपिन्ह सँग हरि रास रचावा।।
शंख चूड अरु केशी मारे। कंस दूत अक्रूर पधारे।।३३।।
राम कृष्ण जब जात विलोकी। गोपि विलाप सकीं नहि रोकी।।
मथुरा आइ नगर हरि देखा। गज मुष्टिक कंसहि निष्पेशा।।३४।।

दोहा- मरे पुत्र को लाइके, गुरुहिं दक्षिणा दीन।
वसि मथुरा उद्धव सँग, भला सबहि का कीन।।३५।।

जरा सन्ध सेना बहु मारे। यवन जराइ द्वारका सिधारे।।३६।।
कल्पवृक्ष अरु हरे सुधरमा। रुक्मिणि हरण कीन रण कर्मा।।३७।।

शिवहिं जँभाइ बाण भुज काटे। भौम मारि नारिन्ह घर पाटे।।३८।।
शाल्व पौण्ड्र शिशुपाल उधारे। शम्बर द्विविद पीठ मुर मारे।।३९।।
पाण्डव हित भू भार नसाये। चक्रहिं काशीपुरी जलाये।।४०।।
विप्रशाप निज वंश सँहारे। उद्धव से संवाद सँवारे।।४१।।
आत्म योग कर कीन निरूपण। मर्त्यलोक त्यागे यदुभूषण।।४२।।
युग लक्षण द्वादश में गाये। कलि कौतुक जे होन बताये।।
त्रिविध जन्म अरु परलय चारी। एहि में हमने कहे विचारी।।४३।।
देह त्याग राजर्षि बतावा। शाखा वेदन्ह दीन्ह सुनावा।।
ऋषि मार्कण्ड कथा मैं बरनी। सूरज द्वादश गण शुभ करनी।।४४।।

दोहा- जो कछु पूंछे द्विजगण, सब मैं दीन बताय।
लीला पुरुषहिं हरि कथा, कही सकल मन लाय।।४५।।

दोहा- गिरत परत फिसलत नर, विवश लेइ हरि नाम।
हरये नमः यह कहत ही, पातक पुंज नसान।।४६।।

हरि अनन्त गुण धाम अनन्ता। गावत हृदय आव श्रीकन्ता।
सूर्य तमस् घन वायु उड़ावा। तथा पाप हरि नाम नसावा।।४७।।
जो वाणी नहि प्रभु गुण गावा। सुन्दर यदपि न सत्य कहावा।।४८।।
गावत हरि गुण होत उछाहा। सूखत शोक समुद्र अथाहा।।४९।।
लोक पवित्र करे सोइ वाणी। प्रभु गुण गावत जो कल्याणी।।
काक तीर्थ तेहि इतर बखाना। संत हंस जँह देहिं न माना।।५०।।

दोहा- सुजन सराहहिं काव्य सो, जामें प्रभु गुण गान।
भलेंहि काव्य गुण कम रहें, सोइ आदरहिं सुजान।।५१।।

भगति हीन कोउ ज्ञान न भावा। हरिहिं समर्पि कर्म फल पावा।।५२।।
वर्ण आचरण यश श्री देंही। अविचल भगति त पाव सनेही।।५३।।
वर्ण धर्म पालन फल एहा। यश अरु लक्ष्मी करत सनेहा।।

हरि चरणन अविचल परतीती । गुण गण श्रवण देत यह रीती ।।
अविरल भगति अमंगल हारी । परम शान्ति उर देत मुरारी ।।५४।।
शुद्ध भाव लह भक्ति अखण्डा । ज्ञान विराग विवेक प्रचण्डा ।।
विप्रवर्य अतिशय बड़ भागी । उर धरि राखहु कृष्ण सुरागी ।।५५।।
भूसुर ऋण मैं मानउ तोरा । आत्मतत्त्व प्रवचन चहुँ ओरा ।।
राजहिं श्री शुक कथा सुनाई । हमहूँ सुने सकल मन लाई ।।५६।।
हमहूँ कीन कृष्ण गुन गाना । सकल अशुभ तत्काल नसाना ।।५७।।

दोहा- एक पहर आधा पहर, एकहु क्षण मन लाय ।
श्रद्धा सहित सुने कथा, मन पवित्र होइ जाय ।।

तिथी एकादशि द्वादशि जोई । सुनत कथा दीर्घायू होई ।।५८।।
पुष्कर मथुरा द्वारका मांही । सुनत संहिता पाप नसाही ।।६०।।
देव पितर मानुष गन्धर्वा । हरि सुमिरत पूरहि मन सर्वा ।।६१।।
ऋक् यजु साम पढ़त द्विज जेते । मधु, घृत दूध सरित लह तेते ।।६२।।
करि संयम जे पढ़हि पुराणा । लहहिं परम पद लह विज्ञाना ।।६३।।
विप्र पढ़त प्रज्ञा पर पाये । क्षत्रिय पढ़त राज अधिकाये ।।
होहिं कुबेर वैश्य धन वाना । शूद्र सुनत सब पाप नसाना ।।६४।।
कलिमल हारी श्री भगवाना । सकल पुराण करहि गुणगाना ।।
यहि पुराण हरि कीरति गाई । पद-पद राधा कृष्ण कन्हाई ।।६५।।
अज अनादि शोभित अविकारी । सर्ग प्रलय स्थिति भय हारी ।।
शिव विरंचि सुरपाल न जाना । जेंहि प्रभु, नमन करों भगवाना ।।६६।।
करहिं चराचर सृष्टि अनूपा । नवधा शक्ति सुकल्प स्वरूपा ।।
अनुभग गम्य परम पद जासू । नवउं सनातन जगन्निवासू ।।६७।।

दोहा- आत्मा राम अकाम मुनि, श्री शुक देव सुजान ।
हरि लीला वर्णन किये, नमन ताहि भगवान ।।६८।।

।।इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

।।अथ त्रयोदशोऽध्यायः।।

सूत उवाच

छन्द- जेहिं ध्यावत ब्रह्मा इन्द्र मरुतपति
स्वयं रुद्र त्रिपुरारी।
गुण-गण चीन्हा अस्तुति कीन्हा
दिव्य भाव उर धारी।
ऋषि मुनि गावत ध्यान लगावत
साम गान अधिकारी।।
योगी जन ध्यावहिं योग सराहंहि
मन मँह रूप निहारी।।
जेहि अन्त न जाना, सुर दनु नाना,
नमन, विष्णु अविकारी।।१।।

छन्द- कच्छप तनु धारी, मन्दर भारी
घूमत पीठ मथानी।
गिरि नोक खुजाना, प्रभु सुख माना।
सोवत श्वांस बढ़ानी।
जल निधि जल भारी, वेग उभारी,
आजहु नाहि थकानी।
सोइ प्राण समाना श्री भगवाना
करे त्राण सन्मानी।।२।।

अब पुराण प्रतिपाद्य बखानौं। संख्या श्लोक आदि सब जानों।।
पद्धति दान पाठ विधि नाना। महिमा श्रवण करो धरि ध्याना।।३।।
दस हजार है ब्राह्म पुराणा। पचपन पद्म पुराण बखाना।।
तेइस सहस्त्र श्री विष्णु पुराणा। शिव पुराण चौबीस महाना।।४।।

दोहा- श्री भागवत पुराण में, श्लोक अठार हजार।
नारद महा पुराण कँह, सहस पचीस विचार ।।५।।

नव सहस्र मार्कण्ड बतावा। साढ़े पन्द्रह अग्नि कहावा।।
सार्ध चतुर्दश भावि पुराणा। ब्रह्म वैवर्त अठारह माना।।६।।
सहस एकादश लिंग पुराणा। चौविस हजार वाराह पुराणा।।
एक सौ अधिक एक्यासि हजारा। स्कन्द पुराण अहइ विस्तारा।।
बामन दस हजार कहलाये। संख्या श्लोक पुराणन गाये।।७।।
सत्रह कूर्म, चतुर्दश मत्स्या। सहस उनीस गरुड वरिवस्या।।
बारह हजार ब्रह्माण्ड पुराणा। संख्या पद्म जनि मुनि नाना।।८।।

दोहा- सब पुराण में जोड़कर, चारि लाख अश्लोक।
अष्टादश सहस्र है, श्री भागवत विशोक।।९।।

भवभय भीत विरंची जबहीं। श्री हरि तिंनहि सुनाये तबहीं ।।१०।।
जाके आदि मध्य अवसाना। कथा अनेक विराग प्रधाना ।।११।।
सब उपनिषद सार यह भाई। जीव ब्रह्म दोउ एक कहाई ।।
साध्य एक साधन है नाना। मोक्ष प्रयोजन सब कँह माना ।।१२।।
भाद्र पूर्णिमा स्वर्ण सिंहासन। दान भागवत देत वरासन।।१३।।
तब लौं अन्य पुराण बड़ाई। जब लौं नहि भागवत दिखाई।।१४।।

दोहा- अखिल वेद का सार यह, श्री भागवत पुरान।
इसके रस से तृप्त को, मन नहि भावत आन ।।१५।।

नदिन्ह माँहि गंगा बड़ जैसी। देवन्ह विष्णु यथा समदर्शी।।
वैष्णव मुख्य शम्भु हैं जैसे। सकल पुराणन में यह वैसे।।१६।।
काशी यथा तीर्थ मँह राजा। श्री भागवत पुराण समाजा ।।१७।।

छन्द- श्री भागवत पुराण निर्मल, वैष्णवों का प्रिय अहा!
एहि माँहि हंस अनूप अनपम, ज्ञान है अद्भुत कहा।

सकल कर्म निवृत्ति मूलक, ज्ञान भक्ति विराग भी,
पढ़त सुनत मन मँह गुनत, भक्ति मुक्ति अवस लहा।।१८।।
यह ज्ञान दीप स्वयं हरी ने, प्रथमहि विरंची को दिये।
ब्रह्मा दिये पुनि नारदहिं, देवर्षि व्यासहिं से कहे।
श्री व्यास ने योगीन्द्र शुक से, श्री शुक परीक्षित को दिये।
परम शुद्ध विवेक निर्भय, सत्य हम ध्यावहिं हिये।।१९।।

दोहा- परम तत्त्व श्री कृष्ण को, बारम्बार प्रणाम।
मोक्ष काम चतुरानहिं, दीन्ह संहिता ज्ञान।।२०।।

दोहा- योगिराज शुकदेव को, नमस्कार सविशेष।
संसृति सर्प परीक्षितहिं, मुक्त कीन उपदेश।।२१।
देव देव करुणानिधे, एकमेव मम नाथ।
ऐसी करिये प्रभु कृपा, जन्म-जन्म तव साथ।।२२।।
नाम लेत सब पाप हर, प्रणति दुःख निर्मूल।
बन्दउ श्री हरि के चरण, हरण सदा भव शूल।।२३।।

इति श्री पण्डिताचार्य भानुदत्त पाण्डेयज्येष्ठसूनुना कूराडीह, प्रतापगढ़ लब्धजन्मना आचार्य गायत्री प्रसाद पाण्डेयेन काशी वास्तव्येन विरचिते श्री मद्भागवत् महापुराणस्य दोहा-चौपाई रूपान्तरणे द्वादश स्कन्धस्य त्रयोदशात्मकोऽध्यायः

श्री वैक्रमीये २०७३ संवत्सरे सौम्याख्ये वैशाखी पूर्णिमायाम्

तदनुसारि २०१६ ईस्वीये वर्षे मई मासस्य २१

तारिकायायाम् सम्पूर्णः।।१३।।

।।श्री भगवदर्पणमस्तु।।

श्री हरिशरणम्

*

